श्री मद्वाल्मीकीय
...ायण

धारावाही हिन्दी अनुवाद सहित

3

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण

[धारावाही हिन्दी अनुवाद सहित]
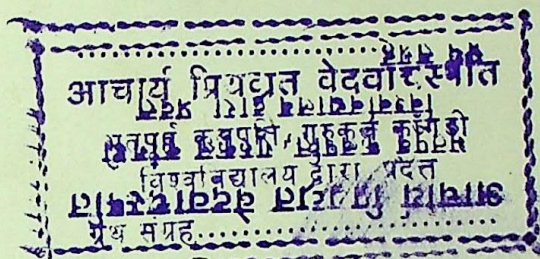
तृतीय खण्ड

सुन्दरकाण्ड तथा युद्धकाण्ड

सम्पादक तथा अनुवादक

पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न

भूतपूर्व वेद तथा पाली प्रोफेसर, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय

तथा

हिन्दी निरुक्तभाष्य, मनुस्मृति, (हिन्दी अनुवाद सहित) कल्याणपथ (गीता भाष्य), स्वामी दयानन्द के सत्य-अहिंसा के प्रयोग आदि ग्रन्थों के कर्ता

प्रकाशक :
प्रतिभा प्रकाशन
१३ कचहरी रोड,
देहरादून

प्रथमवार :: नवम्बर १९५३
मूल्य सात रुपये

मुद्रक :
सुमेधकुमार, प्रभाकर
भास्कर प्रेस,
देहरादून

रामायण-स्तवन

(संकलनकर्ता किसी अर्वाचीत कवि द्वारा)

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥१॥

यः श्रृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते ।
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥२॥

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥३॥

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ।
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥४॥

श्रृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥५॥

समागम्य प्रवासान्ते रमन्ते सह बान्धवैः ।
श्रृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥६॥

ते प्रार्थितान्वरान्सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात् ।
श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते संप्रश्रृण्वताम् ॥७॥

विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यत्र वै ।
विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् ॥८॥

स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् ।
पूजयँश्च पठँश्चैनम् इतिहासं पुरातनम् ॥९॥

एवमेतत्पुरावृत्तम् आख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥१०॥

प्राचीन काल में वाल्मीकि ऋषि द्वारा बनाया हुआ यह आर्ष आदिकाव्य कर्तव्यबोधक है, यशदायक है, आयुष्य-प्रद है, और राजाओं के लिए विजय-प्रापक है : दुनिया में जो मनुष्य नित्य इसे सुनता है, वह बुराइयों से छुटकारा पाता है। राजा पृथिवी को जीतता है, और दुश्मनों को वश में करता है। जैसे राम से कौसल्या, लक्ष्मण से सुमित्रा, तथा भरत से कैकेयी यशस्वी पुत्र वाली हुई, वैसे मातायें यशस्वी पुत्र वाली होती हैं। सब के लिये कल्याणकारी कर्म करने वाले राम के इस रामचरित को व विजय-वृत्तान्त को सुनकर मनुष्य दीर्घ आयु पाता है।

जो सत्य को धारण करने में तत्पर रह कर, व क्रोध को जीत कर प्राचीन काल में वाल्मीकि द्वारा बनाये गये इस काव्य को सुनता है, वह कठिन से कठिन कामों को तर जाता है। प्राचीन काल में वाल्मीकि द्वारा बनाये गये इस काव्य को जो लोग सुनते हैं, वे प्रवास के अन्त में खुशी २ लौट कर बन्धुओं के साथ आनन्द से रहते हैं। रामायण के सुनने से लोग राम-जीवन से सब तरह के अभीष्ट वर पाते हैं, और उनसे सभी देव लोग प्रसन्न रहते हैं। जिस कुटुम्ब में कुटुम्बी लोग नायक रहित (बुजुर्गरहित) रह जाते हैं, वे भी उपद्रव रहित शान्ति से रहते हैं। रामायण के सुनने से राजा परदेश में जाकर कुशल मंगल पूर्वक रहेगा और पृथिवी को जीतेगा। रजस्वला स्त्रियां इस पुरातन इतिहास को अपनाती व पढ़ती हुईं श्रेष्ठ पुत्रों को जनेंगी।

एवं, यह पुरातन बीता हुआ कथानक आप लोगों के लिये कल्याणकारी होवे। इस कथानक का प्रचार आप एकचित्त होकर कीजिये और सर्वव्यापक परमात्मा के बल को बढ़ाइये।

पूर्व वचन

इस तृतीय खण्ड के साथ आदिकवि ऋषि वाल्मीकि कृत रामायण का हिन्दी अनुवाद समाप्त हो रहा है। इन तीनों खण्डों की समस्त रामायण में छै काण्ड, अवतरणिका सहित २८७ सर्ग, तथा ८७२१ श्लोक हैं। परन्तु, बहुत्र स्थलों में चार-चार पादों के स्थान पर छै-छै पादों के श्लोक भी आये हैं, अतः चार पादों का एक श्लोक मान कर श्लोक संख्या लगभग ६ हजार हो जावेगी।

प्रस्तुत रामायण-पुस्तकों में पाठ-भेद बहुत अधिक पाये जाते हैं, और प्रक्षिप्तांश भी बहुतायत से है। उस प्रक्षिप्तांश को इस पुस्तक में निकाल दिया गया है। प्रक्षिप्तांश किस आधार पर निकाले गए हैं, यह विषय बहुत विस्तार की अपेक्षा रखता है, अतः उसे समालोचनात्मक चौथे खण्ड में पीछे दर्शाया जावेगा। पर पाठक इस रामायण को आद्योपान्त पढ़ कर यह तो स्वतः अनुभव कर लेंगे कि इस में लड़ी कहीं टूटती नहीं, अपितु एक जैसी सरसता पूर्वक आदि से अन्त तक गयी है।

स्वतंत्र भारत में देश का चरित्र फिर से अपने प्राचीन कालीन आदर्श-पथ पर अग्रसर हो, और भारत का राज्य राम-राज्य बने, इस कामना को सामने रख कर मैंने यह अतिकठिन प्रयास किया है। अन्ततः प्रयास के परखैया पाठक हैं।

वाल्मीकि ऋषि ने रामायण की समाप्ति राम के राज्याभिषेक से १० वर्ष बाद की है, जैसे कि रामायण में आए अन्तिम श्लोक से विदित होता है। इन दस वर्षों में राम का राज्य जिस प्रकार का रहा, उस का वर्णन वाल्मीकि कवि ने जिसप्रकार किया है, वही राम-राज्य है। वह इसप्रकार है—

"एवं, अनुपम राज्य पाकर धर्मात्मा राम ने भी अपने पूर्व-पुरुषों के समान मित्रों, भाइयों, बान्धवों की सहायता से बहुविध लोकोपकारी कार्य किए। परिणामस्वरूप, राम के राज्य-शासन में कहीं विधवाओं का करुण-क्रन्दन नहीं था, कहीं शठों–हिंसकों का भय नहीं था, और कहीं रोग का डर न था। राज्य भर में न डाकुओं–चोरों–गठकतरों–लुटेरों का नाम था, न कोई किसी पर-पदार्थ को छूता था, और न कभी वृद्ध लोगों ने बालकों का मृतक संस्कार किया। एवं, सब प्रजाजन सदा आनन्द–प्रसन्न थे। सब अपने २ कर्तव्य-धर्म में तत्पर थे, और राम को आदर्श रूप में देखते हुए परस्पर में किसी ने किसी को दुःख नहीं दिया। राम के राज्य-शासन में मनुष्य दीर्घजीवी थे, सन्तान बलवान् होती थी, और सब रोग-रहित व शोक-रहित थे। देश में वृक्ष समय पर फूलते, समय पर फलते, और समय पर मूल-कन्द प्रदान करते थे, क्योंकि मेघ काम-वर्षी रहता और हवा सुखदायिनी चला करती थी। सब लोग अपने २ कर्मों से सन्तुष्ट रह कर अपने २ कर्मों में लगे रहते, जिससे राम के राज्य में समस्त प्रजा सत्यपरायण थी, अनृतग्राही न थ। सम्प्रति राम को राज्य करते हुए दस साल बीत गए हैं, परन्तु सभी लोग शुभ लक्षण-सम्पन्न हैं, और सभी कर्तव्य-परायण हैं।"

इस वाल्मीकि रामायण के पठन व श्रवण से जो-जो अनुपम लाभ होते है, उसका वर्णन किसी अर्वाचीन कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से किया है, उसे हम ने ज्यों का त्यों हिन्दी अनुवाद सहित 'पूर्ववचन' से पूर्व दे दिया है। ये श्लोक रामायण की समाप्ति पर युद्ध काण्ड के १२८वें सर्ग के अन्त में आए हैं।

रामायण का प्रथम खण्ड विदेशों के भारतस्थित दूतों के पास भेजा, उन्हों ने पुस्तक को सराहा और पुस्तक अपने २ देशों में भेजी। बेल्जियम के शिक्षामंत्री, टर्की के युनिवर्सिटी प्रोफेसर आदिकों ने भी प्रशंसा के शब्द लिखे। भारत सरकार के मंत्रियों श्री देशमुख, श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर आदि ने हिन्दी अनुवाद की विशेष सराहना की। श्री राहुल सांकृत्यायन, श्री भारतेन्दु हिन्दी सिण्डिकेट वर्धा के संचालक श्री उमाशंकर शुल्क, बनारस के श्री बा० भगवानदास आदि प्रसिद्ध साहित्यिकों ने भी अनुवाद को हृदयग्राही बतलाया। इसप्रकार सब क्षेत्रों से जो मुझे उत्साह मिला है, तदर्थ मैं उन सब का कृतज्ञ हूँ।

दीपावली
६-११-५३

जन-सेवक
चन्द्रमणि विद्यालंकार

विषय-सूचि

सुन्दर काण्ड, २४ सर्ग

युद्ध काण्ड, ७५ सर्ग

वाल्मीकि श्लोक प्रज्ञापिणी

निर्णय सागर यन्त्रालय मुम्बई में मुद्रित वाल्मीकि रामायण के आधार पर श्लोकों के पते लगभग निम्न प्रकार हैं। इसमें पहली संख्या प्रस्तुत पुस्तक की सर्ग संख्या है, दूसरी तरह का टाइप निर्णय सागर के सर्गों का बोधक है, और तीसरा टाइप उन सर्गों की श्लोक संख्या को बताता है।

सुन्दर काण्ड, ८३० श्लोक

१— 1. ७–१०, ३३–४२, ५४–६७, ८५–११०, १२३–१२५, १७३–१६४

२, ३— 2, 4

४— 9. १–३, १६–२२, 10. १–१३, ३०, ३५, ५० –५३

५— 11. १–४, ३६–४८

६, ७— 13, 14

८— 15. १, १६–२८, ४१–५४

६–१७— 18–24, 27, 30

१८— 31. १–१६, 32. १, २, ६, 33. १–३, १२–१६, ३०–३१

१६, २०— 34, 35

२१— 35. ८६, 36

२२— 37 १–२०, 38. १० ५३–६६

२३— 39. १–६, 40. २०–२३, 41. १-२, 56. ४०–४२ 57. १४–४८, 60. ८–१६

२४— 61. १–१४, 65. १–२, ८, १६–२७

युद्ध काण्ड, २३५४ श्लोक

१— 1. १, ७–१५, 3. ३–२३

२— 4. १–२३, ६४–१०४, 5. १–२

३-१०— 6, 7, 9, 16–20
११— 21. ११-१२, 22. २७–८३
१२— 23. १, 24. १३–४३
१३–१५ — 25, 29, 31
१६— 32. १–३, ३१–४३
१७–२०— 33–35, 37
२१— 41. २६-४५, ५८–९८
२२— 42. १, ३२–४०, 43. ५–४२
२३— 44. १-२, १७–३६, 45. १५–२१
२४— 46 २५— 47. ५-२१, 48. २२–३६
२६— 49. १-२, 50. ७, १३-२२, ३६–६१
२७— 51. १–२३, २९
२८— 52. १-२, २३–३७
२९— 53. १–४, १७–२५, 54. १४–१७, ३१–३६
३०— 55. २–१५, ३०–३२, 56. १–१३, २५–३६
३१-३२— 57, 58
३३— 60. १–२२, ६०, ८८–९०, 62. १–१६
३४— 63
३५— 65. ९-१७, 66. १-२, 67. ४–४९ १००-१२१, १६७
३६— 68 ३७— 69. १–४१, ७०–९६
३८— 70. १–४, १२-४४, ५०–६६
३९— 71. १-६; ३८-७८, ९२, १०५-१०६
४०— 73. २-९, १७, २९-३४, ५८-७०
४१— 74. १-४, २६–३५, ५०-६९
४२— 75. ३४–४९, ५८-६८

४३— 76. १–३५
४४— 76. ३६–६२
४५— 77. १-२, ६–२२
४६— 78. १–५, 79. १–३६
४७— 80. १–५, १८–४०
४८— 81 ४६— 8`. १–१३, ४२-४३
५०— 84. १–२०
५१— 85. २०–३५, 87. ८-२६
५२— 88. १, ५–१७, ६१–६२, 89. ३६-४२, ५२
५३— 90. ४–८१ ५४— 91
५५— 92. १–७, १४–१७, ३२–३७, ५८–६३
५६— 93. १, 95. ४-५, २१–२२,२६–५०
५७— 96. ५–६, १३–३४
५८-६०— 97, 98, 99 ६१— 100. १–५३
६२— 107. १–५, ५२, 108. १–३१
६३— 110. १–३, ६, ११–२२, २६
६४— 111. ६१–११४
६५–६७— 112, 113, 114
६८— 115. १–१०, 120. २३, 121. १–२३, २६
६९–७१— 122, 123, 124
७२— 125. १–४२, 126. १–४
७३— 127. १–२०, ३३–५६
७४— 128. १–४६
७५— 128. ५६–१०४
रामायण–स्तवन—128. १०५–११४, ११८

वाल्मीकि रामायण

सुन्दर काण्ड

सर्ग १

स तस्य गिरिवर्यस्य तले नागवरायुते।
तिष्ठन् कपिवरस्तत्र ह्रदे नाग इवाबभौ ॥१॥

स सूर्याय महेन्द्राय पवनाय स्वयंभुवे।
भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा चकार गमने मतिम् ॥२॥

प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः।

हनुमान का समुद्र के पार पहुँच जाना

वानरश्रेष्ठ हनुमान फनियर सांपों से युक्त उस पर्वत पर खड़ा हुआ ऐसा प्रतीत दे रहा था, जैसे कि कोई सांप फन उठाए तालाब में खड़ा हो। उसने सूर्य-महेन्द्र-पवन-स्वयंभू नामों वाले परमात्मदेव, तथा चराचर भूतों को प्रणाम करके कूच करने की मति स्थिर की। पास में विद्यमान वानर सेनापतियों ने देखा कि समुद्र-तरण में कृतनिश्चयी हनुमान ने राम-विजय के लिए

ववृधे रामवृद्ध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥३॥
बाहू संस्तम्भयामास महापरिघसन्निभौ ।
आससाद कपिः कट्यां चरणौ संचुकोच च ॥४॥
संहृत्य च भुजौ श्रीमांस्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा वीर्यमाविवेश स वीर्यवान् ॥५॥
मार्गमालोकयन् दूरादूर्ध्वप्रणिहितेक्षणः ।
रुरोध हृदये प्राणान् आकाशमवलोकयन् ॥६॥
पद्भ्यां दृढमवस्थानं कृत्वा स कपिकुञ्जरः ।
निकुच्य कर्णौ हनुमान् उत्पतिष्यन्महाबलः ।
वानरान् वानरश्रेष्ठ इदं वचनमब्रवीत् ॥७॥
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः ।
गच्छेत्तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावणपालिताम् ॥८॥

अपने दिल तथा शरीर को ऐसा फुलाया जैसे कि पूर्णिमा अमावस्या के दिनों में समुद्र ज्वारभाटे से फैला करता है। उसने बड़ी गदा-जैसी अपनी दोनों भुजाओं को ताना और कटि के नीचे दोनों पावों को टेक कर बैठ गया। शोभायमान पराक्रमी हनुमान् ने अपनी भुजाओं तथा गर्दन को सिकोड़ कर अपने में तेज, आत्मविश्वास, तथा पराक्रम को धारण किया, और ऊंची दृष्टि दौड़ा कर दूर तक मार्ग को निहार कर आकाश का अवलोकन किया और हृदय में प्राणों को रोका। फिर महाबली वानरवीर हनुमान् पैरों के बल मजबूती से ठहरा, और कानों को दबा कर समुद्र में कूदने को तय्यार होकर वानरों से बोला—

"वीरो ! जैसे राम के धनुष से छुटा वाण वायु वेग के समान जाता है वैसे मैं रावण-पालित लंका की ओर जाऊंगा।

नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम् ।
बद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम् ॥९॥
एवमुक्त्वा तु हनुमान् वानरो वानरोत्तमः ।
उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ॥१०॥
तस्याम्बरगतौ बाहू ददृशाते प्रसारितौ ।
पर्वताग्राद्विनिष्क्रान्तौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥११॥
पिवन्निव बभौ चापि सोर्मिजालं महार्णवम् ।
पिपासुरिव चाकाशं ददृशे स महाकपिः ॥१२॥
तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ।
नयने विप्रकाशेते पर्वतस्थाविवानलौ ॥१३॥
पिङ्गे पिङ्गाक्षमुख्यस्य बृहती परिमण्डले ।

वहां पहुंच कर यदि मैं जनक-दुलारी सीता को नहीं पाऊंगा, तो राक्षसों के राजा रावण को बांध कर ले आऊंगा।"

इस प्रकार वानरोत्तम वानर हनुमान् कह कर, बिना इसका विचार किये कि इतने विशाल समुद्र में उसका क्या बनेगा, धम्म से समुद्र में कूद पड़ा। उस समय उसकी फैलाई हुई आकाशगत बाहुएं पांच अंगुलियों से ऐसी मालूम पड़ रहीं थी कि मानो पर्वत की चोटी से निकले पंचमुंहे सांप हों। और वह वानरराज ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो तरंगों से भरपूर महासमुद्र का जल पी रहा हो और साथ ही आकाश को भी पीने को उतावला हो रहा हो। वायु के समान वेग से तैरते हुए उसकी विद्युत्-प्रभा जैसी आंखें ऐसी चमक रही थी जैसे कि पहाड़ में आग लगी हो। पिङ्गलाक्ष वानरों के मुखिया हनुमान् की पिंगल वर्ण सी गोल २ बड़ी आंखें ऐसे दमक रही थी मानो

चक्षुषी सम्प्रकाशेते चन्द्रसूर्याविव स्थितौ ॥१४॥
मुखं नासिकया तस्य ताम्रया ताम्रमाबभौ ।
सन्ध्यया समभिस्पृष्टं यथा स्यात्सूर्यमण्डलम् ॥१५॥

तस्य वानरसिंहस्य प्लवमानस्य सागरम् ।
कक्षान्तरगतो वायुर्जीमूत इव गर्जति ॥१६॥

उपरिष्टाच्छरीरेण च्छायया चावगाढ़या ।
सागरे मारुताविष्टा नौरिवासीत्तदा कपिः ॥१७॥

यं यं देशं समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ।
स तु तस्याङ्गवेगेन सोन्माद इव लक्ष्यते ॥१८॥

सागरस्योर्मिजालानाम् उरसा शैलवर्ष्मणा ।
अभिघ्नंस्तु महावेगः पुप्लुवे स महाकपिः ॥१९॥

तस्मिन्प्लवगशार्दूले प्लवमाने हनूमति ।

कि चन्द्र-सूर्य ठहरे हुए हों। और, ताम्र रंग जैसी नाक के कारण उसका मुख ऐसा लाल हो रहा था कि मानो संध्याकाल के साथ लगा सूर्यमण्डल हो।

वह वानरसिंह जब समुद्र को तर रहा था, तो उसकी बगलों की हवा मेघ के समान गर्ज रही थी। और तैरता हुआ जब वह शरीर से ऊपर उठता था और उससे घनी छाया जल पर पड़ती थी, तब वह वानर ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो समुद्र में हवा भरी नौका चल रही हो। महावानर समुद्र के जिस २ प्रदेश में पहुंचता था वह २ प्रदेश उसके शारीरिक वेग के कारण विक्षुब्ध हो उठता था। इस प्रकार महावेगवान् वह महाकपि सागर के तरंग-जालों को चट्टान जैसी छाती से काटता हुआ तैर रहा था।

इक्ष्वाकुकुलमानार्थी चिन्तयामास सागरः ॥२०॥
साहाय्यं वानरेन्द्रस्य यदि नाहं हनूमतः।
करिष्यामि भविष्यामि सर्ववाच्यो विवक्षताम् ॥२१॥
अहमिक्ष्वाकुनाथेन सागरेण विवर्धितः।
इक्ष्वाकुसचिवश्चायं तन्नार्हत्यवसादितुम् ॥२२॥
तथा मया विधातव्यं विश्रमेत यथा कपिः।
शेषं च मयि विश्रान्तः सुखी सोऽतितरिष्यति ॥२३॥
इति कृत्वा मतिं साध्वीं समुद्रश्छन्नमम्भसि।
हिरण्यनाभं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥२४॥
स एष कपिशार्दूलस्त्वामुपर्येति वीर्यवान्।
हनूमान् रामकार्यार्थी भीमकर्मा खमाप्लुतः।
श्रमं च प्लवगेन्द्रस्य समीक्ष्योत्थातुमर्हसि ॥२५॥

वानर-केसरी हनुमान् के समुद्र पार करते समय मानो कि इक्ष्वाकु कुल-मानार्थी सागर ने सोचा कि "यदि मैं वानरेन्द्र हनुमान् की सहायता नहीं करूंगा तो कहने वालों से सर्वथा निन्दनीय ठहरूंगा, क्योंकि इक्ष्वाकुकुल-नाथ सगर वंश ने गंगा द्वारा मुझे बढ़ाया है, और यह इक्ष्वाकुकुल के राम का साथी है, इसलिए इसे थकावट का कष्ट न होने देना चाहिए। मुझे ऐसा काम करना चाहिए जिससे वानर विश्राम पा ले। मेरे में विश्राम पाकर फिर वह शेष मार्ग सुखपूर्वक तर जावेगा।"

इस प्रकार की उत्तम बुद्धि करके मानो कि समुद्र ने जल में छिपे हुए हीरों आदि से युक्त पर्वतश्रेष्ठ मैनाक को कहा—"हनुमान् नामक कार्यार्थी समुद्र-तरण रूपी भयंकर काम को अपना कर आकाश समान पारावार रहित समुद्र में कूदा हुआ है, सो तू वानरेन्द्र की थकावट को सोच कर ऊपर उठ जा।"

हिरण्यगर्भो मैनाको निशम्य लवणाम्भसः।
उत्पपात जलात्तूर्णं महाद्रुमलतावृतः ।।२६।।

स सागरजलं भित्त्वा बभूवात्युच्छ्रितस्तदा।
यथा जलधरं भित्त्वा दीप्तरश्मिर्दिवाकरः ।।२७।।

स महात्मा मुहूर्तेन पर्वतः सलिलावृतः।
दर्शयामास श्रृङ्गाणि सागरेण नियोजितः ।।२८।।

तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थितः।
प्रीतो हृष्टमना वाक्यमब्रवीत्पर्वतः कपिम् ।।२६।।

तिष्ठ त्वं हरिशार्दूल मयि विश्रम्य गम्यताम् ।।३०।।

तदिदं गन्धवत्स्वादु कन्दमूलफलं बहु।
तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विश्रान्तोऽथ गमिष्यसि ।।३१।।

खारी जल वाले समुद्र की बात को सुन कर हीरों आदि से युक्त मैनाक मानो कि शीघ्र जल में से ऊपर उठ गया, अर्थात् जल-तरंगों के कम हो जाने से वह साफ़ दीख पड़ने लगा, जिस पर बहुत से पेड़ तथा लतायें लगी हुई थीं। तब वह समुद्र-जल को चीर कर काफी ऊपर उठ गया, जैसे कि मेघ को चीर कर प्रचण्ड-किरण सूर्य निकला करता है। एवं, सागर के कहने पर पानी से ढके हुए उस विशाल पहाड़ की चोटियां थोड़ी ही देर में दीख पड़ने लगी।

तब मानो कि उस ऊपर उठे हुए पहाड़ ने प्रीति-हर्ष से भर कर समुद्र में ऊपर २ तैर रहे वीर हनुमान् को कहा—"वानर केसरी! कुछ देर ठहरो, मेरे पर विश्राम करके तब आगे जावो। ये कन्द-मूल-फल सुगन्धि-युक्त और स्वादु हैं और भरपूर हैं, वानरश्रेष्ठ! उन्हें खाकर और थकावटको दूर करके तब जावो।"

एवमुक्तः कपिश्रेष्ठस्तं नगोत्तममब्रवीत् ।
प्रीतोऽस्मि कृतमातिथ्यं मन्युरेषोपनीयताम् ॥३२॥
त्वरते कार्यकालो मे अहश्चाप्यतिवर्तते ।
प्रतिज्ञा च मया दत्ता न स्थातव्यमिहान्तरा ॥३३॥
इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालभ्य हरिपुंगवः ।
जगामाकाशमाविश्य वीर्यवान्प्रहसन्निव ॥३४॥
प्लवमानं तु तं दृष्ट्वा सिंहिका नाम राक्षसी ।
मानसा चिन्तयामास प्रवृद्धा कामरूपिणी ॥३५॥
अद्य दीर्घस्य कालस्य भविष्याम्यहमाशिता ।

हनुमान् को ऐसा कहने पर उसने पर्वतश्रेष्ठ से कहा—"मैं आप से बड़ा प्रसन्न हूं, आपने मेरा आतिथ्य खूब किया है। पर आप गुस्सा न मानिए, मैं यहां देर तक नहीं ठहर सकता। कार्य पूरा करने का समय मुझ से जल्दी कर रहा है, और फिर दिन भी बहुत बीत चुका है, अपिच मैंने शीघ्र लौट आने का प्रतिज्ञा वचन भी दे रखा है, इस लिए मैं यहां बीच में देर तक नहीं ठहर सकता।"

हरिश्रेष्ठ ने इस प्रकार कहकर पर्वत पर हाथ धरा, और पराक्रमी बनकर हंसता हुआ आकाश समान पारावार रहित समुद्र में चल पड़ा।

हनुमान् समुद्र में तैरता चला जा रहा था कि महाभयंकर बहुत बड़ी, तथा नये २ रूप बदलने वाली ह्वेल मछली (सिंहिका शायद सिंह समान घातक ह्वेल मछली है, या अन्य कोई भयंकर समुद्री जानवर है) ने उसे देख लिया और सोचने लगी—"आज चिरकाल के बाद मैं भरपेट खाऊंगी। यह विशाल प्राणी

इदं मम महासत्त्वं चिरस्य वशमागतम् ॥३६॥
इति सञ्चिन्त्य मनसा च्छायामस्य समाक्षिपत् ।
छायायां गृह्यमाणायां चिन्तयामास वानरः ॥३७॥
समाक्षिप्तोऽस्मि सहसा पङ्गूकृत-पराक्रमः ।
प्रतिलोमेन वातेन महानौरिव सागरे ॥३८॥
तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव वीक्षमाणस्तदा कपिः ।
ददर्श स महासत्त्वमुत्थितं लवणाम्भसि ॥३९॥
तद् दृष्ट्वा चिन्तयामास मारुतिर्विकृताननाम् ॥४०॥
कपिराज्ञा यथा ख्यातं सत्त्वमद्भुतदर्शनम् ।
छायाग्राहि महावीर्यं तदिदं नात्र संशयः ॥४१॥
स तां बुद्ध्वाऽर्थतत्त्वेन सिंहिकां मतिमान्कपिः ।
व्यवर्धत महाकायः प्रावृषीव बलाहकः ॥४२॥

देर बाद मेरे वश में पड़ा है।" ऐसा सोच कर वह बिलकुल उसके समीप पहुंच गयी।

बिलकुल पकड़ में आ जाने पर हनुमान् ने सोचा कि मैं पकड़ में आ गया हूं, और मेरा पराक्रम एकदम लंगड़ा कर दिया गया है, जैसे कि विरुद्ध हवा के कारण जहाज समुद्र में बेकार हो जाता है। तब हनुमान् ने दांये-बाँये, ऊपर-नीचे देखा तो दीख पड़ा कि एक विशाल जानवर लवण समुद्र में ऊपर मुंह किए विद्यमान है। वानरराज ने जैसा विलक्षण प्राणी देखा, उसे मुंह खोले देख कर मारुत-पुत्र ने सोचा कि अब इसमें कोई शक नहीं रहा कि मैं इस महाबली प्राणी की पकड़ में हूं।

बुद्धिमान वानर ने सब पहलुओं से उस ह्वेल मछली की शक्ति को पहिचान कर अपने विशाल शरीर को और फुलाया,

तस्य सा कायमुद्वीक्ष्य वर्धमानं महाकपेः।
वक्त्रं प्रसारयामास पातालाम्बरसन्निभम् ।।४३।।

घनराजीव गर्जन्ती वानरम् समभिद्रवत्।
स ददर्श ततस्तस्या विकृतम् सुमहन्मुखम् ।।४४।।

कायमात्रं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः।
स तस्या विकृते वक्त्रे वज्रसंहननः कपिः ।।४५।।

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य वानरः।
उत्पपाताथ वेगेन मनःसम्पातविक्रमः ।।४६।।

तां तु दृष्ट्या च धृत्या च दाक्षिण्येन निपात्य सः।
कपिप्रवीरो वेगेन ववृधे पुनरात्मवान् ।।४७।।

जैसे कि वर्षा-काल में मेघ फैला करता है। महावानर के बढ़े हुए शरीर को देखकर मछली ने पाताल-आकाशवर्ती अवकाश की तरह अपने मुख को फैलाया, और मेघमाला के समान गर्जती हुई उस पर लपकी। उस समय हनुमान् ने बुरी तरह खुले हुए उसके विशाल मुख को देखा।

मेधावी हनुमान् यद्यपि वज्र को भी तोड़ गिराने वाला था, परन्तु इस समय उसका शरीर निस्तेज पड़ गया था और मर्मस्थल भी बेकार से हो गये थे। बस, वह मछली के खुले मुंह में जा पड़ा।

तब मछली के अन्दर समाये हनुमान् ने जल्दी से मन की गति के समान पराक्रम करके उसके मर्मस्थलों को तीखे नखों से काट डाला और बाहर निकल आया। इस प्रकार वानरवीर ने भगवत्कृपा से, धैर्य से और चतुरता से सिंहिका को मार कर झटिति फिर अपने को तेजस्वी बना लिया और हृदय बढ़ गया।

हृतहृत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।
स्वयंभुवैव हनुमान् सृष्टस्तस्या निपातने ॥४८॥

तां हतां वानरेणाशु पतितां वीक्ष्य सिंहिकाम्।
भूतान्याकाशचारीणि तमूचुः प्लवगोत्तमम् ॥४९॥

भीममद्य कृतं कर्म महत्सत्त्वं त्वया हतम्।
साधयार्थमभिप्रेतम् अरिष्टम् प्लवतां वर ॥५०॥

यस्य त्वेतानि चत्वारि वानरेन्द्र यथा तव।
धृतिर्दृष्टिर्मतिर्दाक्ष्यं स कर्मसु न सीदति ॥५१॥

स तैः सम्पूजितः पूज्यः प्रतिपन्नप्रयोजनैः।
जगामाकाशमाविश्य पन्नगाशनवत्कपिः ॥५२॥

हनुमान् द्वारा हृदय-चिरी वह मछली प्राण-शून्य होकर समुद्र में जा गिरी, और ऐसा पता लगा कि शायद इस सिंहिका को मार गिराने के लिए ही परमात्मा ने हनुमान् को पैदा किया था।

तब हनुमान् द्वारा बात की बात में मार गिराई हुई सिंहिका को देखकर मानो कि आकाश-विहारी आत्मायों ने वानरश्रेष्ठ को कहा—"तुमने आज बड़ा भयानक काम किया है, जोकि तुमने एक भयंकर प्राणी को मार डाला है। समुद्र तरने वालों में श्रेष्ठ! अब तुम अपने अभिप्रेत कार्य को विघ्नरहित पूरा करोगे। वानरेन्द्र! जिसके पास धैर्य, यथातथ दर्शन, बुद्धि, और चतुराई, ये चार साधन रहते हैं, जैसे कि तुम्हारे में हैं, वह कर्मों में असफल नहीं होता।"

इस प्रकार वह पूजा के योग्य हनुमान् उन आकाश-विहारी आत्मायों से, जिनके कि सब प्रयोजन पूरे उतरते हैं, भलीप्रकार पूजित होकर गरुड़ के समान बड़ी तेजी से आकाश के तुल्य

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् ।
योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥५३॥
ददर्श च पतन्नेव विविधद्रुमभूषितम् ।
द्वीपं शाखामृगश्रेष्ठो मलयोपवनानि च ॥५४॥
सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् ।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि व्यलोकयत् ॥५५॥

सर्ग २

स सागरमनाधृष्यमतिक्रम्य महाबलः ।
त्रिकूटस्य तटे लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ह ॥१॥
ततः पादपमुक्तेन पुष्पवर्षेण वीर्यवान् ।
अभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः ॥२॥
योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाऽप्युत्तमविक्रमः ।

पारावार रहित समुद्र में आगे चल पड़ा । और सौ योजन तैरते के पश्चात् अत्यन्त लम्बे मार्ग को पार किए हुए हनुमान् ने जब चहुं ओर दृष्टि दौड़ाई तो उसे वन-पंक्ति दीख पड़ी । उसने पार उतरते ही देखा कि द्वीप नाना वृक्षों से विभूषित है, और मलय प्रदेश-जैसे उपवन यहां भी हैं । उसने समुद्र को, समुद्रवर्ती भूखण्डों को, भूखण्डों के वृक्षों को, और सागर में गिरने वाली नदियों को भी देखा ।

पार पहुँच कर अगले कृत्य का निश्चय

महाबली हनुमान् ने अलंघनीय समुद्र को पार कर स्वस्थ हो त्रिकूट नामक पर्वत पर खड़े होकर लंका को देखा । उस स्थल पर वृक्षों से झड़ रहे पुष्पों की वर्षा पराक्रमी हरि पर खूब बरसी, जिससे वह पुष्पों से लद गया । शोभायुक्त उत्तम विक्रमी कपि

अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥३॥
स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः ।
जगाम वेगवाँल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥४॥
शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च ।
मधुमन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च ॥५॥
शैलांश्च तरुसञ्छन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः ।
अभिचक्राम तेजस्वी हनुमान् प्लवगर्षभः ॥६॥
स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च ।
स नगाग्रे स्थितां लङ्कां ददर्श पवनात्मजः ॥७॥
समासाद्य च लक्ष्मीवाँल्लङ्कां रावणपालिताम् ।
परिखाभिः सपद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥८॥

सौ योजन तैर कर भी हांफा नहीं और न उसने वहां किसी तरह की थकावट को अनुभव किया, अपितु वीर्यवानों में श्रेष्ठ और तैराकों में भी उत्तम वह वेगशाली महासागर को पार कर लंका द्वीप पहुँच गया। वह उस त्रिकूट पर नील-सदृश घास-प्रदेशों, सुगन्धि से भरपूर वनों, और शहद वाले पर्वत-क्षेत्रों के बीच में से होकर लम्बे २ डग भरकर चलने वालों में श्रेष्ठ तेजस्वी हनुमान वृक्षों से ढके हुए टीलों और पुष्पित वनमालाओं को लांघता हुआ वहां पहुंचा। पवन-पुत्र ने उस पहाड़ पर खड़े होकर वनों, उपवनों, तथा सुन्दर टीले पर बनी लंका नगरी को देखा।

तत्पश्चात् रावण-पालित लंका नगरी के समीप पहुँच कर लक्ष्मीवान् हनुमान् ने देखा कि वह सफेद तथा लाल कमलों से युक्त परिखायों से अलंकृत है, सीतापहरण के कारण रावण ने उस

सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्वभिः ॥९॥
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
गृहैश्च गिरिसङ्काशैः शारदाम्बुदसन्निभैः ॥१०॥
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वजशोभिताम् ॥११॥
तोरणैः काञ्चनैर्दिव्यैर्लतापङ्क्ति-विराजितैः ।
ददर्श हनुमाँल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव ॥१२॥
गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः ।
ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमाकाशगामिव ॥१३॥
पालितां राक्षसेन्द्रेण निर्मितां विश्वकर्मणा ।

पर विशेष तौर से सर्वत्र चक्कर काटने वाले तीक्ष्ण धनुर्धारी राक्षस लोग बतौर पहरे के बैठा रखे हैं, महापुरी सुवर्ण-मढ़े रमणीक परकोटे से घिरी हुई है, पर्वत समान ऊंचे तथा शरत्कालीन मेघों के समान दूरी २ पर गृह भरे पड़े हैं और उनके बीच २ में ऊपर उठे हुए पाण्डुर वर्ण के रथ-मार्ग बने हुए हैं, सैंकड़ों अटारियों से व्याप्त है, झण्डियों-झण्डों से सुशोभित है, और जगह २ सुवर्ण के सुन्दर तोरणों (जैसे कि आंगनों के फाटकों पर गोलाकार आदि वन्दनवार बनाये जाते हैं) से सुभूषित है जिन पर कि लतायें फैली हुई हैं। एवं देवसमान हनुमान् ने लंकापुरी को देवपुरी के समान देखा।

सफेद स्वच्छ भवनों के साथ पहाड़ी पर बनी लंका नगरी शोभावान् हनुमान् को ऐसी दीख पड़ी जैसी कि आकाश में कोई नगरी बसायी गयी हो। कपि हनुमान् ने देखा कि राक्षस-

प्लवमानमिवाकाशे ददर्श हनुमान् कपिः ॥१४॥
वप्रप्राकार-जघनां विपुलाम्बुवनाम्बराम् ।
शतघ्नीशूलकेशान्ताम् अट्टालकावतंसकाम् ॥१५॥
मनसेव कृतां लङ्कां निर्मितां विश्वकर्मणा ॥१६॥
द्वारमुत्तरमासाद्य चिन्तयामास वानरः ।
कैलाशनिलयप्रख्यमालिखन्तमिवाम्बरम् ॥१७॥
ध्रियमाणमिवाकाशमुच्छ्रितैर्भवनोत्तमैः ।
सम्पूर्णां राक्षसैर्घोरैर्गुहामाशीविषैरिव ॥१८॥
तस्याश्च महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रावणं च रिपुं घोरं चिन्तयामास वानरः ॥१९॥

राज द्वारा पालित यह नगरी किसी चतुर कारीगर ने ऐसी सुन्दर बनाई है कि मानो वह आकाश में उड़ रही है।

आधार पर चढ़ी मिट्टी सहित परकोटा लंका रूपी स्त्री का जघन था, परिखा में भरा जल और वन वस्त्र-स्थानीन थे, तोप और भाले केश थे, और अटारियां शिरोभूषण थे। चतुर शिल्पी द्वारा बनाई लंका ऐसी थी कि मानो उसने अपने मन को ही लेकर उसमें उंडेल दिया हो।

उसके उत्तर द्वार के समीप पहुंच कर वानर सोचने लगा। आकाश को चीरते हुए कैलाश-जैसी ऊंची, उच्च विशाल भवनों से आकाश को थांभे हुई सी, तथा विषैले सांपों जैसे भयानक राक्षसों से घिरी गुफा-जैसी लंका को देखकर, और उसके बड़े भारी रखवाले चारों ओर घिरे समुद्र को देख कर, और रावण जैसे प्रबल शत्रु को देखकर हनुमान् ने सोचा—

"हरि लोग यहां आकर भी असफल रहेंगे, क्योंकि युद्ध से

आगत्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
नहि युद्धेन वै लङ्का शक्या जेतुं सुरैरपि ॥२०॥

इमां त्वविषमां लङ्कां दुर्गां रावणपालिताम् ।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति राघवः ॥२१॥

अवकाशो न साम्नस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते ।
न दानस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य दृश्यते ॥२२॥

चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणां तरस्विनाम् ।
वालिपुत्रस्य नीलस्य मम राज्ञश्च धीमतः ॥२३॥

यावज्जानामि वैदेहीं यदि जीवति वा नवा ।
तत्रैव चिन्तयिष्यामि दृष्ट्वा तां जनकात्मजाम् ॥२४॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरेः शृङ्गे स्थितस्तस्मिन्रामस्याभ्युदयं ततः ॥२५॥

तो लंका को देव लोग भी नहीं जीत सकते। यह रावण-पालित लंका-दुर्ग ऐसा विषम है कि इसके समान विषम दुनिया में अन्य कोई है नहीं। ऐसे विषम दुर्ग में पहुंचकर भी विशालबाहु राम क्या करेंगे? राक्षसों में साम का कोई स्थान ही नहीं पाया जाता, और न दान का, न भेद का और न युद्ध का देखा जाता है। यहां तो अंगद, नील, मैं, और धीमान् सुग्रीव इन चार फुर्तीले वानरों की ही गति है। इसलिए पहले सीता को देखूं तो सही कि वह जीती है या नहीं, उसे देखकर तब वहीं आगे की बात सोचूंगा।"

तब इसके बाद कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने उसी पर्वत स्थल पर बैठकर राम की इष्ट-सिद्धि कैसे हो, इस विषय पर थोड़ी देर सोचा। उसने सोचा कि "मैं इस तरह से तो राक्षसपुरी में प्रवेश

अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ता क्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥२६॥
महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः।
वञ्चनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥२७॥

लक्ष्यालक्ष्येण रूपेण रात्रौ लङ्कापुरी मया।
प्राप्तकालं प्रवेष्टुं मे कृत्यं साधयितुं महत् ॥२८॥
तां पुरीं तादृशीं दृष्ट्वा दुराधर्षां सुरासुरैः।
हनूमांश्चिन्तयामास विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ॥२९॥
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम्।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥३०॥
न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥३१॥

नहीं कर सकता, क्योंकि इस पर अत्यन्त बली और क्रूर राक्षसों का पहरा है। इसलिए जानकी की खोज के लिए मुझे इन सब महाप्रतापी, महापराक्रमी, महाबली राक्षसों को चकमा देना चाहिए। एतदर्थ, संप्रति मुझे अपने आपको अदृश्य रखके, बड़े काम को साधने के लिए अवसर पाकर रात के समय लंका नगरी में प्रवेश करना चाहिए।"

उस प्रकार की लंकापुरी को सुरासुरों से दुर्जेय देखकर हनुमान् पुनरपि बार २ सांस लेकर सोचने लगा—"मैं किस उपाय से जनकपुत्री मैथिली को देखूं कि दुरात्मा राक्षसराज रावण मुझको न देख पाए? और किस प्रकार अपनेपन को समझने वाले राम का काम नष्ट न हो कि मैं अकेला अकेली जनकपुत्री को एकान्त में देख पाऊं?"

भूताश्चार्था विनश्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥३२॥
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्तीह कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ॥३३॥
न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लव्यं न कथं भवेत् ।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न भवेद् वृथा ॥३४॥
मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद् व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥३५॥
नहि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥३६॥

"बिना सोचे-विचारे काम करने वाले दूत को पाकर सिद्धप्राय कार्य भी, देश-काल के विपरीत करने पर, नष्ट हो जाते हैं, जैसे कि सूर्योदय पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। कार्य-अकार्य के विषय में राजा द्वारा मन्त्रियों के साथ मिलकर स्थिर किया हुआ भी विचार, बिना विचारे काम करने वाले दूत को पाकर शोभायमान नहीं होता, अपितु विपरीत इसके, ऐसे पण्डितम्मन्य दूत उस कार्य को बिगाड़ देते हैं। इसलिए मुझे भलीप्रकार सोच विचार कर इस ढंग से काम करना चाहिए कि किसी प्रकार से अभीष्ट कार्य विनष्ट न हो, उसमें किसी प्रकार की कमी न आवे, और न किसी प्रकार से समुद्र का तैरना वृथा जावे।"

"यदि राक्षसों ने मुझे देख लिया, तो रावण को मारना चाहने वाले आत्मबल-ज्ञानी राम का यह सीतान्वेषण कार्य व्यर्थ हो जावेगा। यदि रूप बदल कर विचरना चाहूं, तो वह भी वृथा है, क्योंकि यहां तो राक्षस-रूप से भी राक्षसों से बचकर कहीं

वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम।
नह्यत्राविदितं किंचिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ।।३७।।
इहाहं यदि तिष्ठामि स्वेन रूपेण संवृतः।
विनाशमुपयास्यामि भर्तुरर्थश्च हास्यति ।।३८।।
तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ।।३९।।
रावणस्य पुरीं रात्रौ प्रविश्य सुदुरासदाम्।
प्रविश्य भवनं सर्वं द्रक्ष्यामि जनकात्मजाम् ।।४०।।
इति निश्चित्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमयं कपिः।
आचकाङ्क्षे तदा वीरो वैदेह्या दर्शनोत्सुकः ।।४१।।

टिक सकना अशक्य है तो फिर अन्य रूप से कैसे बचा जा सकता है? इतना ही नहीं, मैं तो समझता हूं कि यहां हवा भी राक्षसों से अज्ञात होकर नहीं चल सकती, क्योंकि भीमकर्मा राक्षसों से यहां कुछ अविदित नहीं।"

"और फिर, यदि मैं इसी रूप में वर्तमान रहता हुआ दिन के काल में इस स्थान पर ठहरता हुं, तो मैं मारा जाऊंगा और स्वामी के कार्य की भी हानि होगी। इसलिए मुझे दिन में तो कहीं छिप कर रहना चाहिए और रात के समय इसी अपने रूप को (अणिमा सिद्धि द्वारा) छोटा बना कर (ताकि सर्वत्र तंग रास्तों से अन्दर जा सकूं) राम की कार्यसिद्धि के लिए लंका नगरी के अन्दर घुसकर और वहां सारे राजभवन में जगह २ जाकर मैं सीता को देखूंगा।"

इसप्रकार शत्रुयों को कम्पाने वाले वीर हनुमान् ने निश्चय करके सीता के दर्शनों की उत्कण्ठा में छिपकर सूर्यास्त की प्रतीक्षा

सूर्ये चास्तं गते रात्रौ देहं संक्षिप्य मारुतिः ।
वृषदंशकमात्रोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ॥४२॥

सर्ग ३

अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे ।
निशि लङ्कां महासत्त्वो विवेश कपिकुञ्जरः ॥१॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितङ्करः ।
चक्रेऽथ पादं सव्यञ्च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥२॥
प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्नो निशायां मारुतात्मजः ।
स महापथमास्थाय मुक्तपुष्पविराजितम् ।
ततस्तु तां पुरीं लङ्कां रम्यामभिययौ कपिः ॥३॥

करनी शुरु की। जब सूर्य अस्त हो गया और रात्रि काल आ गया, तो हनुमान् ने अपने शरीर को छोटा किया और बिल्ले जितना छोटा शरीर बना कर अजीब सा दीख पड़ने लगा।

रात के समय नगरी में प्रवेश और देखते २ राजभवन के पास पहुँच जाना

इसके बाद महापराक्रमी हनुमान् द्वार को छोड़ कर परकोटे को लांघ गया, और इस प्रकार वह अत्यन्त साहसी कपिकुञ्जर रात्रि के समय लंका के अन्दर पहुँच गया। सुग्रीव के हितकारी हनुमान् ने लङ्का में प्रवेश करके मानो अपना बायां पांव तो दुश्मनों के सिर पर धर ही दिया। सत्साहसी मारुत-पुत्र हनुमान् रात्रिकाल में अन्दर प्रविष्ट होकर मार्गवर्ती झड़े फूलों से सुशोभित राजपथ को पकड़ कर सुन्दर लंकापुरी में आगे को चल पड़ा।

गृहस्थियों के भवनों से वह सुन्दर पुरी ऐसी भान पड़ रही थी, जैसे कि मेघों से आकाश। गृहस्थियों के वे भवन अट्टहासों

हसितोत्कृष्टनिनदैस्तूर्यघोषपुरस्कृतैः ।
वज्रांकुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः ॥४॥
गृहमेघैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः ॥५॥
प्रजज्वाल तदा लङ्का रक्षोगणगृहैः शुभैः ।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ।
वर्धमानगृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः ॥६॥
तां चित्रमाल्याभरणां कपिराजहितङ्करः ।
राघवार्थे चरञ्छ्रीमान् ददर्श च ननन्द च ॥७॥
भवनाद्भवनं गच्छन् ददर्श कपिकुञ्जरः ।
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ॥८॥
शुश्राव रुचिरं गीतं त्रिस्थानस्वरभूषितम् ।

के उत्कृष्ट नादों से निनादित हो रहे थे, वाद्ययन्त्रों के घोषों से परिपूर्ण थे, वज्र तथा अंकुशों से सुसज्जित थे, और हीरों के बने झरोखों से युक्त थे।

उस समय राक्षसों के सुन्दर घरों से वह नगरी प्रदीप्त हो रही थी। वे घर सफेद बादलों के समान दर्शनीय थे, पद्म तथा स्वस्तिक किस्म के घरों से सुभूषित थे, और अधिकतर वर्धमान किस्म के घरों से सुभूषित थे। (घरों के रचना-भेद से ये नाम-भेद हैं)।

सुग्रीव के हितकारी श्रीमान् हनुमान् ने चित्र-विचित्र माल्यों से आभूषित उस नगरी को राम-कार्य के निमित्त घूमते हुए देखा और खुश हुआ। भवन से भवन को जाते हुए कपिश्रेष्ठ ने जहाँ-तहां अनेक आकृतियों और अनेक रंगों वाले भवनों को देखा। उसने जगह २ खुशी से भरी हुई स्त्रियों के तीन स्थानों,

स्त्रीणां मदनविद्धानां दिवि चाप्सरसामिव ॥९॥
शुश्राव काञ्चीनिनदं नूपुराणां च निःस्वनम् ।
सोपाननिनदांश्चापि भवनेषु महात्मनाम् ॥१०॥
आस्फोटितनिनादांश्च क्ष्वेडितांश्च ततस्ततः ॥११॥
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान् रक्षोगृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥१२॥
रावणस्तवसंयुक्तान् गर्जतो राक्षसानपि ॥१३॥
राजमार्गं समावृत्य स्थितं रक्षोगणं महत् ।
ददर्श मध्यमे गुल्मे राक्षसस्य चरान्बहून् ॥१४॥
दीक्षिताञ्जटिलान्मुण्डान्गोजिनाम्बरवाससः ।

यानि हृदय-कण्ठ-सिर के, मन्द-मध्यम-तार स्वरों से अलंकृत गीत सुने, जैसे कि देव-राज्य तिब्बत में देवों की स्त्रियां अप्सरायें गाया करती हैं। साथ ही उसने बड़े पुरुषों के भवनों में स्त्रियों के चलने-फिरने पर सोने-चांदी के कमर के गहनों का शब्द, पांवों के गहनों की झंकार, तथा सीढ़ियों की आवाज सुनी। कहीं २ तोड़-फोड़ की आवाज व डांट-फटकार की सिंह-गर्जना भी सुनी। उन राक्षस-घरों में यत्र-तत्र मंत्र-पाठ करते हुओं की आवाज भी सुनी और स्वाध्याय में लगे हुए राक्षसों को भी देखा। एवं, गर्जना पूर्वक रावण की स्तुति करते हुए राक्षसों को भी देखा।

राजमार्ग को घेर कर स्थित अनेक राक्षस सन्तरियों तथा केन्द्रस्थलीय चौकी में बहुत से गुप्तचरों को देखा। कोई दीक्षित ऐसे थे जिन्हों ने जटायें बढ़ा रखी थी और कई मुण्डित थे, और इनमें से कईयों ने गो-चर्म पहिन रखा था तथा कई नंगे थे।

दर्भमुष्टिप्रहरणानग्निकुण्डायुधांस्तथा ।
कूटमुद्गरपाणींश्च दण्डायुधधरानपि ॥१५॥
एकाक्षानेककर्णांश्च चलदेकपयोधरान् ।
करालान्भग्नवस्त्रांश्च विकटान्वामनांस्तथा ॥१६॥
धन्विनः खड्गिनश्चैव शतघ्नीमुसलायुधान् ।
परिघोत्तमहस्तांश्च विचित्रकवचोज्ज्वलान् ॥१७॥
नातिस्थूलान्नातिकृशान्नातिदीर्घातिह्रस्वकान् ।
नातिगौरान्नातिकृष्णान्नातिकुब्जान्न वामनान् ॥१८॥
विरूपान्बहुरूपांश्च सुरूपांश्च सुवर्चसः ॥१९॥
ध्वजिनः पताकिनश्चैव ददर्श विविधायुधान् ।

कईयों ने विघ्न-निवारणार्थ लाठी के स्थान पर दर्भ की मुट्ठी ले रखी थी, और कईयों के पास आयुध-स्थानीय अग्निकुण्ड था। कईयों के हाथों में हथौड़ा और मूंगल था, तो कईयों ने दण्डायुध धारण कर रखा था। कई एक आंख वाले थे, कई एक कान वाले थे, और कईयों की एक ओर ही की छाती उभरी थी। कई टेढे मुख वाले थे, तो कईयों के वस्त्र फटे-पुराने थे। कई विकट तौर पर लम्बे-चौड़े थे, तो कई बौने थे। कई धनुर्धारी थे, कईयों ने तलवार ले रखी थी, कई तोप लिए हुए थे, और कईयों ने मूसल उठा रखा था। कईयों ने मोटा घन ले रखा था और चित्रित कवच से चमक रहे थे।

बहुत से न अतिस्थूल थे न अतिकृश थे, न बहुत लम्बे थे और न बहुत छोटे थे न अतिगौर थे। न अत्यन्त काले थे, न ज्यादा कुबड़े थे और न बौने थे। कई विकृत रूप वाले थे, कई बहुरूपिए थे, और कई तेजस्विता युक्त सुरूपवान् थे।

शक्तिवृक्षायुधांश्चैव पट्टिशाशनिधारिणः ।
क्षेपणीपाशहस्तांश्च ददर्श स महाकपिः ॥२०॥
स्राग्वणस्त्वनुलिप्तांश्च वराभरणभूषितान् ।
नानावेषसमायुक्तान् यथास्वैरचरान्बहून् ॥२१॥
तीक्ष्णशूलधरांश्चैव वज्रिणश्च महाबलान् ।
शतसाहस्रमव्यग्रम् आरक्षं मध्यमं कपिः ॥२२॥
रक्षोधिपतिनिर्दिष्टं ददर्शान्तःपुराग्रतः ।
स तदा तद्गृहं दृष्ट्वा महाहाटकतोरणम् ॥२३॥
राक्षसेन्द्रस्य विख्यातमद्रिमूर्ध्नि प्रतिष्ठितम् ।
पुण्डरीकावतंसाभिः परिखाभिः समावृतम् ॥२४॥

फिर उसने देखा कि कईयों ने झण्डे ले रखे हैं और कईयों ने झण्डियां। महाकपि ने यह भी देखा कि उनके पास विविध प्रकार के हथियार हैं। कईयों ने शक्ति ले रखी है तो कईयों ने वृक्षों की मोटी टहनियां; कईयों ने पटे थांभे हुए हैं तो कईयों ने अशनि; कईयों के हाथ में फैंकने का लोहा-मड़ा डण्डा है तो कईयों के हाथ में फन्दा।

उन्होंने मालायें पहिन रखी थी, चन्दन लगा रखा था, बढ़िया आभूषणों से आभूषित थे, और नाना प्रकार के वेष से युक्त थे। उनमें से बहुत-से यथेच्छ जिधर चाहें उधर घूमते थे। हनुमान् ने यह भी देखा कि रावण की आज्ञानुसार एक सैंकड़ा अत्यन्त बली पहरेदार अन्तःपुर के आगे मध्यवर्ती स्थल में सावधान होकर पहरा दे रहे हैं।

तब महाकपि ने सुवर्ण-निर्मित द्वार-तोरण वाले, पहाड़ी के शिखर पर बने, श्वेत कमलों से विभूषित परिखायों से घिरे, और

प्राकारावृतमत्यन्तं ददर्श स महाकपिः।
त्रिविष्टपनिभं दिव्यं दिव्यनादविनादितम् ॥२५॥
वाजिह्रेषितसंघुष्टमद्भुतैश्च हयैस्तथा।
रथैर्यानैर्विमानैश्च तथा हयगजैः शुभैः ॥२६॥
वारणैश्च चतुर्दन्तैः श्वेताभ्रनिचयोपमैः।
भूषितै रुचिरद्वारं मत्तैश्च मृगपक्षिभिः ॥२७॥
रक्षितं सुमहावीर्यैर्यातुधानैः सहस्रशः।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविवेश गृहं कपिः ॥२८॥

सर्ग ४

तस्यालय-वरिष्ठस्य मध्ये विमलमायतम्।
ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः ॥१॥

चारदीवारीं से अत्यन्त सुरक्षित तौर पर समावृत रावण के प्रसिद्ध महल को देखकर देखा कि वह महल तिब्बत की तरह अत्यन्त अलौकिक है, और दिव्य नादों से निनादित है, वेगवान् घोड़ों तथा दूसरी २ किस्मों के विचित्र २ रंगों व नस्लों वाले घोड़ों से शब्दायमान हो रहा है। इसी प्रकार रथों, दूसरे किस्म के यानों, विमानों, घोड़े जैसे स्वल्प-प्रमाण सुन्दर हाथियों, और सफेद बादल-समूह जैसे सफेद चार दांत वाले गजों से गुंजारित हो रहा है। उसका द्वार सुभूषित किंवा आनन्द-विभोर मृग-पक्षियों से सुन्दर दीख पड़ रहा है। इसप्रकार हजारों अत्यन्त पराक्रमी राक्षसों से रक्षित रावण के सुगुप्त महल में हनुमान् किसी तरह पहुंच गया।

रावण को देखना और मन्दोदरी को सीता समझना

उन सुन्दरतम भवनों के मध्य में मारुत-पुत्र हनुमान् ने

अर्धयोजनविस्तीर्णमायतं योजनं महत् ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ।।२।।
मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः ।।३।।
तत्रस्थः सर्वतो गन्धं पानभक्ष्यान्नसम्भवम् ।
दिव्यं सम्मूर्छितं जिघ्रन् रूपवन्तमिवानिलम् ।।४।।
स गन्धस्तं महासत्त्वं बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ।
इत एहीत्युवाचेव तत्र यत्र स रावणः ।।५।।
ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् ।
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरस्त्रियम् ।।६।।
तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् ।

एक विस्तृत निर्मल बढ़िया भवन देखा, जोकि आधा योजन लम्बा और एक योजन चौड़ा था। वह राक्षसराज का भवन था और भिन्न २ अनेक प्रासादों में बंटा हुआ था। अरिसूदन हनुमान् विशाल नेत्रों वाली वैदेही सीता को ढूंडता हुआ वहां सर्वत्र घूमने लगा। वहां एक जगह ठहर कर उसने पान तथा भक्ष्यान्न से उत्पन्न हुई सर्वत्र व्याप्त दिव्य गन्ध को ऐसे सूंघा मानो कि गन्धवह वायु गन्ध रूप वाली हो। गन्ध ने महात्मा हनुमान् को 'इधर आवो' यह कहकर जिधर रावण था उधर इस प्रकार बुलाया जैसे कि कोई बन्धु अपने प्यारे बन्धु को बुलाया करता है। तब हनुमान् वहां से चला, और सुन्दरी प्रियपत्नी की तरह रावण की अत्यन्त प्रिय कल्याणकारिणी महती शाला को देखा।

वहां इधर-उधर देखने पर रावण का स्फटिकरत्न-विभूषित

अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥७॥
दान्तकाञ्चनचित्राङ्गैर्वैदूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं महाधनैः ॥८॥
तस्य चैकतमे देशे दिव्यमालोकशोभितम् ।
ददर्श पाण्डुरं छत्रं ताराधिपतिसन्निभम् ॥९॥
जातरूपपरिक्षिप्तं चित्रभानोः समप्रभम् ।
अशोकमालाविततं ददर्श परमासनम् ॥१०॥
वालव्यजनहस्ताभिर्वीज्यमानं समन्ततः ।
गन्धैश्च विविधैर्जुष्टं वरधूपेन धूपितम् ॥११॥
परमास्तरणास्तीर्णम् आविकाजिनसंवृतम् ।
दामभिर्वरमाल्यानां समन्तादुपशोभितम् ॥१२॥

अतिसुन्दर सोने-बैठने का मुख्य पलंग हनुमान् के दृष्टि गोचर हुआ। यह पलंग हाथीदांत तथा सोने के बने पावों आदि अंगों, वैदूर्यमणि जटित बिछौनों तथा बेशकीमती चादरों से युक्त था, और यह सब सामान बहुमुल्यवान् था। पलंग के एकतरफ दिव्य मालायों से विभूषित चन्द्र-समान स्वच्छ सफेद छत्र धरा हुआ था। यह बढ़िया पलंग सोने से मढ़ा हुआ था, जिससे वह अग्नि समान चमक रहा था, और अशोक फूल की मालायें उसके चहुं ओर लटक रहीं थी।

महाकपि हनुमान् ने देखा कि उस चमकदार पलंग पर शराब पीकर थका हुआ वीर रावण सोया पड़ा है। चमर हाथ में लिए स्त्रियां उस पर हवा कर रही हैं, अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ सुगन्ध फैला रहे हैं, बढ़िया किस्म की धूप दी जा रही है, और अत्यन्त सुन्दर चादर ऊपर ओढ़ रखी है जिसके किनारों पर भेड़ का अत्यन्त कोमल चर्म मढ़ा हुआ है और बढ़िया फूलों की

तस्मिञ्जीमूतसङ्काशं प्रदीप्तोज्ज्वलकुण्डलम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं महारजतवाससम् ॥१३॥
लोहितेनानुलिप्ताङ्गं चन्दनेन सुगन्धिना ।
सन्ध्यारक्तमिवाकाशे तोयदं सतडिद्गुणम् ॥१४॥
वृतमाभरणैर्दिव्यैः सुरूपं कामरूपिणम् ।
सवृक्षवनगुल्माढ्यं प्रसुप्तमिव मन्दरम् ॥१५॥
क्रीडित्वोपरतं रात्रौ वराभरणभूषितम् ।
प्रियं राक्षसकन्यानां राक्षसानां सुखावहम् ॥१६॥
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥१७॥
निःश्वसन्तं यथा नागं रावणं वानरोत्तमः ।

बनी डोरियों से चहुं ओर से सुशोभित है। मेघ के समान कृष्ण वर्ण का है, चमकते हुए उज्जवल कुण्डल धारण कर रखे हैं, आंखें लाल हैं, बाहुऐं विशाल हैं, सोने की तार से जड़े वस्त्र पहिन रखे हैं, लाल रंग का सुगन्धियुक्त चन्दन माथे पर लगाया हुआ है जिससे कि वह ऐसा दीख पड़ रहा है जैसे कि संध्याकाल में रक्तवर्ण मेघ जिसमें कि विजली चमक रही हो। दिव्य आभूषणों से परिपूर्ण सुरूप है, इच्छानुसार रूप बदलने वाला है, ऐसा है मानो कि वृक्षों-वनों-झाड़ों से भरपूर मन्दर पर्वत सोया पड़ा है, रात्रिकाल में क्रीडा-विहार करके थका हुआ है, बढ़िया आभूषणों से विभूषित है, राक्षस-कन्यायों का प्यारा है, और राक्षसों को सुख पहुंचाने वाला है।

वानरश्रेष्ठ हनुमान् नाग के समान फुंकार मारते हुए रावण को देखकर अत्यन्त प्रकम्पित हुआ, और बहुत ज्यादा डरे

आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत् सुभीतवत् ॥१८॥
अथारोहणमासाद्य वेदिकान्तरमाश्रितः ।
क्षीबं राक्षसशार्दूलं प्रेक्षते स्म महाकपिः ॥१९॥
पादमूलगताश्चापि ददर्श सुमहात्मनः ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षःपतेगृहे ॥२०॥
मदव्यायामखिन्नास्ता राक्षसेन्द्रस्य योषितः ।
तेषु तेष्ववकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमध्यमाः ॥२१॥
तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्श रूपसम्पन्नाम् अथ तां स कपिः स्त्रियम् ॥२२॥
मुक्तामणिसमायुक्तैर्भूषणैः सुविभूषिताम् ।
विभूषयन्तीमिव च स्व-श्रिया भवनोत्तमम् ॥२३॥
गौरीं कनकवर्णाभाम् इष्टामन्तःपुरेश्वरीम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥२४॥

हुए के समान दूर हट गया। दूर हट कर वह सीढ़ी पर चढ़ गया और सीढ़ी के खम्भे के पीछे जा खड़ा हुआ, और वहां से शराब से मदमत्त राक्षस-केसरी रावण को देखने लगा, तो उसे वहां राक्षसराज के घर में डीलडौल वाले, स्त्रियों के प्यारे रावण के पावों की तरफ पड़ी पत्नियां भी दीख पड़ी।

राक्षसराज की वे स्त्रियां कामभोग से थक कर जहां-तहां थोड़ी २ दूरी पर सोयी पड़ी थीं। उनमें से एक स्त्री को हनुमान् ने देखा कि वह कुछ एकान्त में हट कर पृथक् सुन्दर बिछौने पर सोयी पड़ी है, और रूप से संपन्न है। वह मुक्ता-मणि जड़े भूषणों से विभूषित है और अपनी शोभा से श्रेष्ठ भवन को शोभायमान सा बना रही है। यह सुवर्ण-वर्ण जैसी पीत वर्ण की, रावण की प्यारी, अन्तःपुर की महारानी, सुन्दर रूपवती

स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा।
हर्षेण महता युक्तो ननन्द हरियूथपः ॥२५॥

सर्ग ५

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥१॥
न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलङ्कर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥२॥
नान्यं नरमुपस्थातुं सुराणामपि चेश्वरम्।
नहि रामसमः कश्चिद्विद्यते त्रिदशेष्वपि ॥३॥
अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः।
पानभूमौ हरिश्रेष्ठः सीतासन्दर्शनोत्सुकः ॥४॥

मन्दोदरी सोयी पड़ी थीं। मारुत-पुत्र महाबाहु हनुमान् ने उस अलंकृता को देखकर रूप-यौवन की संपत्ति के कारण उसे सीता समझा, और मारे हर्ष के हरियूथप उछल पड़ा।

मन्दोदरी विषयक बुद्धि को त्याग फिर से सीता को ढूंडना

इसके बाद हनुमान् मन्दोदरी विषयक उस बुद्धि को त्याग बैठा और सीता के प्रति दूसरी चिन्ता में पड़ गया। वह यह कि कोप में भरी सीता तो राम से वियुक्त होकर न सो सकती है, न खा सकती है, न गहने पहिन सकती है, और न मद्य-पान कर सकतीं है। वह परपुरुष का सेवन कभी नहीं कर सकती, चाहे वह देवों का राजा इन्द्र ही क्यों न हो, यतः, उसके लिए तो राम के समान देवों में भी कोई नहीं। अतः, यह कोई दूसरी स्त्री है। ऐसा निश्चय करके सीता के दर्शनों को उत्सुक हरिश्रेष्ठ

एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ।
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥५॥
निरीक्षमाणश्च तत्रस्थाः स्त्रियः स महाकपिः ।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥६॥
परदारावरोधस्य ? प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥७॥
नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥८॥
तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥९॥
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद् वैकृत्यमुपपद्यते ॥१०॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।

पान-भूमि में फिर ढूंडने लगा। और इस प्रकार महातेजस्वी हनुमान् ने रावण का अन्तःपुर सारा छान मारा, परन्तु जानकी नहीं दीख पड़ी।

अब महाकपि हनुमान् को, (तत्रस्थाः) वहां की स्त्रियां देखने पर, धर्म-भय से डर कर बड़ी चिन्ता हुई कि सोती हुई पराई स्त्रियों के अन्तःपुर को देखना, यह मेरा अत्यधिक धर्मलोप करेगा। यह ठीक है कि पराई स्त्रियों के मध्य में मेरी नजर विषयवासना से युक्त न थी, परन्तु मैंने पराई स्त्रियों का अन्तःपुर तो देखा ही।

इसके बाद एकान्तचित्त होकर सोचने पर उसके अन्दर एक दूसरा निश्चित विचार, कर्तव्य का निश्चय कराने वाला, उठा कि "बेशक मैंने रावण की प्रिय सब स्त्रियों को देखा है, पर इससे मेरे अन्दर मन के द्वारा कोई विकार उत्पन्न नहीं हो रहा। मन ही

शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥११॥
नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा सम्परिमार्गणे ॥१२॥
यस्य सत्त्वस्य या योनिस्तस्यां तत्परिमार्गते ।
न शक्यं प्रमदा नष्टा मृगीषु परिमार्गितुम् ॥१३॥
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते न च जानकी ॥१४॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च वीर्यवान् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्नैवापश्यत जानकीम् ॥१५॥
तामपश्यन्कपिस्तत्र पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥१६॥
स भूयः सर्वतः श्रीमान् मारुतिर्यत्नमाश्रितः ।

शुभ-अशुभ बातों में सब इन्द्रियों के प्रवर्तन का कारण है, सो वह सुव्यवस्थित है। और, फिर मैं वैदेही को दूसरी जगह ढूंड भी तो नहीं सकता, क्योंकि ढूंडने के समय सदा स्त्रियां स्त्रियों में ही देखी जाती हैं। जिस प्राणी की जो जात होती है, वह उसी जात में ढूंडा जाता है, खोयी हुई स्त्री हिरणियों में नहीं ढूंडी जा सकती। सो मैंने रावण का यह सब अन्तःपुर शुद्ध मन के साथ खोजा है, परन्तु जानकी नहीं दीख पड़ती।"

पराक्रमी हनुमान् ने रावण के उस अन्तःपुर में देव-कन्याओं को देखा, गन्धर्व-कन्याओं की देखा, नाग कन्याओं को देखा, परन्तु जानकी को नहीं देख पाया। जब वीर हनुमान् ने वहां सीता को तो नहीं देखा, परन्तु दूसरी २ सुन्दरी स्त्रियां दीख पड़ीं, तो उसने वहां से हटकर अन्यत्र जाने की तय्यारी की।

आपानभूमिमुत्सृज्य तां विचेतुं प्रचक्रमे ॥१७॥

सर्ग ६

विमानात्तु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः ।
हनूमान्वेगवानासीद् यथा विद्युद् घनान्तरे ॥१॥
सम्परिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशनान् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥२॥
भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
न हि पश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वाङ्गशोभनाम् ॥३॥
इह सम्पातिना सीता रावणस्य निवेशने ।
आख्याता गृध्रराजेन न च सा दृश्यते तु किम् ॥४॥
किं तु सीताऽथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा ।

श्रीमान् मारुति ने रावण के उस अन्तःपुर को छोड़ कर पुनरपि सब प्रकार से यत्न करने की ठानी और सीता को ढूंढने की तैयारी की।

सोच-समझ के बाद अशोक वाटिका को ढूंढने का निश्चय

वानर-सेनापति हनुमान् राजमहल की चारदिवारी से बाहर निकलकर, जैसे बिजली मेघ में दौड़ा करती है वैसे, जल्दी से आगे चलने को तय्यार हुआ। रावण के घर से बाहर निकल और जनकपुत्री सीता को न पाकर हनुमान् बड़बड़ाने लगा—

"राम के प्रिय के लिए घूमते हुए मैंने लंका बार २ खोजी, परन्तु सर्वाङ्गसुन्दरी वैदेही सीता को नहीं देख पा रहा। गृध्रराज सम्पाति ने कहा था कि सीता यहां रावण के महल में है, परन्तु वह क्यों नहीं दीख पड़ रही? क्या मिथिला नगरी में उत्पन्न विदेह राष्ट्र की जनकपुत्री सीता रावण द्वारा बलात्कार पूर्वक हरी

उपतिष्ठेत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥५॥
क्षिप्रमुत्पततो मन्ये सीतामादाय रक्षसः ।
बिभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥६॥

अथवा ह्रियमाणायाः पथि सिद्धनिषेविते ।
मन्ये पतितमार्याया हृदयं प्रेक्ष्य सागरम् ॥७॥

रावणस्योरुवेगेन भुजाभ्यां पीडितेन च ।
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया ॥८॥

उपर्युपरि सा नूनं सागरं क्रमतस्तदा ।
विचेष्टमाना पतिता समुद्रे जनकात्मजा ॥९॥

आहो क्षुद्रेण चानेन रक्षन्ती शीलमात्मनः ।
अबन्धुर्भक्षिता सीता रावणेन तपस्विनी ॥१०॥

जाने पर विवश होकर उसकी सेवा में लग गयी है ? नहीं, ऐसा नहीं। मैं समझता हूं कि जब रावण उसे हर कर ले जा रहा था, तो वह राम के बाणों से डरा हुआ बहुत तेजी से उड़ा होगा और उससे वह बीच में गिर पड़ी होगी। अथथा, मैं समझता हूं कि जब आर्या आकाश मार्ग से हर कर ले जायी जा रही थी, तो वह सागर का देखकर स्वेच्छा पूर्वक उसमें गिर पड़ी होगी। अथवा, मैं समझता हूं कि रावण के वेगपूर्वक भागने से तथा उसे अपनी बाहुओं में दबोच रखने से विशालनयनी आर्या ने अपने प्राण त्याग दिए होंगे। अथवा, जब राक्षस उसे लेकर सागर के ऊपर-ऊपर उड़ रहा होगा, तब शायद जनकपुत्री लोट-पोट होती हुई समुद्र में गिर पड़ी होगी। अथवा, इस दुष्ट रावण ने साहाय्य रहित तपस्विनी सीता को खा लिया होगा, जबकि वह अपने शील की रक्षा कर रही होगी। अथवा, दुष्ट भावना

अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसितेक्षणा ।
अदुष्टा दुष्टभावाभिर्भक्षिता सा भविष्यति ॥११॥
अथवा निहता मन्ये रावणस्य निवेशने ।
भृशं लालप्यते बाला पञ्जरस्थेव सारिका ॥१२॥
जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥१३॥
विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥१४॥
निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं न खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥१५॥
अस्मिन्नेवङ्गते कार्ये प्राप्तकालं क्षमं च किम् ।

वाली रावण की पत्नियों ने (कि यह सुन्दरी कहीं रावण की पटरानी न बन जावे) काले नेत्रों वाली अदुष्टा सीता को खा लिया होगा । अथवा, मुझे तो ऐसा लगता है कि वह रावण के महल में ही कहीं बंद कर रखी है, और वह भोली-भाली पिंजरे में बन्द मैना के समान लगातार बिलख रही होगी, क्योंकि जनक कुल में उत्पन्न अच्छे मझौले कद कीं कमलनयनी रामपत्नी सीता रावण के वश में कैसे जा सकती है ?"

"खैर, जनकपुत्री चाहे कहीं कैद कर रखी हो, चाहे मार डाली गयी हो, और चाहे स्वयं मर गयी हो, पर यह बात पत्नी के प्यारे राम को नहीं कही जा सकती। इस बात के कहने पर भी बुराई है, और न कहने पर भी बुराई है, तो फिर क्या किया जावे, बड़ा विषम काम मुझे मालूम पड़ता है ।"

इस बात के इस प्रकार बीतने पर आगे इसका क्या

भवेदिति मतिं भूयो हनुमान् प्रविचारयन् ॥१६॥
यदि सीतामदृष्ट्वाऽहं वानरेन्द्रपुरीमितः।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति ॥१७॥
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति।
प्रवेशश्चैव लङ्काया राक्षसानां च दर्शनम् ॥१८॥
किं वा वक्ष्यति सुग्रीवो हरयो वापि सङ्गताः।
किष्किन्धामनुसंप्राप्तं तौ वा दशरथात्मजौ ॥१९॥
गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२०॥
परुषं दारुणं तीक्ष्णं क्रूरमिन्द्रियतापनम्।
सीतानिमित्तं दुर्वाक्यं श्रुत्वा स न भविष्यति ॥२१॥
तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा पञ्चत्वगतमानसम्।

परिणाम होगा, हनुमान् अब इस की सोच में पड़ा—

"यदि मैं सीता को विना देखे यहां से किष्किन्धापुरी चला जाऊंगा, तो मेरा पुरुपार्थ ही क्या होगा ? तब तो मेरा यह सागर का पार करना, लंका का प्रवेश करना और राक्षसों का देखना सब व्यर्थ जावेगा। जब मैं इस प्रकार निष्फल होकर किष्किन्धा लौटूंगा, तो मुझे सुग्रीव क्या कहेंगे, इकट्ठे हुए वानर क्या कहेंगे, और दशरथ-पुत्र राम-लक्ष्मण क्या कहेंगे ?"

"यदि मैं वहां पहुंचकर राम को यह कठोर बात कहूंगा कि मैंने सीता को नहीं देखा, तो वे प्राण त्याग देंगे। कठोर, दुखःदायी, तीखी, क्रूर और इन्द्रियों को तपाने वाली सीता विषयक इस बुरी बात को सुनकर वे नहीं रहेंगे। उनको दारुण कष्ट में पड़े, और मरने के करीब पड़े देखकर सदा अनुरागी

भृशानुरक्तो मेधावी न भविष्यति लक्ष्मणः ॥२२॥
विनष्टौ भ्रातरौ श्रुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरतं च मृतं श्रुत्वा शत्रुघ्नो न भविष्यति ॥२३॥
पुत्रान्मृतान्समीक्ष्याथ न भविष्यन्ति मातरः ।
कौसल्या च सुमित्रा च कैकेयी च न संशयः ॥२४॥
कृतज्ञः सत्यसन्धश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२५॥
दुर्मना व्यथिता दीना निरानन्दा तपस्विनी ।
पीडिता भर्तृशोकेन रुमा त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२६॥
वालिजेन तु दुःखेन पीडिता शोककर्शिता ।
पञ्चत्वमागता राज्ञी ताराऽपि न भविष्यति ॥२७॥
मातापित्रोर्विनाशेन सुग्रीवव्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गदस्तस्माद्विजहिष्यति जीवितम् ॥२८॥

मेधावी लक्ष्मण न रहेगा। राम-लक्ष्मण दोनों भाई मर गए हैं, यह सुनकर भरत भी मर जावेगा। और भरत को मरा देख कर शत्रुघ्न नहीं रहेगा। पुत्रों को मरा देख कर मातायें कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी न रहेंगी, इसमें कोई शक नहीं।"

"और फिर, कृतज्ञ तथा सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव राम को इस प्रकार चल बसा देखकर प्राण त्याग कर देगा। तपस्विनी रुमा (सुग्रीव की पत्नी) पति-शोक से पीड़ित हुई २ दुःखित-मन, व्यथित, दीन, तथा आनन्द-विहीन होकर प्राणों को छोड़ देगी। वाली के दुःख से दुःखित तथा शोक के कारण कृश हुई २ रानी तारा पहले ही मरने के करीब पड़ी है, अब वह भी न रहेगी। फिर माता-पिता की मृत्यु, तथा सुग्रीव की मृत्यु से कुमार अंगद

भर्तृजेन तु दुःखेन अभिभूता वनौकसः ।
शिरांस्यभिहनिष्यन्ति तलैर्मुष्टिभिरेव च ॥२६॥
सान्त्वेनानुप्रदानेन मानेन च यशस्विना ।
लालिताः कपिनाथेन प्राणांस्त्यक्ष्यन्ति वानराः ॥३०॥
न वनेषु न शैलेषु न निरोधेषु वा पुनः ।
क्रीडामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुञ्जराः ॥३१॥
सपुत्रदाराः सामात्या भर्तृव्यसनपीडिताः ।
शैलाग्रेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ॥३२॥
विषमुद्बन्धनं वापि प्रवेशं ज्वलनस्य वा ।
उपवासमथो शस्त्रं प्रचरिष्यन्ति वानराः ॥३३॥
घोरमारोदनं मन्ये गते मयि भविष्यति ।

भी प्राण त्याग कर देगा।"

"फिर, राजा की मृत्यु के दुःख से संतप्त वनवासी वानर लोग थप्पड़ों तथा मुक्कों से अपने सिरों को फोड़ेंगे, और प्यार से, प्रदान से तथा मान से यशस्वी राजा द्वारा पालित वे लोग प्राणों को छोड़ देंगे। मुखिया वानर न वनों में, न पर्वतों में, और न बन्द प्रदेशों में इकट्ठे होकर खेलों का आनन्द लेंगे, अपितु राजमृत्यु से पीड़ित वे लोग पुत्र-कलत्रों तथा संगी-साथियों सहित पर्वत-शिखरों से ऊंचे-नीचे प्रदेशों में गिर कर आत्महत्या कर लेंगे। कोई वानर विष खा लेगा, कोई गले में फांसी डाल लेगा, कोई जलती आग में कूद पड़ेगा, कोई अनशन कर लेगा, और कोई अपने पर शस्त्र-प्रहार कर बैठेगा।"

"इस प्रकार मैं समझता हूं मेरे खाली हाथ जाने पर सर्वत्र भयंकर हाहाकार मच जावेगा, इक्ष्वाकुकुल का भी नाश

इक्ष्वाकुकुलनाशश्च नाशश्चैव वनौकसाम् ।।३४।।
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ।।३५।।
मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ।
आशया तौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ।।३६।।
हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूलिकः ।
वानप्रस्थो भविष्यामि अदृष्ट्वा जनकात्मजाम् ।।३७।।
सागरानूपजे देशे बहुमूल्यफलोदके ।
चितिं कृत्वा प्रवेक्ष्यामि समिद्धमरणीसुतम् ।।३८।।
उपविष्टस्य वा सम्यग् लिंगिनं साधयिष्यतः ।
शरीरं भक्षयिष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ।।३९।।

होगा और वानरों का भी नाश होगा। इसलिए मैं किष्किन्धा नगरी नहीं जाऊंगा, मैं सीता का पता लगाए बिना सुग्रीव को नहीं देख सकूंगा। मेरे वहां न जाने, और यहां रहने पर धर्मात्मा महारथी राम-लक्ष्मण, और महाबली वानर आशा से प्राणों को तो धारे रखेंगे।"

"यदि मुझे जानकी न दीख पड़ी तो मैं पेड़ के नीचे बसेरा डाल कर जितेन्द्रिय रूप में वानप्रस्थी हो जाऊंगा। तब मेरे हाथ पर किसी ने कोई फल रख दिया तो ले लिया, किसी ने मुंह में फल डाल दिया तो खा लिया, इस प्रकार का जीवन बिताऊंगा। अथवा, सागर-मध्यवर्ती किसी कन्द-फल-जल-बहुत प्रदेश में चिता बनाकर प्रदीप्त अग्नि में पैठ जाऊंगा। अथवा, सम्यक्तया समाधिस्थ होकर अचल भाव से कहीं बैठ जाऊंगा, और कौए तथा हिंस्रक जानवर मेरे शरीर को खा जायेंगे। मैं समझता हूं

इदमप्यृषिभिर्दृष्टं निर्वाणमिति मे मतिः ।
सम्यगापः प्रवेक्ष्यामि न चेत्पश्यामि जानकीम् ॥४०॥
सुजातमूला सुभगा कीर्तिमाला यशस्विनी ।
प्रभग्ना चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ॥४१॥
तापसो वा भविष्यामि नियतो वृक्षमूलिकः ।
नेतः प्रतिगमिष्यामि तामदृष्ट्वा सितेक्षणाम् ॥४२॥
विनाशे बहवो दोषा जीवन्प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात्प्राणान्धरिष्यामि ध्रुवो जीवति संगमः ॥४३॥
एवं बहुविधं दुःखं मनसा धारयन्बहु ।
नाध्यगच्छत्तदा पारं शोकस्य कपिकुञ्जरः ॥४४॥

ऋषियों ने मरण-विधि यह भी देख रखी है कि यदि मुझे जानकी न दीख पड़ी तो मैं गहरे जल में कूद पड़ूंगा। सीता का पता न लगा सकने के कारण मेरी कीर्ति-माला सदा के लिए टूट गयी, जोकि शुरु जन्म से चली आ रही थी, सौभाग्य को देने वाली थी, और मरणानन्तर भी यश को बढ़ाने वाली थी।

"परन्तु नहीं नहीं, मैं पेड़ के नीचे वसेरा डालने वाला जितेन्द्रिय वानप्रस्थी ही बनूंगा, मैं काली नेत्रों वाली सीता को बिना देखे यहां से नहीं जाऊंगा। मर जाने पर तो महान दोष हैं, जीवित रहने पर मनुष्य भलाई पा लेता है। इस लिए मैं प्राण धारण करूंगा, जीवित रहने पर सीता का मिलना ध्रुव है।"

इसप्रकार अनेक प्रकार के दुःख को कपिश्रेष्ठ हनुमान् ने मन से बहुत सहा, परन्तु फिर भी शोक के पार को न पा सका। तब आखिरकार उसने पराक्रम किया और हिम्मत बांधकर निश्चय

ततो विक्रममासाद्य धैर्यवान् कपिकुञ्जरः ।
रावणं वा वधिष्यामि दशग्रीवं महाबलम् ।
काममस्तु हृता सीता प्रत्याचीर्णं भविष्यति ।।४५।।
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ।।४६।।
यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तावदेतां पुरीं लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ।।४७।।
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा ।
इमामधिगमिष्यामि नहीय विचिता मया ।।४८।।
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा चिन्ताविग्रथितेन्द्रियः ।
उदतिष्ठन् महाबाहुर्हनूमान् मारुतात्मजः ।।४९।।

किया कि मैं महाबली दशग्रीव रावण को मारूंगा, हरी हुई सीता सकुशल होवे, बदला चुकाया जावेगा ।

इस प्रकार चिन्ता में डूबा हुआ हनुमान् सीता को न पाकर ध्यान और शोक से भर गया और सोचा कि "जब तक मैं यशस्विनी रामपत्नी सीता को नहीं देख लेता, तब तक इस लङ्कापुरी को फिर-फिर ढूंढता हूं । और यह बहुत बड़ी अशोक वाटिका भी तो है, जिसमें बहुत बड़े पेड़ लगे हुए हैं, इसे देखूंगा, इसे मैंने नहीं ढूंडा ।"

पल भर ऐसा सोच कर मारुत-पुत्र महाबाहु हनुमान्, कि जिसकी इन्द्रियें चिन्ता के कारण व्याकुल हुई पड़ी थी, अशोक वाटिका की ओर चलने को उठ खड़ा हुआ ।

अशोक वाटिका के एक वृक्ष पर चढ़कर सीता की तलाश करना

महातेजस्वी हनुमान् ने कुछ काल सोच-विचार किया, मन

सर्ग ७

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा मनसा चाधिगम्य ताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥१॥
स तु संहृष्टसर्वाङ्गः प्राकारस्थो महाकपिः ।
पुष्पिताग्रान्वसन्तादौ ददर्श विविधान्द्रुमान् ॥२॥
सालानशोकान्भव्यांश्च चम्पकांश्च सुपुष्पितान् ।
उद्दालकान् नागवृक्षांश्चूतान् कपिमुखानपि ॥३॥
तथाम्रवणसम्पन्नांल्लताशतसमन्वितान् ।
ज्यामुक्त इव नाराचः पुप्लुवे वृक्षवाटिकाम् ॥४॥
स प्रविश्य विचित्रां तां विहगैरभिनादिताम् ।
राजतैः काञ्चनैश्चैव पादपैः सर्वतो वृताम् ॥५॥

से सीता की दशा का चिन्तन किया और फिर रावण-महल के उस प्राकार से अशोकवाटिका के प्राकार को कूदा ।

वह महाकपि कूदता हुआ जब प्राकार के ऊपर पहुँचा तो उसके अंग मारे खुशी के पुलकित हो उठे, और वहां से उसने वसन्तादि सब ऋतुओं में खिलने वाले अनेकविध वृक्षों को देखा । उसने सालों, भव्य अशोकों, खूब खिले हुए चम्पकों, सेलुओं, नागकेसरों तथा आम्र वृक्षों को देखा कि जिनके आम्र फल वानरों को अतिप्रिय हैं । आम्र वृक्ष आम्रवन की सम्पत्ति थे और उन पर वहुतायत से लताएं चढ़ी हुई थीं । ऐसी वृक्ष-वाटिका को हनुमान् इतनी तीव्र गति से कूदा कि जैसे धनुष के चिल्ले से छुटा बाण पड़ा करता है ।

हनुमान् वानर ने उस अद्भुत अशोकवाटिका में पहुंच कर देखा कि वह पक्षियों से गुंजायमान हो रही है, चहुं ओर से

विहगैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम्।
उदितादित्यसङ्काशां ददर्श हनुमान् बली ॥६॥

वृतैर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपगफलोपगैः।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च मत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥७॥

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम्।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥८॥

मार्गमाणो वरारोहां राजपुत्रीमनिन्दिताम्।
सुखप्रसुप्तान् विहगान् बोधयामास वानरः ॥९॥

उत्पतद्भिर्द्विजगणैः पक्षैर्वातैः समाहताः।
अनेकवर्णा विविधा मुमुचुः पुष्पवृष्टयः ॥१०॥

पुष्पावकीर्णः शुशुभे हनूमान्मारुतात्मजः।
अशोकवनिकामध्ये यथा पुष्पमयो गिरिः ॥११॥

चांदी-सोने के से वृक्षों से घिरी हुई है, पक्षियों तथा मृग-झुण्डों से शोभायमान है, सुन्दर वन उसमें विद्यमान हैं, उदय होते हुए सूर्य के समान चमक रही है, पुष्प-फलों से लदे नानाविध वृक्षों से घिरी हुई है, प्रसन्न कोयलों तथा भ्रमरों का निवास स्थान है, उस काल में वहां सभी मनुष्य खुशी २ विचर रहे हैं, मृगों तथा पक्षियों की प्रसन्नतायों से परिपूर्ण है, उल्लसित मयूरों से गुंजायमान है, और नानाविध पक्षि-झुण्डों से युक्त है। उस वाटिका में सुन्दर आकृति वाली तथा निन्दा रहित राजपुत्री को ढूंढते हुए हनुमान् ने सुखपूर्वक सोए हुए पक्षियों को जगा दिया। जाग कर जब वे पक्षि-झुण्ड उड़े, तो उनके पंखों से पैदा हुई हवाओं के झकोरों ने वृक्षों के रंग-विरंगे फूलों की वर्षा की, जिससे मारुत-पुत्र हनुमान् अपने ऊपर पड़े फूलों से उस अशोक वाटिका के बीच

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा काञ्चनभूमीश्च विचरन्ददृशे कपिः ॥१२॥
वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥१३॥
मुक्ताप्रवालसिकताः स्फाटिकान्तरकुट्टिमाः ।
काञ्चनैस्तरुभिश्चित्रैस्तीरजैरुपशोभिताः ॥१४॥
बुद्धपद्मोत्पलवनाश्चक्रवाकोपशोभिताः ।
नत्यूहरुतसंघुष्टा हंससारसनादिताः ॥१५॥
दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृताः ॥१६॥

में ऐसे शोभायमान होने लगा जैसे कि पुष्पमय पहाड़ शोभायमान हुआ करता है।

अशोक वाटिका में इतस्ततः विचरते हुए हनुमान ने देखा कि वहां के सुन्दर फर्शों में कहीं मणियां जड़ी हुई हैं; कहीं चांदी लगी हुई है, और कहीं सोना मढ़ा हुआ है। वहां के तालाब अनेक आकृतियों के हैं, जो कि पवित्र जल से परिपूर्ण हैं, और जगह २ बहुमूल्य मणियों की सीढ़ियों से युक्त हैं। उसके अन्दर मोती-मूंगों की बालू है, और उसकी अन्दर की दीवारें स्फटिक मणि की बनी हैं। वे तालाब किनारों पर लगे चित्र-विचित्र सोने के वृक्षों से सुशोभित हैं।

उन तालावों में खिले हुए सफेद व लाल कमलों के वन हैं, जिन्हें कि चक्रवाकों ने सुशोभित, जलकाकों ने गुंजारित, तथा हंस-सारसों ने निनादित कर रखा है।

उन तालावों के आस-पास लम्बी २ नहरें बह रही हैं,

लताशतैरवतताः सन्तानकुसुमावृताः ।
नानागुल्मावृतवनाः करवीरकृतान्तराः ।।१७।।
ततोऽम्बुधरसङ्काशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ।।१८।।
शिलागृहैरवततं नानावृक्षसमावृतम् ।
ददर्श कपिशार्दूलो रम्यं जगति पर्वतम् ।।१९।।
ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपपतितां कपिः ।
अङ्कादिव समुत्पत्य प्रियस्य पतितां प्रियाम् ।।२०।।

जिन पर वृक्ष लगे हुए हैं और जिनका जल अमृत-समान आरोग्य-वर्धक है। ऐसी २ नहरों से वे तालाब और भी शोभायमान हो रहे हैं।

इन तालाबों के ऊपर सैकड़ों प्रकार की लताएं चढ़ी हुई हैं, सन्तान वृक्षों (कल्प वृक्ष आदि ५ देववृक्षों में एक यह भी है) के फूलों से आच्छादित हैं, जल में जगह २ नानाविध गुच्छे विद्यमान हैं, (यहां वन जल वाचक है) और तट पर लगे कनेर के पेड़ों ने उन तालाबों पर झरोखे बना रखे हैं।

फिर, उन तालाबों को देखने के बाद, वानर-केसरी ने जगत् में एक रम्थ पर्वत को देखा, जोकि जलधर मेघ के समान हरा-भरा था, चोटी बड़ी ऊंच थी, ऊपर विचित्र प्रकार के सुन्दर खूंटे बने हुए थे और उन खूंटों (पत्थर आदि के बने हदबन्दी के खूंटे) से चारों ओर से घिरा हुआ था, जगह २ पत्थर के भवन फैले हुये थे, और नानाविध वृक्षों से आच्छादित था।

इसके बाद हनुमान् ने उस पर्वत पर से निकली हुई नदी को देखा, मानो कि प्रिय से क्रुद्ध होकर कोई प्रिया उसकी गोद

जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ।
वार्यमाणामिव क्रुद्धां प्रमदां प्रियबन्धुभिः ॥२१॥
पुनरावृत्ततोयां च ददर्श स महाकपिः ।
प्रसन्नामिव कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥२२॥
तस्यादूरात्स पद्मिन्यो नानाद्विजगणायुताः ।
ददर्श कपिशार्दूलो हनूमान् मारुतात्मजः ॥२३॥
कृत्रिमां दीर्घिकां चापि पूर्णां शीतेन वारिणा ।
मणिप्रवरसोपानां मुक्ता-सिकत-शोभिताम् ॥२४॥
विविधैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां चित्रकाननाम् ।

से निकल कर आगे भूमि पर पड़ी हो। नदी किनारे लगे वृक्षों की झुकी टहनियों को जल ने और नीचे झुका रखा था, जिससे उस नदी का सौंदर्य बड़ा हुआ था। इन झुके वृक्षों से जो नदी के बहाव में कुछ रुकावट सी पड़ती थी, उससे ऐसा भान होता था कि मानो पति से कुपित हुई पत्नी को अन्यत्र जाने से सखी-सहेलियां रोक रही हों। और इस पर महाकपि ने यह भी देखा कि सखी सहेलियों द्वारा रोकने पर जैसे प्रिय की प्रिया प्रसन्न हो जाती है और फिर आ उपस्थित होती है, इसी प्रकार उन वृक्षों की रुकावट से नदी-जल फिर पीछे की ओर लौट आया है।

तदनु, वानरकेसरी मारुत-पुत्र हनुमान् ने समीप ही कमल वाले प्राकृतिक पोखर देखे, जिनमें कि नाना वर्णों के पक्षी विचर रहे थे। और फिर समीप ही एक बहुत बड़ी कृत्रिम सरसी भी देखी, जोकि शीतल जल से परिपूर्ण थी, बढ़िया मणियां सीढ़ियों पर लगी हुई थी और मोतियों की सिकता से शोभायमान थी। पास में ही विद्यमान विविध प्रकार के मृग झुण्डों से सुशोभित

प्रासादैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विश्वकर्मणा ॥२५॥
काननैः कृत्रिमैश्चापि सर्वतः समलंकृताम्।
ये केचित्पादपास्तत्र पुष्पोपगफलोपगाः ॥२६॥
सच्छत्रा सवितर्दीकाः सर्वे सौवर्णवेदिकाः।
लताप्रतानैर्बहुभिः पर्णैश्च बहुभिर्वृताम् ॥२७॥
काञ्चनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥२८॥
सोऽपश्यद् भूमिभागांश्च नगप्रस्रवणानि च।
सुवर्णवृक्षानपरान् ददर्श शिखिसन्निभान् ॥२९॥
तेषां द्रुमाणां प्रभया मेरोरिव महाकपिः।
अमन्यत तदा वीरः काञ्चनोऽस्मीति सर्वतः ॥३०॥

थी और सुन्दर कानन से युक्त थी। चतुर शिल्पी द्वारा निर्मित बहुत बड़े २ प्रासादों, और इतस्ततः विद्यमान कृत्रिम उपवनों से अलंकृत थी। उन उपवनों में जो कोई भी वृक्ष थे, उन सब पर पुष्प-फल लगे हुए थे, आकार में छतरी के समान थे, चहुं ओर बैठने को वेदियें बनी हुई थीं, और वे सब सुवर्ण से मढ़ी हुई थीं।

महाकपि ने उस बड़ी सरसी के किनारे एक निराला अगर का पेड़ देखा, जोकि बहुत से लता-प्रतानों तथा बहुत से पत्तों से आच्छादित था और सुवर्ण समान दीख पड़ रहा था। इस पेड़ के चारों ओर कई सुवर्णमयी वेदिकायें बनी हुई थी।

फिर उसने अनेक भू-खण्ड, तथा पर्वतों के झरने देखे और देखे अग्नितुल्य चमकने वाले दूसरे २ सुवर्ण वृक्ष। महाकपि वीर को मेरुपर्वतस्थ-जैसे उन वृक्षों की प्रभा से सर्वरूपेण ऐसा भान

तान्काञ्चनान् वृक्षगणान्मारुतेन प्रकम्पितान् ।
किङ्किणीशतनिर्घोषान् दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥३१॥
सुपुष्पिताग्रान् रुचिरांस्तरुणांकुरपल्लवान् ।
तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृताम् ॥३२॥
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ।
इतश्चेतश्च दुःखार्तां सन्तपन्तीं यदृच्छया ॥३३॥
अशोकवनिका चेयं दृढं रम्या दुरात्मनः ।
चन्दनैश्चम्पकैश्चापि बकुलैश्च विभूषिता ॥३४॥
इयं च नलिनी रम्या द्विजसङ्घनिषेविता ।
इमां सा राजमहिषी नूनमेष्यति जानकी ॥३५॥

होने लगा कि मैं सुवर्ण रूप हूँ ।

उन सुवर्ण तुल्य वृक्षों को हवा के झोकों ने जब झुलाया, तो उससे ऐसी आवाज निकलने लगी कि मानो घुंघरुओं की सैकड़ों छोटी २ घंटियां बज रही हों। उन्हें सुन कर हनुमान् को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह कैसा शब्द है ? उन वृक्षों के अग्र भाग फूलों से भरे पड़े थे, बड़े प्यारे लगते थे, और नयी २ कोपलें और पत्ते लगे हुए थे ।

महातेजस्वी हनुमान् पत्तों से ढके उस अशोक के पेड़ पर चढ़ गया कि— 'मैं यहां से राम-दर्शन की लालसा में पड़ी सीता को देख सकूंगा, जोकि दुःख-पीड़ित होकर जैसे मन में उठा वैसे इधर-उधर राम की तलाश में फिरती होगी ।"

"दुरात्मा रावण की यह अत्यन्त रमणीक अशोक वाटिका है, जोकि चन्दन-चम्पक-बकुल वृक्षों से सुभूषित है। और, यह सुन्दर पुष्करिणी है, जिसके तट पर पक्षी-संघों ने बसेरा कर

सारामा राजमहिषी राघवस्य प्रिया सदा।
वनसञ्चारकुशला ध्रुवमेष्यति जानकी ॥३६॥

अथवा मृगशावाक्षी वनस्यास्य विचक्षणा।
वनमेष्यति साद्येह रामचिन्तासुकर्शिता ॥३७॥

रामशोकाभिसन्तप्ता सा देवी वामलोचना।
वनवासरता नित्यमेष्यते वनचारिणी ॥३८॥

वनेचराणां सततं नूनं स्पृहयते पुरा।
रामस्य दयिता चार्या जनकस्य सुता सती ॥३९॥

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥४०॥

रखा है। इस पुष्करिणी पर राजमहिषी जानकी अवश्य आवेंगी।"

"यदि राजमहिषी इस आराम (वाटिका) में रह रही है तो वह वन-परिभ्रमण में कुशल राम की सदैव प्रिया जानकी इधर अवश्य आवेगी। किंच, मृगशावक की सी आंखों वाली राम-चिन्ता से दुबली सीता, जोकि इस वन की अच्छी जानकार हो चुकी होगी, आज यहां वन में जरूर आवेगी, क्योंकि राम-शोक से संतप्त सुनयनी देवी वनवास में रत रहने के कारण वनचारिणी है, अतः नित्य आती-जाती रहती होगी। फिर जनक की पुत्री तथा राम की प्रिया सती भार्या, जोकि पहले जंगली मृगादि पशु पक्षियों को नित्य चाहा करती थी, उनकी तलाश में नित्य आती-जाती ही रहती होगी। फिर, संध्या काल को कभी न चूकने वाली वर-प्रार्थिनी श्यामा जानकी स्वच्छ जल वाली इस नदी पर संध्या के लिए जरूर आवेगी। (यहां संध्या से

तस्याश्चाप्यनुरूपेयम् अशोकवनिका शुभा ।
शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य सम्मता ॥४१॥
यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति साऽवश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥४२॥

सर्ग ८

स वीक्षमाणस्तत्रस्थो मार्गमाणश्च मैथिलीम् ।
अवेक्षमाणश्च महीं सर्वां तामन्ववैक्षत ॥१॥
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थितं कैलासपाण्डुरम् ॥२॥
प्रवालकृतसोपानं तप्तकाञ्चनवेदिकम् ।
मुष्णन्तमिव चक्षूंषि द्योतमानमिव श्रिया ॥३॥

अभिप्राय प्रातःकालीन संध्या से है, क्योंकि अर्धरात्रि में तो हनुमान् वहां पहुंचा ही था) उस सुन्दरी के अनुरूप ही यह सुन्दर अशोक वाटिका है, क्योंकि वह राजाधिराज राम की प्रिय पत्नी है। (इसलिए रावण ने उसे यहां ही नजरबन्द कर रखा होगा)। इसलिए यह निश्चित है कि यदि वह चन्द्रमुखी जीवित है, तो अवश्य इस शीतल जल वाली नदी पर आवेगी।"

वृक्ष पर चढ़े २ सीता को देख लेना

सीता की तलाश में अशोक वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान् ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते हुए उस सारी अशोकवाटिका-भूमि को देखा। तब उसने समीप में ही एक ऊंचे उठे हुए गुम्बजाकार प्रासाद को देखा जोकि बीच में अनेकों स्तम्भों पर खड़ा हुआ था, चर्बीले कैलास के समान सफेद था, सीढ़ियां मूंगे की बनी हुई थीं, वेदियें तपे सोने की थी कि जिनकी श्री से वह ऐसा चमक

निर्मलं प्रांशुभावत्वादुल्लिखन्तमिवाम्बरम् ।
ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥४॥
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ।
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ॥५॥
मन्दप्रख्यायमानेन रूपेण रुचिरप्रभाम् ।
पिनद्धां धूमजालेन शिखामिव विभावसोः ॥६॥
पीतेनैकेन संवीतां क्लिष्टेनोत्तमवाससा ।
सपङ्कामनलङ्कारां विपद्मामिव पद्मिनीम् ॥७॥
पीडितां दुःखसन्तप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
ग्रहेणाङ्गारकेणेव पीडितामिव रोहिणीम् ॥८॥
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ।

रहा था कि आंखे देख न पाती थी, निर्मल था, और उच्चता के कारण आकाश को चीर रहा था ।

प्रासाद को देखते हुए हनुमान् ने वहां बैठी हुई एक तपस्विनी को देखा । इसने मैले कपड़े पहिन रखे थे, राक्षसियों से घिरी हुई थी, उपवास से कृश होगई थी, दुखिया थी, बार बार सांसें फैंक रही थी, शुक्लपक्ष की आदि में चन्द्र-रेखा के समान निर्मल थी, बड़ी मुश्किल से पहिचान में आने वाले रूपसे (कि यह रूप यह है या वह है) सुन्दर छटा वाली परन्तु धूम-जाल से ढकी अग्नि ज्वाला के समान थी, मैल-चढ़े पीले रग के एक उत्तम वस्त्र चादर से उड़ी हुई थी, और कीचड़-पूर्ण अविभूषित कमल-विहीन पोखरिनी के समान दीख पड़ती थी । वह पीड़िता थी, दुःख-सन्तप्त थी, और परिक्षीण थी । मंगल ग्रह से ग्रसित रोहिणी तारे के समान निस्तेज थी, आंखों में आंसुभरी दीन थी,

शोकध्यानपरां दीनां नित्यं दुःखपरायणाम् ।।९।।
प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ।।१०।।
नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ।।११।।
सुखार्हां दुःखसन्तप्तां व्यसनानामकोविदाम् ।
तां विलोक्य विशालाक्षीमधिकं मलिनां कृशाम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादिभिः ।।१२।।
ह्रियमाणा तदा तेन रक्षसा कामरूपिणा ।
यथारूपा हि दृष्टा सा तथारूपेयमङ्गना ।।१३।।

अनशन के कारण कृश थीं, शोक परिपूर्ण चिन्ता में डूबी हुई दयनीय दशा में थी, निरन्तर दुःख ही एकमात्र सहारा था, और राम-लक्ष्मण आदि प्रियजन को न देखने और उसके स्थान पर राक्षसी गण को देखने से वह ऐसी दीख पड़ती थी कि मानो कोई हिरनी अपने झुण्ड से अलग होगई हो और कुत्तों के झुण्ड से घिर गई हो। उसकी काले सांप जैसी वेणी (चोटी) एक ही थी और वह कटि प्रदेश तक पहुंची हुई थी, और वह बरसात के पश्चात् काली वनपंक्ति से युक्त भूमि के समान दीख पड़ती थीं। वह सुख पाने के योग्य थी पर दुःख से संतप्त थी, और व्यसनों को जानती तक न थीं।

हनुमान ने उस विशालाक्षी तपस्विनी को अधिक मलिन और कृश देखकर उपर्युक्त संज्ञापक कारणों (चिन्हों) से समझा कि यह सीता है। उसने सोचा कि तब बहुरूपिये रावण राक्षस द्वारा हरी जा रही सीता जिस रूप वाली देखी गयी थी, उसी

वैदेह्या यानि चाङ्गेषु तदा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
तान्याभरणजालानि गात्रशोभीन्यलक्षयत् ॥१४॥
सुकृतौ कर्णवेष्टौ च श्वदंष्ट्रौ च सुसंस्थितौ ।
मणिविद्रुमचित्राणि हस्तेष्वाभरणानि च ॥१५॥
श्यामानि चिरयुक्तत्वात्तथा संस्थानवन्ति च ।
तान्येवैतानि मन्येऽहं यानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥१६॥
तत्र यान्यवहीनानि तान्यहं नोपलक्षये ।
यान्यस्या नावहीनानि तानीमानि न संशयः ॥१७॥
पीतं कनकपट्टाभं स्रस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीयं नगासक्तं तदा दृष्टं प्लवङ्गमैः ॥१८॥

रूप वाली यह स्त्री है । तब, चलने से पूर्व राम ने सीता के अंगों पर जो आभूषण बतलाये थे, हनुमान् ने देखा कि वे ही आभूषण सीता के शरीर की शोभा बढ़ा रहे हैं ।

इसपर हनुमान् ने सोचा कि—"अच्छे घड़े कुण्डल तथा कुत्ते की दाढ़ों जैसे दूसरे श्वदंष्ट्र नामी कर्णभूषण ठीक स्थान पर टिके हुए हैं । हाथों में मणि-मूंगे से चित्रित आभूषण हैं, जोकि देर से पहिने होने के कारण काले तो पड़ गए हैं परन्तु हैं अपनी ठीक जगह पर टिके हुए । मैं समझता हूं ये वही हैं जिन्हें कि राम ने बतलाया था । राम द्वारा बतलाये गये जो आभूषण ऋष्यमूक आदि स्थानों में सीता ने गिरा दिए थे, उन्हें मैं नहीं देख रहा, परन्तु जो नहीं गिराये गये निस्संदेह वे ये ही हैं । जो नहीं दीख पड़ रहे उनमें एक तो वह पीले रंग का सुवर्ण-पट्ट जैसा शरीर पर से खिसका हुआ उत्तम वस्त्र दुपट्टा है, जो कि वृक्ष से फंसकर छूट गया था और जिसे सब वानरों ने देखा था । और

भूषणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणींतले।
अनयैवापविद्धानि स्वनवन्ति महान्ति च ॥१६॥
इदं चिरगृहीतत्वाद्वसनं क्लिष्टवत्तरम्।
तथाप्यनूनं तद्वर्णं तथा श्रीमद्यथेतरत् ॥२०॥
इयं कनकवर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥२१॥
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥२२॥

सर्ग ६

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पित-पादपम्।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाऽभवत् ॥१॥

दूसरे, वे छनछनाने वाले बड़े २ मुख्य आभूषण हैं, जिन्हें कि सीता ने स्वयं नीचे फैंका था और पृथ्वी-तल पर पड़े देखे गए हैं। और यह वस्त्र, जो कि ओढ़ रखा है, यद्यपि देर से ओढ़ा होने के कारण बहुत जीर्ण-शीर्ण मैला हो गया है, तथापि पूर्णतया उसी रंग वाला शोभायुक्त है जैसा कि दूसरा वस्त्र है। अतः, यह सुवर्ण वर्ण जैसी राम की प्रिया पत्नी है, जो कि खोई जाने पर भी उनके मन से दूर नहीं होती।"

इस प्रकार इस दशा में जीवित सीता को देखकर पवन-पुत्र अत्यन्त खुश हुआ, और तुरन्त राम की ओर ध्यान गया तथा उस सर्वसमर्थ परमात्मा का धन्यवाद करने लगा।

सीता के पास आते हुए रावण को देखना

इस प्रकार फूलों से खिले वन को टोहते और सीता को तलाश करते कुछ हीं रात शेष रह गई। तब बीती रात ब्रह्म

षडङ्गवेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥२॥
अक्ष-मङ्गलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्रमनोहरैः ।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥३॥
विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
स्रस्तमाल्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्तयत् ॥४॥
भृशं नियुक्तस्तस्यां च मदनेन मदोत्कटः ।
न तु तं राक्षसः कामं शशाकात्मनि गूहितुम् ॥५॥
स सर्वाभरणैर्युक्तो बिभ्रच्छ्रियमनुत्तमाम् ।
तां नगैर्विविधैर्जुष्टां सर्वपुष्पफलोपगैः ॥६॥
वृतां पुष्करिणीभिश्च नानापुष्पोपशोभिताम् ।

मुहूर्त में हनुमान् ने षडङ्ग वेदों के ज्ञाता तथा श्रेष्ठ यज्ञों के कर्ता वेदज्ञ राक्षसों का वेदघोष सुना। तदनु, कानों को प्रिय मङ्गल वाद्य शब्दों से महावली महाबाहु रावण को जगाया गया। महाभाग प्रतापी राक्षसराज ने उठते ही वैदेही की ओर मन दौड़ाया, जब कि सोने के कारण पहनी हुई मालायें और वस्त्र उसके खिसके हुए थे। सीता में निरन्तर मन लगाने से उसकी काम-वासना उग्र रूप में उमड़ पड़ी थी, जिससे राक्षस उस काम को अपने में दबाने में समर्थ न हो सका।

उसने सब प्रकार के आभूषण पहिने, साज-शृङ्गार से अपने को खूब सजाया और मार्गों को देखता हुआ वृक्षों से छायी अशोकवाटिका में जा पहुंचा। वह वाटिका पूर्णरूप से पुष्प-फलों से भरपूर अनेकविध वृक्षों से युक्त थी, नाना पुष्पों से शोभित पुष्करिणियों से घिरी हुई थी, अत्यन्त अद्भुत प्रसन्न पक्षियों से

सदा मत्तैश्च विहगैर्विचित्रां परमाद्भुतैः ॥७॥
ईहामृगैश्च विविधैर्वृतां दृष्टिमनोहरैः ।
वीथीः सम्प्रेक्षमाणश्च मणिकाञ्चनतोरणाम् ॥८॥
नानामृगगणाकीर्णां फलैः प्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥९॥
अङ्गनाः शतमात्रं तु तं व्रजन्तमनुव्रजन् ।
महेन्द्रमिव पौलस्त्यं देवगन्धर्वयोषितः ॥१०॥
दीपिकाः काञ्चनीः काश्चिज्जगृहुस्तत्र योषितः ।
वालव्यजनहस्ताश्च तालवृन्तानि चापराः ॥११॥
काञ्चनैश्चैव भृङ्गारैर्जह्रुः सलिलमग्रतः ।
मण्डलाग्रा बृसीश्चैव गृह्यान्याः पृष्ठतो ययुः ॥१२॥
काचिद्रत्नमयीं पात्रीं पूर्णां पानस्य भ्राजतीम् ।

सदा रमणीक रहती थीं, मनोहर नेत्रों वाले अनेक किस्म के ईहामृगों (एक तरह के मृग) से परिपूर्ण थी, मणियों तथा सोने के तोरणों से युक्त थी, नानाविध मृगगणों से अभिव्याप्त थी, और अपने आप गिरे हुए फलों से बिछी हुई थी।

पुलस्त्य वंशज रावण जब अशोकवाटिका की ओर चला, तो उसके पीछे २ एक सौ स्त्रियें भी चलीं जैसे कि इन्द्र राजा के पीछे देव-गन्धर्वों की स्त्रियां चला करती हैं। उनमें से कुछ स्त्रियों ने सोने के डण्डे वाली मसालें पकड़ रखी थी, कुछ ने हाथों में चमर ले रखे थे, दूसरियों ने ताड़ के पंखे उठा रखे थे, कई धतूरे के फूल की आकृति वाले सुवर्ण-निर्मित कलशों में जल लिए आगे २ चल रही थीं, दूसरियां गोलाकार विशिष्ट आसनों को पकड़े हुए पीछे २ चल रही थीं, किसी दक्ष स्त्री ने दाहिने हाथ से

दक्षिणा दक्षिणेनैव तदा जग्राह पाणिना ॥१३॥
राजहंसप्रतीकाशं छत्रं पूर्णशशिप्रभम् ।
सौवर्णदण्डमपरा गृहीत्वा पृष्ठतो ययौ ॥१४॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमस्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥१५॥

व्याविद्धहारकेयूराः समामृदितवर्णकाः ।
समागलितकेशान्ताः सस्वेदवदनास्तथा ॥१६॥

घूर्णन्त्यो मदशेषेण निद्रया च शुभाननाः ।
स्वेदक्लिष्टाङ्गकुसुमाः समाल्याकुलमूर्धजाः ॥१७॥

मदिरा-परिपूर्ण चमकती हुई रत्न-जड़ित पात्री पकड़ रखी थी, और दूसरी सोने के डण्डे वाले राजहंस समान सफेद (राजहंस सफेद होता है और उसकी टांगें लाल होती हैं। इसी प्रकार छत्र सफेद था और डण्डा सोने का होने के कारण लाल जैसा था) किंवा पूर्ण चन्द्रमा के समान सफेद गोलाकार छत्र को लिए पीछे २ चल रही थी।

इस प्रकार रावण की ये प्रिय स्त्रियां, जिनकी आंखें नींद और नशे से भरी हुई थी, वीर पति के पीछे २ चली, जैसे कि घने बादल के साथ बिजली की लतायें चला करती हैं। इनके हार और बाजूबन्द खिसके हुए थे, बिन्दी मिटी हुई थी, जूड़ा खुला हुआ था, और मुंह पसीने से तर था। ये रहे हुए नशे के कारण दूसरों को घूर रहीं थीं। निद्रा के कारण मुँह सुन्दर लग रहा था, पसीने के कारण फूल अंगों से चिपके पड़े थे, और फूल-मालायों से सिर के बाल गुंथे हुए थे। एवं, राक्षसपति रावण के जाते हुए नशीली नेत्रों

प्रयान्तं नैर्ऋतपतिं नार्यो मदिरलोचनाः ।
बहुमानाच्च कामाच्च प्रियभार्यास्तमन्वयुः ॥१८॥
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चितगतिर्बभौ ॥१६॥
ततः काञ्चीनिनादं च नूपुराणां च निस्वनम् ।
शुश्राव परमस्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः ॥२०॥
तं चाप्रतिमकुर्वाणम् अचिन्त्यबलपौरुषम् ।
द्वारदेशमनुप्राप्तं ददर्श हनुमान् कपिः ॥२१॥
दीपिकाभिरनेकाभिः समन्तादवभासितम् ।
गन्धतैलावसिक्ताभिर्ध्रियमाणाभिरग्रतः ॥२२॥
कामदर्पमदैर्युक्तं जिह्मताम्रायतेक्षणम् ।
समक्षमिव कन्दर्पम् अपविद्धशरासनम् ॥२३॥

वाली नारियां एवं प्रिय पत्नियां अत्यधिक मान तथा काम-वासना के कारण उसके पीछे २ चलीं। और, उनका वह महाबली पति काम के वश हो सीता में मन लगा दुर्मति बना हुआ तेज चाल चल रहा था।

उस वेद-घोष के कुछ काल बाद मारुत-पुत्र हनुमान् ने प्रमुख स्त्रियों की तगड़ी तथा पायजेब आभूषणों की झंकार सुनी और फिर उसने देखा कि परदारापहरण आदि अयुक्त कर्म करने वाला तथा अत्यधिक बल-पौरुष से युक्त रावण अशोकवाटिका के द्वार पर पहुंचा है। उसके आगे २ सुगन्धित तेल से सिंचित अनेक मसालें लिए स्त्रियें चल रही हैं जिससे उसका चेहरा साफ २ दिखाई पड़ रहा है। वह काम के बढ़े हुए नशे से युक्त है, कुटिल तथा ताम्र रंग जैसी उसकी विशाल आंखें हैं। साक्षात् कामदेव बना हुआ है कि जिस का धनुर्भङ्ग हुआ पड़ा है, और

मथितामृतफेनाभम् अरजोवस्त्रमुत्तमम् ।
सपुष्पमवकर्षन्तं विमुक्तं सक्तमङ्गदे ॥२४॥
तं पत्रविटपे लीनः पत्रपुष्पशतावृतः ।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥२५॥
अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुञ्जरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥२६॥
ताभिः परिवृतो राजा सुरूपाभिर्महायशाः ।
तन्मृगद्विजसंघुष्टं प्रविष्टः प्रमदावनम् ।
क्षीवो विचित्राभरणः शंकुकर्णो महाबलः ॥२७॥
तेन विश्रवसः पुत्रः स दृष्टो राक्षसाधिपः ।
वृतः परमनारीभिस्ताराभिरिव चन्द्रमाः ॥२८॥

मथे पानी की झाग की तरह क्षणिक आभा वाला है। वह उत्तम उजले वस्त्र पहिने हुआ है, और बाजूबन्द पर लगे खिसके वस्त्र को ठीक कर रहा है कि जिस वस्त्र पर विशिष्ट मोतियो से युक्त पुष्पमाला चढ़ीं हुई है।

जब रावण समीप पहुंचा तो घने पत्तों वाले वृक्ष से सटे हुए, तथा घने फूल-पत्तों से अपने को छिपाए हुए हनुमान् ने उसे पहिचानने का यत्न किया। तब देखते हुए वानरश्रेष्ठ ने देखा कि रूप-यौवन से संपन्न रावण कीं प्यारी स्त्रियां उसके साथ में हैं, और उन सुन्दरियों से घिरा महायशस्वी राजा मृग-पक्षियों से निनादित उस प्रमदावन (अशोक वाटिका) में आया है।

हनुमान् ने उस विश्रवा के पुत्र राक्षसराज को देखा कि वह नशे में मस्त है, सुन्दर आभूषणों से आभूषित है, शंकु नामक मगरमच्छ के समान कान हैं, महाबली है, और सुन्दरी नारियों

तं ददर्श महातेजास्तेजोवन्तं महाकपिः ।
रावणोऽयं महाबाहुरिति सञ्चिन्त्य वानरः ॥२६॥
सोऽयमेव पुरा शेते पुरमध्ये गृहोत्तमे ।
अवप्लुतो महातेजा हनुमान् मारुतात्मजः ॥३०॥
स तथाप्युग्रतेजाः स निर्धूतस्तस्य तेजसा ।
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान् संवृतोऽभवत् ॥३१॥
स तामसितकेशान्तां सुश्रोणीं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीम् उपावर्तत रावणः ॥३२॥

सर्ग १०

तस्मिन्नेव ततः काले राजपुत्री त्वनिन्दिता ।
रूपयौवनसम्पन्नं भूषणोत्तमभूषितम् ॥१॥

से इसप्रकार घिरा हुआ है जैसे कि तारायों से चन्द्रमा ।

महातेजस्वी महाकपि ने उस तेजस्वी को बड़े ध्यान से देखा, और सोच विचार कर वानर ने निश्चय किया कि यह महाबाहु रावण है और यही नगर के मध्य में बने उत्तम महल में पहले (जबकि मैंने देखा था) सो रहा था। तब मारुत-पुत्र महातेजस्वी हनुमान् वृक्ष पर कुछ नीचे उतरा। वह यद्यपि उग्र तेजस्वी था, परन्तु तो भी उस मूर्तिमान् ने उस काल में अपने को रावण के तेज से पिछड़ा हुआ ही रखा, और किसी दूसरीं गुप्त शाखा के पत्तों में सट कर छिप गया। और उधर रावण, काले बालों वाली, सुन्दर कटि वाली, कड़े स्तनों वाली, तथा काले नयनों वाली सीता को देखने के लिए उसके समीप पहुंच गया।

रावण ने सीता को किस रूप में देखा ?

तब उसी समय, जबकि हनुमान् ने रावण को सीता की

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम्।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥२॥
ऊरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥३॥
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥४॥
असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम्।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥५॥
मलमण्डनदिग्धाङ्गीं मण्डनार्हाममण्डनाम्।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥६॥

ओर जाते देखा, सती साध्वी सुन्दरी सीता रूप-यौवन से संपन्न तथा उत्तम भूषणों से विभूषित राक्षसाधिप रावण को वहां दूर से ही देख कर ऐसे कांप उठी जैसे कि तेज हवा में केले के पत्ते कांपा करते हैं। तब सदैव श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करने वाली विशालाक्षी सीता ने रोते हुए पट्टों से तो पेट को ढांपा और बाहुओं से छाती को, और संभल कर बैठ गयी।

रावण ने वहां पहुँचकर राक्षसियों से रक्षित सीता को देखा कि वह दुःख-पीड़िता ऐसे घबरायी हुई है जैसे कि समुद्र में डूबती नैय्या में स्थित व्यक्ति। वह बिना कुछ बिछाये जमीन पर बैठी हुई है, कठोर व्रतों को धारण किये हुई है, और भूमि पर ऐसे पड़ी है जैसे कि वृक्ष की कटी शाखा गिरी पड़ी हो। मल ही उसके अंगों का मण्डन-साधन बना हुआ है, वह यद्यपि मण्डन के योग्य है पर मण्डित नहीं है, और कीचड़ में पड़ी भिस के समान जंचती भी है और नहीं भी जंचती। (स्वरूपातिशय

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
सङ्कल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव　　मनोरथैः ॥७॥
शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥८॥
चेष्टमानामथाविष्टां　　पन्नगेन्द्रवधूमिव ।
धूप्यमानां ग्रहेणेव रोहिणीं धूमकेतुना ॥९॥
वृत्तशीले कुले जाताम् आचारवति धार्मिके ।
पुनः संस्कारमापन्नां जातामिव च दुष्कुले ॥१०॥
सन्नामिव महाकीर्तिं श्रद्धामिव विमानिताम् ।
प्रज्ञामिव परिक्षीणामाशां प्रतिहतामिव ॥११॥

के कारण जंचती है, परन्तु मलिनतावश नहीं भी जंचती)। वह विदितात्मा राजसिंह राम के समीप, मनोरथ रूपी जुते संकल्प-घोड़ों से, जा रही सी है।

रावण ने देखा कि राम की अनुव्रता रामा, दुःख का पार न देखती हुई ध्यान तथा शोक में निमग्न है, और सूख कर कांटा बनी हुई अकेली रो रही है। रोती हुई, फन वाले सांप की सांपिनी की तरह छटपटा रही है, और धूमकेतु ग्रह से संतप्त की जा रही रोहिणी नक्षत्र-राशि के समान संतप्त है। रावण को सीता ऐसी दीख पड़ी कि जैसे कि कोई स्त्री धार्मिक, आचार-संपन्न तथा वृत्त-शील से युक्त कुल में उत्पन्न हुई २ हो और वह दुष्कुल में पड़ी के समान फिर सस्कार-संपन्न की गयी हो।

रावण ने देखा कि सीता क्षीण हुई महाकीर्ति के समान है; निरादृत श्रद्धा के तुल्य है, मन्द पड़ी बुद्धि जैसी है, विनष्ट हुई आशा के तुल्य हैं, मारी गयी धन-प्राप्ति के समान है, भंग की

आयतीमिव विध्वस्तमाज्ञां प्रतिहतामिव ।
दीप्तामिव दिशं काले पूजामपहृतामिव ॥१२॥
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दुमण्डलाम् ।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥१३॥
प्रभामिव तमोध्वस्तामुपक्षीणामिवापगाम् ।
वेदीमिव परामृष्टां शान्तामग्निशिखामिव ॥१४॥
उत्कृष्टपर्णकमलां वित्रासितविहङ्गमाम् ।
हस्तिहस्तपरामृष्टाम् आकुलामिव पद्मिनीम् ॥१५॥
पतिशोकातुरां शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥१६॥
सुकुमारीं सुजाताङ्गीं रत्नगर्भगृहोचिताम् ।

गयी राजाज्ञा के तुल्य है, उत्पात काल में जल रही दिशा के समान है, और विनष्ट हुई पूजा के तुल्य है। वह ग्रहण लगे चन्द्रमा से युक्त पूर्णमासी रात जैसी है, सूखी कमल-सरसी के समान है, और उस सेना के तुल्य है जिसका कि सेनापति मारा गया है। वह अन्धकार द्वारा हटायी गयी प्रभा के समान है, क्षीणधारा नदी-जैसी है, झाड़ू-बहारू न दी हुई यज्ञवेदि के समान है, बुझी हुई अग्नि-ज्वाला के तुल्य है, और उस विनष्ट तलैया के समान हैं कि जिसके कमल-पत्र तोड़ डाले गए हैं पक्षी भगा दिये गये हैं तथा हाथी की सूंड से उखाड़ फैंकी गयी है।

पति-शोक से आतुर सीता बहाव से रहित सूखी नदी की तरह है, और उबटन आदि द्वारा शरीर-शुद्धि के बिना कृष्णपक्ष की निशा के तुल्य है। वह सुकुमारी है, सुन्दर अंगों वाली है और रत्न-जटित घर में रहने योग्य है पर ताजा निकाली हुई

तप्यमानामिवोष्णेन मृणालीमचिरोद्धृताम् ॥१७॥
गृहीतां लाडितां स्तम्भे यूथपेन विनाकृताम् ।
निःश्वसन्तीं सुदुःखार्तां गजराजवधूमिव ॥१८॥
एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥१९॥
उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च ।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारां तपोधनाम् ॥२०॥
आयाचमानां दुःखार्तां प्राञ्जलिं देवतामिव ।
भावेन रघुमुख्यस्य दशग्रीवपराभवम् ॥२१॥

भिस के समान है जोकि गरमी से तप रही है।

वह उस गजराज-बधू हथिनी के समान अत्यन्त दुःख पीड़ित होकर सांस फैंक रही है, जिसे कि यूथपति से पृथक् करके पकड़ लिया हो और फिर खम्भे के साथ बांध दिया हो। वह एक ही लम्बी वेणी से, बिना कोई यत्न किये शोभायमान हो रही है, जैसे कि बरसात के चले जाने पर काली वन-पंक्ति से भूमि शोभायमान हुआ करती है। वह उपवास से, शोक से, चिन्ता से, और भय से सब प्रकार से क्षीण कृश और दीन बनी हुई है, अल्पाहार करके तपस्वियों का जीवन बिता रही है, और दुःख पीड़ित हुई २ रघुकुल के मुखिया राम द्वारा रावण के पराजय की, अन्तर्ध्यान पूर्वक हाथ जोड़े परमात्मदेव से, प्रार्थना कर रही है।

रावण द्वारा सीता को प्रलोभन देने

तब रावण ने राक्षसियों से घिरी दीन-दुखिया तपस्विनी सीता को हाव-भाव परिपूर्ण मधुर शब्दों के साथ अपना अन्तर्गत अभिप्राय प्रकट करना प्रारम्भ किया—

सर्ग ११

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः ॥१॥
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥२॥
कामये त्वां विशालाक्षि बहु मन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥३॥
नेह किंचिन्मनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिणः ।
व्यपसर्पतु ते सीते भयं मत्तः समुत्थितम् ॥४॥
स्वधर्मो रक्षसां भीरु सर्वदैव न संशयः ।
गमनं वा परस्त्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥५॥
एवं चैवमकामां त्वां न च स्प्रक्ष्यामि मैथिलि ।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥६॥

"हथिनी की सूँड के समान जंघा वाली ! क्या तू मुझे देखकर भय से अपनी छाती और पेट को छिपा अपने को मेरे से ओझल करना चाहती है ? ऐ सर्वाङ्गगुणसम्पन्ने ! सर्वलोक मनोहरे ! विशालाक्षी ! प्रिये ! मैं तो तुझे चाहता हूं, तू मुझे बहुत मान, भय मत कर। फिर, यहां मनुष्य या बहुरूपिये राक्षस कोई भी तो नहीं है, इसलिए सीता ! तू मेरे से उठे भय को निकाल दे। ऐ भीरु ! तू निश्चय जान कि यह तो राक्षसों का स्वाभाविक धर्म ही है कि परस्त्री-गमन करना और बलात्कार करके उनका अपहरण करना। परन्तु फिर भी मैथिली ! भले ही काम-वासना मेरे शरीर में यथेच्छ विचरती रहे, पर मैं इसप्रकार अनिच्छा युक्त तुझको छूऊंगा नहीं। इसलिये देवि ! यहां भय

देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥७॥

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेऽप्युपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥८॥

विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगुरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च ॥९॥

महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि ॥१०॥

स्त्रीरत्नमसि मैव भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथ वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥११॥

इदं ते चारुसञ्जात यौवन ह्यतिवर्तते ।
यद्तीत पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥१२॥

मत करो, प्रिये ! मेरे पर विश्वास रखो, यथार्थरूप से मेरे से प्रेम करो, और इसप्रकार शोकग्रस्त मत होवो ।"

"सीता ! एक जूड़ा रखना, भूमि पर सोना, सदा चिन्ता में डूबी रहना, मलिन वस्त्र पहिनना, और कुसमय में उपवास रखना, ये उपाय तेरे लिए ठीक नहीं । मैथिली ! तू मुझे पाकर सुन्दर मालायें, अगर-मिश्रित चन्दन, विविध प्रकार के वस्त्र, बढ़िया आभूषण, बहुमूल्य पेय पदार्थ, बिछौने तथा कालीन, और गीत-नृत्य-वाद्य उपलब्ध कर । सीता ! तू स्त्री-रत्न है, ऐसी मत बन, अंगों पर भूषण धारण कर, सुन्दरी ! मुझे पाकर तू कैसे भूषणादि रहित रह सकती है । तेरा यह सम्प्राप्त सुन्दर यौवन बीत रहा है, याद रख, जो बीत जाता है वह फिर नहीं आता, जैसे कि जल-प्रवाहों का वहा हुआ जल फिर लौट कर नही आता, इस-

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता स विश्वकृत्।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्ति शुभदर्शने ॥१३॥
त्वां समासाद्य वैदेहि रूपयौवनशालिनीम्।
कः पुनर्नातिवर्तेत साक्षादपि पितामहः ॥१४॥
यद्यत्पश्यमि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्मम निबद्ध्यते ॥१५॥
भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्रमहिषी भव ॥१६॥
लोकेभ्यो यानि रत्नानि सम्प्रमथ्याहृतानि मे।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥१७॥
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम्।

लिए भोग भोग ले।"

"शुभदर्शने! मैं समझता हूं रूपकर्ता सृष्टिकर्ता प्रभु तुझे बना कर रह गया है, क्योंकि तेरे से भिन्न दूसरी कोई रूप की उपमा नहीं है। वैदेही! रूप-यौवन-शालिनी तुझ को पाकर कौन कामातिसक्त न होगा, भले ही वह साक्षात् आदि सृष्टि-कर्ता ब्रह्मा ही क्यों न हो। चन्द्रमुखी! पृथुजघने! मैं तेरे जिस २ अङ्ग को देखता हूं, उस २ पर मेरी आंख गड़ जाती है। इसलिए, मैथिली! तू मेरी भार्या बन जा, राम के प्रति इस मोह को छोड़ दे, और मेरी बहुत सी उत्तम स्त्रियों में मेरी पटरानी बन।"

"भीरु! मैंने लोकों से बलात् जो रत्न छीने हैं, वे सब, और संपूर्ण राज्य तुझे प्रदान करता हूं। ऐ विलासिनी! फिर मैं तेरे कारण नाना नगरों वाली संपूर्ण पृथिवी को जीतकर तेरे

जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनि ॥१८॥
नेह पश्यामि लोकेऽन्यं यो मे प्रतिबलो भवेत् ।
पश्य मे सुमहद्वीर्यम् अप्रतिद्वन्द्वमाहवे ॥१९॥
असकृत्संयुगे भग्ना मया विमृदितध्वजाः ।
अशक्ताः प्रत्यनीकेषु स्थातुं मम सुरासुराः ॥२०॥
इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्म तवोत्तमम् ।
सुप्रभाण्यवसज्जन्तां तवाङ्गे भूषणानि हि ॥२१॥
साधु पश्यामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मणा ।
प्रतिकर्माभिसंयुक्ता दाक्षिण्येन वरानने ॥२२॥
भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥२३॥
ललस्व मयि विस्रब्धा धृष्टमाज्ञापयस्व च ।

पिता जनक को दे दूंगा । मैं इस दुनिया में ऐसे किसी आदमी को नहीं देखता जो मेरा मुकाबला कर सके, तू युद्ध में मेरे अनुपम महाबल को देख। मेरे समक्ष कोई सुर-असुर युद्धों में ठहर नहीं सकते, मैंने उन्हें बार २ युद्ध में पीटा है और उनके झण्डे तोड़ गिराए हैं। तू मुझे चाह ले, जिससे आज ही तेरा उत्तम अलंकार किया जावे, और तेरे शरीर पर अत्यन्त चमकीले आभूषण चढ़ाए जावें।"

"वरानने ! अलंकरण से सजाये हुए तेरे रूप को मैं देखूंगा। भीरु ! तू चतुरता पूर्वक सज-धज कर यथेच्छ खा-पी और रमण कर, और यथेच्छ भूमियों तथा धनों का दान कर। तू मेरी विश्वस्त प्रिया बनकर मेरे में लाड कर, और रौब जमाती हुई मुझ पर आज्ञा चला, और फिर लाड-प्यार करती हुई के

मत्प्रसादाल्ललन्त्याश्च ललतां बान्धवस्तव ॥२४॥
ऋद्धिं ममानुपश्य त्वं श्रियं भद्रे यशस्विनि।
किं करिष्यसि रामेण सुभगे चीरवासिना ॥२५॥
निक्षिप्तविजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा ॥२६॥
नहि वैदेहि रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते।
पुरोबलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥२७॥
न चापि मम हस्तात्त्वां प्राप्तुमर्हति राघवः।
हिरण्यकशिपुः कीर्तिम् इन्द्रहस्तगतामिव ॥२८॥
चारुस्मिते चारुदति चारुनेत्रे विलासिनि।
मनो हरसि मे भीरु सुपर्णः पन्नगं यथा ॥२९॥

तेरे संबन्धी भी मेरे प्रसाद से लालित होंगे।"

"भद्रे! यशस्विनी! तू मेरी ऋद्धि और लक्ष्मी को देख। सुभगे! तू चीर वस्त्रधारी राम से क्या करेगी? राम की विजय परे फैंकी जा चुकी, लक्ष्मी जाती रही, वन में ठोकरें खाता फिरता है, वनस्थ बन कर भूमि पर सो रहा है, और फिर मुझे शक है कि वह जीता भी है या नहीं। वैदेही! राम तो तुझे देख तक भी नहीं सकता, जैसे कि बगुलों की काली घटा से छिपी चन्द्रमा की चांदनी नहीं देखी जा सकती। और फिर, राम मेरे हाथों में से तुझे नहीं ले सकता, जैसे कि हिरण्यकशिपु इन्द्र के हाथ में गयी कीर्ति को (यश को) नहीं पा सका।"

"सुन्दर हंसी वाली, सुन्दर दांतों वाली, सुन्दर नेत्रों वाली विलासिनी भीरु! तू मेरे मन को उसी प्रकार दबोच रही है जैसे कि गरुड़ सांप को दबोच लेता है। तेरा शरीर सुन्दर है, परन्तु

क्लिष्टकौशेयवसनां तन्वीमप्यनलंकृताम् ।
त्वां दृष्ट्वा स्वेषु दारेषु रतिं नोपलभाम्यहम् ॥३०॥
अन्तःपुरनिवासिन्यः स्त्रियः सर्वगुणान्विताः ।
यावत्यो मम सर्वासामैश्वर्यं कुरु जानकि ॥३१॥
मम ह्यसितकेशान्ते त्रैलोक्यप्रवरस्त्रियः ।
तास्त्वां परिचरिष्यन्ति श्रियमप्सरसो यथा ॥३२॥
यानि वैश्रवणे सुष्ठु रत्नानि च धनानि च ।
तानि लोकांश्च सुश्रोणि मया भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥३३॥
न रामस्तपसा देवि न बलेन न विक्रमैः ।
न धनेन मया तुल्यस्तेजसा यशसापि वा ॥३४॥

मलिन रेशमी वस्त्र पहिन रखा है और आभूषण कोई नहीं। तुझे देख कर मन्दोदरी आदि अपनी प्यारी स्त्रियों में मेरा मन नहीं लग रहा। जानकी! सर्वगुणसम्पन्न अन्तःपुर-निवासिनी मेरी जितनी भी स्त्रियां हैं, उन सब पर तू हुकूमत चला। काले केशों वाली! त्रिलोकी भर की मेरी जो उत्तम स्त्रियां हैं, वे सब तेरी सेवा करेंगी, जैसे कि देवजनों की अप्सरायें (स्त्रियें) लक्ष्मी रूप परमात्मा की भक्ति किया करती हैं। ऐ सुन्दर कटि वाली! जो उत्तमोत्तम रत्न और धन कुबेर के पास हैं, उन सब का, और लोक-लोकान्तरों का भोग मेरे से यथासुख भोग। देवि! राम न तप से, न बल से, न विक्रमों से, न धन से, न तेज से और न यश से भी मेरे बराबर है।"

सीता की रावण को फटकार

उस भयानक राक्षस के वचन को सुनकर सीता ने बीच में तिनका रखा और पवित्र हसी हंसकर उत्तर दिया—

सर्ग १२

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥१॥
निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ।
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ॥२॥
अकार्यं न मया कार्यम् एकपत्न्या विगर्हितम् ।
कुलं सम्प्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ॥३॥
एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं तं यशस्विनी ।
रावणं पृष्ठतः कृत्वा भूयो वचनमब्रवीत् ॥४॥
नाहमौपयिकी भार्या परभार्या सती तव ।
साधु धर्ममवेक्षस्व साधु साधु व्रतं चर ॥५॥
यथा तव तथाऽन्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषु दारेषु रम्यताम् ॥६॥

"मेरे से मन हटा, और अपनी स्त्री में मन को खुश कर। मेरे से प्रार्थना करने के तू योग्य नहीं, जैसे कि पापी ब्रह्म-प्राप्ति रूपी सिद्धि को नहीं पा सकता। एक तो मैं पतिव्रता, दूसरे पुण्य पतिकुल को मैंने प्राप्त किया, और तीसरे उच्च कुल में मेरा जन्म, सो मैं निन्दित तथा अकार्य काम को कैसे कर सकती हूं?"

यशस्विनी वैदेही ने रावण को इस प्रकार कह कर उसकी ओर पीठ फेर ली और फिर आगे कहने लगी—

"एक तो मैं दूसरे की पत्नी, और फिर सती, सो मैं तेरी भार्या होने लायक नहीं हूं। तू साधु धर्म की ओर दृष्टि रख और साधुतया साधुव्रत का आचरण कर। निशाचर ! जैसे अपनी की, वैसे दूसरों की स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिये। सो, अपने

अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम्।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम्॥७॥
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारवर्जिता॥८॥
वचो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे॥९॥
अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम्।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च॥१०॥
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघसंकुला।
अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति॥११॥
स्वकृतैर्हन्यमानस्य रावणादीर्घदर्शिनः।

को दूसरे के स्थान पर रखकर अपनी ही स्त्री में रमण कर। जो चपल मनुष्य चंचलेन्द्रिय बनकर अपनी स्त्री में प्रसन्न नहीं रहता, उस धिक्कारयुक्त बुद्धि वाले को पराई स्त्रियां तिरस्कृत किया करती हैं।"

"क्या यहां लका में सन्त लोग नहीं रहते? यदि रहते हैं, तो क्या तू उन सन्तों के पीछे नहीं चलता, जिससे तेरी बुद्धि आचारभ्रष्ट उलटी हो रही है? अथवा, क्या तू अपने को झूटे प्रणय में फंसा कर दीर्घदर्शी विद्वानों द्वारा कथित हितकारी वचन को, राक्षसों के विनाश के लिए, नहीं मान रहा? याद रख, अनीति में रत अजितेन्द्रिय राजा को पाकर समृद्ध राष्ट्र तथा नगर विनष्ट हो जाया करते हैं, सो तुझे पाकर रत्न-समूहों से भरपूर यह लंका तेरे एक के अपराध से शीघ्र विनष्ट हो जावेगी। रावण! याद रख, अपने किये कर्मों से मारे जा रहे अदूरदर्शी पापी के विनाश पर सब मनुष्य खुशी मनाया करते हैं, सो उसी

अभिनन्दति भूतानि विनाशे पापकर्मणः ॥१२॥

एवं त्वां पापकर्माणं वक्ष्यन्ति निकृता जनाः ।
दिष्ट्यैतद् व्यसनं प्राप्तो रौद्र इत्येव हर्षिताः ॥१३॥

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥१४॥

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित् ॥१५॥

अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः ।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ॥१६॥

साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ।
वने वासितया सार्धं करेण्वेव गजाधिपम् ॥१७॥

मित्रमौपयिकं कर्तुं रामः स्थानं परीप्सता ।

प्रकार तुझ पापी के विषय में ओछे मनुष्य तक खुश होकर यह कहेंगे कि चण्डाल ने ठीक ही यह दण्ड पाया।"

"रावण ! तू मुझे ऐश्वर्य से व धन से लुभा नहीं सकता, मैं तो राम के साथ अनन्यभूत हूं, जैसे कि सूर्य से रोशनी पृथक् नहीं हुआ करती। लोकनाथ राम की सत्कारयुक्त बांह को पकड़ कर मैं कैसे किसी दूसरे की बांह को पकड़ूंगी ? मैं उन्हीं व्रत-स्नातक राजा राम की उपयुक्त पत्नी हूं, जैसे कि ब्रह्मविद्या विदितात्मा ब्राह्मण के ही पास जाया करती है। रावण ! तेरे लिए भला इसी में है कि तू मुझ दुखिया को राम से मिला दे, जैसे कि एकान्त वन में रोकी हुई हथिनी के साथ उसके पति हाथी को मिला दिया जाता है। रावण ! यदि तू लंका की रक्षा करना

बन्धं चानिच्छता घोरं त्वयाऽसौ पुरुषर्षभः ॥१८॥
विदितः सर्वधर्मज्ञः शरणागतवत्सलः ।
तेन मैत्री भवतु ते यदि जीवितुमिच्छसि ॥१९॥
प्रसादयस्व त्वं चैनं शरणागतवत्सलम् ।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्यातयितुमर्हसि ॥२०॥
एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय रघूत्तमे ।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम् ॥२१॥
वर्जयेद् वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् ।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥२२॥
रामस्य धनुषः शब्द श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥२३॥

चाहता है, और यदि तू अपनी घोर कैद नहीं चाहता, तो तेरे लिए उपयुक्त यही है कि तू उस पुरुषश्रेष्ठ राम को अपना मित्र बना। यह सर्वत्र विदित है कि राम सब धर्मों को जानने वाले हैं, और शरण में आए के प्रेमी हैं, इसलिए यदि तू जीवित रहना चाहता है, तो उनसे मैत्री कर। उन शरणागत-वत्सल को तू प्रसन्न कर, और सीधा होकर मुझे उनके समर्पित कर। एवं, रघुकुल-श्रेष्ठ के समीप मुझे पहूंचाकर तेरा कल्याण होगा। और, यदि तू इसके विपरीत करेगा तो घोर आपत्ति को पाएगा।"

"फैंका हुआ इन्द्र का वज्र चाहे तुझे छोड़ दे, चिरकाल तक मौत भी भले ही तुझे छोड़ दे, परन्तु लोकनाथ राम क्रुद्ध होने पर तेरे जैसे नीच को नहीं छोड़ेंगे। तू शीघ्र ही इन्द्र द्वारा छोड़े गए वज्र के महाशब्द के समान राम के धनुष के शब्द को महाशब्द के रूप में सुनेगा। यहां राम-लक्ष्मण द्वारा लक्ष्य बांध

इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः ॥२४॥
रक्षांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न संशयः।
असम्पातं करिष्यन्ति पतन्तः कङ्कवाससः ॥२५॥
राक्षसेन्द्र महासर्पान् स रामगरुडो महान्।
उद्धरिष्यति वेगेन वैनतेय इवोरगान् ॥२६॥
अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिन्दमः।
असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥२७॥
जनस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां बले।
अशक्तेन त्वया रक्षः कृतमेतदसाधु वै ॥२८॥

कर शीघ्र छोड़े गए मजबूत पोरों वाले बाण इस प्रकार गिरेंगे जैसे कि अग्निमुख भीषण विषधर सांप गिरते हों। रावण! इसमें तनिक भी सन्देह मत कर कि जब कङ्क पक्षी के पंख को धारे हुए बाण इस नगरी में गिरेंगे, तो वे राक्षसों का बध करते हुए तनिक देर के लिए भी रुकेंगे नहीं। राक्षसेन्द्र! राम रूपी महान् गरुड़ राक्षस रूपी महासर्पों को वेगपूर्वक नष्ट कर देंगे जैसे कि वैनतेय जाति का महाभयंकर गरुड़ सांपों को नष्ट कर देता है। और फिर, मेरे अरिदमन पति तेरे से मुझको शीघ्र उसी प्रकार छुड़ा ले जावेंगे, जैसे कि विष्णु राजा ने जल-स्थल-नभ तीनों जगह पराक्रम दर्शा कर असुरों से उज्ज्वल लक्ष्मी को वापिस ले लिया था।"

"ऐ अधम राक्षस! महाबधस्थान जनस्थान में राक्षसों की सेना के मारे जाने पर अपने को अशक्त देखकर तूने यह बुरा काम किया था कि जो तू उन नरसिंह राम-लक्ष्मण के उस

आश्रमं तत्तयोः शून्यं प्रविश्य नरसिंहयोः ।
गोचरं गतयोर्भ्रात्रोरपनीता त्वयाऽधम ॥२६॥
नहि गन्धमुपाघ्राय रामलक्ष्मणयोस्त्वया ।
शक्यं सन्दर्शने स्थातुं शुना शार्दूलयोरिव ॥३०॥
तस्य ते विग्रहे ताभ्यां युगग्रहणमस्थिरम् ।
वृत्रस्येवेन्द्रबाहुभ्यां बाहोरेकस्य विग्रहे ॥३१॥
क्षिप्रं तव स नाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्यः प्राणानादास्यते शरैः ॥३२॥

सर्ग १३

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥१॥

शून्य आश्रम में प्रवेश करके, जबकि वे दोनों भाई आश्रम से बाहर गए हुए थे, मुझे चुरा लाया। परन्तु तू याद रख, राम-लक्ष्मण की गन्ध पाकर उनके समक्ष नहीं ठहर सकता, जैसे कि कुत्ता शार्दूलों के सामने नहीं टिक सकता। ऐसी हालत में उन राम-लक्ष्मण के साथ तेरा जब युद्ध छिड़ेगा तो तुझे जोड़ी यानि सहायक का मिल सकना अनिश्चित है, जैसे कि वृत्र और इन्द्र में युद्ध छिड़ने पर वृत्र की भुजा यानि साथी दूसरा कोई नहीं हुआ, जब कि इन्द्र का सहायक दूसरा था। सो, ऐ रावण! मेरे पति वे राम; लक्ष्मण के साथ मिल कर शीघ्र तेरे प्राणों को बाणों द्वारा ले लेंगे जैसे कि सूर्य स्वल्प जल को शीघ्र ही सोख लेता है।"

सीता को फटकार देकर रावणका लौट जाना

राक्षसेश्वर ने प्रियदर्शन सीता के इस प्रकार के कठोर

यथा यथा सान्त्वयिता वश्यः स्त्रीणां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥२॥
सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥३॥
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबद्ध्यते ।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥४॥
एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥५॥
परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥६॥
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।

वचन सुनकर उसे धमकीपूर्ण प्रत्युत्तर दिया—

"पुरुष जैसे-जैसे स्त्रियों को प्रेमभाव से समझाता है वैसे २ उनके वश में होता जाता है, उसी प्रकार जैसे २ मैंने तुम्हें प्रेम-पूर्वक कहा वैसे २ तुमने मेरा निरादर किया। जिस प्रकार कुशल सारथि मार्ग में पड़कर दौड़ते हुए घोड़ों को रोके रखता है, उसी प्रकार तेरे निमित्त उठे काम ने मेरे क्रोध को रोक रखा है। मनुष्यों का प्रबृद्ध काम जिसमें अटक जाता है, उस जन के प्रति दया व स्नेह अवश्य पैदा हो जाते हैं। वरानने! इस कारण से मैं तेरा घात नहीं कर रहा, यद्यपि तू बध के योग्य, तिरस्कार के योग्य और झूठे वनवास में रत है। मैथिली! तू मेरे लिए जो जो कठोर बातें कह रही है, उन-उन पर तू कठोर वध की अधिकारिणी है।"

राक्षसाधिप रावण ने सीता को इस प्रकार कठोर वचन

क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥७॥
द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥८॥
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदा च्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥९॥
तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम् ।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥१०॥
ओष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वक्त्रैस्तथाऽपराः ।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥११॥
ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम् ।

कह कर क्रोध के आवेग में भर कर पुनः आगे कहना प्रारम्भ किया—

"वरवर्णिनि ! मैंने तेरे लिए जो अवधि बांधी थी, उसके अनुसार मुझे दो मास और ठहरना है, इस अरसे में तू मेरी पत्नी बन जा। इन दो मासों के बाद यदि तू मुझे अपना पति नहीं चाहेगी, तो तुझे मेरे पाचक मेरे प्रातराश के लिए टुकड़े २ कर देंगे।"

इस प्रकार जब राक्षसेन्द्र ने जानकी को धमकाया तो इसे देखकर रावण के साथ आयी वे देव-गन्धर्व कन्यायें (इन्हें भी रावण ने हर रखा था) कातर-नयन हो दुःखी हुईं। तब राक्षस से धमकायी हुई सीता को कुछ ने होठों के इशारों से, दूसरियों ने आंखों के इशारों से, और कईयों ने मुंह के इशारों से सान्त्वना प्रदान की (कि घबरायो मत, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता)। तब उनसे सान्त्वना-प्राप्त सीता ने सदाचार (पातिव्रत)

उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्यगर्वितम् ॥१२॥
नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥१३॥
मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥१४॥
राक्षसाधम रामस्य भार्याममिततेजसः ।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्ष्यसे ॥१५॥
यथा दृप्तश्च मातङ्गः शशश्च सहितो वने ।
तथा द्विरदवद्रामस्त्वं नीच शशवत्स्मृतः ॥१६॥
स त्वमिक्ष्वाकुनाथं वै क्षिपन्निह न लज्जसे ।
चक्षुषो विषये तस्य न यावदुपगच्छसि ॥१७॥

तथा पति-शौर्य के गर्व से युक्त बात राक्षसाधिप रावण को उसके अपने हित के लिए इस प्रकार कही—

"पता लगता है इस नगर में तेरे कल्याण में स्थित कोई मनुष्य नहीं, जोकि तुझे इस निन्दित कर्म से नहीं हटाता। इसीलिए तो सिवाय तेरे, इन्द्र की पत्नी शची के समान धर्मात्मा राम की पत्नी मुझ को तीनों लोकों में और कौन मन से भी चाह सकता है ? राक्षसाधम ! अनुपम तेजस्वी राम की पत्नी को जो तूने पापयुक्त बात कही है, उस पाप का निस्तार तू कहां जाकर पावेगा ? जैसे मदमत्त हाथी और खरगोश दोनों साथ २ वन में रहते हैं वैसे उनमें राम हाथी हैं और नीच ! तू खरगोश है, सो क्या तुझे इक्ष्वाकुराजा की निन्दा करते हुए लज्जा नहीं आती ? यह बात तभी तक है जब तक कि तू उनकी आंखों के सामने नहीं पड़ता।"

इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले।
क्षितौ न पतिते कस्मान् मामनार्य निरीक्षतः ॥१८॥
तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥१९॥
असन्देशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात्।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्हतेजसा ॥२०॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥२१॥
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च।
अपोह्य रामं कस्माद्धि दारचौर्यं त्वया कृतम् ॥२२॥
सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥२३॥

"ऐ अनार्य! मुझे देखते हुए तेरी ये काली-पीली बिगड़ी क्रूर आंखें भूमि पर क्यों नहीं गिर पड़ी? ऐ पापी! धर्मात्मा राम की पत्नी और धर्मात्मा दशरथ की पुत्रवधू मुझको खोटे वचन कहते हुए तेरी जीभ क्यों नहीं कट जाती? रावण! राम का संदेश न पाने, और तप के पालने के कारण मैं भस्म कर देने वाले अपने तेज से तुझे भस्म नहीं कर रही। बुद्धिमान् राम के पास से तो तू मुझे छीन नहीं सकता, इसलिए तू इसमें तनिक भी सन्देह मत कर कि यह सब कार्यवाही तेरे बध के लिए भगवान् ने की है। अरे! तू तो शूर है, कुवेर का भाई है, और सैन्य-संग्रह से भी युक्त है, फिर तूने धोके से राम को दूर हटा कर उनकी पत्नी मुझको क्यों चुराया?"

राक्षसाधिप रावण ने सीता के इस बोल को सुनकर क्रूर

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्तलोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजङ्ग इव निःश्वसन् ॥२४॥
अनयेनाभिसम्पन्नम् अर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥२५॥
इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
सन्ददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥२६॥
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ॥२७॥
प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥२८॥

आंखें फाड़ उसकी ओर देखा, और क्रोध से लाल सुर्ख आखें करके देखता हुआ तथा फुंकारें मारता हुआ सर्प-जैसा बनकर, सीता से बोला—

"अरी अनीतिसंपन्न और राज्य-च्युत राम के पीछे चलने वाली ! मैं तुझे अपने सामर्थ्य से अभी खत्म करता हूं, जैसे कि सूर्य संधिकाल को क्षण भर में खत्म कर देता है ।"

शत्रुयों को रुलाने वाले राजा रावण ने मैथिली को इस प्रकार कह कर तत्काल वहां विद्यमान सब क्रूर राक्षसियों की ओर देखा और उन्हें कहा—"देखो राक्षसियो ! तुम सब एकसाथ मिलकर ऐसा प्रयत्न करो कि जनकपुत्री सीता शीघ्र मेरे वश में हो जावे । तुम इसे प्रतिकूल-अनुकूल व्यवहारों, साम-दान आदि भेदन साधनों, तथा दण्ड-निपातन द्वारा राम की ओर से हटाओ ।"

इस प्रकार बार २ राक्षसियों को आज्ञा देने के वाद काम

इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः।
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रति गर्जत ॥२६॥
प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्निव मेदिनीम्।
ज्वलद्भास्करसङ्काशं प्रविवेश निवेशनम् ॥३०॥
देवगन्धर्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः।
परिवार्य दशग्रीवं प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥३१॥

सर्ग १४

निष्क्रान्ते राक्षसेन्द्रे तु पुनरन्तःपुरं गते।
राक्षस्यो भीमरूपास्ताः सीतां समभिदुद्रुवुः ॥१॥
ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रवन् ॥२॥
पौलस्त्यस्य वरिष्ठस्य रावणस्य महात्मनः।
दशग्रीवस्य भार्यात्वं सीते न बहु मन्यसे ॥३॥

क्रोध में भर कर रावण सीता के प्रति फिर गरजा, और भूमि को कंपाता हुआ वापिस चल पड़ा, और सूर्य के समान चमकते हुये अपने महल में जा पहुँचा। और इसी प्रकार जो देव-गन्धर्व कन्यायें और नाग कन्यायें रावण के साथ आई थी, वे भी उस के साथ ही उस राजमहल में पहुँच गईं।

राक्षसियों द्वारा सीता को समझाना

राक्षसेन्द्र के चले जाने और फिर अन्तःपुर में पहुंच जाने पर वे राक्षसियां भयङ्कर रूप बना कर सीता की ओर दौड़ीं। और उसके समीप पहुंच कर क्रोध में भरी राक्षसियों ने अत्यन्त कठोर शब्दों में सीता को कहा—"सीता! दशों दिशाओं को निगलने वाले पुलस्त्य-कुलोत्पन्न श्रेष्ठ महाबली रावण की भार्या

ततस्त्वेकजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
आमन्त्र्य क्रोधताम्राक्षी सीतां करतलोदरीम् ॥४॥
प्रजापतीनां षण्णां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुलस्त्य इति विश्रुतः ॥५॥
पुलस्त्यस्य तु तेजस्वी महर्षिर्मानसः सुतः ।
नाम्ना स विश्रवा नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥६॥
तस्य पुत्रो विशालाक्षि रावणः शत्रुरावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥७॥
मयोक्तं चारुसर्वाङ्गि वाक्यं किं नानुमन्यसे ॥८॥
ततो हरिजटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
विवृत्य नयने कोपान् मार्जारसदृशेक्षणा ॥९॥

बनने को तू बड़ा काम क्यों नहीं मानती ?"

इसके बाद कर-तल के समान सिकुड़े पेट वाली तथा क्रोध से लाल नेत्रों वाली एकजटा नाम की राक्षसी ने सीता को सम्बोधन करके कहा—"पूर्वकाल में वंशकर्ता ब्रह्मा के पुत्र छै भाई प्रजापालक राजा हुए हैं। उनमें यह चौथा भाई मनस्वी राजा, पुलस्त्य नाम से प्रसिद्ध हुआ है। उस पुलस्त्य का पुत्र तेजस्वी महर्षि मनस्वी 'विश्रवा हुआ, जोकि प्रताप में पिता के समान था। विशालाक्षी ! उस विश्रवा का पुत्र शत्रुओं को रुलाने वाला रावण है। तू उस राक्षसेन्द्र की भार्या बनने योग्य है। सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गों वाली ! क्या तू मेरी इस कही बात को नहीं मानेगी ?"

इसके बाद बिल्लों-जैसी नेत्रों वाली हरिजटा नाम की राक्षसी ने क्रोध से आंखें फाड़ कर कहा—"जिसने तैंतीसों देवता

येन देवास्त्रयस्त्रिंशद्देवराजश्च निर्जितः।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥१०॥
वीर्योत्सिक्तस्य शूरस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः।
बलिनो वीर्ययुक्तस्य भार्यात्वं किं न लिप्ससे ॥११॥
प्रियां बहुमतां भार्यां त्यक्त्वा राजा महाबलः।
सर्वासां च महाभागां त्वामुपैष्यति रावणः ॥१२॥
समृद्धं स्त्रीसहस्रेण नानारत्नोपशोभितम्।
अन्तःपुरं तदुत्सृज्य त्वामुपैष्यति रावणः ॥१३॥
अन्या तु विकटा नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत्।
असकृद् भीमवीर्येण नागा गन्धर्वदानवाः।
निर्जिताः समरे येन स ते पार्श्वमुपागतः ॥१४॥
तस्य सर्वसमृद्धस्य रावणस्य महात्मनः।

वश में कर रखे हैं, और तिब्बत के राजा इन्द्र को भी जीता है, उस राक्षसेन्द्र की तू भार्या बनने योग्य है। तू उस महापराक्रमी, शूर, संग्रामों में मुंह न मोड़ने वाले, बलवान् और वीर्यशाली रावण के भार्या-पद को क्यों नहीं पाना चाहती? अरी! यह तो देख कि महाबली रावण राजा सब स्त्रियों में महाभाग्य-शालिनी तथा बहुत मानी हुई प्रिया पत्नी मन्दोदरी को त्याग करके तुझे पाना चाह रहा है। अरी! रावण अनेकों स्त्रियों से भरपूर और नाना रत्नों से सुभूषित उस अपने अन्तःपुर को छोड़कर तेरे पास आना चाह रहा है।"

इसके बाद विकटा नाम की दूसरी राक्षसी बोली—"अरी! जिसने अनेक बार उग्र पराक्रम के द्वारा युद्ध में नागों, गन्धर्वों, दानवों को जीता है, वह तेरे पास आया है। अभागी! तू उस

किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्वं नेच्छसेऽधमे ।।१५।।

ततस्तां दुर्मुखी नाम राक्षसी वाक्यमब्रवीत् ।
यस्य सूर्यो न तपति भीतो यस्य स मारुतः ।
न वाति स्मायतापाङ्गि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे ।।१६।।

पुष्पवृष्टिं च तरवो मुमुचुर्यस्य वै भयात् ।
शैलाः सुस्रुवुः पानीयं जलदाश्च यदेच्छति ।।१७।।

तस्य नैर्ऋतराजस्य राजराजस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुरुषे बुद्धिं भार्यार्थे रावणस्य हि ।।१८।।

साधु ते तत्त्वतो देवि कथितं साधु भामिनि ।
गृहाण सुस्मिते वाक्यम् अन्यथा न भविष्यति ।।१९।।

सर्वसमृद्ध महाबली राक्षसराज रावण की भार्या बनने को क्यों नहीं चाह रही ?"

इसके बाद दुर्मुखी नाम की राक्षसी बोली—"जिसके भय से न सूर्य तपता है, और न तेज हवा ही चलती है, ऐ विशालाक्षी ! तू उसके पास क्यों नहीं ठहरती ? (लंका में न तेज गरमी होती है और न तेज हवा चलती है)। जिसके भय से वृक्ष पुष्पवृष्टि करते रहते हैं, पर्वत पीने का जल बहाते रहते हैं, और जब २ रावण चाहता है तब २ मेघ वर्षा करते रहते हैं, भामिनि ! तू उस राजाधिराज राक्षसराज रावण की भार्या बनने के लिये बुद्धि क्यों नहीं बनाती ? देवि ! तुझे यथार्थरूप से अच्छी बात बतला दी, भामिनि ! यह बिलकुल अच्छी बात है, मन्द मुस्कान वाली ! तू इस बात को ग्रहण कर, अन्यथा अब तू जी नहीं सकती।"

सर्ग १५

ततः सीतां समस्तास्ता राक्षस्यो विकृताननाः ।
परुषं परुषानर्हामूचुस्तद् वाक्यमप्रियम् ॥१॥
किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमे ।
महार्हशयनोपेते न वासमनुमन्यसे ॥२॥
मानुषे मानुषस्यैव भार्यात्वं बहु मन्यसे ।
प्रत्याहर मनो रामान्नैवं जातु भविष्यति ॥३॥
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसङ्गम्य विहरस्व यथासुखम् ॥४॥
मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तमनिन्दिते ॥५॥

राक्षसियों का सीता को धमकाना

इसके बाद डरावनी सूरत बना कर एकसाथ उन सब राक्षसियों ने कठोरता के अयोग्य सीता को कठोरता पूर्वक यह अप्रिय बात कही—

"सीता ! क्या तू सब तरह से मनोरम तथा अत्यन्त कीमती पलंग-बिछौनों से युक्त अन्तःपुर में निवास पसन्द नहीं करती ? तू मनस्विनी मनस्वी की ही भार्या बनना ज्यादा मानती है, परन्तु अब राम से मन को हटा, अन्यथा ऐसे जीवित न रहेगी। तू त्रिलोकी के ऐश्वर्य का भोग करने वाले राक्षसराज रावण पति को पाकर यथेच्छ सुखपूर्वक विचरण कर। अयि सुन्दरी ! तू मनस्विनी मनस्वी राम को चाह रही है, पर अनिन्दिते ! वह तो राज्य से निकाला हुआ है, असफल-जीवन है, और नपुंसक है।"

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा।
नेत्राभ्याम् अश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥
यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत सङ्गताः।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्बिषं प्रतितिष्ठति ॥७॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥८॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः।
तं नित्यमनुरक्ताऽस्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥६॥
यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथाऽगस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा।

कमलनयना सीता ने राक्षसियों के इस वचन को सुनकर आंसुभरे नेत्रों के साथ कहा—"जो तुम सब मिलकर मुझे यह लोकनिन्दित बात कह रही हो, यह पापयुक्त बात मेरे मन में नहीं बैठती। मैं राक्षस की भार्या कदापि न बनूंगी, चाहे तुम सब मुझे खा डालो, तुम्हारी बात पूरी न करूंगी। चाहे वे दीन हैं, चाहे राज्य से हीन है, जो मेरे पति हैं वे मेरे गुरु हैं, मैं सदैव उन्हीं की अनुरागिनी हूं जैसे कि सुवर्चला सूर्य पति की अनुरागिनि थी। जैसे महाभागा शची शक्र की सेवा करती थी, तथा जैसे अरुन्धती वसिष्ठ की, रोहिणी शशि की, लोपामुद्रा अगस्त्य की, सुकन्या च्यवन की, सावित्री सत्यवान् की, श्रीमती कपिल की, मदयन्ती सौदास की, केशिनी सगर की, और भीम

नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥१२॥
तथाऽहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ॥१३॥
सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावणचोदिताः ॥१४॥
अवलीनः स निर्वाक्यो हनुमान् शिंशपाद्रुमे ।
सीतां सन्तर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ॥१५॥
तामभिक्रम्य संरब्धा वेपमानां समन्ततः ।
भृशं संलिलिहुर्दीप्तान् प्रलम्बान्दशनच्छदान् ॥१६॥
ऊचुश्च परमक्रुद्धाः प्रगृह्याशु परश्वधान् ।
नेयमर्हति भर्तारं रावणं राक्षसाधिपम् ॥१७॥
सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वराङ्गना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥१८॥

की कन्या दमयन्ती नैषध पति की अनुव्रता थी, वैसे मैं इक्ष्वाकुल-श्रेष्ठ राम की अनुव्रता हूं।"

सीता के वचन को सुनकर क्रोधभरी राक्षसियां रावण के आदेशानुसार कठोर शब्दों से उसे झिड़कने लगी। हनुमान् कपि ने शिंशपा वृक्ष पर चुपचाप छिपे हुए सीता को डराती-धमकाती हुई उन राक्षसियों की ये सब बातें सुनी। इतने में गुस्से में भरी राक्षसियां चारों ओर से उठकर सीता पर झपटी और उसके चमकीले लम्बे होंठों को नोच लिया, तथा और अधिक गुस्से में भर कर हाथों में फरसे ले बोली—"अरी! राक्षसराज रावण इसके पति बनें? इसके तो यह योग्य ही नहीं।"

तब वह वराङ्गना सीता इस प्रकार डरावनी राक्षसियों से सताई जाने पर आंसुओं को पौंछती हुई अलग से उस शिंशपा

ततस्तां शिंशपां सीता राक्षसीभिः समावृता ।
अभिगम्य विशालाक्षी तस्थौ शोकपरिप्लुता ॥१९॥
तां कृशां दीनवदनां मलिनाम्बरवासिनीम् ।
भर्त्सयाचक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समन्ततः ॥२०॥

सर्ग १६

सीतां ताभिरनार्याभिर्दृष्ट्वा सन्तर्जितां तदा ।
राक्षसी त्रिजटा वृद्धा प्रबुद्धा वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः ।
राक्षसानामभावाय भर्तुरस्या भवाय च ॥२॥
एवमुक्तास्त्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्छिताः ।
सर्वा एवाब्रुवन्भीतास्त्रिजटां तामिदं वचः ।

वृक्ष की ओर आयी, पर वहां भी उसे राक्षसियों ने आ घेरा । तब वह विशालाक्षी शोकसागर में डूब कर उस शिंशपा वृक्ष के समीप पहुंच उसको पकड़ खड़ी हो गयी । तब वहां भी कृशा, उतरे चेहरे, तथा मलिन वस्त्र धारे हुई सीता को उन भयंकर राक्षसियों ने घेर कर धमकाना शुरु किया ।

राक्षसियों को त्रिजटा का दुःस्वप्न सुनाना

वे क्रूर राक्षसियां सीता को इस प्रकार धमका रही हैं, यह देख कर बूढ़ी त्रिजटा राक्षसी सोते से उठी और उनसे बोली—"अरी ! मैंने आज बड़ा भयानक तथा रोमांचकारी स्वप्न देखा है, जोकि राक्षसों के विनाश और सीता के पति की वृद्धि का द्योतक है ।"

क्रोधासक्त राक्षसियों को त्रिजटा ने जब इस प्रकार कहा तो वे सब की सब डर गयी और त्रिजटा से पूछने लगीं "जो

कथयस्व त्वया दृष्टः स्वप्नोऽयं कीदृशो निशि ॥३॥
तासां श्रुत्वा तु वचनं राक्षसीनां मुखोद्गतम् ।
उवाच वचनं काले त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् ॥४॥
गजदन्तमयीं दिव्यां शिविकामन्तरिक्षगाम् ।
युक्तां वाजिसहस्रेण स्वयमास्थाय राघवः ।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन समागतः ॥५॥
स्वप्ने चाद्य मया दृष्टा सीता शुक्लाम्बरावृता ।
सागरेण परिक्षिप्तं श्वेतपर्वतमास्थिता ॥६॥
रामेण सङ्गता सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥७॥
राघवश्च पुनर्दृष्टश्चतुर्दन्तं महागजम् ।
आरूढः शैलसङ्काशं चकास सहलक्ष्मणः ॥८॥
ततस्तु सूर्यसङ्काशौ दीप्यमानौ स्वतेजसा ।

तुमने रात में स्वप्न देखा है, बतलायो वह कैसा है ?" राक्षसियों के मुख से निकले प्रश्न को सुनकर त्रिजटा ने उस समय स्वप्न सुनाना प्रारम्भ किया—

"मैंने आज स्वप्न में देखा कि हाथी दांत की बनी आकाशगत सुन्दर शिविका में बैठ कर, जिसमें कि बहुत से घोड़े जुते हुए थे, सफेद मालाओं और वस्त्र को पहिन कर राम लक्ष्मण के साथ आया है। सीता सफेद चादर ओढ़े हुई समुद्र से घिरे श्वेतपर्वत पर बैठी है। सीता राम से मिली और ऐसी जान पड़ी कि प्रभा सूर्य से मिल गयी हो। फिर मैंने देखा कि राम चार दांतों वाले पर्वत-समान महागज पर आरूढ़ हुआ २ लक्ष्मण के साथ शोभायमान हो रहा है। और फिर, अपने ही तेज से सूर्यसमान चमकते हुए वे दोनों सफेद मालायें व वस्त्र

शुक्लमाल्याम्बरधरौ जानकीं पर्युपस्थितौ ॥६॥
ततस्तस्य नगस्याग्रे ह्याकाशस्थस्य दन्तिनः।
भर्त्रा परिगृहीतस्य जानकी स्कन्धमाश्रिता ॥१०॥
भर्तुरङ्कात्समुत्पत्य ततः कमललोचना।
चन्द्रसूर्यौ मया दृष्टौ पाणिभ्यां परिमार्जती ॥११॥
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यामास्थितः स गजोत्तमः।
सीतया च विशालाक्ष्या लङ्काया उपरि स्थितः ॥१२॥
पाण्डुरर्षभयुक्तेन रथेनाष्टयुजा स्वयम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहागतः ॥१३॥
ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह वीर्यवान् ॥१४॥
आरुह्य पुष्पकं दिव्यं विमानं सूर्यसंनिभम्।

पहिने जानकी के पास पहुंचे। वहां पहुँचने पर, उस श्वेत पर्वत की चोटी पर पति से परिगृहीत आकाशस्थ हाथी के कन्धे पर सीता चढ़ गयी, मैंने देखा कि फिर वह कमल-लोचना पति की गोद से निकली और हाथ से सूरज-चांद को साफ करने लगी। तदनन्तर, उन दोनों कुमारों तथा विशालाक्षी सीता से युक्त वह श्रेष्ठ हाथी लंका के ऊपर बैठ गया, और सफेद माला तथा वस्त्र पहिने राम आठ सफेद बैलों से जुते रथ पर सवार हो लक्ष्मण के साथ आया है।

फिर अन्यत्र मैंने देखा कि सत्यपराक्रमी वीर्यवान् पुरुषोत्तम राम भाई लक्ष्मण व सीता के साथ सूर्यसमान चमकने वाले सुन्दर पुष्पक विमान पर चढ़कर उत्तर दिशा को देख उधर चला गया है।

उत्तरां दिशमालोच्य प्रस्थितः पुरुषोत्तमः ।।१५।।
रावणश्च मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ।
रक्तवासाः पिबन्मत्तः करवीरकृतस्रजः ।।१६।।
विमानात्पुष्पकादद्य रावणः पतितः क्षितौ ।
कृष्यमाणः स्त्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णाम्बरः पुनः ।।१७।।
रथेन खरयुक्तेन रक्तमाल्यानुलेपनः ।
पिबंस्तैलं हसन्नृत्यन् भ्रान्तचित्ताकुलेन्द्रियः ।
गर्दभेन ययौ शीघ्रं दक्षिणां दिशमाश्रितः ।।१८।।
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
पतितो विशिरा भूमौ गर्दभाद्भयमोहितः ।।१९।।
सहसोत्थाय सम्भ्रान्तो भयार्तो मदविह्वलः ।

फिर मैंने यह भी देखा कि रावण का सिर मुंडा है, तेल लगा रखा है, लाल कपड़े पहिन रखे हैं, शराब पीता हुआ मदमत्त है, और कनेर फूलों की माला पहिन रखी है। वह पुष्पक विमान पर से नीचे पृथ्वी पर गिर पड़ा है, कोई स्त्री उसे घसीट रही है, मुण्डित है, और फिर देखा कि वह काला वस्त्र पहिने हुआ है।

यह भी देखने में आया कि रावण गधे-जुते रथ पर जा रहा है, जिसने कि लाल माला पहिन रखी है और लाल ही माथे पर अनुलेपन है, एवं तेल पीता हुआ हंसता हुआ और नाचता हुआ पागल बन रहा है। इस हालत में वह गधे पर सवार हो बड़ी जल्दी २ दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है।

फिर मैंने देखा कि राक्षसेश्वर रावण मारे डर के नीचा सिर किए गधे पर से भूमि पर गिर पड़ा है। तदनु किंकर्तव्य विमूढ़, भयपीड़ित, नशे से व्याकुल, पागल और एकदम नंगा वह

उन्मत्तरूपो दिग्वासा दुर्वाक्यं प्रलपन्बहु ॥२०॥
दुर्गन्धं दुःसहं घोरं तिमिरं नरकोपमम् ।
मलपङ्कं प्रविश्याशु मग्नस्तत्र स रावणः ॥२१॥
प्रस्थितो दक्षिणामाशां प्रविष्टोकर्दमं ह्रदम् ॥२२॥
कण्ठे बद्ध्वा दशग्रीवं प्रमदा रक्तवासिनी ।
काली कर्दमलिप्ताङ्गी दिशं याम्यां प्रकर्षति ॥२३॥
एवं तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्णो महाबलः ।
रावणस्य सुताः सर्वे मुण्डास्तैलसमुक्षिताः ॥२४॥
वराहेण दशग्रीवः शिशुमारेण चेन्द्रजित् ।
उष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥२५॥
एकस्तत्र मया दृष्टः श्वेतछत्रो विभीषणः ।
चतुर्भिः सचिवैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ॥२६॥

उठा और अंट संट बहुत कुछ बकता हुआ दुर्गन्ध-परिपूर्ण, असह्य, तथा घोर अन्धकार युक्त नरकतुल्य गंदगी के कीचड़ में प्रवेश करके उसी में डूब गया है। डूबने के बाद वह उसी मलिन झील में पड़ा २ दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है और लाल कपड़े पहनी एक स्त्री, जोकि काली-कलूटी है और उसी गंद से सनी है, उसे गले से बांध कर दक्षिण दिशा की ओर खींचे ले जा रही है।

एवं, मैंने देखा कि महाबली कुम्भकर्ण और रावण के सब पुत्र सिर-मुण्डे तथा तेल में भीगे हुए हैं। रावण सूअर पर, इन्द्रजित् नक्र पर, और कुम्भकर्ण ऊंट पर सवार हो दक्षिण दिशा की ओर गए हैं। वहां मैंने देखा कि सिर्फ एक विभीषण श्वेत छत्र धारे हुआ चार मंत्रियों के साथ विमान पर सवार है।

स्वप्न में यह भी देखने में आया कि शराब पीए हुए, तथा

समाजश्च महान् वृत्तो गीतवादित्रनिःस्वनः ।
पिबतां रक्तमाल्यानां रक्षसां रक्तवाससाम् ॥२७॥
लङ्का चेयं पुरी रम्या सवाजिरथकुञ्जरा ।
सागरे पतिता दृष्टा भग्नगोपुरतोरणा ॥२८॥
पीत्वा तैलं प्रमत्ताश्च प्रहसन्त्यो महास्वनाः ।
लङ्कायां भस्मरुक्षायां सर्वा राक्षसयोषितः ॥२९॥
कुम्भकर्णादयश्चेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ।
रक्तं निवसनं गृह्य प्रविष्टा गोमयह्रदम् ॥३०॥
अपगच्छत पश्यध्वं सीतामाप्नोति राघवः ।
घातयेत्परमामर्षी युष्मान् सार्धं हि राक्षसैः ॥३१॥
प्रियां बहुमतां भार्यां वनवासमनुव्रताम् ।
भर्त्सितां तर्जितां वापि नानुमंस्यति राघवः ॥३२॥

लाल माला एवं लाल कपड़ा पहिने हुए राक्षसों का एक बड़ा एकट्ठ जमा है और वहां गाने-बजाने का शोरगुल चल रहा है। यह भी देखा कि यह रमणीक लंका घोड़ों-रथों-हाथियों सहित समुद्र में गिर पड़ी है, और इसके मुख्य द्वार तथा उस पर बने मेहराव टूट गए हैं। तेल पीकर उन्मत्त हुई हुई सब की सब राक्षस-स्त्रियां तो ऊंचे २ हंसती हुई भस्मीभूत लंका में पड़ी हैं, और ये कुम्भकर्ण आदि सब राक्षसश्रेष्ठ लाल चीथड़े पहिन कर गोबर के ताल में जा पड़े हैं।

बहिनो ! ऐसा दुःस्वप्न मैंने देखा है। इसलिए यहां से भागो। तुम अभी देखोगी कि राम सीता के पास पहुँचता है। अतः कहीं ऐसा न हो कि वह क्रोध में भर कर राक्षसों के साथ तुम सबको भी मार डाले। क्योंकि, वह वनवास में भी अनुव्रता

तदलं क्रूरवाक्यैश्च सान्त्वमेवाभिधीयताम् ।
अभियाचाम वैदेहीमेतद्धि मम रोचते ॥३३॥
यस्या ह्येवंविधः स्वप्नो दुःखितायाः प्रदृश्यते ।
सा दुःखैर्बहुभिर्मुक्ता प्रियं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥३४॥
भर्त्सितामपि याचध्वं राक्षस्यः किं विवक्षया ।
राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम् ॥३५॥
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा ।
अलमेषा परित्रातुं राक्षस्यो महतो भयात् ॥३६॥
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये ।
विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम् ॥३७॥

एवं बहुत मानी हुई प्रिय पत्नी का डराया-धमकाया जाना सहन नहीं करेगा। इसलिए मुझे तो यही ठीक लगता है कि क्रूर वचनों को छोड़ो और सीता को सान्त्वना प्रदान करो। और, फिर उससे हम सब मिलकर क्षमा-याचना करें, क्योंकि जिस दुखिया के बारे में इसप्रकार का स्वप्न देखा जाता है, वह बड़े से बड़े दुःखों से मुक्त होकर श्रेष्ठ पति को पाती है।

राक्षसियो ! और ज्यादा कहने से क्या बनेगा ? बस, उस धमकायी हुई से क्षमा-याचना करो, क्योंकि राक्षसों को राम से घोर भय उपस्थित हो गया है। राक्षसियो ! यदि हमने जनकपुत्री मैथिली को विनम्रता द्वारा प्रसन्न कर लिया, तो यह हमें बध रूपी महाभय से बचा देगी।

और फिर इस विशालाक्षी के शरीर पर मुझे तो कोई भी प्रतिकूल प्रभाव नहीं दीख पड़ रहा, और न इसके अंगों में हवा मात्र भी विरूपता आयी है। मैं समझती हूं इस पर जो यह

छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्।
अदुःखार्हामिमां देवीं वैहायसमुपस्थिताम् ॥३८॥
अर्थसिद्धिं तु वैदेह्याः पश्याम्यहमुपस्थिताम्।
राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥३९॥
निमित्तभूतमेतत्तु श्रोतुमस्या महत्प्रियम्।
दृश्यते च स्फुरच्चक्षुः पद्मपत्रमिवायतम् ॥४०॥
ईषच्च हृषितो वाऽस्या दक्षिणाया ह्यदक्षिणः।
अकस्मादेव वैदेह्या बाहुरेकः प्रकम्पते ॥४१॥
करेणुहस्तप्रतिमः सव्यश्चोरुरनुत्तमः।
वेपन्कथयतीवास्या राघवं पुरतः स्थितम् ॥४२॥
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुर्विजयहर्षिता।
अवोचद् यदि तत्तथ्यं भवेयं शरणं हि वः ॥४३॥

दुःख आया है, वह सूर्य-चन्द्र पर ग्रहण लगने के समान क्षणिक है, वैसे यह देवी सुखों के योग्य है, और विमान तैयार पाने की अधिकारिणी है।

मैं समझती हूं सीता की अर्थसिद्धि उपस्थित ही है, अर्थात् रावण का विनाश और राम की विजय। देखो तो सही, इसकी अत्यन्त प्रिय बात को सुनने के लिए यह शुभ सूचक कमल पत्र जैसा विशाल नेत्र फड़कता दीख पड़ रहा है। यही नहीं, इस चतुर सीता का पुलकित अकेला बांया बाहु भी अकस्मात् धीरे २ फड़क रहा है, और हथिनी की सूंड के समान सुन्दर बांया पट्ट फड़कता हुआ मानो कह रहा कि बस, राम इसके आगे आया ही खड़ा है।"

ये सब बातें सुनकर लज्जाशील सीता पति की विजय से

सर्ग १७

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
सीतायास्त्रिजटायाश्च राक्षसानां च गर्जितम् ॥१॥
अवेक्षमाणस्तां देवीं देवतामिव नन्दने ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥२॥
यां कपीनां सहस्राणि सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥३॥
चारेण तु सुयुक्तेन शत्रोः शक्तिमवेक्षता ।
गूढेन चरता तावदवेक्षितमिदं मया ॥४॥
राक्षसानां विशेषश्च पुरी चेयं निरीक्षिता ।
राक्षसाधिपतेरस्य प्रभावो रावणस्य च ॥५॥

प्रसन्न हुई और बोली—"यदि तुम्हारी यह कही बात सत्य निकली, तो मैं तुम्हारी सबकी रक्षा करूंगी।"

हनुमान का सोचना, सीता से कैसे बात करूं ?

हनुमान् ने भी सीता की, त्रिजटा की, और राक्षसियों की गर्जना, यह सब कुछ निश्चल हो साफ २ सुना। तब वानर उस देवी को नन्दन वन में विद्यमान देवता के समान देखता हुआ बहुविध चिन्ता में पड़ गया। उसने सोचा कि "जिसको अनेकों कपि इकट्ठे होकर और अनेकों पृथक् २ रूप में सब दिशाओं में ढूंड रहे हैं, उसे मैंने पा लिया। मुझे गुप्तचर बना कर इस कार्य में नियुक्त किया गया था, मैं शत्रु की शक्ति को देखता हुआ गुह्य रूप से सर्वत्र विचरा और अन्ततः मैंने यह सब दृश्य देखा। निरीक्षण करते हुए मैंने राक्षसों की विशेषता, यह पुरी, और इस राक्षसराज रावण का प्रभाव देखा।

यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्वदयावतः ।
समाश्वासयितुं भार्यां पतिदर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥६॥
अहमाश्वासयाम्येनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
अदृष्टदुःखां दुःखस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥७॥
यदि ह्यहं सतीमेनां शोकोपहतचेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद् गमनं भवेत् ॥८॥
गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणमपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥९॥
यथा च स महाबाहुः पूर्णचन्द्रनिभाननः ।
समाश्वासयितुं न्याय्यः सीतादर्शनलालसः ॥१०॥
निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षमं चाभिभाषितम् ।

अब जिस प्रकार से भी उस अनुपमगुणी, तथा समस्त प्राणियों के प्रति दयावान् राम की पति-दर्शनाभिलाषिणी पत्नी को सान्त्वना प्रदान की जा सके, वैसे मैं इस पूर्णचन्द्रमुखी को सान्त्वना प्रदान करता हूं। इसने पहले कभी ऐसा दुःख देखा नहीं, और अब भी इस दुःख का पार नहीं पा रही।

यदि मैं इस देवी को, जिसकी चेतना शोक के कारण चली गयी है, विना आश्वासन दिये लौट जाऊंगा, तो मेरा लौटना दोषयुक्त हो जावेगा। पहला तो यह कि मेरे ऐसे ही चले जाने पर यशस्विनी राजपुत्री जानकी रक्षा का कोई उपाय न देखकर जीवन समाप्त कर देगी। और दूसरा, पूर्णचन्द्र समान उज्ज्वल मुख वाले महाबाहु राम को आश्वासन देना भी जरूरी है, क्योंकि वह सीता के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित हैं।

परन्तु राक्षसियों के समक्ष कुछ कहना ठीक नहीं, तो फिर

कथं नु खलु कर्तव्यमिदं कृच्छ्रगतो ह्यहम् ॥११॥
अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्ष्यति जीवितम् ॥१२॥
रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताऽब्रवीद्वचः।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसंभाष्य सुमध्यमाम् ॥१३॥
सीतासन्देशरहितं मामितस्त्वरया गतम्।
निर्दहेदपि काकुत्स्थः क्रोधतीव्रेण चक्षुषा ॥१४॥
यदि वोद्योजयिष्यामि भर्तारं रामकारणात्।
व्यर्थमागमनं तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥१५॥
अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः।
शनैराश्वासयाम्यद्य सन्तापबहुलामिमाम् ॥१६॥

यह कार्य कैसे किया जावे, मैं बड़ी कठिनाई में पड़ गया हूं। यदि मैं इस शेष रात्रि में ही सीता को सान्त्वना प्रदान नहीं करता, तो इसमें कोई शक नहीं कि ये जीवन को समाप्त कर देंगी। और फिर, यदि राम मेरे से पूछेंगे कि सीता ने उनके लिए क्या कहा, तो मैं उत्तम मझौले कद की सीता से बिना बातचीत किए क्या उत्तर दूंगा। यदि मैं सीता से बिना संदेश लिए जल्दी से यहां से लौट जाऊंगा, तो राम क्रोध के कारण तीखी आंखों से मुझे जला भी देंगे। और यदि मैं राम के काम के लिए अपने स्वामी सुग्रीव को यहां आने के लिए तय्यार कर लूंगा, तो उनका सैन्य सहित यहां आना व्यर्थ हो जावगा (क्योंकि सीता तो पहले ही प्राण त्याग कर चुकी होंगी)।

सो, मैं यहां बैठा प्रतीक्षा करता हूं, जब ही राक्षसियों के अवकाश का समय पाऊंगा, तभी दुःख से परिपूर्ण सीता को

अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ॥१७॥
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥१८॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥१९॥
सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासमुपैष्यति ॥२०॥
ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ॥२१॥
सीतया च कृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः।

शनैः २ सान्त्वना प्रदान करूंगा।

एक तो मैं सिकोड़ कर शरीर को छोटा किये हुआ और फिर वानर जाति का हूं, इसलिए मैं अनपढ़े मनुष्यों की संस्कृत भाषा बोलूंगा। यदि सुशिक्षित त्रैवर्णिक की भांति संस्कृत भाषा बोलता हूं तो सीता मुझे (भेष बदले हुआ) रावण समझ कर भयभीत हो जावेगी। इसलिए मुझे अवश्य ही अनपढ़े मनुष्यों की सार्थक बोली बोलनी होगी, इसी से मैं इस निर्दोष सीता को सान्त्वना प्रदान कर सकूंगा, अन्यथा नहीं।

पर इससे भी अभिप्राय सिद्ध होता नहीं दीखता, क्योंकि जानकी मेरे वानर रूप को देख कर और बात को सुनकर कहीं और ज्यादा न डर जावे, क्योंकि वह राक्षसों से पहले ही काफी डरी हुई है। तब वह डरी हुई मनस्विनी विशालाक्षी मुझे बहु-रूपिया रावण समझ कर कहीं चिल्ला न पड़े। यदि ऐसा हो गया

नानाप्रहरणो घोरः समेयादन्तकोपमः ।।२२।।
ततो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ।
वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्नं महाबलाः ।।२३।।
एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
प्राणत्यागश्च वैदेह्या भवेदनभिभाषणे ।।२४।।
भूताश्चार्था विरुद्ध्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
विक्लवं दूतमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ।।२५।।
अर्थानर्थान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
घातयन्ति हि कार्याणि दूताः पण्डितमानिनः ।।२६।।

तो सीता के चिल्ला पड़ने पर एकदम हाथों में नानाविध हथियार लिए हुआ मृत्युसमान विकराल राक्षसी-दल आ पहुँचेगा और फिर वे भयंकर मुख बना कर पूरे बल के साथ मुझे नीचे पटक कर या तो मार डालेंगी या कैद कर लेंगी। इसलिए सीता के साथ मेरे बात करने पर इस महान् अनर्थ के होने की आशंका है। और यदि बात नहीं करता हूं तो वैदेही प्राण त्याग कर देंगीं। इस प्रकार दोनों तरह से आपत्ति ही आपत्ति है।

फिर यह भी तो है कि बिना सोचे-विचारे काम करने वाले दूत को पाकर सिद्धप्राय कार्य भी, देश काल के विपरीत करने पर, नष्ट हो जाते हैं, जैसे कि सूर्योदय पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। कार्य-अकार्य के विषय में मंत्रियों के साथ मिल कर राजा द्वारा स्थिर किया हुआ भी विचार, बिना विचारे काम करने वाले दूत को पाकर शोभायमान नहीं होता, अपितु विपरीत इसके, ऐसे पण्डितम्मन्य दूत उस कार्य को बिगाड़ देते हैं। इसलिए मुझे भली प्रकार सोच विचार कर इस ढंग से काम

न विनश्येत्कथं कार्यं वैक्लवं न कथं मम।
लङ्घनं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥२७॥
कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत च।
इति सञ्चिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान् मतिम् ॥२८॥
राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन्।
नैनामुद्वेजयिष्यामि तद्बन्धुगतचेतनाम् ॥२९॥
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥३०॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम्।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥३१॥

करना चाहिए कि किसी प्रकार से अभीष्ट कार्य विनष्ट न हो, उसमें किसी प्रकार की कमी न आवे, और न किसी प्रकार से समुद्र का तैरना वृथा जावे। सो, मैं कोई ऐसा उपाय बर्तूं, जिससे सीता मेरी बात भी सुनले और डरे भी नहीं।"

ऐसा सोच कर बुद्धिमान् हनुमान् ने निश्चय किया कि मैं प्रियबन्धु पुण्यकर्मा राम का कीर्तन करूंगा, जिससे सीता का मन इधर खिचे कि हैं! यह कौन बन्धु आया है? मधुर वाणी में इक्ष्वाकुकुल-श्रेष्ठ विदितात्मा राम के सब धर्मयुक्त शुभ कामों को सुनाऊंगा, और इस प्रकार जैसे भी सीता पूर्णतया विश्वास कर सकेगी वैसे सब भली प्रकार कहूंगा।

वृक्ष पर बैठे हनुमान का राम-कीर्तन

इस प्रकार महामति हनुमान् ने उच्च-नीच सब सोच-विचार कर जैसे सीता भली प्रकार सुन सके वैसे तरीके से उसे मधुर वाणी सुनानी प्रारम्भ की—

सर्ग १८

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥१॥
राजा दशरथो नाम रथकुञ्जरवाजिमान्।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥२॥
अहिंसारतिरक्षुद्रो घृणी सत्यपराक्रमः।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मिवर्धनः ॥३॥
पार्थिवव्यञ्जनैर्युक्तः पृथुश्रीः पार्थिवर्षभः।
पृथिव्यां चतुरन्तायां विश्रुतः सुखदः सुखी ॥४॥
तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः।
रामो नाम विशेषज्ञः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥५॥
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥६॥

"दशरथ नाम के एक राजा हुए हैं, जोकि रथों-हाथियों घोड़ों से युक्त थे, पुण्यशील थे, महान् कीर्ति वाले थे, इक्ष्वाकुओं में महायशस्वी थे, अहिंसा में सदा रत रहने थे, ऊंचे विचारों वाले थे, दयालु थे, सत्यपराक्रमी थे, प्रमुख इक्ष्वाकुवंश की लक्ष्मी वाले और उसे और अधिक बढ़ाने वाले थे, राजचिन्हों से युक्त थे, और विस्तृत शोभा वाले थे। वे राजश्रेष्ठ संपूर्ण पृथिवी में स्वयं सुखी और दूसरों को सुख देने वाले प्रसिद्ध थे।

उनके जेठे प्रिय पुत्र राम नाम वाले हैं, जिनका मुख पूर्णचन्द्रमा के समान चमकता है, विशिष्ट बातों के ज्ञाता हैं, और सब धनुर्धारियों में श्रेष्ठ हैं। वे अपने आचार-व्यवहार की पूरी तरह रक्षा करते हैं और इस प्रकार परम तपस्वी बनकर धर्म की

तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्रजितो वनम् ॥७॥
तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥८॥
जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु।
वञ्चयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया ॥९॥
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम्।
आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम् ॥१०॥
ततः स वालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः।
अयच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने ॥११॥
सुग्रीवेणाभिसन्दिष्टा हरयः कामरूपिणः।

रक्षा करते हैं।

वे वीर राम उन सत्यप्रतिज्ञ बृद्ध पिता के आदेश से पत्नी तथा भाई सहित वन को चले आये। उन्होंने वहां महावन में नर-शिकार के पीछे पड़े हुए बहुत से बहुरूपिये शूर राक्षस मार डाले। तब रावण ने जनस्थान का बध, तथा मारे गए खर-दूषण का समाचार सुनकर, उसे न सहते हुए जानकी को हर लिया। यह अपहरण उसने कपटयुक्त मृगरूप से राम को वन में ठग कर किया है।

राम ने उस पवित्र सीता देवी को ढूंडते हुए वन में सुग्रीव नामी वानर मित्र को पाया, और फिर, उसी मित्रता के नाते शत्रुयों की राजधानी को जीतने वाले राम ने वाली को मार कर वानरराज्य महात्मा सुग्रीव को सौंपा। उसी सुग्रीव से आदिष्ट

दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः ॥१२॥
अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ।
तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान्प्लुतः ॥१३॥
यथारूपां यथावर्णां यथालक्ष्मवतीं च ताम् ।
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ॥१४॥
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुङ्गवः ।
जानकी चापि तच्छ्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥१५॥
ततः सा वक्रकेशान्ता सुकेशी केशसंवृतम् ।
उन्नम्य वदनं भीरुः शिंशपामन्ववैक्षत ॥१६॥
ततः शाखान्तरे लीनं दृष्ट्वा चलितमानसा ।
वेष्टितार्जुनवस्त्रं तं विद्युत्सङ्घातपिङ्गलम् ॥१७॥

होकर हम वानर लोग बहुरूपिए बन कर बहुत बड़ी तादाद में उस देवी को सब दिशायों में ढूंडते हुए विचर रहे हैं। मैं संपाति के कहने पर उस विशालाक्षी की ढूंड में सौ योजन चौड़े समुद्र को जल्दी २ तैर कर यहां आया हूं। सो मैंने राम के मुख से उस देवी का जैसा रूप, जैसा रंग, और जैसे चिन्हों वाली सुनी थी, वैसी ही मैंने यह पा ली।"

वानरश्रेष्ठ हनुमान् इसप्रकार बात कह कर चुप हो गया, और जानकी भी उसे सुन कर अत्यन्त अचम्भे में पड़ गयी। तब टेढे-मेढे बिखरे केशों वाली उस सुकेशी सीता ने केशों से ढके मुंह को ऊपर उठाकर डरते २ शिंशपा वृक्ष की ओर देखा। तब वह एक शाखा पर छिपे हुए किसी सफेद वस्त्रधारी विद्युत्पिण्ड समान अत्यन्त गौर शरीर को देखकर विचलित हो गयी। उसने वहां बैठे प्रियवादी कपि को देखा, जो कि खिले अशोक

सा ददर्श कपिं तत्र प्रश्रितं प्रियवादिनम् ।
फुल्लाशोकोत्कराभासं तप्तचामीकरेक्षणम् ॥१८॥
साऽथ दृष्ट्वा हरिवरं विनीतवदुपागतम् ।
मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥१९॥
सोऽवतीर्य द्रुमात्तस्माद् विद्रुमप्रतिमाननः ।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥२०॥
तामब्रवीन्महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥२१॥
का नु पद्मपलाशाक्षि क्लिष्टकौशेयवासिनि ।
द्रुमस्य शाखामालम्ब्य तिष्ठसि त्वमनिन्दिता ॥२२॥
रावणेन जनस्थानाद् बलात्प्रमथिता यदि ।
सीता त्वमसि भद्रं ते तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥२३॥

फूलों के गुच्छों में चमक रहा था, और तपे सोने के समान आंखों वाला था। तब वह भामिनी मैथिली विनीत के समान आये उस वानरश्रेष्ठ को देखकर सोच में पड़ गयी कि क्या यह स्वप्न है ?

तब वह मूंगे के समान मुख वाला हनुमान् वृक्ष पर से नीचे उतरा, विनीत जैसा वेष बनाया, और दीन हालत में दूर से ही नीचे झुक कर प्रणाम करता हुआ उसके समीप पहुंचा। और तब समीप पहुंच कर महातेजस्वी मारुत-पुत्र हनुमान् माथे पर अंजलि धर कर मधुर वाणी से सीता से बोला—"कमल-नयनी ! सब तरह से पवित्र आप कौन हैं, जिन्होंने कि फटे-पुराने रेशमी वस्त्र पहिन रखे हैं, और इस वृक्ष की शाखा को पकड़ कर खड़ी हैं ? यदि आप जनस्थान से रावण द्वारा बलात्कार पूर्वक हरी हुई सीता हैं, तो आपका कल्याण हो, आप

यथा हि तव वै दैन्यं रूपं चाप्रतिमानुषम् ।
तपसा चान्वितो वेषस्त्वं राममहिषी ध्रुवम् ॥२४॥
सा तस्य वचनं श्रुत्वा रामकीर्तनहर्षिता ।
उवाच वाक्यं वैदेही हनूमन्तं द्रुमाश्रितम् ॥२५॥
पृथिव्यां राजसिंहानां मुख्यस्य विदितात्मनः ।
स्नुषा दशरथस्याहं शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ॥२६॥
दुहिता जनकस्याहं वैदेहस्य महात्मनः ।
सीतेति नाम्ना चोक्ताऽहं भार्या रामस्य धीमतः ॥२७॥
वसतो दण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ।
रक्षसाऽपहृता भार्या रावणेन दुरात्मना ॥२८॥
द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥२९॥

मुझे ठीक २ बतलाइए, मैं आप से पूछ रहा हूं । जैसी आपकी दीन हालत है, जैसा आपका मनुष्यों में अद्वितीय रूप है, और जैसा आपका तपस्या से युक्त वेष है, उससे जान पड़ता है कि आप निश्चित तौर पर राम की पत्नी हैं ।"

रामकीर्तन से प्रफुल्लवदन सीता ने उसके वचन को सुनकर वृक्षाश्रित हनुमान् को उत्तर दिया—

"हां, मैं पृथिवी में राजसिंहों के मुखिया विदितात्मा शत्रुसैन्य-विनाशक दशरथ की पुत्रवधू हूं, विदेह राष्ट्र के महात्मा जनक की पुत्री हुँ, और बुद्धिमान राम की पत्नी सीता नाम से पुकारी जाती हूं । वे अपरिमित बल वाले दण्डकारण्य में वस रहे थे कि उनकी पत्नी मुझको दुष्ट रावण राक्षस ने हर लिया । उसने अनुग्रह करके मुझे जीवन के लिए दो महीने का समय दे रखा है, सो मैं दो मासों के बाद जीवन त्याग दूंगी ।"

सर्ग १६

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् हरिपुङ्गवः ।
दुःखाद् दुःखाभिभूतायाः सान्त्वमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥
अहं रामस्य सन्देशाद् देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२॥
यो ब्राह्ममस्त्रं वेदांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥३॥
लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥४॥
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रतिसंहृष्टसर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥५॥
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मा ।

हनुमान तथा सीता का वार्तालाप

दुःख से दुःखाक्रान्त सीता के उस वचन को सुनकर हरिश्रेष्ठ हनुमान् ने सान्त्वना देते हुए उसे कहा—

"देवि ! मैं राम की आज्ञा से उनका दूत बनकर यहां आया हूं । वैदेही ! राम कुशल-पूर्वक हैं, उन्होंने आपकी कुशलता पूछी है । देवि ! जो ब्राह्म अस्त्र और वेदों के ज्ञाता हैं, और जो वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ हैं, उन दशरथ-पुत्र राम ने आपकी कुशलता पूछी है । और महातेजस्वी लक्ष्मण, जोकि आपके पति के प्रिय अनुचर हैं, उन्होंने शोकसंतप्त होकर शिर से आपका अभिवादन किया है ।"

देवी उन दोनों नरसिहों की कुशलता सुनकर गात-गात से खिल उठीं, और हनुमान् से बोली—"अहो ! यह कल्याणी

एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥६॥
तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताऽद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥७॥
यदि रामस्य दूतस्त्वमागतो भद्रमस्तु ते ।
पृच्छामि त्वां हरिश्रेष्ठ प्रिया रामकथा हि मे ॥८॥
गुणान् रामस्य कथय प्रियस्य मम वानर ।
चित्तं हरसि मे सौम्य नदीकूलं यथा रयः ॥९॥
अहो स्वप्नस्य सुखता याऽहमेव चिराहृता ।
प्रेषितं नाम पश्यामि राघवेण वनौकसम् ॥१०॥

गाथा (श्लोक) सचमुच आज मुझे व्यावहारिक दीख पड़ रही है कि सौ वर्ष से ऊपर भी जीते हुए मनुष्य को आनन्द प्राप्त हो जाता है (अर्थात्, मैं इतने दीर्घ काल तक जीवित रही तो आज अपने प्रियतम का शुभ संदेश सुन रही हूं। यदि असह्य दुःख को न सह कर मैं मर जाती तो यह शुभ सन्देश कहां सुन पाती)।"

उस काल में उन दोनों सीता-हनुमान् के मिलन पर उस मिलन ने एक अद्भुत प्रेम प्रवाहित कर दिया, और वे दोनों विश्वस्त होकर परस्पर में वार्तालाप करने लगे—

"यदि आप राम के दूत बनकर आये हैं, तो आपका कल्याण हो। हरिश्रेष्ठ! मैं आप से राम का हाल पूछती हूं, मुझे राम का हाल जानना बड़ा प्यारा है। वानर! आप मेरे प्यारे राम के गुणों को बतलाइए। सौम्य! आप मेरे चित्त को इस प्रकार हर रहे हैं, जैसे कि नदी का प्रबल वेग नदी के किनारे को हरता है। अहो! स्वप्न का कैसा सुख है, जोकि चिरकाल से हरी हुई मैं आज राम द्वारा भेजे हुए वनचारी को देख रही हूं।

स्वप्नेऽपि यद्यहं वीरं राघवं सहलक्ष्मणम् ।
पश्येयं नावसीदेयं स्वप्नोऽपि मम मत्सरी ॥११॥
नाहं स्वप्नमिमं मन्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि वानरम् ।
न शक्योऽभ्युदयः प्राप्तुं प्राप्तश्चाभ्युदयो मम ॥१२॥
किं नु स्याच्चित्तमोहोऽयं भवेद्वातगतिस्त्वियम् ।
उन्मादजो विकारो वा स्यादयं मृगतृष्णिका ॥१३॥
अथवा नायमुन्मादो मोहोऽप्युन्मादलक्षणः ।
सम्बुध्ये चाहमात्मानमिमं चापि वनौकसम् ॥१४॥
इत्येवं बहुधा सीता-सम्प्रधार्य बलाबलम् ।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥१५॥

क्योंकि यदि मैं स्वप्न में भी लक्ष्मण सहित वीर राम को देख लूं तो मुझे कोई दुःख नहीं। पर स्वप्न भी तो मेरा मजाक उड़ाता रहा, वह मेरे पास आया ही नहीं, (आज कहीं मुश्किल से आया है और मैं सुखी हो रही हूं)। पर मैं इसे स्वप्न नहीं समझती, क्योंकि स्वप्न में सिर्फ वानर को देखकर अभ्युदय नहीं पाया जा सकता, परन्तु मेरा अभ्युदय तो सन्तोष रूप में प्राप्त हो रहा है। शायद यह चित्त-विभ्रम हो, शायद यह वायु-रोग हो, शायद यह उन्मादजन्य विकार हो, और शायद यह मृगतृष्णिका हो। परन्तु, यह उन्माद नहीं हो सकता, क्योंकि उन्माद का चिन्ह मूढ़ता होता है, पर मैं अपने को, और इस वनवासी को खूब अच्छी तरह जान रही हूं।"

इस प्रकार जनकपुत्री सीता बहुत प्रकार से ऊंच-नीच सोच कर वानर को आगे कुछ न कह सकी और चुप हो गयी। तब मारुत-पुत्र हनुमान् सीता के निश्चित अभिप्राय को समझ

सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां सम्प्रहर्षयन् ॥१६॥
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥१७॥
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ।
सत्यवादी मधुरवाग् देवो वाचस्पतिर्यथा ॥१८॥
रूपवान् सुभगः श्रीमान् कन्दर्प इव मूर्तिमान् ।
स्थानक्रोधे प्रहर्ता च श्रेष्ठो लोके महारथः ॥१९॥
बाहुच्छायामवष्टब्धो यस्य लोको महात्मनः ।
अपक्रम्याश्रमपदान् मृगरूपेण राघवम् ।
शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ॥२०॥
अचिराद् रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ।

कर (कि मैं राम के हाल चाल को सुनाऊं) कर्ण-प्रिय वचनों से उसे हर्षित करता हुआ बोला—

"देवि ! राम सूर्यसमान तेजस्वी हैं, चन्द्रसमान लोकप्रिय हैं, कुबेर देव की तरह सब लोकों के राजा हैं। महायशस्वी विष्णु की तरह विक्रम से युक्त हैं, बृहस्पति के समान सत्यवादी और मधुरभाषी हैं, साक्षात् कन्दर्प के समान रूपवान सौभाग्य-शाली और शोभावान् हैं। क्रोध के योग्य पात्र पर प्रहार करने वाले हैं, और दुनिया में श्रेष्ठ महारथी हैं। उस महात्मा की बाहुओं की छाया में लोक टिका हुआ है। जिसने मृग रूप के द्वारा राम को आश्रम स्थली से दूर हटा कर सूने में आपको उड़ा लिया है, उस दुष्कर्म का याद रखने लायक फल आप देखेंगी कि महापराक्रमी राम युद्ध में क्रोध में भर कर छोड़े गए अग्नि-

क्रोधप्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥२१॥
तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२२॥
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२३॥
रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ।
राजा वानरमुख्यानां स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२४॥
नित्यं स्मरति ते रामः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
दिष्ट्या जीवसि वैदेहि राक्षसीवशमागता ॥२५॥
न चिराद् द्रक्ष्यसे रामं लक्ष्मणं च महारथम् ।
मध्ये वानरकोटीनां सुग्रीवं चामितौजसम् ॥२६॥

समान जलते हुए वाणों से रावण को शीघ्र मार गिरायेंगे। उन्होंने मुझे दूत बनाकर भेजा है, सो मैं यहां आप के पास आया हूं। आपके वियोग से दुःख-पीड़ित उन राम ने आपका कुशल पूछा है।

सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी विशाल-बाहु लक्ष्मण ने आपको अभिवादन करके आपका कुशल पूछा है। अपिच देवि ! राम के मित्र सुग्रीव नामक वानर, जोकि प्रमुख वानरों के राजा हैं, उन्होंने आपका कुशल पूछा है। सुग्रीव और लक्ष्मण सहित राम नित्य आपको स्मरण करते हैं। वैदेहि ! यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप राक्षसों के चंगुल में फंसकर भी जीवित हैं। आप शीघ्र राम को, महारथी लक्ष्मण को, और अनगिनत वानरों के मध्य में बैठे हुए अपरिमित बल वाले सुग्रीव को देखेंगी। मैं सुग्रीव का मंत्री हनुमान् नामक वानर महासमुद्र

अहं सुग्रीवसचिवो हनूमान्नाम वानरः।
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥२७॥
कृत्वा मूर्ध्नि तदा न्यासं रावणस्य दुरात्मनः।
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ॥२८॥

सर्ग २०

तां तु रामकथां श्रुत्वा वैदेही वानरर्षभात्।
उवाच वचनं सान्त्वमिदं मधुरया गिरा ॥१॥
क्व ते रामेण संसर्गः कथं जानासि लक्ष्मणम्।
वानराणां नराणां च कथमासीत्समागमः ॥२॥
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च वानर।
तानि भूयः समाचक्ष्व न मां शोकः समाविशेत् ॥३॥
कीदृशं तस्य संस्थानं रूपं तस्य च कीदृशम्।

को लांघ कर लंका नगरी पहुँचा हूं, और तब दुरात्मा रावण के सिर पर पांव धर कर तथा पराक्रम का सहारा लेकर आपके दर्शनों के लिए आपके समीप आया हूँ।"

हनुमान द्वारा राम का वृत्तान्त कथन

वैदेही ने वानरश्रेष्ठ राम की यह कथा सुनकर अत्यन्त मिठास पूर्वक मधुर शब्दों में उससे फिर पूछा—

"आपका राम से मेल कहां हुआ है? आप लक्ष्मण को कैसे जानते हैं? वानरों और नरों में पारस्परिक मेल कैसे हुआ? वानर! राम और लक्ष्मण की जो पहिचान हैं, उन्हें मुझे और अधिक बतलायें, जिससे मेरे में शोक न रहे। उनका और लक्ष्मण का शरीर-गठन कैसा है? रूप कैसा है? जंघायें कैसी हैं? और बाहुयें कैसी हैं? यह मुझे बतलाइए।"

कथमूरू कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥४॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या हनूमान् मारुतात्मजः।
ततो रामं यथातत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५॥
जानन्ती बत दिष्ट्या मां वैदेहि परिपृच्छसि।
भर्तुः कमलपत्राक्षि संस्थानं लक्ष्मणस्य च ॥६॥
यानि रामस्य चिह्नानि लक्ष्मणस्य च यानि वै।
लक्षितानि विशालाक्षि वदतः शृणु तानि मे ॥७॥
रामः कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभाननः।
रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसूतो जनकात्मजे ॥८॥
तेजसादित्यसङ्काशः क्षमया पृथिवीसमः।
बृहस्पतिसमो बुद्ध्या यशसा वासवोपमः ॥९॥
रक्षिता जीवलोकस्य स्वजनस्य च रक्षिता।

वैदेही ने जब इसप्रकार पूछा तो पवन-पुत्र हनुमान् ने राम के विषय में यथावत् रूप से वतलाना प्रारम्भ किया—

"कमलनयने वैदेहि! जो शरीर-गठन पति का है और जो लक्ष्मण का है, उसे आप जानती हैं, पर मारे खुशी के आप मेरे से पूछ रही हैं। विशालाक्षि! जो चिन्ह राम के और जो लक्ष्मण के मैंने देखे हैं, उन्हें मैं बतलाता हूं, सुनिए—

जनकपुत्री! राम की आंखें कमल के समान हैं, मुख पूर्णचन्द्रमा के समान है, और वे रूप तथा चतुरता से संपन्न पैदा हुए हैं। वे तेज से आदित्य के तुल्य हैं, सहनशीलता से पृथिवी के तुल्य हैं, बुद्धि से बृहस्पति के तुल्य हैं, और यश से इन्द्र के तुल्य हैं। वे परम तपस्वी प्राणीमात्र के रक्षक हैं, और अपनों के रक्षक हैं, अपने शील के रक्षक हैं, और धर्म के रक्षक हैं। भामिनी!

रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य धर्मस्य च परन्तपः ॥१०॥
रामो भामिनि लोकस्य चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ।
मर्यादानां च लोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥११॥
अर्चिष्मानर्चितोऽत्यर्थं ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
साधूनामुपकारज्ञः प्रचारज्ञश्च कर्मणाम् ॥१२॥
राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।
ज्ञानवाञ्छीलसम्पन्नो विनीतश्च परन्तपः ॥१३॥
यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः ।
धनुर्वेदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥१४॥
विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवः शुभाननः ।
गूढजत्रुः सुताम्राक्षो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥१५॥

राम चारों वर्णों के लोगों के रक्षक हैं, और लोकमर्यादाओं के रखने-रखाने वाले हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं और इसलिए अत्यधिक पूजे जाते हैं। ब्रह्मचर्य-व्रत में स्थित रहते हैं। साधुजनों का उपकार कब करना चाहिए, इसे खूब समझते हैं, और कर्तव्य कर्मों का प्रसार किस काल में किया जा सकता है, इसे भी खूब जानते हैं। वे परम तपस्वी, राजनीति के पण्डित, ब्राह्मणों के उपासक, ज्ञान से युक्त, शीलसंपन्न, और विनीत हैं। वे धनुर्वेद के पण्डित हैं, वेदवेत्ताओं से सुपूजित हैं, और धनुर्वेद में वेद में वेदाङ्गों में पारंगत हैं। कन्धे बड़े हैं, बाहुएं लम्बी हैं, गर्दन शंख जैसी है, मुख सुन्दर है, कन्धों की हड्डियां मांस में छिपी हुई हैं, और आंखें तांबे जैसे रंग की अरुण हैं। वे लोगों में राम नाम से प्रसिद्ध हैं।

इनका सौतेली मां-जाया भाई सौमित्रि है, जोकि अपरिमित

भ्राता चास्य च द्वैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।
अनुरागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाविधः ।।१६।।
ससुवर्णच्छविः श्रीमान् रामः श्यामो महायशाः ।
तावुभौ नरशार्दूलौ त्वद्दर्शनकृतोत्सवौ ।।१७।।
विचिन्वतौ महीं कृत्स्नामस्माभिः सह सङ्गतौ ।
त्वामेव मार्गमाणौ तौ विचरन्तौ वसुन्धराम् ।।१८।।
ददर्शतुर्मृगपतिं पूर्वजेनावरोपितम् ।
ऋष्यमूकस्य मूले तु बहुपादपसंकुले ।
भ्रातुर्भयार्तमासीनं सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।।१९।।
वयं च हरिराजं तं सुग्रीवं सत्यसङ्गरम् ।
परिचर्यामहे राज्यात् पूर्वजेनावरोपितम् ।।२०।।
ततस्तौ चीरवसनौ धनुःप्रवरपाणिनौ ।

तेजस्वी है। वह स्नेह से, रूप से तथा गुणों से भी राम जैसा है। पर, लक्ष्मण सुवर्ण वर्ण जैसा है और महायशस्वी श्रीमान् राम श्यामवर्ण हैं। वे दोनों नरशार्दूल आपके दर्शनों में एकचित्त लगे हुए संपूर्ण पृथ्वी को खोजते हुए हमारे पास आए। आपकी तलाश में पृथ्वी को गाहते हुए उन्होंने दूर से वानरराज प्रियदर्शन सुग्रीव को देखा, जिन्हें कि उनके बड़े भाई ने राज्य से निकाल दिया था और वह भाई के भय से पीड़ित हुए २ बहुत से वृक्षों से घिरी हुई ऋष्यमूक की तलैटी में बैठे हुए थे। उस समय हम लोग बड़े भाई द्वारा राज्य से उखाड़े हुए सत्यप्रतिज्ञ वानरराज सुग्रीव की सेवा में लगे हुए थे।

तब वानरश्रेष्ठ सुग्रीव चीर वस्त्रधारी और हाथ में बढ़िया धनुष लिए हुओं उन दोनों को देखकर भय से विह्वल हो उठे और

स तौ दृष्ट्वा नरव्याघ्रौ धन्विनौ वानरर्षभः ।
अभिप्लुतो गिरेस्तस्य शिखरं भयमोहितः ॥२१॥

ततः स शिखरे तस्मिन् वानरेन्द्रो व्यवस्थितः ।
तयोः समीपं मामेव प्रेषयामास सत्वरम् ॥२२॥

तावहं पुरुषव्याघ्रौ सुग्रीववचनात्प्रभू ।
रूपलक्षणसम्पन्नौ कृताञ्जलिरुपस्थितः ॥२३॥

तौ प्रतिज्ञाततत्त्वार्थौ मया प्रीतिसमन्वितौ ।
पृष्ठमारोप्य तं देशं प्रापितौ पुरुषर्षभौ ॥२४॥

निवेदितौ च तत्त्वेन सुग्रीवाय महात्मने ।
तयोरन्योन्यसम्भाषाद् भृशं प्रीतिरजायत ॥२५॥

तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नौ हरीश्वरनरेश्वरौ ।
परस्परकृताश्वासौ कथया पूर्ववृत्तया ॥२६॥

उस पहाड़ की चोटी पर भाग गए, और उसके वाद वह उसी चोटी पर टिक गये। सुग्रीव ने (पता लाने के लिए कि ये कौन हैं) जल्दी से मुझे ही उनके समीप भेजा। सुग्रीव की आज्ञा से मैं रूप-लक्षण संपन्न उन नरसिंहों के समीप (जिज्ञासा भाव से) हाथ वांधे जा खड़ा हुआ। पूछ ताछ के बाद जब उनका यथावत् हाल विदित हो गया और यह भी पता लग गया कि वे हम से सच्चा प्रेम रख रहे हैं, तो मैंने उन पुरुषश्रेष्ठों को पर्वत की (पीठ) चोटी पर लाकर उस देश में पहुंचा दिया (जहां कि सुग्रीव टिके हुए थे), और महात्मा सुग्रीव से उनका पूरे तौर पर परिचय करा दिया। उसके वाद राम और सुग्रीव दोनों का परस्पर में वार्तालाप हुआ और परिणाम स्वरूप दोनों में अतिशय प्रेम हो गया। उस वार्तालाप में कीर्ति-संपन्न हरीश्वर और नरेश्वर ने

तं ततः सान्त्वयामास सुग्रीवं लक्ष्मणाग्रजः ।
स्त्रीहेतोर्वालिना भ्रात्रा निरस्तं पुरुतेजसा ॥२७॥
ततस्त्वन्नाशजं शोकं रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
लक्ष्मणो वानरेन्द्राय सुग्रीवाय न्यवेदयत् ॥२८॥
स श्रुत्वा वानरेन्द्रस्तु लक्ष्मणेनेरितं वचः ।
तदासीन्निष्प्रभोऽत्यर्थं ग्रहग्रस्त इवांशुमान् ॥२९॥
ततस्त्वद् गात्रशोभीनि रक्षसा ह्रियमाणया ।
यान्याभरणजालानि पातितानि महीतले ॥३०॥
तानि सर्वाणि रामाय आनीय हरियूथपाः ।
संहृष्टा दर्शयामासुर्गतिं तु न विदुस्तव ॥३१॥
तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ।

अपनी २ बीती कथायें सुनाकर एक-दूसरे को आश्वासन प्रदान किया ।

तब लक्ष्मण के बड़े भाई राम ने स्त्री को हथियाने की नीयत से भाई बाली द्वारा निकाले गए उस सुग्रीव को पूरे बल के साथ सान्त्वना प्रदान की। और तब लक्ष्मण ने आपके खोये जाने से उत्पन्न कल्याणकारी राम के शोक का जिक्र वानरराज सुग्रीव से किया। वानरराज सुग्रीव का चेहरा लक्ष्मण-कथित उस बात को सुनकर एकदम ग्रहण लगे चन्द्रमा के समान अत्यधिक फीका पड़ गया। तब आपने अपने शरीर की शोभा को बढ़ाने वाले जिन आभूषणों को राक्षस द्वारा हरी जाते समय पृथ्वी पर गिराया था, उन सबको तो वानरमुखियायों ने लाकर खुशी २ राम को दिखा दिया, परन्तु राक्षस आपको कहां ले गया, यह वे न जानते थे। वे राम को दिए गए आभूषण शब्द करते हुए जब

स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन्विहतचेतसि ॥३२॥
तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः।
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥३३॥
सहितौ रामसुग्रीवावुभावकुरुतां तदा।
समयं वालिनं हन्तुं तव चान्वेषणं प्रति ॥३४॥
ततस्ताभ्यां कुमाराभ्यां वीराभ्यां स हरीश्वरः।
किष्किन्धां समुपागम्य वाली युद्धे निपातितः ॥३५॥
ततो निहत्य तरसा रामो वालिनमाहवे।
सर्वर्क्षहरिसङ्घानां सुग्रीवमकरोत्पतिम् ॥३६॥
रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत।
हनूमन्तं च मां विद्धि तयोर्दूतमुपागतम् ॥३७॥

संज्ञा को हरने वाले उस स्थल पर बिखरे रूप में गिरे थे, तब मैंने ही उन्हें सर्वप्रथम उठाया था। राम ने उन बहुमूल्य आभूषणों को स्वयं बार २ देखा, लक्ष्मण को बार २ दिखलाया और फिर लक्ष्मण से सलाह करके उन्हें सुग्रीव के पास ही रख दिया।

तब राम और सुग्रीव दोनों ने मिल कर बाली के बध तथा आपकी खोज के संबन्ध में एक समझौता किया। तदनन्तर उसी समझौते के अनुसार उन वीर कुमारों ने किष्किन्धा पहुंच कर उस वानरराज बाली को युद्ध में मार गिराया। इस प्रकार बड़ी फुर्ती से वाली को युद्ध में मार कर राम ने सुग्रीव को समस्त ऋक्ष संघों तथा वानर संघों का राजा बना दिया। देवि ! राम और सुग्रीव का मेल इस प्रकार हुआ है। सो, आप अपने समीप आए मुझको उन्हीं दोनों का दूत समझिये।"

"देवि ! एवं, सुग्रीव ने अपना राज्य पाकर अपने महाबली

स्वं राज्यं प्राप्य सुग्रीवः स्वानानीय महाकपीन् ।
त्वदर्थं प्रेषयामास दिशो दश महाबलान् ॥३८॥
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महौजसः ।
अद्रिराजप्रतीकाशाः सर्वतः प्रस्थिता महीम् ॥३६॥
ततस्ते मार्गमाणा वै सुग्रीववचनातुराः ।
चरन्ति वसुधां कृत्स्नां वयमन्ये च वानराः ॥४०॥
अङ्गदो नाम लक्ष्मीवान् वालिसूनुर्महाबलः ।
प्रस्थितः कपिशार्दूलस्त्रिभागबलसंवृतः ॥४१॥
तेषां नो विप्रणष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ।
भृशं शोकपरीतानामहोरात्रगणा गताः ॥४२॥
ते वयं कार्यनैराश्यात् कालस्यातिक्रमेण च ।
भयाच्च कपिराजस्य प्राणांस्त्यक्तुमुपस्थिताः ॥४३॥

महाकपियों को बुलाया और आप की ढूंड के लिये दसों दिशायों में भेज दिया। वानरराज सुग्रीव की आज्ञा पाकर पर्वत जैसे ऊंचे महाबली पृथ्वी में सब ओर चल दिये। तब हम और अन्य दूसरे वानर सुग्रीव के आदेश से आतुर हुए २ आपकी ढूंड में संपूर्ण वसुधा में विचरने लगे। (सेना मुख्यतया तीन भागों में बांट कर पृथक् २ भेजी गयी थी। उनमें से) सेना के तीसरे भाग को साथ लेकर लक्ष्मीवान् महाबली कपिशार्दूल बालि-पुत्र अंगद चला। तब हम पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्य पर रास्ता भूल गए, और कई दिन ऐसे ही व्यर्थ चले गए, जिससे हमें अत्यन्त दुःख हुआ। तब हम लोग कार्य में निराशा के कारण, कालातिक्रम के कारण, तथा सुग्रीव के भय के कारण प्राण त्यागने को तय्यार हो गए, और उसी पर्वत-शिखर पर आमरण अनशन को बैठ गए।

ततस्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि वयं प्रायमुपास्महे ।।४४।।
दृष्ट्वा प्रायोपविष्टांश्च सर्वान् वानरपुङ्गवान् ।
भृशं शोकार्णवे मग्नः पर्यदेवयदङ्गदः ।।४५।।
तव नाशं च वैदेहि वालिनश्च तथा बधम् ।
प्रायोपवेशमस्माकं मरणं च जटायुषः ।।४६।।
तेषां नः स्वामिसन्देशान्निराशानां मुमूर्षताम् ।।४७।।
कार्यहेतोरिहायातः शकुनिर्वीर्यवान् महान् ।
गृध्रराजस्य सोदर्यः सम्पातिर्नाम गृध्रराट् ।।४८।।
श्रुत्वा भ्रातृवधं कोपादिदं वचनमब्रवीत् ।।४९।।
यवीयान्केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः ।
एतदाख्यातुमिच्छामि भवद्भिर्वानरोत्तमाः ।।५०।।
अङ्गदोऽकथयत्तस्य जनस्थाने महद्वधम् ।
रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः ।।५१।।

आमरण अनशन का व्रत ले बैठे हुओं हम सब वानरश्रेष्ठों को देख कर अंगद अत्यधिक शोकसागर में डूबा हुआ विलाप करने लगा—'वैदेहि ! आपका पता नहीं लग रहा, यद्यपि वालि का बध हो गया। हम लोग आमरण अनशन को बैठे हैं, और जटायु की मृत्यु हो गयी।' इस प्रकार, राजाज्ञा की सफलता से निराश होकर हम लोग मरना चाह रहे थे कि मानो हमारी कार्य-सिद्धि के लिये महापराक्रमी पक्षी इधर आ निकला। यह गृध्रराज जटायु का सगा भाई गृध्रराज संपाति था। उसने अंगद के विलाप में भाई का बध सुनकर क्रोधपूर्वक पूछा—'किसने मेरे छोटे भाई को मारा है? कहां मारा है? वानरश्रेष्ठ! मैं यह तुमसे जानना चाहता हूं।' अंगद ने आपके कारण भयंकर रावण

जटायोस्तु वधं श्रुत्वा दुःखितः सोऽरुणात्मजः ।
त्वामाह स वरारोहे वसन्तीं रावणालये ॥५२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सम्पातेः प्रीतिवर्धनम् ।
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्थापिता वयम् ॥५३॥
विन्ध्यादुत्थाय संप्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम् ।
त्वद्दर्शने कृतोत्साहा हृष्टाः पुष्टाः प्लवङ्गमाः ॥५४॥
अङ्गदप्रमुखाः सर्वे वेलोपान्तमुपागताः ।
चिन्तां जग्मुः पुनर्भीमां त्वद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥५५॥
अथाहं हरिसैन्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ।
व्यवधूय भयं तीव्रं योजनानां शतं प्लुतः ॥५६॥
लङ्का चापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ।

राक्षस के द्वारा जनस्थान में उसके बध की बात ज्यों की त्यों कह सुनाई। सुन्दर डील डौल वाली ! जटायु के बध को सुनकर अरुण-पुत्र संपाति बहुत दुःखी हुआ और बतलाया कि आप रावण के महल में रह रही हैं।

संपाति के उस आनन्दवर्धक वचन को सुनकर हम लोग अंगद की सरदारी में वहां से रवाना किये गये। आपके दर्शनों के लिए अत्यन्त उत्साह युक्त वे वानर लोग अत्यन्त खुश और फूलकर तुरन्त विन्ध्य से उठे और समुद्र के उत्तम तट पर आ पहुंचे। वहां पहुंच कर आप के दर्शनाभिलाषी वे लोग कठिनतम विचार में पड़ गए (कि यह विशाल समुद्र कैसे पार किया जावे ?)

तब मैं सागर को देख द्विविधा में पड़ी वानरसेना के तीव्र भय को दूर कर सौ योजन चौड़ा समुद्र तैर आया। जगह २

रावणश्च मया दृष्टस्त्वं च शोकनिपीडिता ॥५७॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं यथावृत्तमनिन्दिते ।
अभिभाषस्व मां देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥५८॥
तन्मां रामकृतोद्योगं त्वन्निमित्तमिहागतम् ।
सुग्रीवसचिवं देवि बुद्धयस्व पवनात्मजम् ॥५९॥
कुशली तव काकुत्स्थः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
गुरोराराधने युक्तो लक्ष्मणः शुभलक्षणः ॥६०॥
तस्य वीर्यवतो देवि भर्तुस्तव हिते रतः ।
अहमेकस्तु सम्प्राप्तः सुग्रीववचनादिह ॥६१॥
मयेयमसहायेन चरता कामरूपिणा ।
दक्षिणा दिगनुक्रान्ता त्वन्मार्गविचयैषिणा ॥६२॥

पहरेदार राक्षसों से परिपूर्ण लंका के अन्दर भी मैं रात्रि के समय घुस आया, और मैंने रावण को तथा शोकपीड़ित आपको देखा।

पवित्र देवि ! यह मैंने ज्यों का त्यों सब वृत्तान्त आपको कह सुनाया है। आपने जो कुछ मुझे कहना हो कहिये, मैं राम का दूत हूं। देवि ! आप मुझे सुग्रीव का दूत पवनपुत्र हनुमान् समझिये। मैं राम-कार्य के उद्योग में लगा हुआ आपकी तलाश में यहां आया हूं। देवि ! सर्वशास्त्र-निष्णातों में श्रेष्ठ आपके पति राम कुशलपूर्वक हैं, और शुभलक्षणों वाले लक्ष्मण बड़े भाई की सेवा में लगे हुए हैं। देवि ! उन वीर्यशाली आपके पति के हित में लगा हुआ सिर्फ मैं अकेला यहां सुग्रीव के आदेश से आया हूं। मैंने विना किसी दूसरे की सहायता के भेष बदल २ कर आप तक पहुंचने का मार्ग ढूंढते हुए यह दक्षिण दिशा छान डाली। मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि मैं आपके गुम होने

दिष्ट्याऽहं हरिसैन्यानां त्वन्नाशमनुशोचताम् ।
अपनेष्यामि सन्तापं तवाधिगमशासनात् ॥६३॥
दिष्ट्या हि न मम व्यर्थं सागरस्येह लङ्घनम् ।
प्राप्स्याम्यहमिदं देवि त्वद्दर्शनकृतं यशः ॥६४॥
राघवश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्वामभिपत्स्यते ।
सपुत्रबान्धवं हत्वा रावणं राक्षसाधिपम् ॥६५॥
माल्यवान्नाम वैदेहि गिरीणामुत्तमो गिरिः ।
ततो गच्छति गोकर्णं पर्वतं केसरी हरिः ॥६६॥
स च देवर्षिभिर्दिष्टः पिता मम महाकपिः ।
तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्बसादनमुद्धरत् ॥६७॥
तस्याहं हरिणः क्षेत्रे जातो वातेन मैथिलि ।
हनूमानिति विख्यातो लोके स्वेनैव कर्मणा ॥६८॥

से शोक-ग्रस्त वानरसेना के संताप को आपके पाने के समाचार से दूर कर दूंगा। देवि ! फिर मुझे इस बात की भी बड़ी खुशी है कि मेरा सागर तैरना व्यर्थ नहीं गया, और मैं आपके पा लेने का यह यश प्राप्त करूंगा। अब महापराक्रमी राम शीघ्र पुत्र-बांधवों सहित राक्षसराज रावण को मार कर आपको पावेंगे।

वैदेहि ! माल्यवान् नामक पहाड़ पहाड़ों में उत्तम है। वहां से केसरी नामक वानर गोकर्ण पर्वत पर गए। यह महाकपि मेरे पिता हैं। उन्होंने देवर्षियों से आदेश पाकर समुद्र के पुण्य तीर्थ पर शम्बसादन नामी असुर का बध किया। उस काल में मैथिली ! मैं केसरी वानर की पत्नी में (वात समान बल-पराक्रम दर्शाने के कारण) वात नामी केसरी पिता से पैदा हुआ हूं, इसलिए मैं दुनिया में अपने जन्मसिद्ध कर्म, यानी बल पराक्रम

एवं विश्वासिता सीता हेतुभिः शोककर्शिता ।
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूतं तमधिगच्छति ॥६६॥

सर्ग २१

अथोवाच हनूमांस्तामुत्तरं प्रियदर्शनाम् ।
रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम् ॥१॥
प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीणदुःखफला ह्यसि ॥२॥
गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् ।
भर्तारमिव सम्प्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ॥३॥
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।

के कारण ही हनुमान् (बल-पराक्रम वाला) इस नाम से प्रसिद्ध हुआ हूँ।"

इसप्रकार हनुमान् ने शोक से कृश सीता को अनेक तरीको से विश्वास करा दिया और उसने वास्तविक चिन्हों से जान लिया कि यह सचमुच राम का दूत है।

सीता-हनुमान के प्रश्नोत्तर

इसके बाद हनुमान् ने प्रियदर्शन सीता को अगली उत्कृष्ट-तर बात कही—"देवि ! देखिये, यह राम नाम से अंकित उनकी अंगूठी है। यह उन महापुरुष ने दी है, जोकि आपके विश्वास के लिये लायी गयी है। आप धैर्य धारण कीजिए, आपका भद्र होगा, अब आपके दुःखों का अन्त आ गया है।"

सीता ने पति के हाथ को शोभायमान करने वाली अंगूठी को लिया, देखा, और ऐसी प्रसन्न हुई कि मानो राम मिल गए। उस समय उसका हर्ष से खिला हुआ सुन्दर मुख, जोकि अरुण

बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥४॥
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुः सन्देशहर्षिता।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥५॥
विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥६॥
शतयोजनविस्तीर्णः सागरो मकरालयः।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥७॥
नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ॥८॥
अर्हसे च कपिश्रेष्ठ मया समभिभाषितुम्।

वर्ण की बड़ी २ आंखों से युक्त था, ऐसा हो गया जैसे कि ग्रहण से मुक्त चन्द्रमा हो। तब पति का संदेश पाने से हर्षित, बाला जैसी सीधी-सादी, लज्जाशील सीता बड़ी खुश हुई और प्रिय मानकर महाकपि की प्रशंसा करने लगी—

"वानरोत्तम! आप बड़े विक्रमी हैं, समर्थ हैं, और बुद्धिमान् हैं, जोकि आप अकेलों ने यह राक्षस-स्थान मथ डाला है। श्लाघनीय विक्रम से युक्त आपने सौ योजन फैले हुए मगरों के घर समुद्र को गोष्पद के समान समझ कर आसानी से लांघ लिया है। (बरसात के दिनों में गाय का पांव नरम भूमि पर पड़ने से उस पादचिन्ह में जो चुल्लु भर पानी भर जाता है, उस पानी भरे गो-पद को गोष्पद कहते हैं)। नरश्रेष्ठ! मैं आपको एक मामूली वानर नहीं समझती, जबकि आपको न ऐसे भयंकर समुद्र से भय हुआ और न रावण से भी तनिक डर लगा। कपिश्रेष्ठ! क्योंकि विदितात्मा राम ने आपको मेरे समीप भेजा

यद्यसि प्रेषितस्तेन रामेण विदितात्मना ॥६॥
प्रेषयिष्यति दुर्धर्षो रामो नह्यपरीक्षितम् ।
पराक्रममविज्ञाय मत्सकाशं विशेषतः ॥१०॥
दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
लक्ष्मणश्च महातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥११॥
कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् ।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥१२॥
अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥१३॥
कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥१४॥

है, अतः सचमुच आप मुझे राम का समाचार दे सकते हैं। दुर्जेय राम, विशेष कर मेरे समीप, बिना पराक्रम को भलीप्रकार जाने कभी किसी अपरीक्षित आदमी को नहीं भेजेंगे।

बड़े सौभाग्य की बात है कि सत्यप्रतिज्ञ धर्मात्मा राम और सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाला महातेजस्वी लक्ष्मण कुशल पूर्वक हैं। यदि राम कुशलपूर्वक हैं तो वे प्रलयकाल की धधकती आग बनकर कोप से सागर से घिरी लंका को दग्ध क्यों नहीं कर देते? अथवा, मैं समझती हूं कि यद्यपि वे दोनों देवताओं के निग्रह में भी समर्थ हैं, परन्तु मेरे ही दुःखों का अन्त अभी नहीं आया।

पुरुषोत्तम राम कहीं व्यथित तो नहीं रहते? कहीं संताप तो नहीं करते रहते? मेरे उद्धार के काम तो करते हैं न? कहीं वे दीन व संभ्रान्त-चित हो कर्तव्यों में ढील तो नहीं करते?

कच्चिन्न दीनः सम्भ्रान्तः कार्येषु च न मुह्यति ।
कच्चित्पुरुषकार्याणि कुरुते नृपतेः सुतः ॥१५॥
द्विविधं त्रिविधोपायमुपायमपि सेवते ।
विजिगीषुः सुहृत्कच्चिन् मित्रेषु च परन्तपः ॥१६॥
कच्चिन्मित्राणि लभते मित्रैश्चाप्यभिगम्यते ।
कच्चित्कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥१७॥
कच्चिदाशास्ति देवानां प्रसादं पार्थिवात्मजः ।
कच्चित्पुरुषकारं च दैवं च प्रतिपद्यते ॥१८॥
कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः ।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान् मोक्षयिष्यति राघवः ॥१९॥
सुखानामुचितो नित्यमसुखामनूचितः ।

राजपुत्र पुरुषार्थ के काम तो करते रहते हैं न ? क्या मित्र और अमित्र राम विजयेच्छुक बनकर मित्रों और अमित्रों में साम-दान-दण्ड इन तीन उपायों को दो प्रकार के उपाय करके वर्तते हैं ? (अर्थात् मित्रों में साम-दान, तथा अमित्रों में दण्ड का प्रयोग करते हैं ?) क्या राम नये-नये मित्र पा रहे हैं ? क्या उनके समीप नये नये मित्र आ रहे हैं ? क्या वे मित्रों का आदर कर रहे हैं ? और क्या वे मित्रों से आदर पा रहे हैं ? क्या राजपुत्र देवजनों के आशीर्वाद की प्रार्थना तो करते रहते हैं ? (आशास्ति =आशास्ते)। क्या वे पुरुषार्थ और प्रभुबल को तो पाए रहते हैं ?

मेरे दूर रहने से राम का मेरे में प्यार तो नहीं जाता रहा ? क्या राम मुझे इस विपत्ति से छुड़ा तो देंगे न ? नित्य सुखों के योग्य और दुःखों के अयोग्य राम कहीं एक के बाद दूसरे

दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो न सीदति ॥२०॥
कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च ।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥२१॥
मन्निमित्तेन मानार्हः कच्चिच्छोकेन राघवः ।
कच्चिन्नान्यमना रामः कच्चिन्मां तारयिष्यति ॥२२॥
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥२३॥
वानराधिपते श्रीमान् सुग्रीवः कच्चिदेष्यति ।
मत्कृते हरिभिर्वीरैर्वृतो दन्तनखायुधैः ॥२४॥
कच्चिच्च लक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान् विधमिष्यति ॥२५॥
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥२६॥

दुःख को पाकर घबरा तो नहीं गये ? क्या कौसल्या का, सुमित्रा का, तथा भरत का कुशल समाचार तो निरन्तर मिलता रहता है ? मान के योग्य राम कहीं मेरे वियोग्यजन्य शोक से पीड़ित तो नहीं रहते ? राम कहीं अन्य-मनस्क तो नहीं रहते ? क्या वे मेरा उद्धार तो कर देंगे न ? क्या भाई का प्यारा भरत मेरे उद्धार के लिए मंत्रियों द्वारा भलीप्रकार सुरक्षित की हुई भयंकर अक्षौहिणी सेना को तो भेजेगा न ? वानरराज ! क्या श्रीमान् सुग्रीव मेरे उद्धार के लिये दन्त-नख जैसे पैने आयुधों से युक्त वीर वानरों को साथ लिए आयेंगे न ? क्या सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाला अस्त्रवित् शूर लक्ष्मण शर-जाल से राक्षसों को भस्मीभूत तो कर देगा न ? और क्या मैं अल्प काल में ही रावण को मित्रों-बन्धुयों

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥२७॥
न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरन्दरः ॥२८॥
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्यृक्षगणसंयुताम् ॥२९॥
विष्टम्भयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम्।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥३०॥
तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यदि देवा महासुराः।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥३१॥
तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥३२॥

सहित रौद्रास्त्र के द्वारा युद्ध में राम से मारा हुआ देख पाऊंगी ?"

इस प्रकार भीमविक्रमी हनुमान् ने सीता के प्रश्नों को सुनकर सिर पर अञ्जलि धर उत्तर दिया—"देवि ! कमलनयन राम नहीं जानते कि आप यहां रह रही हैं, इस कारण से वे आपको शीघ्र नहीं ले जा सके, जैसे कि इन्द्र शची को ले गये थे। अब मेरे से आपका पता पाते ही राम वानर व ऋक्षों की बड़ी सेना को साथ ले यहां शीघ्र पहुंचेंगे। वे अचूक बाणों से समुद्र तक को पाट कर लङ्कापुरी को राक्षस रहित कर देंगे। इस चढ़ाई के बीच राम के मार्ग में यदि मौत, यदि देव, और यदि महाअसुर भी आयेंगे तो वह उन्हें भी मार गिरायेंगे। आर्ये ! राम आपके अदर्शन-जन्य शोक से परिपूरित होकर सिंह से दबोचे हुए हाथी की तरह छटपटा रहे हैं।"

सर्ग २२

सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥१॥
अमृतं विषसम्पृक्तं त्वया वानर भाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥२॥
ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥३॥
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥४॥
शोकस्यास्य कथं पारं राघवोऽधिगमिष्यति ।
प्लवमानः परिक्रान्तो हतनौः सागरे यथा ॥५॥
राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥६॥

सीता का हनुमान को चूड़ामणि देना

पूर्ण चन्द्रमुखी सीता हनुमान् की उक्त बात को सुनकर धर्मार्थ युक्त यह बात बोली—"वानर ! आपने तो यह बात विष मिले अमृत जैसी कही कि राम का मन अन्यत्र कहीं नहीं लग रहा और शोकपरायण रहते हैं। अत्यन्त ऐश्वर्य और दारुण दुःख, दोनों में काल, पुरुष को मानो रस्सी से बांधकर खींचा करता है। वानरश्रेष्ठ ! निश्चय से प्राणियों का कर्मफल-विधान अनिवार्य होता है, तभी तो देखो, लक्ष्मण मैं और राम दुःखों से बेसुध हुए पड़े हैं। न जाने कब, नौका के टूट जाने से समुद्र में गिरकर तैरते हुए पुरुष के समान राम, इस शोक को पार करेंगे ? मेरे पति कब राक्षसों का बध करके, और लंका को विध्वस्त करके

स वाच्यः संत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ।।७।।
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ।।८।।
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन न च तत्कुरुते मतिम् ।।६।।
मम प्रतिप्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशंगतम् ।।१०।।
ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ।।११।।
अविन्ध्यो नाम मेधावी विद्वान्राक्षसपुङ्गवः ।
धृतिमाञ्छीलवान् वृद्धो रावणस्य सुसम्मतः ।।१२।।

मुझे देखेंगे ?

राम से कहिये कि जल्दी करें, मेरा जीवन तभी तक है जब तक कि यह एक साल का काल पूरा नहीं होता। वानर ! यह दसवां महीना है, दो महीने शेष हैं, जोकि दुष्ट रावण ने मुझे समय दे रखा है। भाई विभीषण ने इसे यत्नपूर्वक बहुत कुछ समझाया, परन्तु यह मुझे वापिस लौटाने को राजी नहीं हो रहा। मेरा लौटाना रावण को पसन्द नहीं, काल के वश में पड़े उसे तो मृत्यु युद्ध में ढूंढ रही है।

कपि ! विभीषण की बड़ी कन्या कला है। माता से भेजी हुई उसने स्वयं मुझसे यह बात कही है कि रावण का बहुत माना हुआ मेधावी विद्वान् धैर्यवान् शीलवान् बूढ़ा राक्षसश्रेष्ठ अविन्ध्य है। उसने राम द्वारा राक्षसों के प्राप्त विनाश के बारे में रावण को

रामस्त्वयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् ।
न च तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥१३॥
आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः ॥१४॥
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥१५॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थाने विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥१६॥
न स शक्यस्तुलयितुं व्यसनैः पुरुषर्षभः ।
अहं तस्यानुभावज्ञा शक्रस्येव पुलोमजा ॥१७॥
शरजालांशुमाञ्छूरः कपे रामदिवाकरः ।
शत्रुरक्षोमयं तोयम् उपशोषं नयिष्यति ॥१८॥

बहुत कुछ कहा, परन्तु वह दुष्ट उसकी हितकारी बात को सुनता ही नहीं ।

हरिश्रेष्ठ ! मुझे पूरा विश्वास है कि मेरे पति शीघ्र मुझे मिलेंगे, क्योंकि मेरा अन्तरात्मा शुद्ध है और उनमें बहुत गुण हैं। वानर ! राम में उत्साह, पौरुष, बल, दया, कृतज्ञता, विक्रम, प्रभाव ये सब गुण हैं। जिन्होंने अकेले बिना भाई की सहायता के जनस्थान में अत्यन्त बलवान् १४ राक्षसों को मार डाला, उनसे कौन शत्रु नहीं कांपेगा ? उन पुरुषश्रेष्ठों की तुलना में दुर्व्यसनी कापुरुष खड़े नहीं हो सकते। उनके प्रभाव को मैं जानती हूं, जैसे कि इन्द्र के प्रभाव को पुलोमा की पुत्री शची जानती है। कपि ! शर-जाल रूपी किरणों वाला राम रूपी शूर दिवाकर शत्रु राक्षसरूपी-पानी को सुखा देगा।"

इति सञ्जल्पमानां तां रामार्थे शोककर्शिताम् ।
अश्रुसम्पूर्णवदनाम् उवाच हनुमान्कपिः ॥१९॥
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन् महतीं हर्य्यृक्षगणसंकुलाम् ॥२०॥
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ।
इत्युक्तवति तस्मिंश्च सीता पुनरथाब्रवीत् ॥२१॥
कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी ।
तं ममार्थे सुखं पृच्छ शिरसा चाभिवादय ॥२२॥
स्रजश्च सर्वरत्नानि प्रिया याश्च वराङ्गनाः ।
ऐश्वर्यं च विशालायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ॥२३॥
पितरं मातरं चैव सम्मान्याभिप्रसाद्य च ।
अनुप्रव्रजितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।

राम के लिए शोक से कृश हुई, तथा आंसुयों से आंखें भर इस प्रकार कहती हुई सीता को हनुमान् वानर ने कहा—"देवि ! आप निश्चय जानिये कि राम मेरे से आपका पता पाते ही वानर व ऋक्षों की बड़ी सेना ले यहां शीघ्र पहुंचेंगे। आप मुझे अपना कोई चिन्ह दें, जिससे राम जान सकें कि मैंने आपको पा लिया है।"

हनुमान् के ऐसा कहने पर सीता फिर बोली—"मनस्विनी कौसल्या ने जिन लोकभर्ता को जना, उन्हें मेरी ओर से सिर से अभिवादन करना और कुशल पूछना। और, जो धर्मात्मा लक्ष्मण मालायों, सब रत्नों, माता आदि श्रेष्ठ प्रिय स्त्रियों, विशाला में विद्यमान पृथिवी भर में दुर्लभ ऐश्वर्य, इस सब अनुत्तम सुख को त्याग कर माता पिता को मना तथा प्रसन्न करके अनुकूलता पूर्वक

आनुकूल्येन धर्मात्मा त्यक्त्वा सुखमनुत्तमम् ॥२४॥
अनुगच्छति काकुत्स्थं भ्रातरं पालवन् वने ।
सिंहस्कन्धो महाबाहुर्मनस्वी प्रियदर्शनः ॥२५॥
पितृवद्वर्तते रामे मातृवन् मा समाचरत् ।
ह्रियमाणां तदा वीरो न तु मां वेद लक्ष्मणः ॥२६॥
वृद्धोपसेवी लक्ष्मीवाञ्छक्तो न बहुभाषिता ॥२७॥
राजपुत्रप्रियश्रेष्ठः सदृशः श्वशुरस्य मे ।
मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः ॥२८॥
न युक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्वहति वीर्यवान् ॥२९॥
यं दृष्ट्वा राघवो नैव वृत्तमार्यमनुस्मरत् ।
स ममार्थाय कुशलं वक्तव्यो वचनान् मम ॥३०॥

राम के पीछे २ वन में चल पड़ा, जिससे कि सुमित्रा सुपुत्रा है। और जो सिंह जैसे कंधों वाला महाबाहु मनस्वी प्रियदर्शन लक्ष्मण वन में भाई की रक्षा करता हुआ उनके पीछे चलता है और राम में पितृवत् वर्तता है तथा मेरे में मातृवत् व्यवहार करता है। जब मैं उसे कटु वचन कह रही थी तब वह वीर यह नहीं जानता था कि मैं हरी जाऊंगी (यदि जानता होता तो वह मेरे कटु वचन कहने पर भी मुझे अकेला छोड़कर न जाता)। वह बृद्धोपसेवी है, लक्ष्मीवान् है, शक्त है, पर फिर भी अपनी बढ़ाई नहीं बघारता। मेरे श्वसुर के समान राजपुत्र राम से अत्यन्त स्नेह करने वाला है, इसीलिए लक्ष्मण भाई सदा राम का मेरे से भीं ज्यादा प्यारा है। जिस कार्य-भार को उठाने में कोई दूसरा तय्यार नहीं होता, उसे यह वीर्यवान् उत्तमतया उठा लेता है। और जिस लक्ष्मण को देखकर राम मृत पिता को याद नहीं करते, मेरे कहने

मृदुर्नित्यं शुचिर्दक्षः प्रियो रामस्य लक्ष्मणः ।
यथा हि वानरश्रेष्ठ दुःखक्षयकरो भवेत् ॥३१॥
त्वमस्मिन् कार्यनिर्वाहे प्रमाणं हरियूथप ।
राघवस्त्वत्समारम्भान् मयि यत्नपरो भवेत् ॥३२॥
इदं ब्रूयाश्च मे नाथं शूरं रामं पुनः पुनः ।
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं सत्येनाहं ब्रवीमि ते ॥३३॥
रावणेनोपरुद्धां मां निकृत्या पापकर्मणा ।
त्रातुमर्हसि वीर त्वं पातालादिव कौशिकीम् ॥३४॥
ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूड़ामणिं शुभम् ।

पर मेरी ओर से उससे कुशल पूछना ।

वानर सेनापति वानरश्रेष्ठ ! आप इस कार्य के निवाहने में प्रमाण हैं। आप ऐसा यत्न कीजिए कि नित्य मृदु, पवित्र, दक्ष, तथा राम का प्यारा लक्ष्मण मेरे दुःखों को काटने वाला बने, और इसी प्रकार राम आपके सदुद्योग से मेरे उद्धार में यत्नशील हों।

और, मेरे नाथ शूर राम को बार २ यह कहिए—"दशरथ-पुत्र ! मैं सिर्फ एक मास जीवन धारण करूंगी, एक मास के बाद जीवित न रहूंगी, मैं यह सत्य की शपथ खा कर आपसे कहती हूं। वीर ! नीच पापी रावण से नजरबन्द की हुई मुझको उसीप्रकार बचाइये जैसे कि पाताल से इन्द्र राजा की लक्ष्मी पुनः बचायी गयी थी।"

इतना कहने के बाद सीता ने कपड़े से ढके दिव्य शुभ चूड़ामणि (शिर के चूड़े की मणि) को उतार कर हनुमान् को

प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥३५॥
प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिरत्नमनुत्तमम् ।
अङ्गुल्या योजयामास नह्यस्य प्राभवद्भुजः ॥३६॥
मणिरत्नं कपिवरः प्रतिगृह्याभिवाद्य च ।
सीतां प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतः पार्श्वतः स्थितः ॥३७॥
हर्षेण महता युक्तः सीतादर्शनजेन सः ।
हृदयेन गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्षणम् ॥३८॥

सर्ग २३

मणिं दत्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः ॥१॥
मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥२॥

दिया कि यह राम को मेरा चिन्ह दे देना।

वीर हनुमान् ने उस अनुत्तम मणि-रत्न को लेकर अंगुलि पर चढ़ा लिया, इसके योग्य भुजा न थी, (यतः वहां से वह औरों को दीख पड़ती)। कपिश्रेष्ठ ने मणिरत्न को लेकर सीता का अभिवादन किया, प्रदक्षिणा की, और झुक कर एक ओर खड़ा हो गया। उस समय वह सीता-दर्शनजन्य महान् हर्ष से युक्त था, अतः उसका ध्यान राम तथा लक्षण-संपन्न लक्ष्मण की ओर गया।

हनुमान का समुद्रपार उतर वानरों से मिलना

सीता ने चूड़ा-मणि देकर हनुमान् को कहा—"यह चिन्ह राम को भली प्रकार ज्ञात है। वीर राम इस मणि को देखकर एक साथ जननी को, मुझे, और राजा दशरथ इन तीनों को स्मरण करेंगे। हरिश्रेष्ठ! इस मणि को पाकर आप फिर राम द्वारा

स भूयस्त्वं समुत्साह-चोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥३॥
त्वमस्मिन् कार्यनिर्योगे प्रमाणं हरिसत्तम ।
तस्य चिन्तय यो यत्नो दुःखक्षयकरो भवेत् ॥४॥
हनूमन् यत्नमास्थाय दुःखक्षयकरो भव ॥५॥
स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ॥६॥
तमुत्पातकृतोत्साहमवेक्ष्य हरियूथपम् ।
वर्धमानं महावेगमुवाच जनकात्मजा ।
अश्रुपूर्णमुखी दीना बाष्पगद्गदया गिरा ॥७॥
हनूमन् सिंहसङ्काशौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्ब्रूया अनामयम् ॥८॥

समुत्तेजित किये जावेंगे। अतः मेरे मोचन विषयक इस कार्य में प्रगति देने के संबन्ध में जो आगे कर्तव्य है, उसे आप सोच रखिये। हरिसत्तम! आप इस कार्य के पूरा करने में प्रमाण हैं, अतः उसके लिए जो यत्न है उसे सोच रखिए, ताकि वह यत्न मेरे दुःख को काटने वाला हो। हनुमान्! आप उस यत्न को पाकर मेरे दुःख को दूर करने वाले बनिये।"

भीमविक्रमी हनुमान् ने 'बहुत अच्छा' ऐसी प्रतिज्ञा करके, सीता को शिर से प्रणाम किया और चलने के लिए तय्यार हुआ। तब बढ़े हुए महावेग वाले उस वानरसेनापति को शीघ्र चल पड़ने को समुद्यत देखकर जनकपुत्री आंखों में आंसु भरकर दीन भाव से रुंधी वाणी से बोली—"हनुमान! सिंहसमान राम-लक्ष्मण भाईयों, तथा अमात्यों सहित सुग्रीव, इन सबको मेरी ओर से

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद् दुःखाम्बुसंरोधात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥९॥
स च वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन् पूजितस्तया ।
तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥१०॥
अल्पशेषमिदं कार्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥११॥
अधिरुह्य ततो वीरः पर्वतं पवनात्मजः ।
ददर्श सागरं भीमं भीमोरगनिषेवितम् ॥१२॥
स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः ।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम् ॥१३॥
स किंचिदारात्सम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ।
महेन्द्रं मेघसङ्काशो ननाद स महाकपिः ॥१४॥

कुशल पूछना, और जैसे भी महाबाहु राम मुझे इस दुःखसागर से तरादें, वैसा आप जन आपने करना।"

इस प्रकार चलते समय सीता द्वारा प्रशंसायुक्त शब्दों से पूजित हनुमान् वानर ने उस स्थान से दूर जाकर सोचा—'यह काले नेत्रों वाली सीता तो देख ली, अब यह छुड़ाने मात्र का थोड़ा सा काम शेष रह गया है। सो, इसके पूरा करने में साम-दान-भेद इन तीन उपायों को छोड़कर चौथा उपाय दण्ड ही यहां उपयुक्त दीख पड़ता है।'

इस निश्चय के बाद हनुमान् ने समुद्रतटवर्ती टीले पर चढ़कर भयंकर सांपों से युक्त घोर समुद्र को देखा, और उसे तैर कर धनुष से छुटे वाण की तरह महावेगवान् बनकर समुद्रपार पहुंच गया। उस महाकपि ने कुछ दूर से ही महागिरि महेन्द्र को

स पूरयामास कपिर्दिशो दश समन्ततः ।
नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ॥१५॥
ये तु तत्रोत्तरे कूले समुद्रस्य महाबलाः ।
पूर्वं संविष्ठिताः शूरा वायुपुत्रदिदृक्षवः ॥१६॥

महतो वायुनुन्नस्य तोयदस्येव निःस्वनम् ।
शुश्रुवुस्ते तदा घोषमुरुवेगं हनूमतः ॥१७॥

ते दीनमनसः सर्वे शुश्रुवुः काननौकसः ।
वानरेन्द्रस्य निर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥१८॥

निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शनकाङ्क्षिणः ॥१६॥

देखा और मेघ समान घोर गर्जना की, ऐसी कि मेघ-शब्द के समान महाशब्द वाले उस वानर ने उच्च नाद से नाद करते हुए चहुं ओर दशों दिशायों को गुंजा दिया।

हनुमान् को देखने के लिए समुद्र के उत्तर तट पर जो महाबली शूर वानर पहले से ही बैठे हुए थे, उन्होंने वायु-प्रेरित घनघोर मेघ के शब्द समान हनुमान् का घोर गर्जना वाला शब्द सुना। उन दुःखी मन वाले सभी वनवासी वानरों ने वानर-सेनापति हनुमान् का वह घोष बार २ ऐसा सुना जैसे कि मेघ रुक २ कर गर्जा करता है।

गर्जना करते हुए हनुमान् की गर्जना सुनकर चहुँ ओर वे सब वानर प्यारे हनुमान् को देखने की अभिलाषा से उत्कण्ठित हो उठे। तब हरिश्रेष्ठ जाम्बवान् ने प्रसन्नता से पुलकित मन हो

जाम्बवान् स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ।
उपामन्त्र्य हरीन् सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥२०॥
सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः ।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥२१॥

तस्य बाहूरुवेगं च निनादं च महात्मनः ।
निशम्य हरयो हृष्टाः समुत्पेतुर्यतस्ततः ॥२२॥

ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥२३॥
ते प्रीताः पादपाग्रेषु गृह्य शाखामवस्थिताः ।
वासांसि च प्रकाशानि समाविध्यन्त वानराः ॥२४॥
गिरिगह्वरसंलीनो यथा गर्जति मारुतः ।
एवं जगर्ज बलवान् हनूमान् मारुतात्मजः ॥२५॥

सब वानरों को अपने समीप बुलाया और कहा—"इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि वह हनुमान सर्वथा सफल हो गया जान पड़ता है, क्योंकि असफल होने पर इसका ऐसा नाद न होता।"

उस महापुरुष की भुजायों तथा जंघायों की ताकत को देखकर और उसकी गर्जना को सुनकर वानर बड़े प्रसन्न हुए, और जहां तहां से आकर इकट्ठे होने लगे। वे हनुमान् को देखने की इच्छा से एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, और एक पर्वत-शिखर से दूसरे पर्वत-शिखर पर खुश होकर चढ़ने लगे। वे प्रसन्न होकर जल्दी २ शाखा को पकड़ कर वृक्षों की चोटियों पर बैठने लगे, जिससे उनके उज्ज्वल वस्त्र भी फट गए।

पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करती हुई हवा जैसे गूंजा करती है, वैसे मारुत-पुत्र बलवान् हनुमान् गरज रहा था। घने

तमभ्रघनसङ्काशमापतन्तं महाकपिम् ।
दृष्ट्वा ते वानराः सर्वे तस्थुः प्राञ्जलयस्तदा ॥२६॥
ततस्तु वेगवान्वीरो गिरेर्गिरिनिभः कपिः ।
निपपात गिरेस्तस्य शिखरे पादपाकुले ॥२७॥
हर्षेणापूर्यमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिर्झरे ।
छिन्नपक्ष इवाकाशात् पपात धरणीधरः ॥२८॥
ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुङ्गवाः ।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥२६॥
परिवार्य च ते सर्वे परां प्रीतिमुपागताः ।
प्रहृष्टवदनाः सर्वे तमागतमुपागमन् ॥३०॥
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ।
प्रत्यर्चयन् हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥३१॥

बादल के समान तेजी से अपनी ओर आते हुए महाकपि को देखकर वे सब हाथ बांधे खड़े हो गए। इतने में पर्वत जैसा अटल, वेगवान्, वीर कपि दक्षिण-तीर-वर्ती पर्वत से चलकर इस उत्तर-तीर-वर्ती महेन्द्र पर्वत के घने वृक्षों वाले शिखर पर पहुंच गया। वहां पहुँचते ही धरणी को धारण करने में समर्थ वह हनुमान् हर्ष से भरपूर भर कर रमणीक पर्वत-निर्झर के समीप एकदम ऐसे गिर गया, जैसे कि कोई धरणीधर विमान पंख कट जाने पर आकाश से नीचे आ गिरता है।

तब प्रसन्न मन के साथ वे सब वानरश्रेष्ठ महापुरुष हनुमान् को घेरकर खड़े हो गये। उसे घेर कर उन सब ने परम प्रसन्नता को पाया, और पुलकित-गात्र होकर वे सब उस अभ्यागत की सेवा में लगे। उन वानरों ने भेंट में मूल-फल

विनेदुर्मुदिताः केचित्केचित्किलकिलां तथा ।
हृष्टाः पादपशाखाश्च आनिन्युर्वानरर्षभाः ॥३२॥
हनूमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्-प्रमुखांस्तदा ।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥३३॥
स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः ।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥३४॥
निषसाद च हस्तेन गृहीत्वा वालिनः सुतम् ।
रमणीये वनोद्देशे महेन्द्रस्य गिरेस्तदा ॥३५॥
हनूमानब्रवीत्पृष्टस्तदा तान्वानरर्षभान् ।
अशोकवनिकासंस्था दृष्टा सा जनकात्मजा ॥३६॥
रक्ष्यमाणा सुघोराभी राक्षसीभिरनिन्दिता ।

लाकर मारुत-पुत्र हरिश्रेष्ठ का सत्कार किया। उस समय मारे खुशी के कई जयनाद गुंजाने लगे, कई किलकारियां मार हंसने लगे और कई वानरश्रेष्ठ बैठने के लिए खुशी २ वृक्ष की टहनियां लाने लगे। तब जाम्बवान् आदि प्रमुख गुरु सदृश बृद्धों, तथा कुमार अंगद को महाकपि ने अभिवादन किया।

सत्कार के योग्य हनुमान् का जाम्बवान् एवं अंगद ने सत्कार किया, और इसी प्रकार दूसरे वानरों ने भी सत्कार किया। तदनन्तर विक्रमी हनुमान् ने संक्षेप से बताया कि मैंने देवी सीता को देख लिया है। इसके बाद वह वाली के पुत्र अंगद का हाथ पकड़ कर महेन्द्र पर्वत के एक रमणीक वन-प्रदेश पर बैठ गया। वहां आगे पूछने पर उसने उन सब वानरों को कहा—

"मैंने जनकपुत्री सीता को देखा है कि वह अशोकवनिका में नजरबन्द है। उस निष्कलंका की अत्यन्त भयानक राक्षसियां

एकवेणीधरा बाला रामदर्शनलालसा ।
उपवासपरिश्रान्ता मलिना जटिला कृशा ॥३७॥
उक्तवाक्यं हनूमन्तमङ्गदस्तु तथाब्रवीत् ।
सर्वेषां हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् ॥३८॥
सत्त्वे वीर्ये न ते कश्चित् समो वातर विद्यते ।
यदवप्लुत्य विस्तीर्णं सागरं पुनरागतः ॥३९॥
जीवितस्य प्रदाता नस्त्वमेको वानरोत्तम ।
त्वत्प्रसादात्समेष्यामः सिद्धार्था राघवेण ह ॥४०॥
अहो स्वामिनि ते भक्तिरहो वीर्यमहो धृतिः ॥४१॥
दिष्ट्या दृष्टा त्वयादेवी रामपत्नी यशस्विनी ।
दिष्ट्या त्यक्ष्यति काकुत्स्थः शोकं सीतावियोगजम् ॥४२॥

रखवाली कर रही हैं। उस बेचारी ने सिर्फ एक ही चोटी कर रखी है, और राम के दर्शनों की प्यासी है। वह उपवासों के कारण बहुत निर्बल हो गयी है, मलिन है, बड़े २ बाल बिखरे पड़े हैं, और कृश है।"

तब हनुमान् से उक्त बात को सुनकर सब हरिवीरों के बीच में अंगद बढ़िया बात बोला—"वानर! सचमुच बल में पराक्रम में तुम्हारे समान कोई दूसरा नहीं है, जोकि तुम विशाल सागर को तैर कर फिर लौट आए हो। वानरोत्तम! तुम अकेले हम सबके जीवन-प्रदाता हो। तुम्हारी कृपा से हम सब सफल होकर राम से भेंट करेंगे। अहो! तुम्हारी स्वामी में भक्ति अपूर्व है। अहो! तुम्हारा पराक्रम अद्वितीय है। अहो! तुम्हारा धैर्य अनुपम है। तुम बड़े सौभाग्यशाली हो कि तुमने राम की पत्नी यशस्विनी सीता देवी को ढूंढ लिया है। तुम्हारी कृपा से राम सीता के

दृष्ट्वा देवी न चानीता इति तत्र निवेदितुम् ।
न युक्तमिव पश्यामि भवद्भिः ख्यातपौरुषैः ॥४३॥

नहि वः प्लवने कश्चिन्नापि कश्चित्पराक्रमे ।
तुल्यः सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ॥४४॥

जित्वा लङ्कां सरक्षौघां हत्वा तं रावणं रणे ।
सीतामादाय गच्छामः सिद्धार्था हृष्टमानसाः ॥४५॥

तेष्वेवं हतशेषेषु राक्षसेषु हनूमता ।
किमन्यदत्र कर्तव्यं गृहीत्वा याम जानकीम् ॥४६॥

रामलक्ष्मणयोर्मध्ये न्यस्याम जनकात्मजाम् ।
किं व्यलीकैस्तु तान्सर्वान् वानरान्वानरर्षभान् ॥४७॥
वयमेव हि गत्वा तान्हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।

वियोगजन्य दुःख को भुला देंगे।"

"वीरो ! एक बात सोचने की है। वह यह कि आप-जैसे विख्यात पराक्रमियों की ओर से राम के पास पहुंच कर यह खबर देनी कि सीता देख तो ली है, परन्तु लाई नहीं गयी, यह उचित प्रतीत नहीं देता। हरिश्रेष्ठो ! आपके समान तैरने में, और आप के समान पराक्रम में देवलोकों में और दैत्यलोकों में कोई नही, इसलिए चलो रण में रावण को मार कर और राक्षस-दल सहित लंका को जीत कर सीता को ले सफल-मनोरथ हो खुशी २ राम के पास जावेंगे। इस प्रकार युद्ध में हनुमान् के नेतृत्व में राक्षसों के मारे जाने पर और क्या कर्तव्य रह जावेगा ? बस जानकी को लेकर चलेंगे। एवं, हम ही जनकपुत्री को राम-लक्ष्मण के मध्य में ला बैठावेंगे, किष्किन्धा में जमा उन सब वानरश्रेष्ठ वानरों को कष्ट देने से क्या मतलब ? हम ही लंका पहुंच उन

राघवं द्रष्टुमर्हामः सुग्रीवं सहलक्ष्मणम् ॥४८॥
तमेवं कृतसङ्कल्पं जाम्बवान् हरिसत्तमः ।
उवाच परमप्रीतो वाक्यमर्थवदर्थवित् ॥४६॥
नैषा बुद्धिर्महाबुद्धे यद् ब्रवीषि महाकपे ॥५०॥
विचेतुं वयमाज्ञप्ता दक्षिणां दिशमुत्तमाम् ।
नानेतुं कपिराजेन नैव रामेण धीमता ॥५१॥
कथंचिन्निर्जितां सीतामस्माभिर्नाभिरोचयेत् ।
राघवो नृपशार्दूलः कुलं व्यपदिशन्स्वकम् ॥५२॥
प्रतिज्ञाय स्वयं राजा सीताविजयमग्रतः ।
सर्वेषां कपिमुख्यानां कथं मिथ्या करिष्यति ॥५३॥

प्रमुख राक्षसों को मार कर लक्ष्मण सहित राम और सुग्रीव के दर्शन करेंगे।"

तब वानरों में सब से बूढ़ा दीर्घदर्शी जाम्बवान् अंगद को इस प्रकार दृढ़-निश्चयी देखकर बहुत खुश हुआ और सारगर्भित बात बोला—

"महाकपि ! जैसा तुम कहते हो, इस महायुद्ध के संबन्ध में ऐसा सोचना ठीक नहीं। हमें उत्तम दक्षिण दिशा को ढूंडने की आज्ञा दी गयी है, न कपिराज सुग्रीव ने और न बुद्धिमान् राम ने सीता को लाने की आज्ञा दी है। अतः कहीं ऐसा न हो कि हमारे द्वारा सीता का छुड़ाया जाना राम या सुग्रीव पसन्द न करें। क्योंकि राजकेसरी राम ने अपने कुल को वखानते हुए सब प्रमुख वानरों के समक्ष प्रतिज्ञा की है कि मैं स्वयं सीता का विजय करूंगा। सो, वह इस प्रतिज्ञा को झूठी कैसे करेंगे ? इसलिए वानरश्रेष्ठो ! जिस कर्म से उनकी संतुष्टि न हुई, वह किया हुआ

विफलं कर्म च कृतं भवेत् तुष्टिर्न तस्य च ।
वृथा च दर्शितं वीर्यं भवेद्वानरपुङ्गवाः ॥५४॥
तस्माद् गच्छाम वै सर्वे यत्र रामः सलक्ष्मणः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कार्यस्यास्य निवेदने ॥५५॥

सर्ग २४

ततो जाम्बवतो वाक्यमगृह्णन्त वनौकसः ।
अङ्गदप्रमुखा वीरा हनूमांश्च महाकपिः ॥१॥
प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवुः प्लवगर्षभाः ॥२॥
मेरुमन्दरसङ्काशा मत्ता इव महागजाः ।
छादयन्त इवाकाशं महाकाया महाबलाः ॥३॥
सभाज्यमानं भूतैस्तमात्मवन्तं महाबलम् ।

काम व्यर्थ होगा, और एवं हमारा दिखाया हुआ पराक्रम भी व्यर्थ जावेगा। इसलिए जहां लक्ष्मण सहित राम और महातेजस्वी सुग्रीव रहते हैं वहां चलते हैं, वहां जाकर उनके समक्ष यह विचार प्रस्तुत करेंगे।"

हनुमान का राम को सीता का संदेश देना

जाम्बवान् की उस सलाह को अंगद प्रमुख वीर वनवासियों तथा महाकपि हनुमान् ने मान लिया। तब वे सब वानर-श्रेष्ठ वायुपुत्र हनुमान् को आगे रखकर खुशी २ महेन्द्र पर्वत से निकल आगे बढ़े। वे आगे बढ़ते हुए ऐसे दीख पड़ रहे थे कि मानो मेरु-मन्दर पर्वत चल रहे हों, या महाकाय महाबली महागज चल रहे हों, जिन्होंने कि आकाश को छा रखा है। आगे बढ़ते हुए वे लोग प्राणिमात्र से पूजनीय आत्मन्वी महाबली महावेगवान्

हनूमन्तं महावेगं वहन्त इव दृष्टिभिः ॥४॥
राघवे चार्थनिर्वृत्तिं कर्तुं च परमं यशः ।
समाधाय समृद्धार्थाः कर्मसिद्धिभिरुन्नताः ॥५॥
प्रियाख्यानोन्मुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ॥६॥
प्लवमानाः खमाप्लुत्य ततस्ते काननौकसः ।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥७॥
यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूतमनोहरम् ॥८॥
यद्रक्षति महावीरः सदा दधिमुखः कपिः ।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥९॥

हनुमान् की ओर इसप्रकार प्रीतिपूर्वक निरन्तर आंखें लगाये हुए थे कि मानो उन्होंने उसे अपनी आंखों पर ही उठा रखा हो। कार्यसिद्धि से विशेष महत्व को पाये हुए और सब ऊंच-नीच सोच-विचार कर सफल-मनोरथ हो वे लोग राम सम्बन्धी काम को पूरा करने और उससे यश पाने के लिए आगे बढ़ रहे थे। वे सब मनस्वी लोग राम को प्रिय सन्देश सुनाने को उत्सुक थे, सब युद्ध का अभिनन्दन कर रहे थे, और सब राम द्वारा किये जाने वाले रावण-प्रतीकार में दृढ़निश्चयी थे।

चलते २ वे सब वनवासी आकाश में उड़ते हुए से जल्दी २ नन्दन वन समान सैंकड़ों वृक्षों से भरपूर मधुवन नामी वन में पहुँचे, जोकि सुग्रीव द्वारा सुरक्षित था, जिससे कोई प्राणी उसे बिगाड़ नहीं सकता था और इसीलिए वह सब मनुष्यों के लिए मनोहर था। इसकी रखवाली वानरराज महात्मा सुग्रीव का

ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः ।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनःकान्तं महावनम् ॥१०॥
ततस्ते वानरा हृष्टा दृष्ट्वा मधुवनं महत् ।
कुमारमभ्ययाचन्त मधूनि मधुपिङ्गलाः ॥११॥
ततः कुमारस्तान् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥१२॥
ते निसृष्टाः कुमारेण धीमता वालिसूनुना ।
हरयः समपद्यन्त द्रुमान् मधुकराकुलान् ॥१३॥
भक्षयन्त सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च ।
जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥१४॥
ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥१५॥

मामा महावीर दधिमुख वानर सदा करता था ।

वे वानर वानरराज के अत्यन्त प्रिय उस मधुवन नामी वन में पहुंच कर बहुत ही खुश हुए। मधु जैसे पिंगल वर्ण वाले उन वानरों ने बहुत बड़े मधुवन को देखकर खुश हो अंगद कुमार से प्रार्थना की कि हम लोग फलों का रसास्वादन कर लें ? इस पर कुमार ने जाम्बवान् प्रभृति उन बृद्ध वानरों से अनुमति करके उन्हें फलों के रसास्वादन के लिए छूट दे दी। तब बुद्धिमान् वालिपुत्र अंगद से छूट पाए हुए वे सब बानर लोग मीठे फलों से भरे वृक्षों पर पिल पड़े, और सुगन्धि युक्त मूलों-फलों को खाकर प्रसन्नचित्त हो अत्यन्त खुश हुए।

रसास्वादन करने के पश्चात् वे सुन्दर वन वाले प्रस्रवण पर्वत पर पहुंचे और महाबली राम तथा लक्ष्मण को सिर से

युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥१६॥
तं मणिं काञ्चनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
दत्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥१७॥
समुद्रं लङ्घयित्वाऽहं शतयोजनमायतम् ।
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ॥१८॥
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ।
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ॥१९॥
तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ।
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ॥२०॥
दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।
राक्षसीभिर्विरूपाभी रक्षिता प्रमदावने ॥२१॥

प्रणाम किया। फिर, युवराज अंगद को आगे रख के उन्होंने सुग्रीव का अभिवादन किया और सीता का हाल-चाल बतलाने लगे। तब हनुमान् ने अपनी ज्योति से चमकती हुई उस सुवर्ण-जटित दिव्य मणि राम को प्रदान कर हाथ जोड़ कहा—

"महाराज! मैं सौ योजन विस्तीर्ण समुद्र को तैर कर जनकपुत्री सीता को देखने की इच्छा से ढूंडता हुआ विचरा। वहां समुद्र पार दक्षिण समुद्र के दक्षिण तीर पर दुरात्मा रावण की लंका नगरी वसी हुई है। उस लंका नगरी में मैंने रावण के महल में सती साध्वी सीता देख ली है। राम! मैंने देखा कि वह आपकी पत्नी आपमें आशा बांधे हुए जी रही हैं, यद्यपि वह राक्षसियों के बीच में घिरी हुई उनसे बार २ डरायी-धमकायी जा रही हैं। वीर! जिस देवी को आपने बड़े सुख से रखा था,

दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥२२॥
एकवेणीधरा दीना त्वयि चिन्तापरायणा ।
अधःशय्या विवर्णाङ्गी पद्मिनीव हिमागमे ॥२३॥
रावणाद्विनिवृत्तार्था मर्तव्यकृतनिश्चया ।
देवी कथंचित्काकुत्स्थ त्वन्मना मार्गिता मया ॥२४॥
इक्ष्वाकुवंशविख्यातिं शनैः कीर्तयताऽनघ ।
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ॥२५॥
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ।
रामसुग्रीवसख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागमता ॥२६॥
नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि ॥२७॥

वह प्रमदावन में कुरूपा राक्षसियों के कठोर पहरे में पड़ी दुःख उठा रही हैं। रावण के रनिवास में नजरबन्द, तथा राक्षसियों के कठोर पहरे में पड़ी हुई सीता दीन हालत में एक चोटी को धारे हुए सदा आपकी चिन्ता में लगी हुई हैं। वह नीचे जमीन पर सोती हैं, शीत ऋतु के आने पर कमल-सरोवर के समान मुर्झाई हुई हैं, रावण के समस्त प्रलोभनों से दूर हैं, और मरने का निश्चय किये बैठी हैं।"

"ऐ निष्पाप काकुत्स्थ ! आपमें मन लगाये हुई उस देवी को मैंने किसी तरह धीरे २ इक्ष्वाकुकुल की कीर्ति को गाते हुए तलाश किया है। नरसिंह ! तब मैंने शनैः २ उनका विश्वास कराया कि मैं राम का दूत हूं। तब वह देवी मेरे से बोलीं, और मैंने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। राम-सुग्रीव की मित्रता को सुनकर वह बहुत खुश हुई। उनका परिशुद्ध क्रिया-कलाप तथा

एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उग्रेण तपसा युक्ता त्वद्भक्त्या पुरुषर्षभ ॥२८॥

विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥२९॥

अयं चास्मै प्रदातव्यो यत्नात्सुपरिरक्षितः ।
ब्रुवता वचनान्यत्र सुग्रीवस्योपश्रृण्वतः ॥३०॥
एष चूड़ामणिः श्रीमान् मया ते यत्नरक्षितः ।
मनःशिलायास्तिलकं तत्स्मरस्वेति चाब्रवीत् ॥३१॥
एष निर्यातितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवः ।
एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥३२॥
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।

भक्ति सदा आपमें जुड़ी हुई हैं। पुरुषश्रेष्ठ ! एवं, मैंने उग्र तप तथा आपमें भक्ति से युक्त महाभागा जनकनन्दिनी को देखा है।

भगवन् ! जानकी ने मुझे कहा है—वायुसुत ! तुमने जैसा मुझे देखा है, पूरे तौर पर वैसा फिर भी मेरी ओर से राम को बतला देना, और सुग्रीव के समक्ष इन बातों को सुनाते हुए यत्नपूर्वक भली प्रकार रखी हुई यह मणि उन्हें दे देना। और, आपके लिए कहा है—आपकी यह सुन्दर चूड़ामणि मैंने यत्न पूर्वक रखी है। इसे देखकर, उस काल में (चूड़ामणि पहिनाने के साथ २ अपने हाथ से किये गये) मैनसिल के तिलक का स्मरण कीजिए। समुद्रजल में उत्पन्न यह सुन्दर मणि मैंने आपके पास भेजी है। निष्पाप ! स्मरण रखिये, जब २ मुझे कोई दुःख होता था तब २ मैं इस मणि को आपका स्वरूप देखकर खुश हो लेती थी। दशरथ-पुत्र ! मैं अब सिर्फ एक मास जीवन धारण

ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥३३॥
इति मामब्रवीत्सीता कृशाङ्गी धर्मचारिणी ।
रावणान्तःपुरे रुद्धा मृगीवोत्फुल्ललोचना ॥३४॥
एतदेव मयाऽऽख्यातं सर्वं राघव यद्यथा ।
सर्वथा सागरजले सन्तारः प्रविधीयताम् ॥३५॥

करूंगी, इस एक मास के बाद, राक्षसों के वश में पड़ी हुई मैं जीवित न रहूंगी।"

भगवन्! रावण के रनिवास में नजरबन्द, और वद्ध हिरनी की तरह आंखें फाड़ २ कर रक्षक को देखने वाली दुर्बल-शरीर धर्मचारिणी सीता ने मुझे इस प्रकार कहा है। राघव! वही मैंने सब कुछ जैसे का तैसा आपको बतला दिया है। अतः, जैसे भी हो समुद्र-जल पर पार उतरने को पुल आदि बनाइए।"

[अशोक वनिका निस्सन्देह अत्यन्त सुन्दर थी। इसकी सुन्दरता का वर्णन देखते ही बनता है। ७वें सर्ग के छठे श्लोक में इसे स्पष्टतः चित्रकानना (सुन्दरकानना) कहा है। अतः सुन्दरकानन में, सुन्दरी सीता को खोज निकालने का, सुन्दर काम, सुन्दर ढंग से करने, तथा २४ सर्ग के १५ वें श्लोक के अनुसार चित्रकानन (सुन्दर वन) वाले प्रस्रवण पर्वत पर राम-सुग्रीव को सीता का सन्देश सुनाने के कारण इस काण्ड का नाम सुन्दरकाण्ड रखा गया है।]

युद्ध काण्ड

सर्ग १

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् ।
रामः प्रीति-समायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥
यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्त्रा कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥२॥
यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥३॥

राम द्वारा हनुमान का आलिंगन और लंका का हाल जानना

इसप्रकार बतायी गयी हनुमान् की यथावत् बात को सुनकर राम बहुत प्रसन्न हुए और हनुमान् से बोले—"प्यारे ! जो सेवक स्वामी द्वारा कठिन काम में नियुक्त हुआ २ प्रीति पूर्वक उस कार्य को ठीक से पूरा कर देता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो सेवक नियुक्त हुआ २ राजा के प्रिय कार्य को, जोकि संदिष्ट कार्य के बीच में कोई दूसरा आ उपस्थित हुआ हो, नहीं करता, जबकि वह उसके करने में उपयुक्त और समर्थ है, उसे मध्यम पुरुष हैं। और, जो सेवक नियुक्त हुआ २ समाहितचित्त होकर राजा

नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः ।
भृत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥४॥
तन्नियोगे नियुक्तेन कृतं कृत्यं हनूमता ।
न चात्मा लघुतां नीतः सुग्रीवश्चापि तोषितः ॥५॥
अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्या दर्शनेनाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥६॥
इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सदृशं प्रियम् ॥७॥
एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥८॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टाङ्गो रामस्तं परिषस्वजे ।

के काम को नहीं करता, जबकि यह उसके करने में उपयुक्त और समर्थ है, उसे अधम पुरुष कहते हैं।

सो, सीतान्वेषण कार्य में नियुक्त हनुमान् ने कर्तव्य कार्य ठीक २ पूरा कर दिया। इसके करने में अपने में हलकापन भी नहीं आने दिया, और सुग्रीव को भी प्रसन्न कर दिया। और मुझको, रघुकुल को, तथा महाबली लक्ष्मण को वैदेही का पता लगाकर धर्म से बचा लिया है।

परन्तु मुझ दुखिया के मन को यह बात बार २ नोच रही है कि मैं इस प्रिय संदेश सुनाने वाले का तदनुरूप प्रिय नहीं कर सक रहा। इस काल में मेरे पास जो यह आलिंगन रूपी सर्वस्व-भूत वस्तु है, लो, यह मैं महात्मा हनुमान् को प्रदान करता हूं।"

ऐसा कह कर प्रीति से प्रफुल्लित-शरीर राम ने उस हनुमान् का आलिंगन किया, जोकि पवित्र आत्मा वाला है और आदेश

हनूमन्तं कृतात्मानं कृतवाक्यमुपागतम् ॥९॥
ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः ।
हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥१०॥
कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद् ब्रवीष्व मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥११॥
बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गक्रियामपि ।
गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥१२॥
यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सर्वमाचक्ष्व तत्त्वेन सर्वथा कुशलो ह्यसि ॥१३॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्मारुतात्मजः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥१४॥
श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्म विधानतः ।

को पूरा उतार कर आया है ।

उसके बाद रघुश्रेष्ठ राम ने कुछ विचार किया, और वानरों के राजा सुग्रीव के समक्ष हनुमान् से फिर पूछा—

"वानर ! भला यह तो बताओ कि दुर्गम लंका के कितने दुर्ग हैं ? मैं उन सब को साक्षात्कार के समान जानना चाहता हूं । सैन्य-संख्या, द्वारों का दुर्गीकरण, लंका के प्राकार-परिखा आदि रक्षा-साधन, और राक्षसों के मकान इन सब को जिस २ रूप में जिस आराम से तुमने लंका में देखा है, वह सब यथार्थ रूप से मुझे बतलायो, तुम इसके सर्वथा प्रवीण जानकार हो ।"

बातचीत में चतुर मारुत-पुत्र हनुमान् राम की बात को सुनकर पुनः उन से बोला—"अच्छा सुनिये, मैं सब कुछ बतलाऊंगा कि किस प्रकार दुर्ग-कर्म करके लंकापुरी को सुरक्षित

गुप्ता पुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥१५॥
राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा ।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥१६॥
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ।
एवमुक्त्वा कपिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्ववित् ॥१७॥
हृष्टप्रमुदिता लङ्का मत्तद्विपसमाकुला ।
महती रथसम्पूर्णा रक्षोगणनिषेविता ॥१८॥
दृढबद्धकपाटानि महापरिघवन्ति च ।
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहान्ति च ॥१९॥
तत्रेषूपलयन्त्राणि बलवन्ति महान्ति च ।
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्यते ॥२०॥

कर रखा है, और किस प्रकार सेना द्वारा सुरक्षित है। रावण के प्रभाव से राक्षस लोग किस प्रकार प्रीतिपूर्वक रहते हैं और किस प्रकार लंका की परम समृद्धि है, तथा किस प्रकार समुद्र की भयंकरता है। किस प्रकार सैन्य-समूह का विभाग है, और किस प्रकार वाहन की व्यवस्था है?" इसप्रकार कहकर यथार्थवेत्ता कपिश्रेष्ठ ने कहना प्रारम्भ किया—

"विशाल लंका नगरी खूब आनन्द-प्रसन्न है, मदमत्त हाथियों से भरपूर है, रथों से परिपूर्ण है, और वहां राक्षसगण निवास करते हैं। इस नगरी के चार बड़े दरवाजे हैं, जो किवाड़ों से मजबूत तौर पर बन्द रहते हैं और उन किवाड़ों पर बड़े २ अर्गल पड़े हुए हैं। उन द्वारों के ऊपर शक्तिशाली बड़े २ बाण तथा उपल यंत्र रखे हुए हैं, जो कि आई हुई शत्रु सेना को बाहर से ही खदेड़ देते हैं। एवं, उन द्वारों पर वीर राक्षस-दलों सहित,

द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालायसमयाः शिताः ।
शतशो रचिता वीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ॥२१॥
सौवर्णस्तु महांस्तस्याः प्राकारो दुष्प्रधर्षणः ।
मणिविद्रुमवैदूर्य–मुक्ताविरचितान्तरः ॥२२॥
सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः ।
अगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीनसेविताः ॥२३॥
द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः ।
यन्त्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपङ्क्तिभिः ॥२४॥
त्रायन्ते संक्रमास्तत्र परसैन्यागते सति ।
यन्त्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखासु समन्ततः ॥२५॥
एकस्त्वकम्प्यो बलवान् संक्रमः सुमहादृढः ।

अच्छी बनी हुई लोह निर्मित तीखी भयंकर सौ-सौ तोपें रखी हुई हैं। उसका विशाल परकोटा सोने का बना हुआ है, जिसको लांघना कठिन है, और वह बीच २ में मणियों, प्रवालों, वैदूर्यों और मोतियों से जड़ा हुआ है। परकोटे के चारों ओर अगाध जल वाली परिखायें है, जो कि बहुत बड़ी शीतल जल वाली, अत्यन्त सुन्दर, मगरमच्छों से युक्त और मछलियों से परिपूर्ण हैं। उन परिखायों के ऊपर द्वारों पर चार विशाल पुल बने हुए हैं जिन पर बड़ी २ गृह-पंक्तियां हैं, और बहुत से यंत्र लगे हुए हैं। शत्रु सेना के आने पर ये यंत्र पुलों की रक्षा करते हैं, और उस शत्रु सेना को परिखाओं में फैंक देते हैं। इन चारों पुलों में मुख्य द्वार का एक पुल विशेष तौर पर दुर्वेध्य है, क्योंकि वहां बहुत बड़ी सेना रखी हुई है और अत्यन्त ही मजबूत है। वह सोने के अनेक खम्भों तथा वेदिकायों से सुशोभित है।

काञ्चनैर्बहुभिः स्तम्भैर्वेदिकाभिश्च शोभित. ॥२६॥
स्वयं प्रकृतिमापन्नो युयुत्सू राम रावणः ।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥२७॥
लङ्का पुनर्निरालम्बा देवदुर्गा भयावहा ।
नादेयं पर्वतं चान्यं कृत्रिमं च चतुर्विधम् ॥२८॥
स्थिता पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राघव ।
नौपथश्चापि नास्त्यत्र निरुद्देशश्च सर्वशः ॥२६॥
शैलाग्रे रचिता दुर्गा सा पूर्देवपुरोपमा ।
वाजिवारणसम्पूर्णा लङ्का परमदुर्जया ॥३०॥
परिखाश्च शतघ्न्यश्च यन्त्राणि विविधानि च ।

राम ! रावण युद्ध करने को सदैव उत्कण्ठित रहता है, परन्तु फिर भी उसका अन्तःकरण विक्षुब्ध नहीं होता, वह सेना की देखभाल में उद्यत तथा सावधान रहता है। फिर लंका नगरी चढ़ाई के लिए आलम्बन रहित है (इतनी चिकनी बनी हुई है), जोकि विशिष्ट कारीगर द्वारा निर्मित दुर्ग-रूप भयावहा है। दूसरा दुर्ग नादेय है, जोकि उस नगरी के रास्ते में पहाड़ी नदी पड़ती है। तीसरा दुर्ग पार्वत है, जबकि वह नगरी पर्वत पर बनी हुई है। और, चौथा दुर्ग कृत्रिम है, जबकि उसके चहुं ओर खाई और परकोटा हैं। एवं, लंका नगरी चार प्रकार के दुर्गों से युक्त है। राघव ! चौड़े पाट वाले समुद्र के पार वह अवस्थित है। वहां जाने का कोई नौका-मार्ग भी नहीं, और सर्वत्र बीच में प्रदेश रहित है। इस प्रकार वह देवपुरी-जैसी दुर्गम लंकापुरी पर्वत-शिखर पर बनी हुई हाथी-घोड़ों से परिपूर्ण अत्यन्त दुर्जेय है। दुरात्मा रावण की उस पुरी को खाइयां, तोपें, तथा विविध

शोभयन्ति पुरीं लङ्कां रावणस्य दुरात्मनः ॥३१॥

सर्ग २

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन् महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥१॥
यन्निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥२॥
अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥३॥
सीतां हृत्वा तु तद्यातु क्वासौ यास्यति जीवितः ।
सीता श्रुत्वाभियानं मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वाऽमृतमिवातुरः ॥४॥

प्रकार के यंत्र शोभायमान कर रहे हैं।"

लंका पर चढ़ाई के लिए प्रस्थान और समुद्र पर पड़ाव

अनुक्रम से हनुमान् की यथावत् बात को सुनकर सत्य-पराक्रमी महातेजस्वी राम बोले—

"हनुमान् ! भीम राक्षस की लंकापुरी का जैसा तुमने वर्णन किया है, मैं शीघ्र उसका संहार करूंगा, यह बात मैं तुम्हें सच कहता हूं। सुग्रीव ! इसी समय प्रस्थान को पसन्द कीजिए, यह काल विजय-मुहूर्त में उपयुक्त है, जल्दी कजिए, सूर्य दोपहरी में पहुंच गया है। वह राक्षस सीता को हर कर अपने देश में बेशक पहुंच जावे, परन्तु वह जीता हुआ जावेगा कहां ? सीता मेरी चढ़ाई को सुनकर जीविताशा को पावेगी, जैसे कि मौत के मुंह में पड़ा रोगी अमृतदायिनी संजीवनी ओषधि को छूकर व पान कर जीवन की आशा को पाता है। आज उत्तराफाल्गुणी

उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ॥५॥
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन सुपूजितः ।
उवाच रामो धर्मात्मा पुनरप्यर्थकोविदः ॥६॥
अग्रे यातु बलस्यास्य नीलो मार्गमवेक्षितुम् ।
वृतः शतसहस्रेण वानराणां तरस्विनाम् ॥७॥
फलमूलवता नील शीतकाननवारिणा ।
पथा मधुमता चाशु सेनां सेनापते नय ॥८॥
दूषयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलोदकम् ।
राक्षसाः पथि रक्षेथास्तेभ्यस्त्वं नित्यमुद्यतः ॥९॥
निम्नेषु वनदुर्गेषु वनेषु च वनौकसः ।

नक्षत्र है, कल चन्द्रमा हस्त नक्षत्र से योग करेगा, अतः सुग्रीव ! समस्त सेना को लेकर आज ही प्रस्थान करें। (सीता का जन्म उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में हुआ था, अतः उसकी मुक्ति के निमित्त प्रस्थान के लिए राम को यह दिन उचित जान पड़ा) ।"

वानरराज सुग्रीव ने और लक्ष्मण ने राम का यह प्रस्ताव पसन्द किया। तिस पर कर्तव्य-ज्ञाता धर्मात्मा रामने आगे कहा—

"११ सौ शीघ्रगामी वानरों को साथ लेकर नील यात्रा-मार्ग की देखभाल के लिए इस सेना के आगे २ चले। सेनापति नील ! जावो, फल-मूल वाले तथा शीतल कानन-जल वाले सुखप्रद मार्ग से अग्रगामिनी सेना को शीघ्र ले जावो। देखो, दुरात्मा राक्षस लोग मार्ग में मूल-फल-जल को शायद विष आदि से बिगाड़ दें, तुमने सदा सावधान रहकर उन राक्षसों से मार्ग में उन पदार्थों की रक्षा करना। और, वानर लोग भू-तल के नीचे

अभिप्लुत्याभिपश्येयुः परेषां निहितं बलम् ॥१०॥
यत्तु फल्गु बलं किंचित्तदत्रैवोपपद्यताम् ।
एतद्धि कृत्यं घोरं नो विक्रमेण प्रयुज्यताम् ॥११॥
सागरौघनिभं भीममग्रानीकं महाबलाः ।
कपिसिंहाः प्रकर्षन्तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥१२॥
गजश्च गिरिसङ्काशो गवयश्च महाबलः ।
गवाक्षश्चाग्रतो यातु गवां दृप्त इवर्षभः ॥१३॥
यातु वानरवाहिन्या वानरः प्लवतां पतिः ।
पालयन्दक्षिणं पार्श्वमृषभो वानरर्षभः ॥१४॥
गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।
यातु वानरवाहिन्याः सव्यं पार्श्वमधिष्ठितः ॥१५॥

वने दुर्गों, तथा जंगलों में घूम २ कर दुश्मनों की छिपी सेना को देखें। सेना का जो कोई सारहीन भाग है, उसे यहीं किष्किन्धा में रहने दो, क्योंकि यह हमारा युद्ध बड़ा भयंकर है, अतः, विक्रम-युक्त सैन्य से ही विजय-यात्रा को सज्जित करो। महाबली कपिशार्दूल दूसरे सेनापति सौ-सौ, हजार-हजार सागर-प्रवाह के समान गर्जने वाले, भयानक, तथा श्रेष्ठ सैनिकों को साथ लेकर चलें।

पर्वत समान ऊंचा गज सेनापति, महाबली गवय सेनापति, और गौओं के बीच में मत्त सांढ के समान बली गवाक्ष सेनापति आगे चले। वानरश्रेष्ठ ऋषभ सेनापति वानर-सेना के साथ दक्षिण पार्श्व को रखता हुआ कूच करे। (जिसके मद-गन्ध से दूसरे हाथी भाग जाते हैं, उस हाथी को गन्ध-हस्ती कहते हैं।) गन्धहस्ती के समान अजेय तथा वेगवान् गन्धमादन सेनापति

अङ्गदेनैष संयातु लक्ष्मणश्चान्तकोपमः ।
सार्वभौमेन भूतेशो द्रविणाधिपतिर्यथा ॥१६॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षराजो महाबाहुः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥१७॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यो वानरान् वानरर्षभः ॥१८॥
ते वानरगणाः सर्वे समुत्पत्य महौजसः ।
गुहाभ्यः शिखरेभ्यश्च आशु पुप्लुविरे तदा ॥१९॥
ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥२०॥
ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥२१॥

वानर सेना के साथ बांये पार्श्व में अधिष्ठित होकर प्रस्थान करे। अंगद के साथ मृत्यु समान लक्ष्मण प्रयाण करे, जैसे कि भूतों का राजा कुबेर (भूटान का राजा) सार्वभौम राजा इन्द्र के साथ चलता है। ऋक्षों का राजा महाबाहु जाम्बवान्, सुषेण, तथा वेगदर्शी वानर, ये तीनों सेनापति मध्य प्रदेश की रक्षा करें।

इस प्रकार राम के वचन को सुनकर तदनुसार प्रधान सेनापति महाबली वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने वानरों को प्रस्थान का आदेश दिया। तब वे सब महाबली वानर दल गुफायों और पर्वत शिखरों से आकर शीघ्र चल पड़े।

तत्पश्चात् सब के अन्त में वानरराज सुग्रीव और लक्ष्मण से अनुमोदित धर्मात्मा राम सुग्रीव को साथ लेकर सैन्य सहित दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित हो गए।

वे सह्य और मलय महापर्वत को पार कर भयंकर गर्जना

अवरुह्य जगामाशु वेलावनमनुत्तमम् ।
रामो रमयतां श्रेष्ठः ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ॥२२॥
अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सहसोत्थितैः ।
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥२३॥
एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता ॥२४॥
अतः परमतीरोऽयं सागरः सरितां पतिः ।
न चायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥२५॥
तदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह ।
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥२६॥
इतीव स महाबाहुः सीताहरणकर्षितः ।
रामः सागरमासाद्य वासमाज्ञापयत्तदा ॥२७॥

वाले समुद्र पर पहुंच गए। मलय पर्वत से नीचे उतर रमतों में श्रेष्ठ राम सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित शीघ्र समुद्र तीरवर्ती अनुपम वन की ओर चल दिए। तब सहसा उठे जल-प्रवाहों से प्रक्षालित शिलाओं वाले विपुल तट पर पहुँच कर राम ने कहा—

"सुग्रीव ! ये हम समुद्र पर पहुँच गए हैं, अब यहां वह विचारणीय विषय उपस्थित है, जोकि किष्किन्धा में ही पहले हमारे सामने आया था। यहां से आगे नदियों को धारण करने वाले समुद्र का किनारा नहीं दीख पड़ता, और यह समुद्र बिना उपाय के तरा नहीं जा सकता। इसलिए यहीं पड़ाव डालिए और विचार प्रारम्भ कीजिए कि किस प्रकार यह वानरसेना परले पार पहुँच जावे।"

तब इसप्रकार सीता-हरण से खिंचे हुए महाबाहु राम ने समुद्र पर पहुँच कर पड़ाव डालने की आज्ञा दी कि हरिश्रेष्ठ

सर्वाः सेना निवेश्यन्तां वेलायां हरिपुङ्गव ।
सम्प्राप्तो मन्त्रकालो नः सागरस्येह लङ्घने ॥२८॥
स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् ।
गच्छन्तु वानराः शूरा ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥२६॥
रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥३०॥
विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् ।
मधुपाण्डुजलः श्रीमान् द्वितीय इव सागरः ॥३१॥
सा तु नीलेन विधिवत् स्वारक्षा सुसमाहिता ।
सागरस्योत्तरे तीरे साधु सा विनिवेशिता ॥३२॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तत्र वानरपुङ्गवौ ।
विचेरतुश्च तां सेनां रक्षार्थं सर्वतो दिशम् ॥३३॥

सुग्रीव ! समुद्रतीर पर सारी सेना ठहरा दीजिए, हमारा अब विचार-काल आ उपस्थित हुआ है कि हम समुद्र को कैसे पार करें। कोई सेनापति अपनी २ सेना को छोड़ कर कहीं मत जावे, हां, कुछ शूर वानर इधर-उधर जावें और शत्रु के छिपे भय को जानें।"

राम के आदेश को सुनकर लक्ष्मण सहित सुग्रीव ने समुद्र के वृक्षावृत तट पर सेना को ठहरा दिया। तब सागर के समीप में स्थित वह सैन्यबल, मधु जैसे पिंगल वर्ण वाले वानर-जल वाला, एक दूसरा चमकीला सागर दीख पड़ने लगा। एवं, सागर के इस तीर पर साधुतया ठहरायी गई इस सेना को नील सेनापति ने विधिपूर्वक चारों दिशाओं से पूर्ण सुरक्षित तथा सावधान किया। मैन्द और द्विविद, ये दोनों वानरश्रेष्ठ उस सेना की रक्षा के लिए उसके चारों ओर घूम रहे थे।

सर्ग ३

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ।
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान् ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥१॥
धर्षिता च प्रविष्टा च लङ्का दुष्प्रसहा पुरी ।
तेन वानरमात्रेण दृष्टा सीता च जानकी ॥२॥
प्रासादो धर्षितश्चैत्यः प्रवरा राक्षसा हताः ।
आविला च पुरी लङ्का सर्वा हनुमता कृता ॥३॥
किं करिष्यामि भद्रं वः किं वो युक्तमनन्तरम् ।
उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ॥४॥
मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः ।

रावण की मंत्रियों से मंत्रणा

उधर दूसरी ओर महात्मा इन्द्र जैसे पराक्रमी हनुमान् द्वारा लंका में किए गए भयावह घोर कर्म को देखकर लज्जा के मारे कुछ नीचे मुंह किए रावण सब राक्षसों से बोला—"उस संकुचित शरीर वाले वानर ने दुर्जेय लंका पुरी को नीचा दिखाया और उसमें प्रविष्ट हो गया, और जानकी सीता को देख लिया। उसने उच्च राजमहल को छाना, पहरेदार प्रवर राक्षसों की आंखों में धूल झोंकी, और एवं सारी लंकापुरी को चलायमान कर दिया। तुम्हारा कल्याण हो मैं क्या करूं, और अब इसके बाद तुम सब को क्या करना योग्य है ? जो काम किया हुआ प्रभावशाली हो, और जो भली प्रकार किया जा सके, उसे बतलाओ। मननशील लोग बतलाते हैं कि विजय तब होती है जब कि खूब सोच-विचार कर कदम उठाया जावे। इसलिए महावीरो ! राम के प्रति हमें

तस्माद् वै रोचये मन्त्रं रामं प्रति महाबला: ॥५॥
त्रिविधा: पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमा: ।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥६॥
मन्त्रस्त्रिभिर्हि संयुक्तः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपि वाऽधिकै: ॥७॥
सहितो मन्त्रयित्वा य: कर्मारम्भान्प्रवर्तयेत् ।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहु: पुरुषोत्तमम् ॥८॥
एकोऽर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मन: ।
एक: कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥९॥
गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैवव्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति य: कार्यमुपेक्षेत् स नराधम: ॥१०॥

क्या करना चाहिए, इस पर मैं आपका विचार जानना चाहता हूं।

उत्तम-मध्यम-अधम रूप से लोक में तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। मैं उन सब के गुण-दोषों को बतलाता हूं। मंत्रणा वह कहलाती है जो कि विचार-निर्णय में समर्थ एकमति वाले तीन मित्रों अथवा एकमति वाले तीन से भी अधिक बन्धुओं के साथ मिलकर की जाती है। इस प्रकार इकट्ठे मिलकर मंत्रणा करके जो कर्म को प्रारम्भ करता है, तथा परमात्म देव की सहायता पाने का यत्न करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो अकेला प्रस्तुत विषय के ऊंच-नीच को सोचता है, अकेला उसे करना तै करता है, और अकेला तदनुसार कार्य करता है, उसे मध्यम पुरुष कहते हैं। और जो गुण-दोष को विना निश्चय किए, तथा परमात्म देव की सहायता-सहारे को त्याग कर 'मैं करूंगा' ऐसा निश्चय कर प्रारम्भ करदे और फिर उसकी उपेक्षा करदे वह नराधम

यथेमे पुरुषा नित्यम् उत्तमाधममध्यमाः ।
एवं मन्त्रोऽपि विज्ञेयः उत्तमाधममध्यमः ।।११।।
ऐकमत्यमुपागम्य शास्त्रदृष्टेन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुर्मन्त्रमुत्तमम् ।।१२।।
बह्वीरपि मतीर्गत्वा मन्त्रिणामर्थनिर्णयः ।
पुनर्यत्रैकतां प्राप्तः स मन्त्रो मध्यमः स्मृतः ।।१३।।
अन्योन्यमतिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयोऽस्ति मन्त्रः सोऽधम उच्यते ।।१४।।
तस्मात्सुमन्त्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः ।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्ताम् एतत्कृत्यं मतं मम ।।१५।।

कहलाता है ।

जिस प्रकार ये पुरुष उत्तम-मध्यम-अधम होते हैं उसी प्रकार सलाह भी उत्तम-मध्यम-अधम जाननी चाहिए । सलाहकार लोग एकमत होकर जहां शास्त्रोक्त-नेत्र से प्रतिष्ठित होते हैं, उस सलाह को उत्तम कहते हैं। प्रारम्भ में अनेक विभिन्न मतियों को पाकर भी अन्त में जहां मंत्री लोगों का तत्सम्बन्धी निश्चय एकता को प्राप्त हो जाता है, उस सलाह को मध्यम कहते हैं। यहां एक-दूसरे की मति को लेकर उसके विरुद्ध ही कहा जाता है (और इसप्रकार एकमति नहीं होती), और यदि किसी तरह एकमति पर पहुंच भी जावें तो उस से कोई कल्याण नहीं, उस सलाह को अधम कहते हैं।

इसलिए श्रेष्ठमति वाले आप लोगों को भली प्रकार मंत्रणा किया हुआ जो कार्य ठीक जंचे, उस कार्य को एकमति से निश्चित कीजिए, बस यही कार्य मेरे लिए कृत्य होगा, ऐसा मैं समझता

वानराणां हि धीराणां सहस्रैः परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥१६॥
तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ।
तरसा युक्तरूपेण सानुजः सबलानुगः ॥१७॥
तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥१८॥

सर्ग ४

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ।
द्विषत्पक्षमविज्ञाय नीतिबाह्यास्त्वबुद्धयः ॥१॥
राजन् परिघशक्त्यृष्टिशूलपट्टिशसंकुलम् ।
सुमहन्नो बलं कस्माद् विषादं भजते भवान् ॥२॥

हूं, क्योंकि धैर्यवान् हजारों वानरों को साथ लेकर राम हमें घेरने के लिए लंकापुरी में शीघ्र आ ही रहे हैं। यह साफ़ है कि राम, लक्ष्मण और सैन्य को साथ लेकर बहुत शीघ्र समुद्र को सुखपूर्वक युक्ति से पार कर लेगा। वानरों को साथ लेकर राम के इस प्रकार चढ़ाई करने पर जिससे मेरे पुर और सैन्य का भला हो, वैसी सब सलाह दीजिये।"

राक्षसों का रावण को प्रोत्साहित करना

जब इस प्रकार रावण ने महाबली राक्षस मंत्रियों को कहा तो वे सब नीति से बाहर बुद्धिहीन लोग शत्रु पक्ष को बिना जाने राक्षसराज से हाथ जोड़कर बोले—

"राजन्! गदा, शक्ति, तलवार, शूल तथा पटे से युक्त हमारी बहुत बड़ी सेना है, आप क्यों विषाद कर रहे हैं? आपने

त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥३॥
कैलासशिखरावासी यक्षैर्बहुभिरावृतः ।
सुमहत्कदनं कृत्वा वश्यस्ते धनदः कृतः ॥४॥

स महेश्वरसख्येन श्लाघमानस्त्वया विभो ।
निर्जितः समरे रोषाल्लोकपालो महाबलः ॥५॥
विनिपात्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य विनिगृह्य च ।
त्वया कैलासशिखराद् विमानमिदमाहृतम् ॥६॥
मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात् सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुङ्गव ॥७॥
दानवेन्द्रो महाबाहो वीर्योत्सिक्तो दुरासदः ।
विगृह्य वशमानीतः कुम्भीनस्याः सुखावहः ॥८॥
निर्जितास्ते महाबाहो नागा गत्वा रसातलम् ।

भोगवती पर हमला करके युद्ध में पन्नग जाति को जीता है। आपने महासंहारी युद्ध करके कैलास पर्वत-वासी यक्षों के राजा कुबेर को अपने अधीन किया है। राजन् ! आपने उस महाबली लोकपालक कुबेर को युद्ध में जीता है, जिसकी परमेश्वर-भक्ति के कारण बड़ी प्रशंसा की जाती थी। आप उस युद्ध में अनेकों यक्षों को मारकर, अनेकों को घबराहट में डालकर, तथा अनेकों को कैद करके कैलास से इस नामी पुष्पक विमान को ले आए हैं।

राक्षसश्रेष्ठ ! आपके डर के कारण मैत्री की इच्छा से दानवों के राजा मय ने अपनी पुत्री मन्दोदरी आपको पत्नी-रूप में प्रदान की और महाबाहु ! आपने उस अभिमानी तथा दुर्जेय दानवेन्द्र को, जोकि कुम्भीनसी का सुखदायक पति था, युद्ध करके अपने अधीन किया। महाबाहु ! आपने दानव जाति के अन्तर्गत

वासुकिस्तक्षकः शङ्खो जटी च वशमाहृताः ।
अक्षया बलवन्तश्च शूरा लब्धवराः पुनः ॥९॥
त्वया संवत्सरं युद्ध्वा समरे दानवा विभो ।
स्वबलं समुपाश्रित्य नीता वशमरिन्दम ॥१०॥
मायाश्चाधिगतास्तत्र बह्व्यो वै राक्षसाधिप ॥११॥
शूराश्च बलवन्तश्च वरुणस्य सुता रणे ।
निर्जितास्ते महाभाग चतुर्विधबलानुगाः ॥१२॥
मृत्युदण्डमहाग्राहं शाल्मलीद्रुममण्डितम् ।
कालपाशमहावीचिं यमकिंकरपन्नगम् ॥१३॥
महाज्वरेण दुर्धर्षं यमलोकमहार्णवम् ।
अवगाह्य त्वया राजन् यमस्य बलसागरम् ॥१४॥
जयश्च विपुलः प्राप्तो मृत्युश्च प्रतिषेधितः ।

नागे, जोकि भूमि के नीचे नगर बनाकर रहते थे, वहां पहुंचकर उन्हें जीता, और उनके वासुकि, तक्षक, शंख तथा जटी नाम के असीम बलवान् तथा वर-प्राप्त शूरों को अपने अधीन किया। अरिदमन राजन् ! आपने इस प्रकार अपनी सेना सहित वर्ष भर रणभूमि में युद्ध करके दानव लोगों को अपने वश में किया, और फिर हे राक्षसराज ! आपने उस युद्ध में मय के अनेक रहस्यों को भी जान लिया।

महाभाग ! आपने हाथी-घोड़े-रथ-पदाति, चारों प्रकार की सेना से युक्त शूर-बलवान् वरुण राजा के पुत्रों को युद्ध में जीता। और आपने यम राजा के सैन्य-समुद्र में घिर कर भी महान् विजय प्राप्त की, और यम को राजगद्दी से हटा दिया। कांटेदार सींवल की लकड़ी का बना मौत का डण्डा इस सैन्य-सागर का

सुयुद्धेन च ते सर्वे लोकास्तत्र सुतोषिताः ॥१५॥
क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्यपराक्रमैः ।
आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥१६॥
तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन् हताः समरदुर्जयाः ॥१७॥
तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान् ।
अयमेको महाराज इन्द्रजित्क्षपयिष्यति ॥१८॥
अनेन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् ।
इष्ट्वा यज्ञं वरो लब्धो लोके परमदुर्लभः ॥१९॥

महाग्राह मगर था, मौत का फन्दा बड़ी लहर थी और यमराज के अनुचर समुद्र के सांप थे। एवं यमराजा के सैन्य लोगों का यह महासमुद्र निर्बल से नहीं मथा जा सकता था। इसप्रकार उत्तम युद्ध के द्वारा आपने वहां के सब निवासियों को प्रसन्न कर दिया। (पता लगता है वहां के निवासी यम राजा के अत्याचारों से बड़े दुःखी थे)। यमराजा की वह वसुमती नगरी पराक्रम में इन्द्र समान अनेक क्षत्रिय वीरों से इस प्रकार पूर्ण थी जैसे कि कोई भू-खण्ड ऊंचे वृक्षों से परिपूर्ण हो।

राजन्! इस प्रकार जब युद्ध में दुर्जेय ऐसे २ वीर राजाओं को रण में परास्त कर आपने दबा दिया, तो फिर राम तो उन वीरों के पराक्रम-बल-उत्साह के सामने उनके भी समान नहीं। महाराज! आप आराम से रहिये, आपको उन वानरों के लिए कष्ट उठाने की क्या आवश्यकता है? महाराज! यह अकेला आपका पुत्र इन्द्रजित ही उन्हें खत्म कर देगा। महाराज! इसने परमेश्वर की अनुत्तम उपासना करके लोक में परम दुर्लभ वर

शक्तितोमरमीनं च विनिकीर्णान्त्रशैवलम् ।
गजकच्छपसम्बाधम् अश्वमण्डूकसंकुलम् ॥२०॥
रुद्रादित्यमहाग्राहं मरुद्वसुमहोरगम् ।
रथाश्वगजतोयौघं पदातिपुलिनं महत् ॥२१॥
अनेन हि समासाद्य देवानां बलसागरम् ।
गृहीतो दैवतपतिर्लङ्कां चापि प्रवेशितः ॥२२॥
पितामहनियोगाच्च मुक्तः शम्बरवृत्रहा ।
गतस्त्रिविष्टपं राजन् सर्वदेवनमस्कृतः ॥२३॥
तमेव त्वं महाराज विसृजेन्द्रजितं सुतम् ।
यावद्वानरसेनां तां सरामां नयति क्षयम् ॥२४॥

पाया है। उसी वर के प्रताप से इसने देवों के सैन्य-सागर का मुकाबला करके देवराजा इन्द्र को गिरफ्तार कर लिया और लंका में ला कैद किया। अपने बाबा की आज्ञा होने पर इन्द्रजित ने शम्बर और वृत्र असुरों को मारने वाले इन्द्र को कैद से मुक्त किया, और राजन् ! फिर कहीं वह सब देवों का पूजनीय इन्द्र अपने राज्य तिब्बत में पहुंचा। इन्द्रजित और इन्द्र के इस महा-युद्ध-सागर में शक्ति और तोमर मच्छ थे, इधर-उधर बिखरी अन्तड़ियां काई थी, कछुए स्थानीय हाथियों की भरमार थी, मेंडकों की जगह घोड़ों का बाहुल्य था, रुद्र और आदित्य राजा महाघड़ियाल थे, मरुत् और वसु लोग महासर्प थे, रथ-अश्व-हाथी जल-प्रवाह थे, और पदाति सैनिक बड़े२ टीले थे। महाराज ! आप उसी इन्द्र-जित पुत्र को खुला छोड़िये, जब तक कि वह राम सहित वानर सेना को नष्ट नहीं कर देता। राजन् ! आप के दिल में एक मामूली आदमी से जो यह आफत सवार हुई है, वह आपके लिए

राजन्नापद्युक्तेयमागता प्राकृताज्जनात् ।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥२५॥

सर्ग ५

ततो निकुम्भो रभसः सूर्यशत्रुर्महाबलः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च महापार्श्वमहोदरौ ॥१॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसाः ।
इन्द्रशत्रुश्च बलवांस्ततो वै रावणात्मजः ॥२॥
प्रहस्तोऽथ विरूपाक्षो वज्रदंष्ट्रो महाबलः ।
धूम्राक्षोऽथ निकुम्भश्च दुर्मुखश्चैव राक्षसः ॥३॥
परिघान्पट्टिशाञ्छूलान् प्रासाञ्छक्तिपरश्वधान् ।
चापानि च सुबाणानि खड्गांश्च विपुलान् शितान् ॥४॥
प्रगृह्य परमक्रुद्धाः समुत्पत्य च राक्षसाः ।

अयोग्य है। आप दिल में इस आफत को मत लाइए, आप राम को अवश्य मारेंगे।"

रावण को मंत्री भाई विभीषण का समझाना

इसके बाद उपर्युक्त मंत्री सभा में उपस्थित कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ, रभस, महाबली सूर्यशत्रु, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, महापार्श्व, महोदर और दुर्जेय अग्निकेतु ये राक्षस, तथा उसके बाद रावण का पुत्र बलवान् इन्द्रशत्रु इन्द्रजित्, प्रहस्त, विरूपाक्ष, महाबली वज्रदंष्ट्र, धूम्राक्ष, निकुम्भ (यह दूसरा कोई है) तथा दुर्मुख राक्षस-सभा को समाप्त समझ चलने को उठे। इनके हाथों में गदायें, पटे, भाले, बरछे, शक्तियें, कुल्हाड़े, बढ़िया बाणों सहित धनुष और अत्यधिक तीखे खड्ग थे। चलते समय इन सब ने गुस्से में भर कर अग्नि की तरह लाल हो रावण से कहा—

अब्रुवन् रावणं सर्वे प्रदीप्ता इव तेजसा ॥५॥
अद्य रामं वधिष्यामः सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
कृपणं च हनूमन्तं लङ्का येन प्रधर्षिता ॥६॥
तान्गृहीतायुधान्सर्वान् वारयित्वा विभीषणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥७॥
अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते ।
तस्य विक्रमकालांस्तान् युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥८॥
प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिद्ध्यन्ति परीक्ष्य विधिना कृताः ॥९॥
अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् ।

"आज हम लोग राम को, लक्ष्मण सहित सुग्रीव को, तथा तुच्छ हनुमान् को, कि जिसने लंका को नीचा दिखाया है, मार डालेंगे।"

इस पर विभीषण ने हाथों में हथियार लिए हुओं उन को रोका और पुनः बैठला कर हाथ जोड़ उन्हें तथा रावण से कहा—

"प्रिय ! जो कार्य साम-दान-भेद, इन तीन उपायों से किसी तरह नहीं पाया जा सकता, उसकी प्राप्ति के लिए नीति-विशारद लोग उन आगे कहे हुए दण्ड-अवसरों को उपयुक्त कहते हैं। प्रिय ! प्रमादियों, दूसरे दुश्मनों से उलझे हुओं, तथा महा-रोगादि दैवी आपत्तियों से सताये हुओं पर सोच-विचार कर विधि पूर्वक वर्ते हुए दण्ड सिद्ध हुआ करते हैं। सो इसके विपरीत, सदा सावधान, जयाभिलाषी (अर्थात् दूसरे दुश्मन रहित), दैव बल में प्रतिष्ठित (अर्थात् न केवल उस पर कोई दैवी आपत्ति नहीं, अपितु इसके विपरीत दैवी संपत्ति का साथ

जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ ॥१०॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् ।
गतिं हनूमतो लोके को विद्यात् तर्कयेत वा ॥११॥
बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः ।
परेषां सहसाऽवज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥१२॥
किं च राक्षसराजस्य रामेणापकृतं पुरा ।
आजहार जनस्थानाद्यस्य भार्या यशस्विनः ॥१३॥
खरो यद्यतिवृत्तस्तु स रामेण हतो रणे ।
अवश्यं प्राणिनां प्राणा रक्षितव्या यथाबलम् ॥१४॥
एतन्निमित्तं वैदेही भयं नः सुमहद्भवेत् ।
आहृता सा परित्याज्या कलहार्थे कृते नु किम् ॥१५॥

है), क्रोध को जीते हुए (अर्थात् विवेक युक्त), तथा दुर्जेय राम को आप कैसे पराभव करना चाहते हैं ? देखिये, बड़े २ नद-नदियों को खपाने वाले घोर समुद्र को लांघ कर आये हनुमान् की गति-विधि को लोक में कौन समझ सकता था या कौन बिचार भी सकता था ? इसलिए, राक्षसो ! आप समझिये कि राम का सैन्यबल तथा पराक्रम बहुत बड़ा है। दुश्मनों को सहसा हीन जानना, यह कभी न करना चाहिए।

फिर, राम ने रावण का पहले कौन सा अपकार किया था, जिससे उस यशस्वी की पत्नी को जनस्थान से हर लिया। यदि राम ने अत्याचारी खर को युद्ध में मार दिया, तो कौनसा बुरा किया ? क्योंकि प्राणियों के प्राणों की रक्षा पूरी शक्ति लगाकर अवश्य करनी ही चाहिए। अतः, हर कर लायी गयी सीता हमारे लिए बड़ा भारी भय होगा, उसे छोड़ देना चाहिए। कलह के

न तु क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥१६॥
यावन्न सगजां साश्वां बहुरत्नसमाकुलाम् ।
पुरीं दारयते बाणैर्दीयतामस्य मैथिली ॥१७॥
यावत्सुघोरा महती दुर्धर्षा हरिवाहिनी ।
नावस्कन्दति नो लङ्कां तावत्सीता प्रदीयताम् ॥१८॥
विनश्येद्धि पुरी लङ्का शूराः सर्वे च राक्षसाः ।
रामस्य दीयतां पत्नी न स्वयं यदि दीयते ॥१६॥
प्रसादये त्वां बन्धुत्वात्कुरुष्व वचनं मम ।
हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥२०॥

लिए किए काम से क्या मतलब ? उस पराक्रमी तथा धर्मचारी राम से निरर्थक वैर बांधना ठीक नहीं, उसकी पत्नी सीता उसे दे दीजिए। जब तक राम अपने बाणों द्वारा हाथियों, घोड़ों तथा अनेक रत्नों से भरपूर लंका को तहस-नहस नहीं करता, उससे पूर्व ही पत्नी सीता उसे दे दीजिये। जब तक भयंकर, विशाल तथा दुर्जेय वानर-सेना हमारी लंका को नष्ट-भ्रष्ट नहीं करती, उससे पूर्व ही सीता राम को दे दीजिये। यदि आप स्वयं सीता को नहीं देंगे, तो निश्चय करके लंका पुरी, और सब शूर राक्षस विनष्ट हो जावेंगे। भाई ! मैं भाई होने के नाते आपको मना रहा हूं, आप मेरा कहा करिये, मैं हितकारी तथा सच्ची बात कह रहा हूं, राम की पत्नी सीता उसे दे दीजिये।"

रावण का विभीषण को कोसना और उसका उत्तर

जब विभीषण ने इस प्रकार समयानुकूल सही बैठने वाली हितकारी बात रावण को कही, तो उसने उत्तर में उसे इसप्रकार

सर्ग ६

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावण: कालचोदित: ॥१॥
वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्रप्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥२॥
जानामि शीलं ज्ञातीनां सर्वलोकेषु राक्षस ।
हृष्यन्ति व्यसनेष्वेते ज्ञातीनां ज्ञातय: सदा ॥३॥
प्रधानं साधकं वैद्यं धर्मशीलं च राक्षस ।
ज्ञातयोऽप्यवमन्यन्ते शूरं परिभवन्ति च ॥४॥
नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेस्वाततायिन: ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहा: ॥५॥
श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीता: श्लोका: पद्मवने पुरा ।

कठोर वचन कहे, क्योंकि उसके सिर पर काल सवार हो रहा था—

"भले ही मनुष्य शत्रु के साथ अथवा क्रुद्ध जहरीले सांप के साथ रह ले, परन्तु मित्र कहलाने वाले शत्रु-पक्षपाती के साथ कभी न रहे। राक्षस! मैं सब देशों में बन्धुओं का स्वभाव जानता हूं, कि ये बन्धु लोग बन्धुओं के विपत्ति में पड़ने पर सदा खुश हुआ करते हैं। बन्धु लोग कुल के प्रधान को, कार्य-साधक को, विद्या संपन्न को, तथा धर्मशील को तिरस्कृत किया करते हैं और शूर को नीचा दिखाया करते हैं। ये बन्धु लोग भले ही नित्य एक-दूसरे से खुश रहते हों, परन्तु किसी पर कष्ट आ पड़ने पर ये कपटहृदयी निर्दयी और भयानक बन जाते हैं।

हस्तियों से गाये गये श्लोक इस सम्बन्ध में सुने जाते हैं,

पाशहस्तान्नरान् दृष्ट्वा शृणुष्व गदतो मम ॥६॥
नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोराः स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥७॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणेनात्र संशयः ।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥८॥
विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ब्राह्मणे तपः ।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ज्ञातितो भयम् ॥९॥
ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।
ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः ॥१०॥
यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोयविन्दवः ।

जोकि उन्होंने हाथों में फन्दे लिए मनुष्यों को देख कर पद्मवन में कही गाये थे। विभीषण ! सुनो, मैं तुम्हें उन्हें सुनाता हूं। (वे ये हैं—)

"हमारे लिए न अग्नि, न अन्य शस्त्र, और न फन्दे भयावह हैं, अपितु स्वार्थ-परायण निर्दयी हमारे अपने बन्धु ही भयावह हैं। इसमें कोई शक नहीं कि ये पकड़ने वालों को हमारे पकड़ने के विषय में उपाय बतला देंगे। (अर्थात् हमारे पकड़ने में ये ही साधन बनेंगे)। एवं, हमारा अनुभव है कि सब प्रकार के भय से बन्धु-भय अत्यन्त कष्टदायक है।"

गौओं में संपत्ति है, ब्राह्मण में तप है, स्त्रियों में चपलता है, और बन्धु से भय है। सौम्य ! क्योंकि मैं लोक से पूजित हूं, ऐश्वर्य से भरपूर हूं, और दुश्मनों के सिर पर बैठा हूँ, इसलिए तुम्हें मेरा यह सौभाग्य अच्छा नहीं लगता। जैसे कमल-पत्र पर पड़े जल-विन्दु उससे नहीं घुल मिलते, इसी प्रकार की अनार्यों

न श्लेषमभिगच्छन्ति तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥११॥
यथा शरदि मेघानां सिञ्चतामपि गर्जताम् ।
न भवत्यम्बुसंक्लेदस्तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥१२॥
यथा मधुकरस्तर्षाद्रसं विन्दन्न तिष्ठति ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥१३॥
यथा मधुकरस्तर्षात् काशपुष्पं पिबन्नपि ।
रसमत्र न विन्देत तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥१४॥
यथा पूर्वं गजः स्नात्वा गृह्य हस्तेन वै रजः ।
दूषयत्यात्मनो देहं तथाऽनार्येषु सौहृदम् ॥१५॥
योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद् वाक्यमेतन्निशाचर ।
अस्मिन् मुहूर्ते न भवेत् त्वां तु धिक्कुलपांसन ॥१६॥

में मित्रता की स्थिति है। जैसे शरद ऋतु में मेघ वर्षा भी करते हैं, गर्जते भी हैं, परन्तु फिर भी भूमि जल से तर नहीं होती, वैसी अनार्यों में मित्रता की स्थिति है। जैसे भ्रमर प्यास के कारण पुष्प-रस को लेते हुए भी वहां नहीं ठहरते, वैसी अनार्यों में मित्रता है, और वैसे ही तुम भी वहीं अनार्यत्व में स्थित हो। जैसे भ्रमर प्यास के कारण काश के फूल को चूसते हैं, परन्तु उन्हें वहां रस नहीं मिलता, इसी प्रकार की अनार्यों में मित्रता है। जैसे हाथी पहले स्नान करके और फिर अपनी सूंड से धूल को उँड़ेल कर अपने शरीर को गन्दा कर लेता है, वैसी अनार्यों में मित्रता है। (अर्थात् अनार्य पहले स्नेह दर्शा कर फिर स्वयं उसे नष्ट कर देते हैं)। विभीषण! यदि ऐसी बातें कोई दूसरा करता, जैसी कि तुमने की हैं, तो वह इसी क्षण न रहता, मार डाला जाता, परन्तु भाई होने के कारण 'धिक्कार है कुलकलंक!'

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः ।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥१७॥
अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः ।
अन्तरिक्षगतः श्रीमान् भ्राता वै राक्षसाधिपम् ॥१८॥
स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ।
ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो न च धर्मपथे स्थितः ।
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥१९॥
सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन ।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः ॥२०॥
सुलभा पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।

ऐसा कह कर मैं तुझे छोड़े देता हूं ।"

न्यायवादी विभीषण को जब रावण ने इस प्रकार कठोर बातें कहीं, तो वह गदा हाथ में लिए, चार मंत्रियों के साथ उठ खड़ा, और खड़ा २ क्रोध में भर कर श्रीमान् भाई विभीषण राक्षसाधिपति भाई रावण से बोला—

"राजन् ! मेरे विषय में आप की भ्रांति है, आप मुझे जो जो चाहते हैं कहिये, क्योंकि आप मेरे बड़े हैं और मान्य हैं और पिता-समान हैं। परन्तु याद रखिये आप धर्म मार्ग पर स्थित नहीं हैं, इसलिए बड़े भाई ! आप के ये कठोर बचन मैं सहन नहीं कर सकता। रावण ! मैंने हितकामना से सुनिश्चित तौर पर आगे आने वाली विपत्ति की बोधक (सु+नि+इतं) बात कही थी, परन्तु बुरा ही बुरा देखने वाले मनुष्य, कि जिनके सिर पर काल डोल रहा होता है, उसे नहीं ग्रहण किया करते। राजन् ! सदा प्रिय ही प्रिय कहने वाले आदमी तो बहुत होते हैं, परन्तु

अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥२१॥
बद्धं कालस्य पाशेन सर्वभूतापहारिणः ।
न नश्यन्तमुपेक्षे त्वां प्रदीप्तं शरणं यथा ॥२२॥
दीप्तपावकसङ्काशैः शितैः काञ्चनभूषणैः ।
न त्वामिच्छाम्यहं द्रष्टुं रामेण निहतं शरैः ॥२३॥
शूराश्च बलवन्तश्च कृतास्त्राश्च नरा रणे ।
कालाभिपन्नाः सीदन्ति यथा वालुकसेतवः ॥२४॥
तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ।
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि सुखी भव मया विना ॥२५॥

अप्रिय हितकारी बात कहने वाला और सुनने वाला कोई विरला ही होता है।

सब प्राणियों को हरने वाले काल के पाश से बंधे आपको नष्ट होते हुए देखकर मैं उपेक्षा नहीं कर सकता, जैसे कि जलते हुए घर को देखकर चुपचाप नहीं बैठा जा सकता। भाई! मैं राम द्वारा, प्रज्वलित अग्नि के समान दग्धकारी तथा तीखे सुवर्ण विभूषित बाणों से आपको मरा हुआ नहीं देखना चाहता। भाई! शूर, बलवान्, तथा अस्त्र विद्या में सिद्धहस्त मनुष्य भी रण में, काल आ जाने पर, रेत के बांध के समान नष्ट हो जाते हैं। इसलिए हितकामना से जो कुछ मैंने आपसे कहा है, तदर्थ आप बड़े भाई होने के नाते मुझे क्षमा कीजिये, और सब प्रकार से अपनी और राक्षसों सहित इस नगरी की रक्षा कीजिए। आप का कल्याण हो, मैं जाता हूँ, आप मेरे विना सुखी हूजिए।"

सर्ग ७

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥१॥
तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतह्रदाम् ।
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः ॥२॥
स च मेघाचलप्रख्यो वज्रायुधसमप्रभः ।
वरायुधधरो वीरो दिव्याभरणभूषितः ॥३॥
ते चाप्यनुचरास्तस्य चत्वारो भीमविक्रमाः ।
तेऽपि वर्मायुधोपेता भूषणोत्तमभूषिताः ॥४॥
तमात्मपञ्चमं दृष्ट्वा सुग्रीवो वानराधिपः ।
वानरैः सह दुर्धर्षश्चिन्तयामास बुद्धिमान् ॥५॥

विभीषण के पहुँचने पर राम की मंत्रियों से सलाह

इसप्रकार रावण के छोटे भाई विभीषण ने रावण को कठोर बात कही, और कुछ ही देर में वहां आ पहुंचा यहां कि लक्ष्मण सहित राम पड़ाव डाले पड़े थे। भूमि पर बैठे वानर सेनापतियों ने आकाश में बैठे उस विभीषण को देखा, जोकि मेरुपर्वत के समान ऊंचा और प्रदीप्त बिजली के समान तेजस्वी था। वह वीर मेघ-पर्वत के समान विशाल-शरीर, वज्रास्त्र के समान तेजस्वी, उत्कृष्ट आयुधों को धारे हुआ, और दिव्य आभूषणों से विभूषित था। उसके अत्यन्त पराक्रमी जो चार साथी थे, वे भी कवच तथा आयुध धारे हुए और भूषणों से सुभूषित थे।

सरलता से हार न खाने वाले बुद्धिमान् वानरराज सुग्रीव ने अन्य चार राक्षसों सहित उसे देखकर वानरों से विचार-विमर्श

चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु वानरांस्तानुवाच ह।
हनुमत्प्रमुखान् सर्वानिदं वचनमुत्तमम् ॥६॥
एष सर्वायुधोपेतश्चतुर्भिः सह राक्षसैः।
राक्षसोऽभ्येति पश्यध्वमस्मान् हन्तुं न संशयः ॥७॥
सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा सर्वे ते वानरोत्तमाः।
सालानुद्यम्य शैलांश्च इदं वचनमब्रुवन् ॥८॥
शीघ्रं व्यादिश नो राजन् वधायैषां दुरात्मनाम्।
निपतन्ति हता यावद् धरण्यामल्पचेतनाः ॥९॥
तेषां सम्भाषमाणानामन्योन्यं स विभीषणः।
उत्तरं तीरमासाद्य स्वस्थ एव व्यतिष्ठत ॥१०॥
स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान्।

किया, और कुछ देर विचार करके हनुमान्-प्रमुख उन सब वानरों से यह उत्तम बात बोला—"देखिए, यह राक्षस सब तरह से हथियारों से लैस होकर चार राक्षसों के साथ निस्सन्देह हमें मारने के लिए इधर आ रहा है।"

उन सब प्रमुख वानरों ने सुग्रीव की बात को सुनकर हाथों में साल के लट्ठ और बड़े २ पत्थर उठाये और बोले—"राजन्! हमें शीघ्र आदेश दीजिये कि हम इन दुष्टों को मार डालें। आप अभी देखेंगे कि ये अल्प बल वाले मारे जाकर भूमि पर गिर पड़े हैं।"

उनकी इस प्रकार की पारस्परिक बातचीत को जब विभीषण ने सुना तो वह महाबुद्धिमान् महात्मा समुद्र के परले पार पहुंच कर आकाश में ही रुक गया, (इस सब वर्णन से पता लगता है कि विभीषण किसी विमान पर बैठ कर आया था)

सुग्रीवं तांश्च सम्प्रेक्ष्य स्वस्थ एव विभीषणः ॥११॥
रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसः राक्षसेश्वरः ।
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥१२॥
तेन सीता जनस्थानाद् हृता हत्वा जटायुषम् ।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥१३॥
तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम् ।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥१४॥
स च न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः ।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥१५॥
सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥१६॥

और सुग्रीव तथा उन सब वानर-सेनापतियों को देखकर वहीं से उच्च स्वर से बोला—

"रावण नामी दुराचारी राक्षस राक्षसों का राजा है। उसका मैं छोटा भाई हूं, जोकि विभीषण नाम से प्रसिद्ध हूं। उसने जटायु को मार कर जनस्थान से सीता को हर लिया है और राक्षसियों के पहरे में विवशा दीना को बन्द कर रखा है। मैंने उसे कितनी ही युक्तियों से बार बार बहुत समझाया कि अच्छा यही है कि सीता राम को सौंप दो, परन्तु मौत रूपी काल से प्रेरित रावण ने मेरी उस कही हुई हितकारी बात को नहीं माना, जैसे कि मरना चाहने वाला रोगी दवाई को नहीं लेता। यही नहीं, उलटा उसने मुझे कठोर वचन कहे और दास की तरह मेरा बड़ा निरादर किया। सो मैं पुत्रों को और पत्नी को छोड़ कर राम की शरण में प्राप्त हुआ हूं। आप, सब

निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥१७॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः ।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥१८॥
रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥१९॥
मन्त्रे व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि ।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परन्तप ॥२०॥
अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरूपिणः ।
शूराश्च निकृतिज्ञाश्च तेषां जातु न विश्वसेत् ॥२१॥
प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य भवेदयम् ।
अनुप्रविश्य सोऽस्मासु भेदं कुर्यान्न संशयः ॥२२॥

को शरण देने वाले महात्मा राम से शीघ्र मेरे बारे में निवेदन कर दीजिये कि विभीषण आया है।"

विभीषण की इस बात को सुनकर सुग्रीव धीरे से गया, और लक्ष्मण के सामने राम से जल्दी में कहा—

"भगवन्! विभीषण नाम से प्रसिद्ध रावण का छोटा भाई चार राक्षसों के साथ आपकी शरण में आया है। शत्रुतापन! जैसे भी वानरों का, आपका, और दुश्मनों का भला हो, वैसे आप मन्त्रणा में, सैन्य-सन्निवेश में, सेना-नयन में, तथा गुप्तचर संचारण में सावधान हो जाइए। ये राक्षस लोग अदृश्य होकर (छिप-छिप कर) विचरने वाले हैं, बहु-रूपिये हैं, शूर हैं, और कपटी हैं, इन पर कभी विश्वास न कीजिए।

अथवा स्वयमेवैष च्छिद्रमासाद्य बुद्धिमान् ।
अनुप्रविश्य विश्वस्ते कदाचित्प्रहरेदपि ॥२३॥
मित्राटविबलं चैव मौलं भृत्यबलं तथा ।
सर्वमेतद् बलं ग्राह्यं वर्जयित्वा द्विषद्बलम् ॥२४॥
प्रकृत्या राक्षसो ह्येष भ्राताऽमित्रस्य वै प्रभो ।
आगतश्च रिपोः पक्षात् कथमस्मिंश्च विश्वसेत् ॥२५॥
रावणेन प्रणीतं हि तमवेहि विभीषणम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥२६॥
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥२७॥
प्रविष्टः शत्रुसैन्यं हि प्राप्तः शत्रुरतर्कितः ।

मैं समझता हूं यह राक्षसराज रावण का भेदिया है, और हम लोगों में घुस कर अवश्य हमारे में फूट डलवायेगा। अथवा यह बुद्धिमान् विभीषण हमारे अन्दर घुस कर जब कभी कोई खामी देखेगा, तभी हमारे विश्वस्त सैन्य पर स्वयं ही हमला कर डालेगा। जङ्गली भी मित्र की सेना, परम्परागत सेना, तथा नौकरी देकर रखी हुई सेना, यह सब प्रकार की सेना तो ग्राह्य है, परन्तु शत्रु पक्ष की (टूट कर आई हुई) सेना कभी ग्राह्य नहीं। प्रभु! एक तो यह प्रकृति से राक्षस, और फिर दुश्मन का भाई, उस पर शत्रु पक्ष से आया हुआ, सो कैसे इस पर विश्वास किया जा सकता है? अतः आप उस विभीषण को रावण से ही भेजा हुआ समझिए। ठीक कर्म करने वालों में श्रेष्ठ राम! मैं तो इसे कैद कर लेना ही ठीक समझता हूं। ऐ निष्पाप! मैं समझता हूँ कि यह छद्मवेषधारी राक्षस आपको

निहन्याद‍न्तरं लब्ध्वा उलूको वायसानिव ॥२८॥
वध्यतामेष तीव्रेण दण्डेन सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥२९॥
एवमुक्त्वा तु तं रामं संरब्धो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥३०॥
सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्-प्रमुखान् कपीन् ॥३१॥
यदुक्तं कपिराजेन रावणावरजं प्रति ।
वाक्यं हेतुमदत्यर्थं भवद्भिरपि च श्रुतम् ॥३२॥
सुहृदामर्थकृच्छ्रेषु युक्तं बुद्धिमता सदा ।

विश्वास में लाकर आप पर प्रहार करने के लिए भेजा हुआ कपटबुद्धि से यहां आया है। जिसका कभी ख्याल भी नहीं था, वह शत्रु शत्रु-सैन्य में आया है, यह हमारे अन्दर घुस कर और मौका पाकर अवश्य घात-पात करेगा, जैसे कि उल्लू कौवों के अन्दर घुस कर और मौका पाकर उन्हें मार डालता है। अतः अत्याचारी रावण के भाई इस विभीषण को साथियों सहित कड़ी सजा देकर आप मार ही डालिए।"

इस प्रकार वाक्यकुशल सेनापति सुग्रीव बात को समझने वाले राम को बलपूर्वक कह कर तब चुप हो गया। महायशस्वी राम सुग्रीव की उस बात को सुन कर पास में बैठे हनुमान आदि प्रमुख वानरों से बोले—

"कपिराज सुग्रीव ने रावण के छोटे भाई के सम्बन्ध में जो युक्तियुक्त तथा मतलब की बात कही है, वह आप लोगों ने भी सुन ली है। मित्रों की स्थायी बढ़ती चाहने वाले, बुद्धिमान्

समर्थेनोपसन्देष्टुं शाश्वतीं भूतिमिच्छता ॥३३॥
इत्युक्ते राघवायाथ मतिमानङ्गदोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षार्थम उवाच वचनं हरिः ॥३४॥
शत्रोः सकाशात्सम्प्राप्तः सर्वथा तर्क्य एव हि ।
विश्वासनीयः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥३५॥
छादयित्वात्मभावं हि चरन्ति शठबुद्धयः ।
प्रहरन्ति च रन्ध्रेषु सोऽनर्थः सुमहान्भवेत् ॥३६॥
अर्थानर्थौ विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत ह ।
गुणतः संग्रहं कुर्याद् दोषतस्तु विसर्जयेत् ॥३७॥
यदि दोषो महांस्तस्मिंस्त्यज्यतामविशङ्कितम् ।

तथा समर्थ मनुष्य को सदा योग्य है कि वह मित्रों पर आए सङ्कटों में उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का बोध कराए। अतः, आप लोग अपनी नेक सलाह मुझे प्रदान कीजिए।"

राम के इस प्रकार कहने पर सर्वप्रथम बुद्धिमान् अंगद वानर विभीषण की परीक्षा निमित्त राम से बोला—"राजन्! विभीषण शत्रु के पास से आया है, अतः सर्वथा शङ्का के योग्य ही है। इसलिए इसको एकदम अपने विश्वास में नहीं लाना चाहिए, (अपितु शनैः २ परख कर अपने में मिलाना चाहिए)। क्योंकि शठ-बुद्धि के राक्षस लोग अपने असलीपन को छिपा कर घूमा करते हैं, और अवसर पाते ही प्रहार कर डालते हैं, तब बड़ा भारी अनर्थ हो जाता है। इसलिए गुणावगुण को भली प्रकार विचार कर ही अगला कदम उठाना चाहिए। गुण हो तो मिलाना चाहिए और दोष हो तो अलग कर देना चाहिए। अतः, राजन्! यदि विभीषण में कोई बड़ा दोष दीख पड़े तो

गुणान्वापि बहून् ज्ञात्वा संग्रहः क्रियतां नृप ॥३८॥
शरभस्त्वथ निश्चित्य सार्थं वचनमब्रवीत् ।
क्षिप्रमस्मि नरव्याघ्र चारः प्रतिविधीयताम् ॥३९॥
प्रणिधाय हि चारेण यथावत्सूक्ष्मबुद्धिना ।
परीक्ष्य च ततः कार्यो यथान्यायं परिग्रहः ॥४०॥
जाम्बवांस्त्वथ सम्प्रेक्ष्य शास्त्रबुद्ध्या विचक्षणः ।
वाक्यं विज्ञापयामास गुणवद्दोषवर्जितम् ॥४१॥
बद्धवैराच्च पापाच्च राक्षसेन्द्राद्विभीषणः ।
अदेशकाले सम्प्राप्तः सर्वथा शङ्क्यतामयम् ॥४२॥
ततो मैन्दस्तु सम्प्रेक्ष्य नयापनयकोविदः ।

बिना सङ्कोच उसे छोड़ देना चाहिए, और यदि बहुत से गुण जान पड़ें तो उसे मिला लेना चाहिए।"

तत्पश्चात् शरभ ने सोच कर सयुक्तिक बात कही—"नरव्याघ्र ! इसके सम्बन्ध में पता लेने के लिए शीघ्र लङ्का में गुप्तचर भेजिए। गुप्तचर को भेज कर और उस सूक्ष्मबुद्धि के द्वारा सही २ जांच-पड़ताल करके तब नीतिशास्त्रानुसार इससे मेल करना चाहिए।"

तदनन्तर दीर्घदर्शी जाम्बवान् ने शास्त्रानुसार सोच-विचार करके युक्तियुक्त दोषरहित बात कही—"यह विभीषण हमारे कट्टर शत्रु तथा पापी राक्षसराज के पास से अनुपयुक्त देश काल में (स्वामी के सन्देश के बिना शत्रु के देश में आना अनुपयुक्त देश है, और स्वामी की संकट-बेला में उसे छोड़ कर आना अनुपयुक्त काल है) आया है, इसलिए इससे सर्वथा सावधान रहना चाहिए।"

वाक्यं वचनसम्पन्नो बभाषे हेतुमत्तरम् ॥४३॥
अनुजो नाम तस्यैष रावणस्य बिभीषणः ।
पृच्छ्यतां मधुरेणायं शनैर्नरपतीश्वर ॥४४॥
भावमस्य तु विज्ञाय ततस्त्वं करिष्यसि ।
यदि दुष्टो न दुष्टो वा बुद्धिपूर्वं नरर्षभ ॥४५॥
अथ संस्कारसम्पन्नो हनूमान् सचिवोत्तमः ।
उवाच वचनं श्लक्ष्णम् अर्थवन् मधुरं लघु ॥४६॥
न भवन्तं मतिश्रेष्ठं समर्थं वदतां वरम् ।
अतिशाययितुं शक्तो बृहस्पतिरपि ब्रुवन् ॥४७॥
न वादान्नापि सङ्घर्षान्नाधिक्यान्न च कामतः ।

इसके बाद नीति-अनीति की विवेचना में दक्ष मैन्द ने सोच-विचार कर दृढ़ता के साथ अत्यन्त युक्तियुक्त बात कही—

"राजाओं के राजा ! यह उसी रावण का छोटा भाई विभीषण है, अतः इससे मधुरतापूर्वक धीरे २ अजनबी मनुष्यों द्वारा असलीयत पूछिए। नरश्रेष्ठ ! तब इसके अभिप्राय को समझ लेने के बाद इसके दुष्ट अथवा अदुष्ट होने का विचार करके फिर आप तदनुसार कार्य कीजिए।"

तत्पश्चात्, भली प्रकार सुलझे हुए उत्तम सचिव हनुमान् ने संक्षेप में स्पष्ट, अर्थ वाली, तथा मधुर बात कही—

"स्वामिन् ! आप बुद्धिमानों में उत्तम बुद्धिमान् हैं, शक्तिसम्पन्न हैं, तथा सम्मति देने वालों में श्रेष्ठ हैं। अतः आपको सम्मति देता हुआ बृहस्पति भी बढ़-चढ़ के बात नहीं बना सकता। राजन् ! मैं न कोई बात तर्क-कौशल को दर्शाने के लिए कहूँगा, न सचिवों की स्पर्धा में पड़कर कहूंगा, न अपने

वक्ष्यामि वचनं राजन् यथार्थं राम गौरवात् ॥४८॥
अर्थानर्थनिमित्तं हि यदुक्तं सचिवैस्तव ।
तत्र दोषं प्रपश्यामि क्रिया नह्युपपद्यते ॥४९॥
ऋते नियोगात्सामर्थ्यम् अवबोद्धुं न शक्यते ।
सहसा विनियोगोऽपि दोषवान्प्रतिभाति मे ॥५०॥
चारप्रणिहितं युक्तं यदुक्तं सचिवैस्तव ।
अर्थस्यासम्भवात्तत्र कारणं नोपपद्यते ॥५१॥
अदेशकाले सम्प्राप्त इत्ययं यद्विभीषणः ।
विवक्षा तत्र मेऽस्तीयं तां निबोध यथामति ॥५२॥

को दूसरों से बड़ा जतलाने के लिए कहूंगा, और न किसी कामना के वशवर्ती होकर कहूंगा, अपितु राम ! मैं सिर्फ कार्य के महत्व को ध्यान में रख कर यथार्थ बात ही कहूँगा ।

देखिए, आपके सचिवों ने गुणावगुण के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, मैं उसमें दोष देखता हूं, क्योंकि उससे काम तो सिद्ध नहीं होता। बिना कोई काम सौंपे किसी के सामर्थ्य (हित अनहित का सामर्थ्य) का पता नहीं लगाया जा सकता, और फिर सहसा काम सौंप देना भी मुझे ठीक नहीं जान पड़ता ।

आपके सचिवों ने युक्त बात समझ कर जो गुप्तचर भेजने की बात कही है, सो उससे अभिप्राय-पूर्ति की असम्भवता के कारण कोई लाभ नहीं जान पड़ता। (क्योंकि छिपी हुई बात का भेद लेने के लिए गुप्तचर भेजा जाता है, परन्तु यहां तो विभीषण ने खुद सब बात बतला दी है) ।

यह विभीषण अनुपयुक्त देश-काल में आया है, यह जो

एष देशश्च कालश्च भवतीह यथा तथा ।
पुरुषात्पुरुषं प्राप्य तथा दोषगुणावपि ॥५३॥
दौरात्म्यं रावणे दृष्ट्वा विक्रमं च तथा त्वयि ।
युक्तमागमनं ह्यत्र सदृशं तस्य बुद्धितः ॥५४॥
अज्ञातरूपैः पुरुषैः स राजन् पृच्छ्यतामिति ।
यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काचिदस्ति समीक्षिता ॥५५॥
पृच्छ्यमानो विशङ्केत सहसा बुद्धिमान्वचः ।
तत्र मित्रं प्रदुष्येत मिथ्या पृष्टं सुखागतम् ॥५६॥
अशक्यं सहसा राजन् भावो बोद्धुं परस्य वै ।

बात कही गई है, उसके सम्बन्ध में मैं अपनी बुद्धि अनुसार यह कहना चाहता हूं, ध्यान से सुनिएगा। असत्पुरुष रावण के पास से आप सत्पुरुष के पास आना सही देख कर, तथा रावण के दोष को और आपके गुण को देखकर आने का जैसा उपयुक्त देश और काल हुआ करता है, वैसा ही यह देश-काल है। रावण में दुष्टता और आपमें सही कदम को देख कर, इस काल में उसका यहां आना युक्त है, और यह उसकी बुद्धिमत्ता को प्रकट करता है।

राजन्! जो यह कहा गया है कि अजनवी आदमियों को विभीषण के पास भेज कर पहले उससे पूछताछ करनी चाहिए, सो उसके सम्बन्ध में भी विचार कर मैं जिस परिणाम पर पहुंचा हूं वह यह है कि विभीषण बड़ा बुद्धिमान् है, उससे अजनवी आदमी एकदम कोई बात पूछेगा, तो उसके दिल में शक पैदा हो जावेगा, और खुशी २ आए हुए से इसप्रकार उलटी बातें पूछने से हाथ में आए मित्र का दिल फिर जावेगा।

अन्तरेण स्वरैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पश्यतां भृशम् ॥५७॥
न त्वस्य ब्रुवतो जातु लक्ष्यते दुष्टभावता ।
प्रसन्नं वदनं चापि तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥५८॥
अशङ्कितमतिः स्वस्थो न शठः परिसर्पति ।
न चास्य दुष्टवागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥५९॥
आकारश्छाद्यमानोऽपि न शक्यो विनिगूहितुम् ।
बलाद्धि विवृणोत्येव भावमन्तर्गतं नृणाम् ॥६०॥
देशकालोपपन्नं च कार्यं कार्यविदां वर ।
सफलं कुरुते क्षिप्रं प्रयोगेणाभिसंहितम् ॥६१॥

राजन् ! फिर पूछताछ करने से दूसरे का अन्तर्गत भाव भी सहसा नहीं जाना जा सकता। अतः, आप बात करते हुए उसके विलक्षण स्वरों से ध्यानपूर्वक उसकी सचाई की निपुणता को, या कपटपने की निपुणता को देखिए।

राजन् ! जब यह बोल रहा था, तब स्वर से कोई दुष्ट भावना नहीं दीख पड़ी, और फिर उसका मुँह भी खिला हुआ था, इसलिए मुझे इस पर कोई शक नहीं। अतिरिक्त इसके यह निर्भीक तथा स्थिरचित्त है, शठ इस प्रकार नहीं आया करता। और फिर इसकी बोली में भी कोई छल-कपट नहीं, इसलिए मुझे इसके बारे में कोई शक नहीं। कपटी अपने आकार को चाहे कितना ही छिपाए, वह छिपाया नहीं जा सकता, अन्त में वह आकार बलात्कार पूर्वक मनुष्य के भाव को प्रकट कर ही देता है।

कार्यकुशलों में श्रेष्ठ ! देश-काल के उपयुक्त काम को जब क्रियात्मक रूप से कर ही दिया जाता है, तब वह कार्य उसे

उद्योगं तव संप्रेक्ष्य मिथ्यावृत्तं च रावणम् ।
वालिनं च हतं श्रुत्वा सुग्रीवं चाभिषेचितम् ॥६२॥
राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः ।
एतावत्तु पुरस्कृत्य विद्यते तस्य संग्रहः ॥६३॥
यथाशक्ति मयोक्तं तु राक्षसस्यार्जवं प्रति ।
प्रमाणं त्वं हि शेषस्य श्रुत्वा बुद्धिमतां वर ॥६४॥

सर्ग ८

अथ रामः प्रसन्नात्मा श्रुत्वा वायुसुतस्य ह ।
प्रत्यभाषत दुर्धर्षः श्रुतवानात्मनि स्थितम् ॥१॥
ममापि च विवक्षास्ति काचित्प्रति विभीषणम् ।

शीघ्र ही सफल बना देता है। सो, शत्रु पर चढ़ाई करने के आपके उद्योग और रावण के मिथ्याचार को देख कर, तथा वाली के नाश और सुग्रीव के अभिषेक को सुनकर विभीषण सोच-विचार के बाद रावण-बध के अनन्तर राज्य पाने की इच्छा से यहां आपके पास आया है। अतः, इन बातों को ध्यान में रख कर इसको अपने साथ मिला लेना ही युक्त है।

बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजन्! मैंने विभीषण राक्षस की सरलता के सम्बन्ध में यथाशक्ति कह दिया, आगे आप ही इस विषय में प्रमाण हैं।"

मन्त्रियों से विचार-विमर्ष के बाद अन्तिम निश्चय

बहुश्रुत दुर्जेय राम मारुत-पुत्र हनुमान् की बात सुनकर प्रसन्न-चित्त हुए, और अपने अन्दर की बात बोले—"मित्रो! विभीषण के सम्बन्ध में मेरा भी कुछ वक्तव्य है, परन्तु मैं उस सब को कल्याण में स्थित आप लोगों के साथ मिल कर सुनना—

श्रोतुमिच्छामि तत्सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥२॥
मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम् ॥३॥
सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥४॥
स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
ईदृशं व्यसनं प्राप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥५॥
को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ।
वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु ॥६॥
ईषदुत्स्मयमानस्तु लक्ष्मणं पुण्यलक्षणम् ।
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः ॥७॥

सुनाना चाहता हूँ। मेरा कहना यह है कि जो मित्रभाव से मेरे पास आया है, उसे मैं किसी भी हालत में न ठुकराऊं, भले ही उसमें कोई खराबी भी हो, क्योंकि शिष्ट पुरुषों का यह सम्मानित कर्म है।"

राम के इस प्रकार कहने पर वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने अपनी उस पहली बात को दोहरा कर, और फिर सोच-विचार कर उससे बढ़कर बात कही—"वह दुष्ट हो या श्रेष्ठ हो, पर यह कैसा राक्षस, जोकि ऐसे संकट में पड़े भाई को छोड़ दे ? ऐसी हालत में उसका कौन न होगा जिसको कि वह छोड़ न देगा ?"

वानरराज की इस बात को सुनकर सत्यपराक्रमी राम ने सब की ओर देखा, और कुछ खिल-खिला कर पुण्य लक्षणों वाले लक्ष्मण की ओर देखा, और फिर सुग्रीव से इसप्रकार बोले-

"सुग्रीव ! शास्त्रों को बिना पढ़े और वृद्धों की बिना सेवा

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च ।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः ॥८॥
अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यथाऽत्र प्रतिभाति मा ।
प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सर्वराजसु ॥९॥
अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः ॥१०॥
अपापास्तत्कुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान्हितान् ।
एष प्रायो नरेन्द्राणां शङ्कनीयस्तु शोभनः ॥११॥
यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च ।
तत्र ते कीर्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु ॥१२॥

किये इसप्रकार नहीं कहा जा सकता, जैसा कि आप वानरराज ने कहा है। परन्तु, इस विषय में एक बड़ी सूक्ष्म बात है, जो कि मुझे भान हो रही है। और वह प्रत्यक्ष है, लोकसिद्ध है, तथा सब राजाओं में पायी जाती है। वह सूक्ष्मतर बात यह है कि दुश्मन दो प्रकार के कहे गए हैं: एक तो वे जो उसी एक खानदान के होते हैं, और दूसरे वे जो पास पड़ोस देश के रहने वाले हैं। ये दोनों ही प्रकार के शत्रु विपत्ति के समय आक्रमण किया करते हैं, इसलिए यह विभीषण यहां आया है। दूसरी सूक्ष्मतर बात यह है कि एक-दूसरे का अनिष्ट-चिन्तन न करने वाले एक ही कुल के धर्मात्मा लोग भी जब मौका आता है तो अपने ही हितों का आदर किया करते हैं, यह बात अधिकतर पायी जाती है। अतः राजाओं के लिए तो अपना हितैषी बन्धु भी शङ्कनीय होता है।

सुग्रीव ! शत्रु-सैन्य के लेने के संबन्ध में आपने जो दोष

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकाङ्क्षी च राक्षसः ।
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद् ग्राह्यो विभीषणः ॥१३॥
अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति सङ्गताः ।
प्रणादश्च महानेषोऽन्योन्यस्य भयमागतम् ।
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्मात्प्राप्तो विभीषणः ॥१४॥
न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः ॥१५॥
एवमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
उत्थायेदं महाप्राज्ञः प्रणतो वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥

दर्शाया है, उसके विषय में शास्त्रानुसार मैं कहता हूँ, उसे आप सुनें। वह यह कि हम लोग तो विभीषण के कुल के हैं नहीं (जो कि हमारा नाश कर हमारा राज्य लेने आया हो), परन्तु वह राज्याभिलाषी हो सकता है (जो कि भाई का नाश करा उसका राज्य पाना चाहता है)। ऐसे लोग पण्डित तो होंगे ही, अतः विभीषण को ले लेना चाहिए।

वेशक वे रावण-विभीषण आदि भाई लोग निश्चिन्त भाव से प्रसन्नता पूर्वक मिल-जुल कर रहते होंगे, परन्तु जब यह महान् युद्ध-नाद गूंज उठा, तो उनमें परस्पर में भय पैदा हो गया, और वे फट गए होंगे, इसलिए विभीषण यहां हमारे पास चला आया। प्यारे! सब भाई भरत के समान नहीं होते, और न पिता के पुत्र मेरे समान होते हैं, और न मित्र आप जैसे होते हैं।"

राम ने जब लक्ष्मण सहित सुग्रीव को इस प्रकार कहा तो महाबुद्धिमान् सुग्रीव उठा, राम के आगे झुका, और इसप्रकार बोला—

रावणेन प्रणिहितं तमवेहि निशाचरम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर ॥१७॥
राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या सन्दिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुं त्वयि विश्वस्ते विश्वस्ते मयि वाऽनघ ॥१८॥
लक्ष्मणे वा महाबाहो स वध्यः सचिवैः सह ।
रावणस्य नृशंसस्य भ्राता ह्येष विभीषणः ॥१९॥
एवमुक्त्वा रघुश्रेष्ठं सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
वाक्यज्ञो वाक्यकुशलं ततो मौनमुपागमत् ॥२०॥
स सुग्रीवस्य तद्वाक्यं रामः श्रुत्वा विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवम् ॥२१॥

"राजन् ! आप इस राक्षस को रावण द्वारा भेजा हुआ समझिए। ठीक कर्म करने वालों में श्रेष्ठ राम ! मैं तो इसे कैद कर लेना ही ठीक समझता हूँ। ऐ निष्पाप ! यह राक्षस आपको अपने विश्वास में लाकर आप पर प्रहार करने के लिए अथवा मुझे विश्वास में लाकर मुझ पर प्रहार करने के लिए आदिष्ट होकर कपट बुद्धि से यहां आया है, अथवा लक्ष्मण पर प्रहार करने के लिए आया है। अतः, महाबाहु ! साथियों सहित इसे मार ही डालना चाहिए, आखिरकार यह अत्याचारी रावण का भाई विभीषण ही तो है।"

इसप्रकार बातको समझने वाला सेनापति सुग्रीव वाक्य-कुशल रघुश्रेष्ट राम को कह कर चुप हो गया। राम ने सुग्रीव की उस बात को सुना, सोचा, और फिर हरिपुंगव से शुभतर बात बोले—

"सुग्रीव ! कण्व ऋषि के पुत्र सत्यवादी कण्डु परमर्षि ने

ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।
शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥२२॥
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यदानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परन्तप ॥२३॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२४॥
स चेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत्पापं लोकगर्हितम् ॥२५॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥२६॥
एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।

पिछले दिनों एक धर्मिष्ट बात कही थी, उसे सुनो। उन्हों ने कहा था—"शत्रुतापी ! देखो, हाथ जोड़े हुए, दीन, तथा किसी बात की याचना करते हुए शरणागत शत्रु को भी, दया-धर्म की रक्षा के लिए, नहीं मारना चाहिए। पीड़ित व दुश्मन के भय से त्रस्त हुआ २, गर्वीला ही क्यों न हो, यदि शरण में आवे तो, भले ही वह दुश्मन ही क्यों न हो, तो भी उत्तम पुरुष को चाहिए कि वह उसकी रक्षा अपने प्राणों को खोकर भी करे। यदि वह भय से मोह से व स्वार्थ से अपनी पूरी शक्ति लगा कर, जैसा कि चाहिये वैसे, उसकी रक्षा नहीं करता, तो वह पाप लोकनिन्दित है। शरण में आया हुआ वह आदमी यदि उस रक्षक के देखते २ मारा जाता है, तो वह रक्षा न किया हुआ मनुष्य उस रक्षक के संपूर्ण सुकृत को लेकर जाता है।"

"सुग्रीव ! कण्डु के इस कथनानुसार शरण में आए हुए

अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥२७॥
करिष्यामि यथार्थं तु कण्डोर्वचनमुत्तमम् ।
धर्मिष्ठं च यशस्यं च स्वर्ग्यं स्यात्तु फलोदये ॥२८॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥२९॥
आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम् ॥३०॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥३१॥
किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे ।
यत्त्वमार्यं प्रभाषेथाः सत्त्ववान् सत्पथे स्थितः ॥३२॥

की रक्षा न करने में महान् दोष है। यह दुष्कर्म दुःखदायी है, बदनामी देने वाला है, और बल-पराक्रम का विनाशक है। इसलिए मैं कण्डु के यथार्थ उत्तम कथन को अवश्य पूरा करूंगा। यह परिणाम में विशेष पुण्यजनक, यशप्रापक और सुखप्रद होगा। मेरा यह व्रत है कि जो एक बार भी मेरी शरण में आवे, और मैं आपका हूं, ऐसा कहता हुआ याचना करे, तो मैं उसे प्राणिमात्र से अभय प्रदान करता हूं। इसलिए हरिश्रेष्ठ सुग्रीव ! उसे ले आवो, मैंने उसे अभय प्रदान कर दिया है, भले ही वह विभीषण हो व स्वयं रावण हो।"

राम के इस वचन को सुनकर वानरराज सुग्रीव सौहार्द से भर गया और उनसे बोला—"शरणागतों की रक्षा करना धर्म है, इस बात को जानने वाले राज-चूड़ामणि ! आप सत्यवान् हैं और सत्पथ पर आरूढ़ हैं, अतः आपने जो यह आर्योचित श्रेष्ठ

मम चाप्यन्तरात्माऽयं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥३३॥
तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥३४॥

सर्ग ६

राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः ।
विभीषणो महाप्राज्ञो भूमिं समवलोकयत् ॥१॥
खात्पपातावनिं हृष्टो भक्तैरनुचरैः सह ।
स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ॥२॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः ।
अब्रवीच्च तदा वाक्यं रामं प्रति विभीषणः ।
धर्मयुक्तं च युक्तं च सांप्रतं संप्रहर्षणम् ॥३॥

बात कही है, वह आपके लिए कोई नयी बात नहीं । अब मेरी भी यह अन्तरात्मा विभीषण को निष्कपट समझती है, एवं यह अनुमान से तथा जैसी स्थिति है उससे यह सर्वथा सुपरीक्षित है । इसलिए राम ! महाप्राज्ञ विभीषण शीघ्र हमारे साथ मिलकर हमारे जैसा बन जावे और हमारी मित्रता को प्राप्त करे ।"

विभीषण को मिलाना और उसका राज्याभिषेक

इस प्रकार राम द्वारा अभय प्रदान मिल जाने पर रावण का छोटा भाई महाप्राज्ञ विभीषण विनम्र हुआ, नीचे उतरने के लिए भूमि को देखा, और फिर प्रसन्न होकर अनुयायियों सहित आकाश से भूमि पर उतरा । नीचे उतर कर धर्मात्मा विभीषण चारों राक्षसों सहित राम के चरणों में गिर पड़ा और धर्मसम्पन्न, युक्तियुक्त तथा तत्काल मन को आह्लादित करने

अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ।
भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ॥४॥
परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ।
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ॥५॥
तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ।
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव ॥६॥
आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥७॥
एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥८॥
अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥९॥

वाली बात बोला—

"राजन् ! मैं रावण का छोटा भाई हूं, और उससे अपमानित हूं। सब दुःखी प्राणियों के शरण्य आपकी शरण में आया हूं। मैंने लङ्का, मित्र और धन सब कुछ छोड़ दिया है। अब मेरा राज्य, जीवन, तथा सब सुख आपके ही अधीन है।"

राम ने विभीषण की इस बात को सुना, प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखते हुए मधुर वाणी से उसे सान्त्वना प्रदान की और कहा, अच्छा राक्षसों के बलाबल को तो यथार्थ रूप से मुझे बतलाओ ? तब कभी दुःखदायी काम न करने वाले राम के इस प्रकार पूछने पर विभीषण ने रावण के सम्पूर्ण बल को बतलाना प्रारम्भ किया—

"राजपुत्र ! परमात्मा के अनुग्रह से रावण गन्धर्व, नाग,

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥१०॥
राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः ।
कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥११॥
बद्धगोधांगुलित्रश्च अवध्यकवचो युधि ।
धनुरादाय यस्तिष्ठन्नदृश्यो भवतीन्द्रजित् ॥१२॥
संग्रामे सुमहद् व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् ।
अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥१३॥
महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः ।
अनीकपास्तु तस्यैते लोकपालसमा युधि ॥१४॥
दशकोटिसहस्राणि रक्षसां कामरूपिणाम् ।

पक्षी आदि सब जातियों से अवध्य है। रावण का छोटा भाई कुम्भकर्ण, जोकि मेरा जेठा भाई है, बड़ा पराक्रमी, महातेजस्वी, और युद्ध में इन्द्र का मुकाबला करने वाला है। राम! रावण का सेनापति प्रहस्त, जिसे शायद आपने सुन रखा होगा, उसने कैलास के युद्ध में वहां के राजा मणिभद्र को पराजित कर दिया था। रावण का पुत्र इन्द्रजित गोह-चर्म के दस्ताने पहिन तथा अभेद्य कवच को धारण कर धनुष ले संग्राम में रत रहता हुआ भी सहसा अदृश्य हो जाता है। राम! इसप्रकार वह श्रीमान् इन्द्रजित् अग्निहोत्र करने के बाद उत्तम व्यूह रचना वाले युद्ध में अदृश्य होकर दुश्मनों को मार डालता है। इसके अतिरिक्त महोदर, महापार्श्व तथा राक्षस अकम्पन, ये रावण के सेनापति युद्ध में लोकपाल राजाओं जैसा पराक्रम प्रदर्शित करते हैं। मांस-शोणित खाने-पीने वाले बहुरूपिए लंका-निवासी राक्षसों के

मांसशोणितभक्षयाणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥१५॥
स तैस्तु सहितो राजा लोकपालानयोधयत् ।
सह देवैस्तु ते भग्ना रावणेन दुरात्मना ॥१६॥
विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः ।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥१७॥
यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥१८॥
अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥१९॥
रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः ।
पितामह-सकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥२०॥
अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्रजनबान्धवम् ।

हजार-हजार के दस दल (डिवीजन) हैं। इन दसों दलों को साथ लेकर महाकाय रावण ने लोकपालों से युद्ध किया था, और देवों सहित उन सब को परास्त कर दिया था।"

रघुश्रेष्ठ राम ने विभीषण की इस बात को खूब अच्छी तरह सब प्रकार से सोचा, विचारा और फिर बोले—"विभीषण ! तुमने रावण के जो पहले के कार्य-वृत्तान्त सुनाए हैं, मैं उनको यथार्थंतया जानता हूं। मैं रावण को प्रहस्त तथा पुत्र इन्द्रजित् सहित मार कर तुम्हें राजगद्दी पर बैठाऊंगा, मेरी इस सत्य बात को सुन लो। रावण चाहे नदी के नीचे कहीं छिप जावे, और चाहे किसी बड़े बुजुर्ग के पास बचाव के लिए चला जावे, परन्तु मेरे से जीवित नहीं छूट सकता। मैं अपने तीनों भाईयों की शपथ खा कर कहता हूँ कि मैं रावण को युद्ध में पुत्रों-मित्रों-

अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥२१॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शिरसा वन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेव प्रचक्रमे ॥२२॥
राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥२३॥
इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥२४॥
तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥२५॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ।

बन्धुयों सहित बिना मारे अयोध्या में प्रवेश नहीं करूंगा।"

कल्याणकारी कर्म करने वाले राम के इस वचन को सुनकर धर्मात्मा विभीषण ने सिर से उनकी पाद-वन्दना करके कहना प्रारम्भ किया—"राजन्! मैं राक्षसों के बध में, और लंका के जीतने में प्राणपण से आपकी सहायता करूंगा, और रावण की सेना के अन्दर पहुँचूंगा अर्थात् उसे छिन्न-भिन्न करूंगा।"

विभीषण के ऐसा कहने पर राम ने उसका आलिंगन किया, और प्रसन्न होकर लक्ष्मण से कहा—"मानदाता लक्ष्मण! अच्छा, समुद्र से जल ले आवो और उससे महाबुद्धिमाम् विभीषण को राक्षसों का राजा मानकर शीघ्र राज्याभिषिक्त कर दो, मैं इससे बहुत प्रसन्न हूं।"

इसप्रकार राम का आदेश पाकर राजकीय आदेश से लक्ष्मण ने वानर-मुखियायों के बीच में विभीषण राजा का राज्या-

मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥२६॥
तं प्रसादं तु रामस्य दृष्ट्वा सद्यः प्लवङ्गमाः ।
प्रचुक्रुशुर्महात्मानं साधुसाध्विति चाब्रुवन् ॥२७॥

सर्ग १०

ततो निविष्टां ध्वजिनीं सुग्रीवेणाभिपालिताम् ।
ददर्श राक्षसोऽभ्येत्य शार्दूलो नाम वीर्यवान् ।
चारो राक्षसराजस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१॥
तां दृष्ट्वा सर्वतोऽव्यग्रां प्रतिगम्य स राक्षसः ।
आविश्य लङ्कां वेगेन राजानमिदमब्रवीत् ॥२॥
एष वै वानरर्क्षौघो लङ्कां समभिवर्तते ।
अगाधश्चाप्रमेयश्च द्वितीय इव सागरः ॥३॥
पुत्रौ दशरथस्येमौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।

भिषेक कर दिया। तब वानर लोगों ने राम के इस अनुग्रह को देखकर तत्काल हर्षनाद किया, और महात्मा राम से कहा, बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया।

रावण-प्रेषित गुप्तचर शार्दूल का, और फिर दूत शुक का आना

जिस समय सुग्रीव की सेना समुद्रतीर पर पड़ाव डाले पड़ी थी, उस समय दुरात्मा राक्षसराज रावण का गुप्तचर पराक्रमी शार्दूल राक्षस यहां आया और उसने सेना की देखभाल कर ली। पूरे तौर पर सावधान उस सेना को देखकर राक्षस पीछे वापिस हुआ और जल्दी से लंका पहुंच राजा से बोला—

"राजन्! यह वानर और ऋक्षों का सेना-प्रवाह लंका की ओर आ रहा है, जोकि इतना लम्बा और अपरिमित है कि दूसरा सागर ही मालूम पड़ता है। दशरथ के पुत्र राम-लक्ष्मण भाई,

उत्तमौ रूपसम्पन्नौ सीतायाः पदमागतौ ॥४॥
एतौ सागरमासाद्य सन्निविष्टौ महाद्युते ।
बलं चाकाशमावृत्य सर्वतो दशयोजनम् ॥५॥
तत्त्वभूतं महाराज क्षिप्रं वेदितुमर्हसि ॥६॥
तव दूता महाराज क्षिप्रमर्हन्ति वेदितुम् ।
उपप्रदानं सान्त्वं वा भेदो वात्र प्रयुज्यताम् ॥७॥
शार्दूलस्य वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच सहसा व्यग्रः सम्प्रधार्यार्थमात्मनः ।
शुकं साधु तदा रक्षो वाक्यमर्थविदां वरम् ॥८॥
सुग्रीवं ब्रूहि गत्वाशु राजानं वचनान्मम ।
यथासन्देशमक्लीबं श्लक्ष्णया परया गिरा ॥९॥

जोकि उत्तम और रूपसंपन्न हैं, सीता के उद्धार के लिए आए हैं। महातेजस्वी ! वे दोनों समुद्र पर पहुंच कर पड़ाव डाले पड़े हैं। इनकी सेना दस योजन का अवकाश (स्थान) घेर कर पड़ी है। महाराज ! आप इसकी यथार्थता शीघ्र जान सकते हैं। महाराज ! आप के दूत सही बात को देख सकते हैं। एवं, दूतों द्वारा सही वृत्तान्त जानने के बाद जो उचित समझें कीजिए, चाहे सीता को लौटा दीजिए, चाहे साम का प्रयोग कीजिए, और चाहे भेद को वर्तिए।"

राक्षसराज रावण शार्दूल की बात को सुनकर एकदम घबराया, और आत्महित की बात को निश्चित करके शुभचिन्तकों में श्रेष्ठ शुक नामक कार्यसाधक राक्षस से बोला—'शुक ! शीघ्र जावो, राजा सुग्रीव को मेरी ओर से, जैसे कि मैं कहता हूं ठीक वैसे ही, निर्भीकता पूर्वक अत्यन्त कोमल शब्दों में कहो—

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः ।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम् ॥१०॥
नहीयं हरिभिर्लङ्का प्राप्तुं शक्या कथञ्चन ।
देवैरपि सगन्धर्वैः किं पुनर्नरवानरैः ॥११॥
स तदा राक्षसेन्द्रेण सन्दिष्टो रजनीचरः ।
शुको विहङ्गमो भूत्वा तूर्णमाप्लुत्य चाम्बरम् ॥१२॥
स गत्वा दूरमध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
संस्थितो ह्यम्बरे वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१३॥
सर्वमुक्तं यथादिष्टं रावणेन दुरात्मना ।
अन्तरिक्षे स्थितो भूत्वा पुनर्वचनमब्रवीत् ॥१४॥
सुग्रीव सत्त्वसम्पन्न महाबलपराक्रम ।
किं मया खलु वक्तव्यो रावणो लोकरावणः ॥१५॥

'सुग्रीव ! यदि मैंने बुद्धिमान् राजपुत्र राम की पत्नी को हर लिया है, तो उसमें आपकी क्या हानि है ? आप किष्किन्धा लौट जाइए, यह लंका किसी तरह वानरों से नहीं जीती जा सकती। गन्धर्वों सहित देव लोग भी इसे नहीं पा सकते, तो फिर साधारण मनुष्यों और वानरों से क्या बनेगा ?''

तब, राक्षसराज की आज्ञा पाकर शुक राक्षस विमान द्वारा शीघ्र आकाश में उड़ गया, और सागर के ऊपर ही ऊपर लम्बा रास्ता तै करके ऊपर आकाश में ही रुक गया और सुग्रीव से बोला : दुरात्मा रावण ने जैसा कहा था वैसा ही उसने पूरा संदेश कह सुनाया। और, कुछ देर प्रतीक्षा के बाद आकाश में ही ठहरे ठहरे फिर बोला—"ऐ बुद्धिमान् ! महाबल-पराक्रमी सुग्रीव ! अच्छा बतलाइए, मैं लोगों को रुलाने वाले रावण से क्या कहूं ?"

स एवमुक्तः प्लवगाधिपस्तदा प्लवङ्गमानामृषभो महाबलः।
उवाच वाक्यं रजनीचरस्य चारं शुकं शुद्धमदीनसत्त्वः ॥१६॥
न मेऽसि मित्रं न तथानुकम्प्यो न चोपकर्तासि न मे प्रियोऽसि।
अरिश्च रामस्य सहानुबन्धस्ततोऽसि वालीव वधार्ह वध्यः ॥१७॥

तस्य ते त्रिषु लोकेषु न पिशाचं न राक्षसम्।
त्रातारं नानुपश्यामि न गन्धर्वं न चासुरम् ॥१८॥
अवधीस्त्वं जरावृद्धं गृध्रराजं जटायुषम्।
किं नु ते रामसांनिध्ये सकाशे लक्ष्मणस्य च।
हृता सीता विशालाक्षी यां त्वं गृह्य न बुध्यसे ॥१६॥
महाबलं महात्मानं दुराधर्षं सुरैरपि।

जब वानरों में श्रेष्ठ महाबली वानरराज को शुक ने इस प्रकार कहा, तो यद्यपि शुक दूत होने के कारण शुद्धान्तःकरण का था परन्तु उसे गुप्तचर समझकर आत्माभिमानी सुग्रीव ने रावण के लिए यह संदेश दिया—"रावण! तुम मेरे न मित्र हो और न दया के पात्र हो, न उपकारक हो और न मेरे प्यारे हो, अपितु मेरे मित्र राम के तुम शत्रु हो, इसलिए पुत्र-मित्रादिकों सहित तुम वाली की तरह वध के योग्य हो, और इसलिए बध्य हो।

मैं त्रिलोकी में ऐसा किसी को नहीं देखता कि जो तुम्हारी रक्षा कर सके; चाहे वह पिशाच हो, राक्षस हो, गन्धर्व हो, या असुर हो। तुमने बृद्धावस्था के कारण बूढ़े जटायु को तो मार डाला, किन्तु राम के समक्ष या लक्ष्मण के समक्ष विशालाक्षी सीता को क्यों नहीं हरा? इसप्रकार एकान्त में हरते हुए तुमने तनिक भी इसके परिणाम को नहीं समझा। तुमने महाबली, महाबुद्धिमान तथा देवों से भी अजेय रघुश्रेष्ठ राम को नहीं

न बुध्यसे रघुश्रेष्ठं यस्ते प्राणान् हरिष्यति ॥२०॥
ततोऽब्रवीद् वालिसुतोऽप्यङ्गदो हरिसत्तमः ।
नायं दूतो महाप्राज्ञ चारकः प्रतिभाति मे ॥२१॥
तुलितं हि बलं सर्वम् अनेन तव तिष्ठता ।
गृह्यतां मागमल्लङ्कामेतद्धि मम रोचते ॥२२॥
ततो राज्ञा समादिष्टाः समुत्पत्य बलीमुखाः ।
जगृहुश्च बबन्धुश्च विलपन्तमनाथवत् ॥२३॥
शुकस्तु वानरैश्चण्डैस्तत्र तैः सम्प्रपीडितः ।
व्याचुक्रोश महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ।
लुप्येते मे बलात्पक्षौ भिद्येते मे तथाऽक्षिणी ॥२४॥
यां च रात्रिं मरिष्यामि जाये रात्रिं च यामहम् ।

पहिचाना, जोकि तुम्हारे प्राणों को ले लेंगे।"

इसप्रकार सुग्रीव के कहने के बाद वालि-पुत्र हरिश्रेष्ठ अंगद भी बोला—"महाप्राज्ञ सुग्रीव! यह दूत नहीं, मुझे तो गुप्तचर मालूम पड़ता है। इसने आपके रहते हुए हमारे समस्त सैन्यबल को तोल लिया है। इसको पकड़ लीजिए, लंका मत जाने दीजिये, मुझे तो यही उचित प्रतीत देता है।"

इस पर राजा सुग्रीव की आज्ञा पाकर बलवानों जैसे मुख वाले वानर दौड़े और उसे पकड़ कर बांध लिया, वह अनाथों की तरह विलविलाता ही रह गया। तब उन प्रचण्ड वानरों ने शुक को खूब मारना-पीटना प्रारम्भ किया। तब वह रोता-विकलता दशरथ पुत्र राम को पुकारने लगा कि "देखिए ये लोग बुरी तरह से मेरे पासों को तोड़ रहे हैं। मैं जिस दिन मरूंगा और जिस दिन पैदा हुआ हूं, इस अन्तर्वर्ती काल में मैंने जो भी

एतस्मिन्नन्तरे काले यन्मया ह्यशुभं कृतम् ।
सर्वं तदुपपद्येथा जह्यां चेद्यदि जीवितम् ॥२५॥
नाघातयत्तदा रामः श्रुत्वा तत्परिदेवितम् ।
वाघरानब्रवीद् रामो मुच्यतां दूत आगतः ॥२६॥

सर्ग ११

स त्रिरात्रोषितस्तत्र नयज्ञो धर्मवत्सलः ।
उपासत तदा रामः सागरं सरितां पतिम् ॥१॥
न च दर्शयते रूपं मन्दो रामस्य सागरः ।
प्रयतेनापि रामेण यथार्हमभिपूजितः ॥२॥
तमब्रवीत्तदा रामः शृणु मे वरुणालय ।
अमोघोऽयं महाबाणः कस्मिन्देशे निपात्यताम् ॥३॥

बुरा कर्म किया है वह २ सब आप को लगेगा, यदि मैं इस प्रकार के अत्याचार के कारण मारा गया।"

तब राम ने उसके इस विलाप को सुनकर उसे मारने नहीं दिया और वानरों से कहा—इसे छोड़ दो, यह दूत बनकर आया है।

पांच दिन में पुल तय्यार करके समुद्र पार उतरना

धर्मवत्सल नीतिज्ञ राम को समुद्र पर पड़ाव डाले हुए तीन दिन बीत गये। इन तीन दिनों में उन्होंने नदियों को अपने अन्दर खपाने वाले समुद्र की देखभाल की, परन्तु उन्हें अथाह समुद्र का कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिला (जहां कि पुल बनाया जा सके), यद्यपि राम ने बड़े प्रयत्न से उसकी पूरी २ खोज-बीन की। तब अन्त में राम ने उसे कहा "जल के भण्डार! मेरी बात सुनो : यह मेरा महाबाण निष्फल कभी नहीं जाता, बतायो,

रामस्य वचनं श्रुत्वा तं च दृष्ट्वा महाशरम् ।
महोदधिर्महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥४॥
उत्तरेणावकाशोऽस्ति कश्चित्पुण्यतरो मम ।
द्रुमकुल्य इति ख्यातो लोके ख्यातो यथा भवान् ॥५॥
उग्रदर्शनकर्माणो बहवस्तत्र दस्यवः ।
आभीरप्रमुखाः पापाः पिबन्ति सलिलं मम ॥६॥
तैर्न तत्स्पर्शनं पापं सहेयं पापकर्मभिः ।
अमोघः क्रियतां राम अयं तत्र शरोत्तमः ॥७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मनः ।

तुम्हारे किस स्थान में मारूं ?"

एवं, राम के वचन को सुनकर और महावाण को देखकर महातेजस्वी महासागर ने उनसे कहा—

"उत्तर की ओर मेरा एक कार्यसाधक प्रदेश है, वह द्रुमकुल्य इस नाम से लोक में प्रसिद्ध है जैसे कि आप दुनिया में प्रसिद्ध हैं। (अर्थात् वहां समुद्र के अन्दर ही अन्दर बड़ी दूर तक वृक्षों की नदी जैसी पंक्ति गयी हुई है)। वहां शक्ल और कर्म से उग्र, बहुत से अहीर-प्रमुख पापकारी दस्यु लोग रहते हैं, जोकि मेरा पानी पीते हैं। उन पापकारी दस्युओं के साथ मेरा संसर्ग है, मैं उस संसर्गजन्य पाप को न उठाऊं, अतः राम ! आप इस उत्तम वाण को वहां सफल कीजिए।"

(यह सब वर्णन आलंकारिक भाषा में हैं, जिसका तात्पर्य यह है कि आखिरकार ढूंडते २ चौथे दिन राम को उत्तर की ओर द्रुमकुल्य नामी स्थान का पता लगा, यहां कि मुख्यतया अहीर आदि भयानक दुष्ट लोग वसते थे)।

मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥८॥
तेन तन्मरुकान्तारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् ।
निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥९॥
ननाद च तदा तत्र वसुधा शल्यपीडिता ।
अवदारणशब्दस्य दारुणः समपद्यत ॥१०॥
तस्मिन्दग्धे तदा कुक्षौ समुद्रः सरितां पतिः ।
राघवं सर्वशास्त्रज्ञमिदं वचनमब्रवीत् ॥११॥
अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः ।
पित्रा दत्तवरः श्रीमान् प्रतिमो विश्वकर्मणः ॥१२॥
एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः ।

विशाल सागर के इस वचन को सुनकर वहां की गहराई जानने के लिए सागर द्वारा प्रदर्शित स्थान पर राम ने उस परम तेजस्वी वाण को छोड़ा। राम ने जहां वज्राशनि-तुल्य दीप्ति वाले वाण को फैंका, वह प्रदेश पीछे दुनिया में मरुकान्तार (मरुवन) नाम से प्रसिद्ध हुआ। जब समुद्रवर्ती भूमि पर वाण लगा तो भूमि का शब्द उठा और साथ ही भूमि के स्फोट-शब्द की भयंकर गूंज उठी। इस प्रकार वाण द्वारा समुद्रान्तर्वर्ती उस प्रदेश के बींध लेने पर नदियों को अपने अन्दर खपाने वाले समुद्र ने सर्वशास्त्रों के ज्ञाता राम को यह बात कही—

"सौम्य! यह नल विश्वकर्मा (अत्यन्त चतुर एक इंजिनीअर) का पुत्र है, जिसे पिता ने वर दे रखा है कि तू बड़ा यशस्वी होगा और मेरा प्रतिरूप होगा (अर्थात् सब वस्तुओं के निर्माण में तू सामर्थ्यवान् होगा)। अतः, यह वानर बड़े उत्साह से मेरे पर पुल बनावे, मैं उसे धारे रखूंगा, क्योंकि जैसा कुशल

तमहं धारयिष्यामि यथा ह्येष पिता तथा ॥१३॥
एवमुक्त्वोदधिर्नष्टः समुत्थाय नलस्ततः ।
अब्रवीद् वानरश्रेष्ठो वाक्यं रामं महाबलम् ॥१४॥
अहं सेतुं करिष्यामि विस्तीर्णे मकरालये ।
पितुः सामर्थ्यमासाद्य तत्त्वमाह महोदधिः ॥१५॥
मम मातुर्वरो दत्तो मन्दरे विश्वकर्मणा ।
मया तु सदृशः पुत्रस्तव देवि भविष्यति ॥१६॥
औरसस्तस्य पुत्रोऽहं सदृशो विश्वकर्मणा ।
न चाप्यहमनुक्तो वः प्रब्रूयामात्मनो गुणान् ॥१७॥
समर्थश्चाप्यहं सेतुं कर्तुं वै वरुणालये ।
तस्मादद्यैव बध्नन्तु सेतुं वानरपुङ्गवाः ॥१८॥

इसका पिता था वैसा ही कुशल यह है।"

यह कहकर समुद्र अन्तर्धान हो गया और वानरश्रेष्ठ महाबली नल उठकर राम से बोला—"भगवन् ! समुद्र ने यथार्थ बात कही है कि मैं पिता के सामर्थ्य को पाकर चौड़े पाट वाले समुद्र पर पुल बांध सकूंगा। क्योंकि मेरे पिता विश्वकर्मा ने मन्दर पर्वत पर मेरी माता को वर दिया था कि देवि ! तेरा पुत्र गुणों में मेरे समान होगा। (अर्थात्, वहां गर्भाधान इसी इच्छा को लेकर किया गया था) इसलिए मैं पिता विश्वकर्मा का औरस पुत्र हूं और गुणों में उनके समान हूं। भगवन् ! इससे पूर्व मैं आपके पूछे बिना अपने गुणों को नहीं बतला सकता था। सो, मैं निश्चय से समुद्र पर पुल बांधने में समर्थ हूं, आप आज्ञा करिए ताकि आज ही वानरश्रेष्ठ पुल बांधना प्रारम्भ कर दें।"

ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुङ्गवाः ।
उत्पेततुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥१६॥
समूलांश्च विमूलांश्च पादपान् हरिसत्तमाः ।
इन्द्रकेतूनिवोद्यम्य प्रजह्रुर्वानरास्तरून् ॥२०॥
तालान्दाडिमगुल्मांश्च नारिकेलविभीतकान् ।
करीरान् बकुलान्निम्बान् समाजह्रुरितस्ततः ॥२१॥
हस्तिमात्रान् महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥२२॥
प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम् ।
समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥२३॥
समुद्रं क्षोभयामासुर्निपतन्तः समन्ततः ।

नल के इसप्रकार कहने पर राम ने सब ओर फैले हुए वानर-श्रेष्ठों को पुल बनाने के लिए नियत किया। तब वे बहुत बड़ी संख्या में खुशी २ महावन की ओर दौड़ पड़े, और जड़ सहित व जड़ रहित वृक्षों को उखाड़ २ कर वे हरिश्रेष्ठ वानर लोग इन्द्र के ध्वज जैसे सीधे व मोटे तनों को लाने लगे। इन तनों में ताड़, अनार, नारियल, बहेड़ा, कटीर, बकुल और नीम के तने थे, जिन्हें सब ओर से लाकर इकट्ठे करने लगे। साथ ही उन लम्बे-चौड़े शरीर वाले महाबली वानरों ने पर्वतों को तोड़ २ कर हाथी जैसे भारी भरकम पत्थरों को यंत्रों द्वारा लाना प्रारम्भ किया। जब वे बड़े २ लट्ठ और पत्थर समुद्र में फैंके जाते थे, तब जल बड़े वेग से ऊपर उछलता, आकाश में उड़ता, और फिर नीचे इधर उधर गिर जाता था। इसप्रकार जगह २ उन लट्ठों और चट्टानों को गिरा कर वानरों ने समुद्र को खलबला दिया।

सूत्राण्यन्ये प्रगृह्णन्ति ह्यायतं शतयोजनम् ॥२४॥
नलश्चक्रे महासेतुं मध्ये नदनदीपतेः ।
स तदा क्रियते सेतुर्वानरैर्घोरकर्मभिः ॥२५॥
कृतानि प्रथमेनाह्ना योजनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसङ्काशैस्त्वरमाणैः प्लवङ्गमैः ॥२६॥
द्वितीयेन तथैवाह्ना योजनानि तु विंशतिः ।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥२७॥
अह्ना तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे ।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेव च ॥२८॥
चतुर्थेन तथा चाह्ना द्वाविंशतिरथापि वा ।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्ततः ॥२९॥
पञ्चमेन तथा चाह्ना प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।

कुछ लोगों ने सूत थांभ रखे थे ताकि पुल सीधा बने तथा खिंचा रहे। इसप्रकार नल समुद्र पर सौ योजन लम्बा बड़ा भारी पुल बना रहा था जबकि घोर कर्मकारी वानर लोग उस पुल के बनाने में जुटे हुए थे।

एवं पुल का निर्माण करते हुए हाथी समान भारी भरकम शरीर वाले वानरों ने खुशी २ बड़ी तेजी वर्तते हुए पहले दिन १४ योजन पुल तय्यार कर लिया। इसीप्रकार भीमकाय महाबली वानरों ने जल्दी करते हुए दूसरे दिन २० योजन तय्यार किया। फिर फुर्तीले महाकाय वानरों ने तीसरे दिन समुद्र पर २१ योजन पुल बनाया। इसके बाद चौथे दिन महावेगवान् वानरों ने शीघ्रता करते हुए २२ योजन तैयार कर डाला। और फिर पांचवे दिन शीघ्रकारी वानरों ने समुद्र-पार के किनारे के साथ मिलाते

योजनानि त्रयोविंशत् सुवेलमधिकृत्य वै ॥३०॥
स वानरवरः श्रीमान् विश्वकर्मात्मजो बली ।
बबन्ध सागरे सेतुं यथा चास्य पिता तथा ॥३१॥
स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे सुभगः श्रीमान् स्वातीपथ इवाम्बरे ॥३२॥
ततः पारे समुद्रस्य गदापाणिर्विभीषणः ।
परेषामभियानार्थमतिष्ठत् सचिवैः सह ॥३३॥
अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सलक्ष्मणः ।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥३४॥
अन्ये मध्येन गच्छन्ति पार्श्वतोऽन्ये प्लवङ्गमाः ॥३५॥

हुए २३ योजन पुल बना दिया ।

इस प्रकार विश्वकर्मा के पुत्र बली श्रीमान् वानरश्रेष्ठ नल ने पांच दिनों में सागर के ऊपर पूरा १०० योजन का पुल बांध दिया । यह अद्भुत काम उसने ऐसे ही कर डाला जैसे कि उसके पिता किया करते थे । मगरों के घर समुद्र पर नल द्वारा तय्यार किया हुआ यह पुल ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे कि आकाश में दीप्तिमान् नक्षत्रपथ (जिसे कि आकाश-गंगा कहते हैं) शोभायमान हुआ करता है ।

इस प्रकार पुल के तैयार हो जाने पर हाथ में गदा ले विभीषण अपने मन्त्रियों सहित शत्रुओं पर चढ़ाई करने के लिए समुद्र के पार जा खड़ा हुआ । फिर धर्मात्मा श्रीमान् धनुर्धारी राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को साथ लिए, सेना के आगे-आगे चले । इस प्रकार सेना के पार उतरते समय कुछ सेनापति लोग सेना के बीच-बीच में और कुछ अगल-बगल में प्रस्थित हुए ।

घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥३६॥
वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥३७॥

सर्ग १२

निमित्तानि निमित्तज्ञो दृष्ट्वा लक्ष्मणपूर्वजः ।
बलं च तत्र विभजच्छास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१॥
शशास कपिसेनां तां बलादादाय वीर्यवान् ।
अङ्गदः सह नीलेन तिष्ठेदुरसि दुर्जयः ॥२॥
तिष्ठेद् वानरवाहिन्या वानरौघसमावृतः ।
आश्रितो दक्षिणं पार्श्वमृषभो नाम वानरः ॥३॥
गन्धहस्तीव दुर्धर्षस्तरस्वी गन्धमादनः ।

जिस समय यह भयंकर वानर-सेना समुद्र को पार कर रही थी, तो उन्होंने अपने हर्षजन्य महान् घोष से सागर के उठे भयंकर घोष को दबा दिया। इसप्रकार वानरों की वह सेना नल-निर्मित पुल से पार उतर गयी, और राजा सुग्रीव ने उसे मूल-फल-जल परिपूर्ण समुद्रतीर पर पैठा दिया।

व्यूह रचना करके शुक को छोड़ना और उसका रावण से मिलना

पूर्वकालिक लक्षणों को जानने वाले राम ने पूर्वकालिक लक्षणों को देखकर युद्धशास्त्र के अनुसार उसी समय व्यूह रचना कर दी : राम ने व्यूह-रचनार्थ वानर-सेना को आज्ञा दी—"वीर्यवान् दुर्जेय अंगद सेना में से अपनी सेना को साथ लेकर नील के साथ वक्षस्थल में रहे। ऋषभ नामक वानर-सेनापति विशाल वानर-सेना को साथ लेकर अंगद की वानर-सेना के दक्षिण पार्श्व

तिष्ठेद् वानरवाहिन्याः सव्यं पक्षमधिष्ठितः ।
मूर्ध्नि स्थास्याम्यहं यत्तो लक्ष्मणेन समन्वितः ॥४॥
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋक्षमुख्या महात्मानः कुक्षिं रक्षन्तु ते त्रयः ॥५॥
जघनं कपिसेनायाः कपिराजोऽभिरक्षतु ।
पश्चार्धमिव लोकस्य प्रचेतास्तेजसा वृतः ॥६॥
सुविभक्तमहाव्यूहा महावानररक्षिता ।
अनीकिनी सा विबभौ यथा द्यौः साभ्रसंप्लवा ॥७॥
ततो रामो महातेजाः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ।
सुविभक्तानि सैन्यानि शुक एष विमुच्यताम् ॥८॥

की ओर रहे। गन्धहस्ती की तरह दुर्दम्य वेगशाली गन्धमादन सेनापति अंगद सेना के वाम पार्श्व में अधिष्ठित होकर उधर रहे। मैं सावधान होकर लक्ष्मण के साथ अग्रभाग में रहूँगा। जाम्बवान् सुषेण, और वेगदर्शी, ये तीन ऋक्षों के महावीर सेनापति मध्यभाग की रक्षा करें, और वानरराज सुग्रीव वानर सेना के पिछले भाग में रहते हुए रक्षा करें, जैसा कि तेजस्वी वरुण राजा अपने भूलोक की, पश्चिम भाग में रहते हुए, रक्षा करते हैं।"

तब प्रमुख सेनापतियों से सुरक्षित, सुविभक्त, महाव्यूह वाली वह सेना ऐसे शोभायमान होने लगी, जैसे कि मेघमण्डल से युक्त आकाश शोभायमान हुआ करता है।

इस महाव्यूह-रचना के बाद महातेजस्वी राम ने सुग्रीव को कहा—"सुग्रीव ! सेना सब ओर भलीप्रकार पैठा दी गई है, अब इस दूत शुक को छोड़ दो।"

रामस्य तु वचः श्रुत्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
मोचयामास तं दूतं शुकं रामस्य शासनात् ॥९॥
मोचितो रामवाक्येन वानरैश्च निपीडितः ।
शुकः परमसंत्रस्तो रक्षोधिपमुपागमत् ॥१०॥
रावणः प्रहसन्नेव शुकं वाक्यमुवाच ह ।
किमिमौ ते सितौ पक्षौ लूनपक्षश्च दृश्यसे ॥११॥
कच्चिन्नानेकचित्तानां तेषां त्वं वशमागतः ॥१२॥
ततः स भयसंविग्नस्तेन राज्ञाऽभिचोदितः ।
वचनं प्रत्युवाचेदं राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥१३॥
सागरस्योत्तरे तीरेऽब्रुवं ते वचनं तथा ।
यथा सन्देशमक्लिष्टं सान्त्वयन् श्लक्ष्णया गिरा ॥१४॥
क्रुद्धैस्तैरहमुत्प्लुत्य दृष्टमात्रः प्लवङ्गमैः ।

राम की बात को सुनकर महाबली वानरराज सुग्रीव ने राम के आदेश से उस शुक दूत को छोड़ दिया। वानरों से सताया हुआ अत्यन्त भयभीत शुक, राम के आदेश से छूटकर, राक्षसराज रावण के पास पहुंचा। उसे देखकर मुस्कराते हुए रावण ने पूछा–"शुक! तुम्हारे ये पासे काले क्यों हैं? और फिर तुम्हारे पासे जख्मी क्यों दीखते हैं? क्या तुम्हें उन बहुविध विचारों वाले वानरों ने पकड़ लिया था?" इस पर शुक भय से घबराया हुआ राजा से पूछे जाने पर राक्षसराज से यह उत्तम बात बोला—

"राजन्! समुद्र के उत्तर तट पर जाकर, जैसे आपने संदेश दिया था वैसे, मैंने साफ २ बात वानरों को सान्त्वना देते हुए प्रिय शब्दों में कही। परन्तु उन वानरों ने मुझे देखते ही झपटकर पकड़ लिया और मुक्कों से मारना और खत्म

गृहीतोऽस्म्यपि चारब्धो हन्तुं लोप्तुं च मुष्टिभिः ॥१५॥
न ते सम्भाषितुं शक्याः संप्रश्नोऽत्र न विद्यते ।
प्रकृत्या कोपनास्तीक्ष्णा वानरा राक्षसाधिप ॥१६॥
स च हन्ता विराधस्य कबन्धस्य खरस्य च ।
सुग्रीवसहितो रामः सीतायाः पदमागतः ॥१७॥
स कृत्वा सागरे सेतुं तीर्त्वा च लवणोदधिम् ।
एष रक्षांसि निर्धूय धन्वी तिष्ठति राघवः ॥१८॥
ऋक्षवानरसङ्घानामनीकानि सहस्रशः ।
गिरिमेघनिकाशानां छादयन्ति वसुन्धराम् ॥१९॥
राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च ।
नैतयोर्विद्यते सन्धिर्देवदानवयोरिव ॥२०॥
पुरा प्राकारमायान्ति क्षिप्रमेकतरं कुरु ।

करना शुरु किया। राक्षसाधिप ! वे वानर स्वभाव से इतने क्रोधी और तीखे हैं कि उनसे कोई बात नहीं हो सकती और न कोई वहां प्रश्न हो सकता है। और वह, विराध कबन्ध तथा खर को मारने वाला, राम सुग्रीव सहित सीता की तलाश में आया हुआ है। वह समुद्र पर पुल बांध और लवण सागर को पार करके राक्षसों को नीचा दिखला कर धनुर्धारण किये वहीं समीप में ठहरा हुआ है। पर्वत और मेघ के समान गठीले तथा गर्जते हुए ऋक्ष तथा वानर-संघों की बहुत बड़ी सेना ने भूमि को ढांप रखा है। विशाल राक्षसों की सेना, तथा वानरराज सुग्रीव की सेना इन दोनों में संधि नहीं हो सकती, जैसे देवों और दानवों की संधि सम्भव नहीं। इससे पूर्व कि वे परकोटे पर पहुंच जावें, आप बहुत जल्दी एक काम करिये, चाहे तुरन्त राम को सीता दे

सीतां चास्मै प्रयच्छाशु युद्धं वापि प्रदीयताम् ॥२१॥
शुकस्य वचनं श्रुत्वा रावणो वाक्यमब्रवीत् ।
रोषसंरक्तनयनो निर्दहन्निव चक्षुषा ॥२२॥
यदि मां प्रति युद्ध्येरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतां प्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि ॥२३॥
कदा समभिधावन्ति मामका राघवं शराः ।
वसन्ते पुष्पितं मत्ता भ्रमरा इव पादपम् ॥२४॥
कदा शोणितदिग्धाङ्गं दीप्तैः कार्मुकविच्युतैः ।
शरैरादीपयिष्यामि उल्काभिरिव कुञ्जरम् ॥२५॥
तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महता वृतः ।
ज्योतिषामिव सर्वेषां प्रभामुद्यन्दिवाकरः ॥२६॥

दीजिये और चाहे तुरन्त युद्ध कीजिये ।"

शुक की बात को सुनकर रावण के नेत्र मारे क्रोध के सुर्ख हो गए, ऐसे कि देखते ही दग्ध कर देगा, और बोला—

"शुक ! यदि मेरे पर देव गन्धर्व दानव सब मिलकर भी हमला बोल दें, तब भी मैं इन सबके भय से सीता को नहीं दूंगा । अब तो मैं यही देखूंगा कि कब मेरे बाण राम पर एक साथ दौड़ेंगे जैसे कि वसन्त ऋतु में खिले हुए पौदे पर मत्त भ्रमर दौड़ा करते हैं ? कब मैं धनुष से छुटे चमचमाते बाणों से खून से लथपथ राम को दूर भगाऊंगा, जैसे कि मसालों से हाथी को दूर भगाया जाता है ? और कब मैं अपनी बड़ी सेना को साथ ले राम की उस सेना को नीचा दिखाऊंगा, जैसे कि उदय होता हुआ सूर्य अन्य सब चन्द्र-नक्षत्र-विद्युत आदिकों की रोशनी को दबा देता है ? सागर के ज्वारभाटे के समान मेरा वेग है, और

सागरस्येव मे वेगो मारुतस्येव मे बलम् ।
न च दाशरथिर्वेद तेन मां योद्धुमिच्छति ॥२७॥
न मे तूणीशयान्बाणान् सविषानिव पन्नगान् ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति ॥२८॥
न जानाति पुरा वीर्यं मम युद्धे स राघवः ।
मम चापमयीं वीणां शरकोणैः प्रवादिताम् ॥२९॥
ज्याशब्दतुमुलां घोराम् आर्तगीतमहास्वनाम् ।
नाराचतलसन्नादां नदीम् अहितवाहिनीम् ।
अवगाह्य महारङ्गं वादयिष्याम्यहं रणे ॥३०॥

प्रचण्ड हवा के समान मेरा बल है। राम इस बात को नहीं जानता, इसलिए वह मेरे से युद्ध करना चाहता है। राम ने कभी संग्राम में विषैले सांपों जैसे तुणीर में पड़े मेरे वाण नहीं देखे, इसलिये वह मेरे से युद्ध करना चाहता है। राम ने पहिले कभी युद्ध में मेरा पराक्रम नहीं जाना, और न कभी तीर रूपी गजों से बजाई जाने वाली मेरी धनुषरूपी वीणा को ही जाना है। जब मैं युद्ध में शत्रु सेना की नदी में गोता लगाकर इस धनुष-रूपी वीणा से खून रूपी महाराग को बजाऊंगा तो कोई वहां ठहर न सकेगा। यह शत्रुसेना-नदी तुमुल ज्या-टंकार से घोर होगी, छटपटातों के रोदन-गीत से गुंजायमान होगी, और वाणों के नोकों की सनसनाहट से मुखरित होगी।"

रावण का शुक-सारण दूतों को भेजना और उनसे समाचार का मिलना

शुक दूत से यह समाचार जान कर कि दशरथ-पुत्र राम सेना सहित समुद्र-पार उतर आया है, श्रीमान् रावण ने शुक-

सर्ग १३

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे ।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥१॥
समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरे सेतुबन्धनम् ॥२॥
सागरे सेतुबन्धं तं न श्रद्दध्यां कथंचन ।
अवश्यं चापि संख्येयं तन्मया वानरं बलम् ॥३॥
भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च ये च मुख्याः प्लवंगमाः ॥४॥
मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च संगताः ।
ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवंगमाः ॥५॥
स च सेतुर्यथा बद्धः सागरे सलिलार्णवे ।

सारण अमात्यों से कहा (यह शुक दूसरा है। पहला दूत था, यह अमात्य है)—

"समग्र वानर सेना दुस्तर समुद्र के पार उतर आयी और राम ने समुद्र पर सेतु-बन्धन कर लिया, ये दोनों बातें अभूतपूर्व हैं। परन्तु समुद्र पर पुल बांध लिया, इससे तो मैं राम के सामर्थ्य से किसी तरह प्रभावित नहीं होता, पर हां मुझे यह अवश्य देखना चाहिए कि वह वानर-सेना कितनी है ? इसलिए आप छिपे रूप में वानर-सेना के अन्दर जाइए और देखिए, सेना कितनी है ? उसकी शक्ति कैसी है, उसके सेनापति वानर कौन हैं ? राम के मंत्री कौन हैं, सुग्रीव के साथ सदा कौन रहते हैं, सेना के आगे कौन रहते हैं, और उन आगे रहने वालों में भी शूर कौन वानर हैं ? फिर इन बातों का भी ठीक २ पता लो कि वह पुल

निवेषं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥६॥
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥७॥
कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
तच्च ज्ञात्वा यथातत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥८॥
इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥९॥
तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः ।
आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥१०॥
तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ॥११॥
तौ दृष्ट्वा व्यथितौ रामं निराशौ जीविते तथा ।

महासमुद्र पर कैसे बांधा गया है, उन महाबली वानरों का पैठना कैसा है, वीर राम तथा लक्ष्मण का क्या अभिप्राय है, उनमें कितना बल है और उनके पास क्या २ हथियार हैं ? और फिर सही २ यह भी जानिए कि उन महाबली वानरों का प्रधान सेना-पति कौन है ? जाइए यह सब जान कर शीघ्र लौटिये ।"

ऐसी आज्ञा पाकर उन शुक-सारण राक्षसों ने वानर का रूप बनाया और वानर सेना में जा पहुँचे। परन्तु महातेजस्वी विभीषण ने उन छद्मवेषधारियों को देख लिया और पकड़ कर राम के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा "शत्रु नगरी के विजेता ! ये राक्षसराज रावण के मन्त्री शुक-सारण हैं। ये गुप्तचर रूप में लंका से यहां हमारी सेना के अन्दर आए हैं।"

इस पर वे राम को देखकर घबरा गए और जीवन से

कृताञ्जलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥१२॥
आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहितावुभौ ।
परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन ॥१३॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन् वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥१४॥
यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुपरीक्षिताः ।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥१५॥
अथ किंचिददृष्टं वा भूयस्तद् द्रष्टुमर्हथः ।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनः सन्दर्शयिष्यति ॥१६॥
न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हतः ॥१७॥

निराश हो गए। उन्होंने हाथ जोड़कर डरते २ राम से कहा—"सौम्य ! हम दोनों रावण से भेजे हुए यहां आए हैं। रघुनन्दन ! हम यह सब सैन्य आदि जांचने-पड़तालने आए हैं।"

मानव मात्र के हित में रत रहने वाले दशरथ पुत्र राम उनकी इस बात को सुन कर हंसे और बोले—"यदि आप लोगों ने सब सेना देख ली है, व हम लोगों के सामर्थ्य की जांच-पड़ताल कर ली है, और जैसा रावण ने कहा था वैसा सब कार्य पूरा कर लिया है, तो खुशी २ लौट जाइए। परन्तु यदि अभी कुछ नहीं देखा गया तो उसे फिर देख सकते हैं, अथवा आपको विभीषण फिर पूरे तौर पर सब कुछ दिखला देंगे। इस गिरफ्तारी से आपको जीवन के लिए डरना न चाहिए, क्योंकि हथियार रहित और फिर गिरफ्तार किये दूतों का बध नहीं किया जाता।"

"विभीषण ! यद्यपि ये दोनों राक्षस शत्रु के भेदिए हैं,

प्रच्छन्नौ च विमुञ्चेमौ चारौ रात्रिंचरावुभौ ।
शत्रुपक्षस्य सततं विभीषण विकर्षिणौ ॥१८॥
प्रविश्य महतीं लङ्कां भवद्भ्यां धनदानुजः ।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥१९॥
यद्बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद् दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥२०॥
श्वः काले नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥२१॥
क्रोधं भीममहं मोक्ष्ये ससैन्ये त्वयि रावण ।
श्वः काल्ये वज्रवान्वज्रं दानवेष्विव वासवः ॥२२॥
इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।

भेष वदल कर आए हैं, और (रावण के शत्रुपक्ष का) हमारा निरन्तर भेद लेने वाले रहे हैं, तथापि इन्हें छोड़ दो।"

"ऐ गुप्तचरो ! आप फैली हुई लंका नगरी में पहुंच कर जैसा मैं कहूं वैसा मेरी ओर से कुवेर के छोटे भाई राक्षसराज रावण से कहिए कि—"तूने जिस बल के भरोसे मेरी पत्नी सीता को हरा है, उस बल को अब तू मुझे अपने सैन्य तथा वन्धुओं सहित जैसा चाहे वैसा दर्शा। कल प्रातःकाल तुमने देखना कि मेरे वाणों से परकोटों तथा मुख्यद्वारों सहित लंका नगरी और राक्षसों की सेना नष्ट हुई पड़ी होगी। रावण ! कल प्रातःकाल सैन्य सहित तेरे पर मैं भयंकर क्रोध बरपा करूंगा, जैसे कि वज्रवान् इन्द्र ने दानवों पर वज्र छोड़ा था।"

राम ने शुक-सारण राक्षसों को जब इस प्रकार रावण को कहने के लिए संदेश दिया तो उन्होंने 'जय हो' इस प्रकार धर्म-

जयेति प्रतिनन्द्यैनं राघवं धर्मवत्सलम् ।
आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूतां राक्षसाधिपम् ॥२३॥
विभीषणगृहीतौ तु वधार्थं राक्षसेश्वर ।
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामिततेजसा ॥२४॥
एकस्थानगता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ।
लोकपालसमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ॥२५॥
रामो दाशरथिः श्रीमाँल्लक्ष्मणश्च विभीषणः ।
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्रसमविक्रमः ॥२६॥
एते शक्ताः पुरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
उत्पाट्य सङ्क्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ॥२७॥
यादृशं तद्धि रामस्य रूपं प्रहरणानि च ।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥२८॥

वत्सल राम का अभिनन्दन किया और लंका नगरी पहुंचकर राक्षसराज से बोले—

"राक्षसेश्वर! हमें मार डालने के लिए विभीषण ने गिरफ्तार कर लिया था, परन्तु अमित तेजस्वी धर्मात्मा राम ने हमें देखकर छोड़ दिया। दशरथपुत्र श्रीमान् राम और लक्ष्मण, विभीषण और इन्द्रसमान विक्रमी महातेजस्वी सुग्रीव, ये चार पुरुषश्रेष्ठ वहां एकत्रित हैं। ये सब लोकपालों के समान शूर हैं, अस्त्रविद्या में निपुण हैं, और दृढ़विक्रमी हैं। सिर्फ ये चारों ही परकोटों तथा मुख्य द्वारों सहित लंका को उखाड़कर फैंक देने में शक्त हैं, भले ही सब वानर बैठे रहें, उनकी आवश्यकता ही न पड़ेगी। और फिर, राम का जैसा वह स्वरूप और जैसे आयुध हैं उससे तो जान पड़ता है कि वह अकेला ही लंका नगरी को

रामलक्ष्मणगुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
वभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥२६॥

सर्ग १४

किंचिदाविग्नहृदयो जातक्रोधश्च रावणः ।
भर्त्सयामास तौ वीरौ कथान्ते शुकसारणौ ॥१॥
अधोमुखौ तौ प्रणतावब्रवीच्छुकसारणौ ।
रोषगद्गदया वाचा संरब्धं परुषं तथा ॥२॥
न तावत्सदृशं नाम सचिवैरुपजीविभिः ।
विप्रियं नृपतेर्वक्तुं निग्रहे प्रग्रहे प्रभोः ॥३॥
रिपूणां प्रतिकूलानां युद्धार्थमभिवर्तताम् ।
उभाभ्यां सदृशं नाम वक्तुमप्रस्तवे स्तवम् ॥४॥

नाश कर देगा, बाकी तीन की भी जरूरत नहीं पड़ेगी । इसप्रकार राम, लक्ष्मण और सुग्रीव से सुरक्षित वह सेना समस्त सुरासुरों से अजेय बनी हुई है ।"

शार्दूल आदि गुप्तचरों का भेजना, और मुंह को खाकर उनका भी लौट आना

शुक-सारण की रिपोर्ट को सुनकर रावण भड़का, क्रोध में भरा, और उन वीरों को झिड़कने लगा । उस समय शुक-सारण विनम्र होकर नीचे मुख किये खड़े थे कि रावण ने क्रोध में भर कर उन्हें तीव्र तथा कठोर वचन कहने प्रारम्भ किये—

"तुमने जैसे वचन मुझे कहे हैं वैसे अप्रिय वचन निग्रह-अनुग्रह में समर्थ राजा के सामने वेतनभोगी सचिवों को नहीं कहने चाहिएं । युद्ध के लिए प्रस्तुत विरोधी शत्रुओं की इसप्रकार विना किसी प्रसंग के प्रशंसा करना, क्या तुम दोनों को उचित

आचार्यो गुरवो वृद्धा वृथा वा पर्युपासिताः ।
सारं यद्राजशास्त्राणामनुजीव्यं न गृह्यते ॥५॥
गृहीतो वा न विज्ञातो भारोऽज्ञानस्य वाह्यते ।
ईदृशैः सचिवैर्युक्तो मूर्खैर्दिष्ट्या धराम्यहम् ॥६॥
किं नु मृत्योर्भयं नास्ति मां वक्तुं परुषं वचः ।
यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥७॥
अप्येव दहनं स्पृष्ट्वा वने तिष्ठन्ति पादपाः ।
राजदण्डपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिनः ॥८॥
हन्यामहं त्विमौ पापौ शत्रुपक्षप्रशंसिनौ ।
यदि पूर्वोपकारैर्मे क्रोधो न मृदुतां व्रजेत् ॥९॥

था ? तुमने आचार्य की, माता-पिता आदि गुरुओं की, और ज्ञानवृद्धों-वयोवृद्धों की व्यर्थ में ही उपासना की, जबकि तुमने राजनीति-शास्त्र का ग्राह्यांश सार तक ग्रहण नहीं किया। यदि ग्रहण किया भी है, तो तुमने उसके मर्म को नहीं जाना, इसलिए वस्तुतः तुम अज्ञानता का ही बोझा ढो रहे हो। अहो ! ऐसे मूर्ख मंत्रियों से युक्त होने पर भी मैं राज्य को धारण कर रहा हूं ?

क्या तुम्हें मुझसे कठोर वचन बोलते हुए मौत का डर नही, जब कि मेरे राज्य करते हुए की जीभ शुभ-अशुभ को प्रदान करती है ? (अर्थात् मेरी आज्ञा के होते ही दूसरे का भला या बुरा हो जाता है ।) वन में आग लगने पर भले ही वहां के कुछ वृक्ष जलने से बच जाते हैं, परन्तु राजद्रोह से युक्त अपराधी नहीं बच सकते। यदि पहले किये उपकारों के कारण मेरा क्रोध ढीला न पड़े तो मैं शत्रुपक्ष के प्रशंसक इन दोनों अपराधियों को अभी मार डालूं। जावो, मेरे सामने से यहां से हट जावो, खबरदार,

अपध्वंसत नश्यध्वं सन्निकर्षादितो मम ।
नहि वां हन्तुमिच्छामि स्मराम्युपकृतानि वाम् ।
हतावेव कृतघ्नौ द्वौ मयि स्नेह–पराङ्मुखौ ॥१०॥
एवमुक्तौ तु सव्रीडौ तावुभौ शुकसारणौ ।
रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥११॥
अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः ॥१२॥
महोदरस्तथोक्तस्तु शीघ्रमाज्ञापयच्चरान् ॥१३॥
ततश्चाराः संत्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जलयो वर्धयित्वा जयाशिषः ॥१४॥
तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।

फिर कभी मेरे सामने मत आना, मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता, मैं तुम्हारे पहले उपकारों को याद कर रहा हूँ, पर मेरे प्रति स्नेह से विमुख तुम दोनों कृतघ्न मेरे लिये तो मरे हुए ही हो।"

जब रावण ने शुक-सारण को इस प्रकार धिक्कारा, तो वे दोनों बहुत लज्जित हुए, और रावण को जयनाद पूर्वक प्रणाम करके चल दिए।

इसके बाद निशाचर रावण ने पास में बैठे महोदर को आदेश दिया कि जावो शीघ्र मेरे सामने गुप्तचरों को उपस्थित करो। इस प्रकार आदेश के मिलने पर महोदर ने गुप्तचरों को शीघ्र उपस्थित होने की आज्ञा दी। तब आदेश को पाते ही राजाज्ञा से गुप्तचर शीघ्र वहां पहुंच गए, और जय-कामनायें प्रकट करते हुए हाथ जोड़ राजा के सामने आ खड़े हुये। तब राक्षसाधिप रावण ने उन विश्वस्त, शूर, धीर, तथा निर्भय

चरान्प्रत्यायिकाञ्छूरान् धीरान्विगतसाध्वसान् ॥१५॥
इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् ।
मन्त्रेष्वभ्यतरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥१६॥
कथं स्वपिति जागर्ति किमद्य च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं सर्वम् आगन्तव्यमशेषतः ॥१७॥
चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य निरस्यते ॥१८॥
चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
शार्दूलमग्रतः कृत्वा ततश्चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥१९॥
ततस्तं तु महात्मानं चारा राक्षससत्तमम् ।

गुप्तचरों को यह आदेश दिया—

"तुम यहां से जावो, राम किस समय क्या करना चाहता है इसका भेद लाओ। साथ ही इसका भी पता लो कि उसके जो परम अन्तरंग मंत्री हैं, जो कि प्रीतिवश उसके साथ आये हैं, वे कौन २ हैं? राम कैसे सोता-जागता है? (अर्थात् वह अकेला सोता है या कईयों के बीच सोता है? किस समय सोता है? किस समय जागता है? जब वह सोता है तो कौन पहरेदार जागता है? आदि) तथा वह आगे और क्या करने वाला है? ये सब बातें पूर्णतया कुशलता पूर्वक जान कर आवो। क्योंकि जो राजा पण्डित होते हैं, वे गुप्तचर द्वारा शत्रु का भेद लेकर युद्ध में स्वल्प प्रयास से ही शत्रु का पकड़ कर उसे पराजित कर देते हैं।"

राक्षसराज के इस आदेश को सुनकर गुप्तचरों ने खुशी २ 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा और शार्दूल को आगे करके रावण की प्रदक्षिणा की। इस प्रकार महापराक्रमी राक्षसश्रेष्ठ की प्रदक्षिणा

कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥२०॥

ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥२१॥

प्रेक्षमाणाश्चमूं तां च बभूवुर्भयविह्वलाः।
ते तु धर्मात्मना दृष्टा राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥२२॥

विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता यदृच्छया।
शार्दूलो ग्राहितस्त्वेकः पापोऽयमिति राक्षसः ॥२३॥

मोक्षितः सोऽपि रामेण वध्यमानः प्लवङ्गमैः।
अनृशंसेन रामेण मोक्षिता राक्षसाः परे ॥२४॥

वानरैरर्दितास्ते तु विक्रान्तैर्लघुविक्रमैः।
पुनर्लङ्कामनुप्राप्ताः श्वसन्तो नष्टचेतसः ॥२५॥

करके वे लोग उधर चल पड़े जिधर कि राम लक्ष्मण सहित ठहरा हुआ है। वहां पहुंचकर उन्होंने भेष बदल कर छद्मवेष से सुवेल (समुद्रतीरवर्ती) पर्वत के समीप सुग्रीव तथा विभीषण सहित राम-लक्ष्मण को देखा। और फिर, उस सेना को देख कर मारे भय के कांप उठे। इतने में धर्मात्मा विभीषण ने उन राक्षसों को देख लिया और वहीं अपनी मर्जी से उन्हें पकड़ लिया, और उनमें से एक शार्दूल को बंधवा दिया, क्योंकि यह राक्षस विशेष दुष्ट था। यद्यपि वानर तो उसे मार ही डाल रहे थे, परन्तु राम ने उसे भी छुड़वा दिया, और दूसरे राक्षस भी राम की कृपा से छोड़ दिये गए। उन मामूली विक्रम वाले फुर्तीले वानरों से पिटे-कुटे वे गुप्तचर होश-हवास को खोकर हांपते हुये लंका वापिस आ पहुंचे।

सर्ग १५

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥१॥
चाराणां रावणः श्रुत्वा प्राप्तं रामं महाबलम् ।
जातोद्वेगोऽभवत्किंचित् सचिवानिदमब्रवीत् ॥२॥
मन्त्रिणः शीघ्रमायान्तु सर्वे वै सुसमाहिताः ।
अयं नो मन्त्रकालो हि सम्प्राप्त इति राक्षसाः ॥३॥
तस्य तच्छासनं श्रुत्वा मन्त्रिणोऽभ्यागमन्द्रुतम् ।
ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह ॥४॥
मन्त्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम् ।
विसर्जयित्वा सचिवान् प्रविवेश स्वमालयम् ॥५॥

मंत्रणा के बाद राम का नकली सिर तथा नकली धनुष सीता को दिखाना

लंका वापिस आकर उन गुप्तचरों ने नृपति से निवेदन किया कि 'महाराज ! राम सुवेल पर्वत पर पड़ाव डाले पड़ा है, और उसकी सेना बड़ी मजबूत है।' रावण गुप्तचरों से यह सुनकर कि महाबली राम सुवेल पर पहुंच गया है, कुछ घबराया और सचिवों को कहा—

"राक्षसो ! मंत्री लोग भली प्रकार तैयार होकर शीघ्र आवें, यह हमारा विचार-अवसर आ पहुंचा है।"

राजा के उस आदेश को सुनकर मंत्री लोग शीघ्र आ पहुंचे। तब उसने उन राक्षस मंत्रियों से मंत्रणा की। दुर्जेय रावण ने संप्रति क्या करना चाहिए, इस संबन्ध में मंत्रणा करके मंत्रियों को विसर्जित कर दिया, और आप अपने महल में प्रविष्ट हुआ।

ततो राक्षसमादाय विद्युज्जिह्वं महाबलम् ।
मायाविनं महामायं प्राविशद्यत्र मैथिली ॥६॥
विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ।
मोहयिष्यामहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ॥७॥
शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ।
मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ॥८॥
एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ।
दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे ॥९॥
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ।
अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः ॥१०॥
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ।

वहां पहुंच कर उसने गूढ़ माया रचने वाले मायावी विद्युज्जिह्व राक्षस को साथ लेकर सीता के पास जाने का निश्चय किया।

राक्षसराज ने माया रचने वाले विद्युज्जिह्व को कहा—"हम आज जनकपुत्री सीता को माया द्वारा ठगेंगे। निशाचर ! जावो, तुम राम का नकली सिर, और राम का बाणों सहित नकली महाधनुष लेकर मेरे पास आवो।"

रावण द्वारा ऐसा कहे जाने पर विद्युज्जिह्व राक्षस ने उत्तर दिया 'बहुत अच्छा' और ठीक २ तैयार करके राम के नकली सिर तथा बाणों सहित नकली महाधनुष को रावण के समक्ष ला उपस्थित किया। इन्हें देखकर राजा विद्युज्जिह्व से बहुत खुश हुआ, और उसे पारितोषिक रूप में आभूषण प्रदान किया।

इसके बाद महाबली राक्षस-राजा सीता को देखने की लालसा से अशोकवनिका में पहुंचा। वहां पहुंच कर कुबेर के

ततो दीनामदीनार्हां ददर्श धनदानुजः ॥११॥
अधोमुखीं शोकपराम् उपविष्टां महीतले ।
भर्तारमनुध्यायन्तीम् अशोकवनिकां गताम् ॥१२॥
उपास्यमानां घोराभी राक्षसीभिरदूरतः ।
उपसृत्य ततः सीतां प्रहर्षं नाम कीर्तयन् ।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥१३॥
सान्त्वमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे ।
खर-हन्ता स ते भर्ता राघवः समरे हतः ॥१४॥
छिन्नं ते सर्वथा मूलं दर्पश्च निहतो मया ।
व्यसनेनात्मनः सीते मम भार्या भविष्यसि ॥१५॥
विसृजैतां मतिं मूढे किं मृतेन करिष्यसि ।

छोटे भाई रावण ने देखा कि सीता यद्यपि बड़े धैर्य वाली है, परन्तु संप्रति बड़ी उदास है, शोकग्रस्त है, नीचा मुंह किए महीतल पर बैठी है, और निरन्तर पति का ध्यान कर रही है, तथा उस अशोकवनिका में समीप में ही विद्यमान भयंकर राक्षसियां पहरा दे रही हैं। रावण सीता के समीप पहुंचा और प्रसन्न होकर अपना नाम सुना कर ढिठाई के साथ जानकी से बोला—

"भद्रे ! मैंने तुम्हें बहुत समझाया, परन्तु जिसके भरोसे तुम मेरा तिरस्कार करती रही, वह खर को मारने वाला तुम्हारा पति राम युद्ध में मारा गया है। अब तो मैंने तुम्हारे सहारे की जड़ ही सब प्रकार से काट दी है, और तुम्हारा दर्प भी चूर-चूर कर दिया है। सीता ! अब तुम्हें अपने आप ही मेरी पत्नी बनना पड़ेगा। मूढ़े ! अब इस मति को त्याग दो, मृत राम से अब तुम क्या करोगी ? भद्रे ! मेरी समस्त पत्नियों में तुम

भवस्व भद्रे भार्याणां सर्वासामीश्वरी मम ॥१६॥
अल्पपुण्ये निवृत्तार्थे मूढे पण्डितमानिनि ।
शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ॥१७॥
समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः ।
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महता वृतः ॥१८॥
संनिविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ।
बलेन महता रामो व्रजत्यस्तं दिवाकरे ॥१९॥
अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥२०॥
तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः सलक्ष्मणः ॥२१॥
अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।

पटरानी बनो। ऐ अभागिनी! ऐ मृतपतिके! ऐ मूढ़े! ऐ पण्डित-मानिनी सीते! वृत्रासुर के समान पति के दारुण बध का वृत्तान्त सुनो—

राम सुग्रीव की बड़ी वानरसेना को साथ लेकर मुझे मारने के लिए समुद्रपार आया था। जिस समय सूर्य अस्त हो रहा था, उस समय उसने महती सेना को साथ ले समुद्र के इस किनारे को घेर कर वहां पड़ाव डाला। मार्ग की थकावट से आधी रात के समय टिकी सेना बेखबर सोई पड़ी थी, कि यह बात पहले नियुक्त किये हुए गुप्तचरों से पता लग गयी। सो, उसी समय प्रहस्त के सेनापतित्व में मेरी बड़ी सेना वहां पहुंची और यहां राम-लक्ष्मण टिके हुए थे वहां राम की सेना रात में मार डाली गयी।

सर्वप्रथम शत्रुसैन्य को कुचलने वाले प्रहस्त ने सोते हुए

असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥२२॥
विभीषणः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
दिशं प्रव्राजितः सैन्यैर्लक्ष्मणः प्लवगैः सह ॥२३॥
सुग्रीवो ग्रीवया सीते भग्नया प्लवगाधिपः ।
निरस्तहनुकः सीते हनुमान् राक्षसैर्हतः ॥२४॥
जाम्बवानथ जानुभ्यामुत्पतन्निहतो युधि ।
पट्टिशैर्बहुभिश्छिन्नो निकृत्तः पादपो यथा ॥२५॥
मैन्दश्च द्विविदश्चोभौ तौ वानरवर्षभौ ।
निःश्वसन्तौ रुदन्तौ च रुधिरेण परीप्लुतौ ॥२६॥
असिना व्यायतौ छिन्नौ मध्ये ह्यरिनिषूदनौ ।
अनुष्टनति मेदिन्यां पनसः पनसो यथा ॥२७॥

राम का सिर एक बड़ी तलवार से सधे हाथ से बिना कुछ संकोच किए काट डाला । उसके बाद झपट कर यथेच्छ तौर पर विभीषण को बांध लिया । तब लक्ष्मण सब वानरों को साथ ले भाग गया । वानरराज सुग्रीव टूटी गर्दन के साथ रणभूमि में पड़ा सदा के लिए सो रहा है । इसी प्रकार हनुमान की ठोडी काट डाली गयी, और वह भी राक्षसों से मारा जाकर सोया पड़ा है । जाम्बवान् भागना चाह रहा था कि उसे भी युद्ध में मार डाला गया । उसकी टांगें पटों से जहां-तहां काट डाली, और वह कटे वृक्ष की तरह भूमि पर पड़ा है । मैन्द और द्विविद, ये दोनों वानरश्रेष्ठ मार डाले गए । वे दोनों खून से भीगे हांपते हुए रो रहे थे कि इन दोनों विशेष डीलडौल वाले शत्रुहन्ता वानरों की कमरें तलवार से काट डाली गयी । पनस नामी वानर-सेनापति कटहल वृक्ष की तरह भूमि पर पड़ा कराह रहा है । दरीमुख अनेक

नाराचैर्बहुभिश्छिन्नः शेते दर्या दरीमुखः ।
कुमुदस्तु महातेजा निष्कूजन् सायकैर्हतः ॥२८॥
अङ्गदो बहुभिश्छिन्नः शरैरासाद्य राक्षसैः ।
परितो रुधिरोद्गारी क्षितौ निपतितोऽङ्गदः ॥२९॥
एवं तव हतो भर्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥३०॥
ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः ।
सीतायामुपशृण्वत्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥३१॥
राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय ।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥३२॥
विद्युज्जिह्वस्तदागृह्य शिरस्तत् सशरासनम् ।

वाणों से छिदा हुआ गढ़े में पड़ा सो रहा है। महातेजस्वी कुमुद को वाणों ने सदा के लिए मौनी बना दिया। राक्षसों ने अंगद को पाकर उसे वाणों से अनेक जगह काट डाला। वह भूमि पर पड़ा है, सब अंगों से खून बह रहा है, और बाजूबन्द अलग गिरा पड़ा है।

सीता ! इस प्रकार तुम्हारे पति को सेनासहित मेरी सेना ने मार डाला है। खून से भीगे, तथा मट्टी से सने उसके सिर को लो, यह मैं लाया हूं।"

सीता को ऐसा कहकर परमदुर्जेय राक्षसराज रावण ने सीता के सुनते हुये राक्षसी को कहा—"जावो, क्रूरकर्मा विद्युज्जिह्व को बुला लाओ, जोकि संग्राम से राम के उस सिर को स्वयं उठा कर लाया है।"

इस पर विद्युज्जिह्व राम के उस सिर, और शरों सहित राम

प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥३३॥
तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विद्युज्जिह्वं महाजिह्वं समीपपरिवर्तिनम् ॥३४॥
अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणां साधु पश्यतु ॥३५॥
एवमुक्तं तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम् ।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥३६॥
रावणश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदिति ब्रुवन् ॥३७॥
इदं तत्तव रामस्य कार्मुकं ज्यासमावृतम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं तं हत्वा निशि मानुषम् ॥३८॥

के धनुष को ले, शिर से प्रणाम कर, रावण के आगे आ खड़ा हुआ। तब लम्बी जीभ वाले विद्युज्जिह्व राक्षस को, जोकि खड़ा २ पास में ही हावभाव बदल रहा था, रावण राजा ने कहा—"सीता के आगे दशरथ के पुत्र का सिर शीघ्र प्रस्तुत करो, जिससे यह बेचारी पति की आखिरी हालत को भली प्रकार देख ले।"

ऐसा कहे जाने पर उस राक्षस ने सीता के प्यारे सिर को उसके आगे भूमि पर रखा, और आप झट से चल दिया। उधर रावण ने भी त्रिलोकी में विख्यात राम के तेजस्वी महाधनुष को सीता के आगे फैंका और कहा—"यह तुम्हारे राम का वह चिल्ला-चढ़ा धनुष है। रात के समय उस मनुष्य को मार कर प्रहस्त इसे यहां लाया है।"

सीता के पास से रावण को तुरन्त प्रहस्त का बुलवाना

सीता राम के उस सिर, तथा उस उत्तम धनुष को देख,

सर्ग १६

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मुकमुत्तमम ।
सुग्रीवप्रतिसंसर्गम् आख्यातं च हनूमता ॥१॥
नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ।
केशान्केशान्तदेशं च तं च चूडामणिं शुभम् ॥२॥
एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ।
साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण ।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥३॥
शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥४॥
इतीव दुःखसन्तप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा ॥५॥

हनुमान् द्वारा बतलाए गए सुग्रीव से राम के मेल को स्मरण कर, और यह देख कि उस कटे सिर की आंखें, चेहरे की रंगत तथा मुख बिलकुल पति जैसा है, सिर के बाल और माथा पति का सा है, तथा सुन्दर चूड़ामणि आभूषण भी वही पति का है, इन सब चिन्हों से पति को पहिचान अत्यन्त दुःखित हुई। बोली—

"अच्छा रावण! राम के बाद अब शीघ्र मुझे भी काट डाल, और इसप्रकार पत्नी को पति का साथी बना, यह उत्तम काम और कर डाल। मेरे सिर को सिर का साथ देने वाला, और धड़ को धड़ का साथ देने वाला बना। रावण! मैं महात्मा भर्ता की गति की अनुगामिनी बनूंगी।" इसप्रकार दुःख से सन्तप्त विशालनयनी जनकपुत्री सीता ने विलाप किया, और पति के सिर तथा धनुष को देखा।

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥६॥
विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥७॥
अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपस्थितः ।
तेन दर्शनकामेन अहं प्रस्थापितः प्रभो ॥८॥
नूनमस्ति महाराज राजभावात्क्षमान्वितः ।
किंचिदात्ययिकं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु ॥९॥
एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मन्त्रिणां दर्शनं ययौ ॥१०॥
अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।

सीता रावण को इस प्रकार बार २ कह रही थी कि द्वारपाल राक्षस हाथ जोड़े हुआ राजा के समीप पहुंचा, और 'आर्यपुत्र ! आपकी विजय हो' ऐसा पुकार कर उसका अभिवादन किया और प्रसन्न किया, और निवेदन किया—"प्रभु ! मुझे सेनापति प्रहस्त ने आपके पास भेजा है। प्रहस्त सब अमात्यों सहित आपके समीप आए हैं, वे आपके दर्शन करना चाहते हैं। उन्होंने यह संदेश देने के लिए मुझे आपके पास भेजा है। महाराज ! क्षमा कीजिए, निस्सन्देह कुछ ऐसा आवश्यक कार्य आ पड़ा है, जिसमें राजा की आज्ञा अपेक्षित है, अतः आप उन्हें दर्शन दीजिए।" (क्षमान्वितो भव)

राक्षस की इस बात को सुनकर रावण अशोकवनिका को छोड़ मंत्रियों से मिलने के लिए चल दिया, और उधर रावण के बाहर निकलते ही राम का वह सिर और वह उत्तम धनुष भी

जगाम रावणस्यैव निर्याणसमनन्तरम् ॥११॥
राक्षसेन्द्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भीमविक्रमैः ।
समर्थयामास तदा रामकार्यविनिश्चयम् ॥१२॥
अविदूरे स्थितान्सर्वान् बलाध्यक्षान् हितैषिणः ।
अब्रवीत् कालसदृशान् रावणो राक्षसाधिपः ॥१३॥
शीघ्रं भेरीनिनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे ।
समानयध्वं सैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥१४॥

सर्ग १७

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥१॥
मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम् ।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥२॥

वहां से हटा लिया गया।

उधर राक्षसराज रावण ने अतिविक्रमी मंत्रियों के साथ मिलकर, राम के आक्रमण पर कर्तव्य कर्म के निश्चय का समर्थन किया। तदनुसार राक्षसाधिप रावण ने पास में विद्यमान कालसदृश सब हितैषी सेनापतियों को आज्ञा दी कि "आप लोग नगाड़े को तेज बजवा कर शीघ्र सेना को मेरी आज्ञा से इकट्ठा कीजिए, परन्तु इकट्ठा करने का कारण उन्हें मत बतलाइये, सिर्फ यही कहिये कि राजा ने बुलवाया है।"

सरमा का सीता को मायाजाल का भेद देना

सीता मायाजाल से ठगी गयी है, इसे देखकर उसकी प्यारी सखी सरमा अपनी प्यारी वैदेही के पास पहुंची। सीता राक्षसराज से ठगी जाकर परम दुःखित थी, उसे मृदुभाषिणी

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया ।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥३॥
सा ददर्श सखी सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां वडवामिव पांसुषु ॥४॥
तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रताम् ।
उक्ता यद्रावणेन त्वं प्रत्युक्तश्च स्वयं त्वया ॥५॥
लीनया गहने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद्भयम् ॥६॥
स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः ।
तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥७॥

सरमा ने धीरज बंधाया। सीता ने इस पहरेदारनी को अपना मित्र बना लिया था। यह बड़ी दृढ़व्रता और दयावती थी। यह रावण की आज्ञा से सीता पर पहरा दिया करती थी। सरमा ने देखा कि सीता धूल में लोट-पोट होकर धूलसनी घोड़ी की सी हालत में बेसुध-सी बैठी है।

सखी सरमा ने सच्ची पतिव्रता सीता को स्नेहवश धीरज बंधाते हुए कहा—"प्यारी! जो कुछ रावण ने तुम्हें कहा, और उस पर जो कुछ तुमने उत्तर दिया, उस सबको मैंने रावण के भय की परवाह न करके अत्यन्त एकान्त में छिपकर सुन लिया है। विशालाक्षी! तुम्हारे लिए मुझे रावण से कोई भय नहीं (मैं तुम्हारे लिये अपने प्राण न्यौछावर करने को सदा तय्यार हूं)। सीता! वह राक्षसेश्वर घबरा कर एकदम जिस कारण चला गया है, वह सब मैंने वहां बाहर जाकर जान लिया है। प्यारी! सदैव सावधान रहने वाले राम को सोते हुए कोई नहीं

न शक्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥८॥
न त्वेवं वानरा हन्तुं शक्याः पादपयोधिनः ।
सुरा देवर्षभेणेव रामेण हि सुरक्षिताः ॥९॥
दीर्घवृत्तभुजः श्रीमान् महोरस्कः प्रतापवान् ।
धन्वी संनहनोपेतो धर्मात्मा भुवि विश्रुतः ॥१०॥
विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा कुशली नयशास्त्रवित् ॥११॥
हन्ता परबलौघानाम् अचिन्त्यबलपौरुषः ।
न हतो राघवः श्रीमान् सीते शत्रुनिबर्हणः ॥१२॥
अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥१३॥

मार सकता, इसलिए उस पुरुषव्याघ्र का इसप्रकार मारा जाना संभव नहीं। और फिर, लट्ठों से लड़ने वाले वानर भी नहीं मारे जा सकते, जबकि उनकी सुरक्षा राम करते हैं जैसे कि देवश्रेष्ठ इन्द्र देवों की रक्षा करते हैं। राम की भुजायें लम्बी और गोल हैं, कान्तिमान् हैं, चौड़ी छाती वाले हैं, प्रतापी हैं, धनुष चलाने में सिद्धहस्त हैं, सुन्दर शारीरिक संगठन है, और लोक में धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं। वे बड़े पराक्रमी हैं, सदा अपनों और परायों की रक्षा करने वाले हैं। वे राजनीति के पण्डित भाई लक्ष्मण सहित कुशलपूर्वक हैं।"

"सीता! दुश्मनों की सेना को मार भगाने वाले तथा असीम बल-पराक्रम से युक्त शत्रुदलन श्रीमान् राम मारे नहीं गए, अपितु भ्रष्टबुद्धि तथा भ्रष्ट कर्म वाले प्राणिमात्र के विरोधी

शोकस्ते विगतः सर्वः कल्याणं त्वामुपस्थितम् ।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥१४॥
उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।
संनिविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥१५॥
दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
सहितैः सागरान्तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥१६॥
अनेन प्रेषिता ये च राक्षसा लघुविक्रमाः ।
राघवस्तीर्ण इत्येवं प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१७॥
स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।
एष मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥१८॥
इति ब्रुवाणा सरमा राक्षसी सीतया सह ।

छलिया क्रूर रावण ने तेरे लिए यह छल-प्रपंच रचा है। प्यारी! अब तू निश्चय जान कि तेरा सब शोक कट गया और कल्याण तेरे सामने उपस्थित है। निश्चय से तुझे अब कैसे विजय-लक्ष्मी प्राप्त होती है, और कैसे तेरा प्रिय होता है, इसे जरा सुन—"

"राम वानरसेना सहित समुद्र को पार कर समुद्र के इस किनारे पड़ाव डाले पड़े हैं। सब तरह की तय्यारी किए राम को लक्ष्मण सहित मैंने खुद देखा है कि वे सागर के पार पड़ी सेना के साथ सुरक्षित तौर पर टिके हुए हैं। रावण ने जिन फुर्तीले राक्षसों को पता लाने के लिए भेजा था, उन्होंने खबर दी है कि राम समुद्र पार उतर आए हैं। विशालाक्षी! राक्षसराज रावण उसी खबर को सुनकर अब अपने सब मंत्रियों के साथ मंत्रणा कर रहा है।"

इसप्रकार राक्षसी सरमा सीता को समझा ही रही थी कि

सर्वोद्योगेन सैन्यानां शब्दं शुश्राव भैरवम् ॥१६॥
दण्डनिर्घातवादिन्याः श्रुत्वा भेर्या महास्वनम् ।
उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥२०॥
संनाहजननी ह्येषा भैरवा भीरु भेरिका ।
भेरीनादं च गम्भीरं शृणु तोयदनिःस्वनम् ॥२१॥
सम्भ्रमो रक्षसामेष तुमुलं लोमहर्षणम् ।
श्रीस्त्वां भजति शोकघ्नी रक्षसां भयमागतम् ॥२२॥
सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना ।
सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥२३॥

सर्ग १८

अथ तां जातसन्तापां तेन वाक्येन मोदिताम् ।
सरमा ह्लादयामास महीं दग्धामिवाम्भसा ॥१॥

संपूर्ण तय्यारी के साथ सेना का भैरव कोलाहल सुनाई पड़ा। नगाड़े पीटने का उच्च शब्द सुनकर मधुरभाषिणी सरमा ने सीता से कहा—"ऐ भीरु ! सुन, यह युद्ध की तैयारी का भैरव भेरी-नाद हो रहा है। यह भेरी-नाद इतना गम्भीर है जैसे कि कोई बरसाती मेघ गरज रहा हो। सुन, राक्षसों की यह कैसी भगदड़ है और कैसा रोमांचकारी शोर है। निश्चय से शोकनाशिनी लक्ष्मी तुझे मिल रही है, और राक्षसों के लिए भय आ गया है। तू अब शीघ्र महात्मा राम से पूजित होकर प्रसन्न होगी, ऐसे जैसे कि सुवृष्टियुक्त धान्य से पृथ्वी भरपूर हुआ करती है।"

न छोड़ने का रावण का भेद लाकर सीता को बतलाना

रावण की बात से ठगी गयी परम दुखिया सीता को सरमा ने इसप्रकार सान्त्वना देकर उसीप्रकार आह्लादित कर

ततस्तस्या हितं सख्याश्चिकीर्षन्ती सखी वचः ।
उवाच काले कालज्ञा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥२॥
उत्सहेयमहं गत्वा त्वद्वाक्यमसितेक्षणे ।
निवेद्य कुशलं रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तितुम् ॥३॥
एवं ब्रुवाणां तां सीता सरमामिदमब्रवीत् ।
मधुरं श्लक्ष्णया वाचा पूर्वशोकाभिपन्नया ॥४॥
मत्प्रियं यदि कर्तव्यं यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।
ज्ञातुमिच्छामि तं गत्वा किं करोतीति रावणः ॥५॥
स हि मायाबलः क्रूरो रावणः शत्रुरावणः ।
मां मोहयति दुष्टात्मा पीतमात्रेव वारुणी ॥६॥

दिया, जैसे कि ग्रीष्म ऋतु के ताप से सन्तप्त पृथिवी को मेघमाला जल बरसा कर आह्लादित कर देती है। उसके बाद, काल को पहिचानने वाली सरमा ने सखी को खुश करने की इच्छा से मुस्कान भरते हुए कहा—"श्यामनयने! मैं यह भी हौंसला कर सकती हूं कि मैं छिपे तौर पर राम के पास जाऊं, और उन्हें तेरी ओर से तेरी कुशलता की बात निवेदन करके छिपे ही छिपे वापस लौट आऊं।"

जब सरमा ने सीता को इसप्रकार कहा तो उसने संप्रति खुशी में परिणत मधुर कोमल वाणी से उसे उत्तर दिया—"अच्छा, यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहती हो, और इस विषय में तुम्हारी बुद्धि पक्की है, तो मेरी इच्छा है कि तुम जाकर पहले यह पता लगाओ कि संप्रति रावण क्या कर रहा है? वह रावण बड़ा मायावी है, क्रूर है, और शत्रुओं को रुलाने वाला है। वह दुष्ट अभी २ पी हुई शराब की तरह मुझे छल कर बेसुध सी बना

तर्जापयति मां नित्यं भर्त्सापयति चासकृत् ।
राक्षसीभिः सुघोराभिर्यो मां रक्षन्ति नित्यशः ॥७॥
उद्विग्ना शङ्किता चास्मि न स्वस्थं च मनो मम ।
तद्भयाच्चाहमुद्विग्ना अशोकवनिकां गता ॥८॥
यदि नाम कथा तस्य निश्चितं वापि यद्भवेत् ।
निवेदयेथाः सर्वं तद् वरो मे स्यादनुग्रहः ॥६॥
साप्येवं ब्रुवतीं सीतां सरमा मृदुभाषिणी ।
उवाच वदनं तस्याः स्पृशन्ती वाष्पविक्लवम् ॥१०॥
एष ते यद्यभिप्रायस्तस्माद् गच्छामि जानकि ।
गृह्य शत्रोरभिप्रायमुपावर्तामि मैथिलि ॥११॥

देता है। जो भयंकर राक्षसियां नित्य मेरी चौकसी करती हैं, उनसे वह दुष्ट नित्य मुझे तरह २ से धमकवाया और झिड़कवाया करता है। उससे मैं बहुत अधिक खिन्न और भयभीत रहती हूं और मेरा मन स्वस्थ नहीं रहता। मैं अशोकवनिका में बन्द रहती हुई उसी दुष्ट से कांपती रहती हूँ। उस दुष्ट की मंत्रिसभा में यदि मेरे छोड़ने की बात निश्चित हुई हो, अथवा न छोड़ने की बात तै पायी हो, तो वह सब पता लेकर मुझे बतलाओ। यह मेरे पर तुम्हारा बड़ा अनुग्रह होगा।"

प्रियभाषिणी सरमा ने सीता की इस करुणा-पूर्ण वाणी को सुनकर अपने आंचल से उसका अश्रु-परिपूर्ण मुंह पोंछा और कहा—"जानकी ! यदि तेरी ऐसी इच्छा है, तो ले, मैं जाती हूं, और तू देख कि मैं अभी शत्रु रावण का अभिप्राय जान कर लौटती हूं।"

ऐसा कहकर सरमा राक्षस रावण के समीप पहुंची और

एवमुक्त्वा ततो गत्वा समीपं तस्य रक्षसः ।
शुश्राव कथितं तस्य रावणस्य समन्त्रिणः ॥१२॥
सा श्रुत्वा निश्चयं तस्य निश्चयज्ञा दुरात्मनः ।
पुनरेवागमत्क्षिप्रम् अशोकवनिकां शुभाम् ॥१३॥
सा प्रविष्टा ततस्तत्र ददर्श जनकात्मजाम् ।
प्रतीक्षमाणां स्वामेव भ्रष्टपद्मामिव श्रियम् ॥१४॥
तां तु सीता पुनः प्राप्तां सरमां प्रियभाषिणीम् ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धं ददौ च स्वयमासनम् ॥१५॥
इहासीना सुखं सर्वमाख्याहि मम तत्त्वतः ।
क्रूरस्य निश्चयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१६॥
एवमुक्ता तु सरमा सीतया वेपमानया ।
कथितं सर्वमाचष्ट रावणस्य समन्त्रिणः ॥१७॥

उसकी मंत्रियों के साथ जो सलाह हो रही थी, उसे सुना, और उसका निश्चय जाना। तब वह निश्चित तौर पर दुरात्मा रावण का निश्चय सुनकर शीघ्र अशोकवनिका लौटी। उसने वहां पहुंच कर देखा कि जानकी उसी की प्रतीक्षा में उसी प्रकार बैठी है जैसे कि श्री पद्मासन को त्याग कर प्रतीक्षा में बैठती है। प्रियभाषिणी सरमा के वहां पहुंचने पर सीता ने स्नेहपूर्वक उसका आलिंगन किया और बैठने को स्वयं आसन दिया, और कहा—"यहां आराम से बैठकर क्रूर दुरात्मा रावण का निश्चय पूरा २ यथार्थ रूप से मुझे बतलाओ।"

कांपती २ सीता ने जब सरमा से इस प्रकार पूछा तो उसने मंत्रियों सहित रावण का यथोक्त निश्चय पूरा २ उसे बतला दिया। कहा—"वैदेही! रावण की माता ने तुझे छोड़ देने के

जनन्या राक्षसेन्द्रो वै त्वन्मोक्षार्थं बृहद्वचः ।
अतिस्निग्धेन वैदेहि मन्त्रिवृद्धेन चोदितः ॥१८॥
दीयतामभिसत्कृत्य मनुजेन्द्राय मैथिली ।
निदर्शनं ते पर्याप्तं जनस्थाने यदद्भुतम् ॥१९॥
एवं स मन्त्रिवृद्धैश्च मात्रा च बहु बोधितः ।
न त्वामुत्सहते मोक्तुम् अर्थमर्थपरो यथा ॥२०॥
नोत्सहत्यमृतो मोक्तुं युद्धे त्वामिति मैथिलि ।
सामात्यस्य नृशंसस्य निश्चयो ह्येष वर्तते ॥२१॥
तदेषा सुस्थिरा बुद्धिर्मृत्युलोभादुपस्थिता ॥२२॥
भयान्न शक्तस्त्वां मोक्तुमनिरस्तः स संयुगे ।
राक्षसानां च सर्वेषाम् आत्मनश्च वधेन हि ॥२३॥

लिए उसे बहुत कुछ कह कर समझाया । और फिर अत्यन्त प्यारे बूढ़े मंत्री ने भी बहुत समझाया कि मानवश्रेष्ठ राम को सत्कार-पूर्वक मैथिली दे दो। जनस्थान में राम द्वारा जो आश्चर्यजनक राक्षस-संहार हुआ है, वही उदाहरण तुम्हारे समझने के लिए पर्याप्त है।" इसप्रकार बृद्ध मंत्री और माता के बहुत बार समझाने पर भी वह तुझे छोड़ना नहीं चाहता, जैसे कि धन का पीर धन को नहीं त्यागना चाहता (भले ही वह धन उसके मौत का कारण ही क्यों न बने)। मैथिली ! वह युद्ध में बिना मरे तुझे नहीं छोड़ना चाहता, अमात्यों सहित उस नीच का यही निश्चय है। इन सब के सिर पर मौत नाच रही है, इसीलिए इनकी ऐसी पक्की बुद्धि बनी है । जब तक रावण युद्ध में परास्त नहीं होता, तब तक वह भय के कारण तुझे नहीं छोड़ सकता। वह सब राक्षसों के, और अपने बध से डरता है (कि कहीं ऐसा

निहत्य रावणं संख्ये सर्वथा निशितैः शरैः ।
प्रतिनेष्यति रामस्त्वाम् अयोध्यामसितेक्षणे ॥२४॥
एतस्मिन्नन्तरे शब्दो भेरीशङ्खसमाकुलः ।
श्रुतो वै सर्वसैन्यानां कम्पयन् धरणीतलम् ॥२५॥

सर्ग १६

तेन शङ्खविमिश्रेण भेरीशब्देन नादिना ।
उपयाति महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥१॥
तं निदानं निशम्याथ रावणो राक्षसेश्वरः ।
मुहूर्तं ध्यानमास्थाय सचिवानभ्युदैक्षत ॥२॥

न हो कि इस समय सीता को छोड़ देने पर भी हम सब मारे जावें)। इसलिए श्यामनयने! चिन्ता मत करो, राम युद्ध में अपने तीखे बाणों से निश्चय से रावण को मार कर तुम्हें साथ ले अयोध्या वापिस लौटेंगे।"

सरमा सीता से इसप्रकार बातचीत कर ही रही थी कि इतने में वानरसेना के नगाड़ों और शंखों का एकसाथ मिला हुआ शब्द पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ सुनाई पड़ा।

नाना माल्यवान् का भी कहना न मान कर रावण युद्ध के लिए तय्यार हो गया

(यह जो शब्द हो रहा था वह राम के कूच का था।) शत्रुपुरों को जीतने वाले महाबाहु राम उस शंख-मिश्रित गुंजायमान भेरी-शब्द के साथ चल पड़े थे। भेरी-शंख नाद के उस कारण को जानकर राक्षसेश्वर रावण ने कुछ देर सोचा, और फिर सचिवों की ओर दृष्टिपात किया। तदनन्तर महाबली रावण ने वहां सभी मन्त्रियों को सम्बोधन कर सभा को गुंजाते हुए

अथ तान् सचिवांस्तत्र सर्वानाभाष्य रावणः ।
सभां सन्नादयन् सर्वानित्युवाच महाबलः ।
जगत्सन्तापनः क्रूरो गर्हयन् राक्षसेश्वरः ॥३॥
तरणं सागरस्यास्य विक्रमं बलपौरुषम् ।
यदुक्तवन्तो रामस्य भवन्तस्तन्मया श्रुतम् ॥४॥
भवतश्चाप्यहं वेद्मि युद्धे सत्यपराक्रमान् ।
तूष्णीकानीक्षतोऽन्योन्यं विदित्वा रामविक्रमम् ॥५॥
ततस्तु सुमहाप्राज्ञो माल्यवान्नाम राक्षसः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा इति मातामहोऽब्रवीत् ॥६॥
विद्यास्वभिविनीतो यो राजा राजन्नयानुगः ।
स शास्ति चिरमैश्वर्यमरींश्च कुरुते वशे ॥७॥
सन्दधानो हि कालेन विगृह्णंश्चारिभिः सह ।

कहा—दुनिया को सताने वाले क्रूर राक्षसेश्वर ने राम की निन्दा करते हुए कहा—

"आप लोगों ने राम के समुद्र पार उतरने की, और उसके बल-पौरुष की जो चर्चा की है, वह सब मैंने सुन ली है। पर, मैं आपको भी तो जानता हूं कि आप युद्ध में सच्चे पराक्रमी हैं। मुझे यह हैरानी है कि आप लोग राम के विक्रम को सोचकर चुपचाप एक-दूसरे का मुंह ताक रहे हैं।"

तब रावण की इस बात को सुनकर उसका नाना महा-बुद्धिमान माल्यवान राक्षस बोला—

"राजन्! जो राजा चौदहों विद्याओं में सुशिक्षित होकर नीति के अनुसार चलता है वह देर तक अधिपतित्व करता है, और दुश्मनों को वश में रखता है। जो समय के अनुसार दुश्मनों

स्वपक्षे वर्धनं कुर्वन् महदैश्वर्यमश्नुते ॥८॥
हीयमानेन कर्तव्या राज्ञा सन्धिः समेन च ।
न शत्रुमवमन्येत ज्यायान् कुर्वीत विग्रहम् ॥९॥
तन्मह्यं रोचते सन्धिः सह रामेण रावण ।
यदर्थमभियुक्तोऽसि सीता तस्मै प्रदीयताम् ॥१०॥
तस्य देवर्षयः सर्वे गन्धर्वाश्च जयैषिणः ।
विरोधं मागमस्तेन सन्धिस्ते तेन रोचताम् ॥११॥
तत्तु माल्यवतो वाक्यं हितमुक्तं दशाननः ।
न मर्षयति दुष्टात्मा कालस्य वशमागतः ॥१२॥
स बद्ध्वा भ्रुकुटिं वक्त्रे क्रोधस्य वशमागतः ।
अमर्षात्परिवृत्ताक्षो माल्यवन्तमथाब्रवीत् ॥१३॥

के साथ संधि और विग्रह करता है और इस प्रकार अपने पक्ष को शक्तिशाली बनाता है, वह महान् ऐश्वर्य को भोगता है। राजा को चाहिए कि वह दुर्बल से, या समान बल वालों से संधि करे, दुर्बल शत्रु को भी कभी तुच्छ न माने। और यदि युद्ध करना ही पड़े, तो यदि आप शत्रु से अधिक बलवान हो तो, युद्ध छेड़े। अतः, रावण ! इस नीति के अनुसार मुझे तो यही प्रतीत देता है कि राम के साथ संधि कर ली जावे, और जिस कारण से तुम्हारे पर राम की चढ़ाई हो रही है वह सीता उसे दे दो। रावण ! देव, ऋषि, गन्धर्व सब उसकी जय चाहने वाले हैं, इसलिए तुम उसके साथ विरोध मत करो, उससे संधि कर लो।"

परन्तु, दुष्ट रावण ने माल्यवान् की कही हुई हितकारी बात को नहीं माना, क्योंकि उसके सिर पर तो मौत सवार थी। उसने क्रोध के वश में आ भौंहें टेढ़ी कर और आंखें तरेड़ कर

हितबुद्ध्या यदहितं वचः परुषमुच्यते ।
परपक्षं प्रविश्यैव नैतच्छ्रोत्रगतं मम ॥१४॥
मानुषं कृपणं राममेकं शाखामृगाश्रयम् ।
समर्थं मन्यसे केन त्यक्तं पित्रा वनाश्रयम् ॥१५॥
रक्षसामीश्वरं मां च देवानां च भयङ्करम् ।
हीनं मां मन्यसे केन अहीनं सर्वविक्रमैः ॥१६॥
वीरद्वेषेण वा शङ्के पक्षपातेन वा रिपोः ।
त्वयाऽहं परुषाण्युक्तो मम प्रोत्साहनेन वा ॥१७॥
प्रभवन्तं पदस्थं हि परुषं कोऽभिभाषते ।
पण्डितः शास्त्रतत्त्वज्ञो विना प्रोत्साहनेन वा ॥१८॥

गुस्से से माल्यवान को कहा—

"नाना ! शत्रु का ही पक्ष लेकर मेरी हित-कामना की बुद्धि से आपने जो कठोर और अहितकारी बात कही है, उसका मेरे कानों पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। आप एक हीन राम को, जिसके आश्रय एकमात्र वानर हैं और जो पिता से छोड़ा हुआ है तथा जो वनवासी है, किस कारण से शक्तिशाली समझते हैं ? और राक्षसों के राजा, देवताओं तक के लिए भयंकर तथा सब प्रकार के पराक्रमों से समृद्ध मुझको क्यों हीन समझते हैं ? मुझे शक है कि आपने ये कठोर वचन क्या मुझ वीर से जलने के कारण मुझे कहे हैं, या शत्रु के प्रति पक्षपात के कारण कहे हैं, या मेरे अन्दर परम उत्साह भरने के लिए कहे हैं ? (पर, मैं समझता हूं आपने ये कठोर वचन मेरे अन्दर और जोश भरने के लिए ही कहे हैं) क्योंकि नीतिशास्त्र के रहस्य को समझने वाला कौन पण्डित जोश दिलाने के सिवाय प्रभावशाली तथा

आनीय च वनात्सीतां पद्महीनामिव श्रियम् ।
किमर्थं प्रतिदास्यामि राघवस्य भयादहम् ॥१९॥
वृतं वानरकोटीभिः ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
पश्य कैश्चिदहोभिश्च राघवं निहतं मया ॥२०॥
द्वन्द्वे यस्य न तिष्ठन्ति दैवतान्यपि संयुगे ।
स कस्माद्रावणो युद्धे भयमाहारयिष्यति ॥२१॥
द्विधा भज्येयमप्येवं न नमेयं तु कस्यचित् ।
एष मे सहजो दोषः स्वभावो दुरतिक्रमः ॥२२॥
यदि तावत्समुद्रे तु सेतुर्बद्धो यदृच्छया ।
रामेण विस्मयः कोऽत्र येन ते भयमागतम् ॥२३॥
स तु तीर्त्वाऽर्णवं रामः सह वानरसेनया ।
प्रतिजानामि ते सत्यं न जीवन्प्रतियास्यति ॥२४॥

राजपदारूढ़ को ऐसे कठोर वचन कह सकता है ? पद्मासन को त्याग कर बेसुध बैठी हुई श्री की तरह वन में से सीता को हर कर अब मैं राम के भय से उसे कैसे दूंगा ? आपने देखना कि अभी कुछ दिनों में वानर-दलों से घिरा राम सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित मेरे द्वारा मरा पड़ा है ।

युद्ध में जिसके मुकाबले पर देवता लोग भी नहीं ठहरते, भला वह रावण युद्ध में किससे भय खायेगा ? भले ही मेरे दो टुकड़े हो जायें परन्तु मैं किसी के आगे झुकता नहीं, यह मेरा दोष है, और स्वभाव का बदलना दुष्कर होता है । यदि राम ने किसी तरह समुद्र पर पुल बांध लिया तो इसमें आश्चर्य ही क्या है कि जिससे आप भय में पड़ गए । परन्तु आप मेरी यह सत्य प्रतिज्ञा समझिए कि राम वानर सेना सहित समुद्र पार करके जीता नहीं लौटेगा ।"

एवं ब्रुवाणं संरब्धं रुष्टं विज्ञाय रावणम् ।
व्रीडितो माल्यवान् वाक्यं नोत्तरं प्रत्यपद्यत ॥२५॥
जयाशिषा तु राजानं वर्धयित्वा यथोचितम् ।
माल्यवानभ्यनुज्ञातो जगाम स्वं निवेशनम् ॥२६॥
रावणस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमृश्य च ।
लङ्कायास्तु तदा गुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥२७॥
व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारि राक्षसम् ।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥२८॥
पश्चिमायामथ द्वारि पुत्रमिन्द्रजितं तदा ।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥२९॥
उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ।
स्वयं चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥३०॥

इस प्रकार रावण को, क्रोध में भरकर कहते हुए को देख माल्यवान् ने जाना कि यह रुष्ट हो गया है और फिर लज्जावश उसे कोई उत्तर नहीं दिया, अपितु यथोचित तौर पर विजय के आशीर्वाद से रावण को संतुष्ट करके और उससे अनुज्ञा लेकर माल्यवान् अपने महल की ओर चल दिया।

तत्पश्चात् रावण राक्षस ने अमात्यों से विचार-विमर्श करके लंका की रक्षा का प्रबन्ध किया। उसने पूर्व द्वार पर प्रहस्त राक्षस को तैनात किया और दक्षिण द्वार पर महापराक्रमियों महापार्श्व-महोदरों को। पश्चिम द्वार पर बहुत से राक्षसों के साथ महाप्रपंची पुत्र इन्द्रजित् को नियुक्त किया, और नगरी के उत्तर द्वार पर शुक-सारण दोनों को तैनात कर के उन मंत्रियों से कहा कि मैं स्वयं भी वहां हीं जाऊंगा। तथा फिर बहुत से राक्षसों

राक्षसं तु विरूपाक्षं महावीर्यपराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्थापयद् गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ॥३१॥
एवं विधानं लङ्कायां कृत्वा राक्षसपुङ्गवः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥३२॥

सर्ग २०

नरवानरराजानौ स तु वायुसुतः कपिः ।
जाम्बवानृक्षराजश्च राक्षसश्च विभीषणः ॥१॥
अङ्गदो वालिपुत्रश्च सौमित्रिः शरभः कपिः ।
सुषेणः सहदायादो मैन्दो द्विविद एव च ॥२॥
गजो गवाक्षः कुमुदो नलोऽथ पनसस्तथा ।
अमित्रविषयं प्राप्ताः समवेताः समर्थयन् ॥३॥

के साथ महाबल-पराक्रमी विरूपाक्ष राक्षस को लंका नगरी के मध्य में छावनी डालकर तैनात रहने को कहा। एवं लंका की रक्षा का प्रबन्ध कर के राक्षस रावण ने अपने आप को कृतकृत्य समझा, जबकि उसकी मौत ही उससे यह सब कुछ करा रही थी।

विभीषण के आमात्यों द्वारा भेद लेकर
राम की व्यूह-रचना

नरराज राम, वानरराज सुग्रीव, वायुपुत्र हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान, राक्षस विभीषण, वालिपुत्र अंगद, लक्ष्मण, शरभ वानर, बन्धुओं सहित सुषेण, मैन्द, द्विविद, गज, गवाक्ष, कुमुद, नल तथा पनस ये सब महारथी शत्रु के देश में पहुंचे हुए थे, इसलिये इन्होंने एकत्रित होकर भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में परस्पर में मंत्रणा प्रारम्भ की—

"यह रावण-पालित लंकापुरी वह दीख पड़ रही है। सच-

इयं सा लक्ष्यते लङ्का पुरी रावणपालिता ।
सासुरोरगगन्धर्वैः सर्वैरपि सुदुर्जया ॥४॥
कार्यसिद्धिं पुरस्कृत्य मन्त्रयध्वं विनिर्णये ।
नित्यं सन्निहितो यत्र रावणो राक्षसाधिपः ॥५॥
अथ तेषु ब्रुवाणेषु रावणावरजोऽब्रवीत् ।
वाक्यमग्राम्यपदवत् पुष्कलार्थं विभीषणः ॥६॥
अनलः पनसश्चैव सम्पातिः प्रमतिस्तथा ।
गत्वा लङ्कां ममामात्याः पुरीं पुनरिहागताः ॥७॥
संविधानं यथाहुस्ते रावणस्य दुरात्मनः ।
राम तद् ब्रुवतः सर्वं याथातथ्येन मे शृणु ॥८॥
पूर्वं प्रहस्तः सबलो द्वारमासाद्य तिष्ठति ।

मुच वह असुरों, नागों, गन्धर्वों और देवों से भी मुश्किल से जीती जाने वाली है। अतः किसी भी बात का निश्चय करते समय एकमात्र इसी बात को सामने रख कर विचार कीजिए कि कार्य-सिद्धि कैसे हो? क्योंकि राक्षसाधिप रावण यहां सदा समीप जैसा सतर्क रहता है।"

इसप्रकार वे लोग परस्पर में विचार कर रहे थे कि रावण का छोटा भाई विभीषण बोला,जिसके शब्द विद्वानों जैसे थे और अर्थ की गम्भीरता थी—

"साथियो! मेरे अमात्य अनल-पनस तथा संपाति-प्रमति लंकापुरी जाकर अभी २ यहां वापिस आये हैं। उन्होंने दुरात्मा रावण की तय्यारी का जैसा वर्णन किया है, राम! मैं उस सबको यथार्थ रूप में बतलाता हूं, सुनिये—

लंकानगरी के पूर्व द्वार को घेर कर सेना सहित प्रहस्त डटा

दक्षिणं च महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥९॥
इन्द्रजित्पश्चिमं द्वारं राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
पट्टिशासिधनुष्मद्भिः शूलमुद्गरपाणिभिः ॥१०॥
नानाप्रहरणैः शूरैरावृतो रावणात्मजः ।
राक्षसानां सहस्रैस्तु बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ॥११॥
युक्तः परमसंविग्नो राक्षसैः सह मन्त्रवित् ।
उत्तरं नगरद्वारं रावणः स्वयमास्थितः ॥१२॥
विरूपाक्षस्तु महता शूलमुद्गधनुष्मता ।
बलेन राक्षसैः सार्धं मध्यमं गुल्ममाश्रितः ॥१३॥
एतानेवंविधान् गुल्माँल्लङ्कायाः समुदीक्ष्य ते ।
मामका मन्त्रिणः सर्वे शीघ्रं पुनरिहागताः ॥१४॥

हुआ है और दक्षिण द्वार पर महापराक्रमी महापार्श्व-महोदर तैनात हैं। अनेक राक्षसों के साथ इन्द्रजित् पश्चिम द्वार पर है। इन राक्षसों ने पटे, तलवारें तथा धनुष धारण कर रखे हैं और हाथों में त्रिशूल तथा मुद्गर ले रखे हैं। यह रावण का पुत्र अनेकविध हथियारों को लिए हुए शूरवीर मुखियायों से युक्त है, और हाथों में शस्त्र लिए हुए राक्षस-सैनिकों की बड़ी २ टोलियां साथ में हैं। राक्षसों के साथ विचार-परामर्श करके रावण सावधान होकर तथा किंचित्मात्र भी घबड़ाहट में न पड़कर नगरी के उत्तर द्वार पर स्वयं डटा है, और विरूपाक्ष शूल-खड्ग-धनुष को धारण किए हुए महान् सैन्यबल तथा दूसरे राक्षसों के साथ नगरी के मध्य में छावनी डाले पड़ा है। इसप्रकार लंका में इन सब मोर्चों को भलीप्रकार देखकर मेरे वे सब सचिव शीघ्र यहां वापिस लौटे हैं।"

रावणावरजे वाक्यमेवं ब्रुवति राघवः ।
शत्रूणां प्रतिघातार्थमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥

पूर्वद्वारं तु लङ्कायां नीलो वानरपुङ्गवः ।
प्रहस्तं प्रतियोद्धा स्याद्वानरैर्बहुभिर्वृतः ॥१६॥

अङ्गदो वालिपुत्रस्तु बलेन महता वृतः ।
दक्षिणे बाधतां द्वारे महापार्श्वमहोदरौ ॥१७॥

हनूमान् पश्चिमद्वारं निष्पीड्य पवनात्मजः ।
प्रविशत्वप्रमेयात्मा बहुभिः कपिभिर्वृतः ॥१८॥

परिक्रमति यः सर्वाँल्लोकान् सन्तापयन्प्रजाः ।
तस्याहं राक्षसेन्द्रस्य स्वयमेव वधे धृतः ॥१९॥

उत्तरं नगरद्वारम् अहं सौमित्रिणा सह ।
निपीड्याभिप्रवेक्ष्यामि सबलो यत्र रावणः ॥२०॥

रावण के छोटे भाई विभीषण ने जब इसप्रकार खबर की, तो शत्रुओं के विनाश के लिए राम ने आदेश दिया—

"अच्छा, अनेक वानरों को साथ ले वानरश्रेष्ठ नील लंका के पूर्व द्वार पर प्रहस्त का मुकाबला करे, और बालीपुत्र अंगद एक तगड़ी सेना को साथ ले दक्षिण द्वार पर महापार्श्व-महोदर से युद्ध करे, तथा अपरिमित बली पवनपुत्र हनुमान बहुत से वानरों को साथ ले पश्चिम द्वार को तोड़कर नगरी के अन्दर प्रविष्ट हो। जो राक्षसराज प्रजा को सताता हुआ इतस्ततः सर्वत्र छापे मारता फिरता है, उसके वध के लिए मैं स्वयं ठहरता हूँ। इसलिए मैं लक्ष्मण सहित नगरी के उत्तर द्वार को तोड़कर अन्दर प्रवेश करूंगा, जहां कि सेना सहित रावण डटा हुआ है। और बलवान वानरराज सुग्रीव, पराक्रमी ऋक्षराज जाम्बवान, तथा रावण का

वानरेन्द्रश्च बलवान् ऋक्षराजश्च वीर्यवान् ।
राक्षसेन्द्रानुजश्चैव गुल्मे भवतु मध्यमे ॥२१॥
न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले ॥२२॥
वानरा एव वश्चिह्नं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति ।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ॥२३॥
अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥२४॥
स रामः कृत्यसिद्ध्यर्थमेवमुक्त्वा विभीषणम् ।
सुवेलारोहणे बुद्धिं चकार मतिमान् प्रभुः ।
रमणीयतरं दृष्ट्वा सुवेलस्य गिरेस्तटम् ॥२५॥

छोटा भाई विभीषण, ये सब मध्यवर्ती छावनी में रहें।

परन्तु, एक बात का ध्यान रखिये कि वानर लोग युद्ध में मानुष वेष धारण न करें (क्योंकि ऐसा करने से अपने-पराये की पहिचान न हो सकेगी)। इस युद्ध में वानर-सेना के संबन्ध में हमारी यही पहिचान रहे, क्योंकि इस युद्ध में अपनों के विषय में पहिचान वानर ही होगी। परन्तु हम सात मानुष वेष से ही दुश्मनों के साथ लड़ेंगे। एक यह मैं, दूसरा मेरा भाई महातेजस्वी लक्ष्मण, और अपने सहित पांचवां मेरा मित्र विभीषण। (अर्थात् अनल, पनस, संपाति तथा प्रमति ये चार विभीषण के अमात्य और पांचवां विभीषण।)"

कार्यसिद्धि के लिए विभीषण को इस प्रकार कहकर सामर्थ्यवान् बुद्धिमान् राम ने लंका की ओर कूच करने के लिए सुवेल पर्वत पर चढ़ने का निश्चय किया।

सर्ग २१

ततः काले महाबाहुर्बलेन महता वृतः ।
प्रविष्टः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥१॥
तौ विभीषणसुग्रीवौ हनूमाञ्जाम्बवान्नलः ।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥२॥
ततः पश्चात्सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयाति स्म राघवम् ॥३॥
तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरीं लङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥४॥
पताकामालिनीं रम्याम् उद्यानवनशोभिताम् ।
चित्रवप्रां सुदुष्प्रापामुच्चैः प्राकारतोरणाम् ॥५॥
तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्यप्रचोदिताः ।

अंगद द्वारा संदेश भेजने के बाद राम का आक्रमण

इसप्रकार पूरी तैयारी करके धनुर्धारी महाबाहु राम महती सेना को साथ ले और आप सबके आगे रहकर समय पर लंकापुरी के अगले प्रदेश की ओर चल पड़े। उनके पीछे विभीषण-सुग्रीव, हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान, नल, नील और लक्ष्मण चले। उनके बाद ऋक्षों और वानरों की बहुत बड़ी सेना दूर तक भूमि को घेर कर राम के पीछे चल रही थी। वे शत्रुमर्दन राम-लक्ष्मण भाई कुछ ही समय में रावण की लंका पुरी में पहुंच गए। वह नगरी पताकाओं की मालाओं से रमणीक थी, उद्यानों-उपवनों से सुशोभित थी, खेती से लहलहाती सस्य-श्यामला थी, ऊंचे २ परकोटों तथा मुख्य द्वारों के कारण अन्दर पहुंचना मुश्किल था, और वह देवों से भी अजेय जान पड़ती थी। वानर लोग उस

यथानिर्देशं सम्पीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥६॥
लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलश्रृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥७॥
पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ।
अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥८॥
अङ्गदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥९॥
हनूमान् पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान् कपिः ।
प्रजङ्घतरसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च सङ्गतः ॥१०॥
मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुवर्णपवनोपमैः ॥११॥
वानराणां तु षट्त्रिंशत्कोट्यः प्रख्यातयूथपाः ।

नगरी को चारों तरफ से घेर कर राम के आदेशानुसार अपने अपने स्थान पर डट गये।

लंका के शैल-शृंग समान ऊंचे उत्तर द्वार की तो लक्ष्मण सहित धनुर्धारी राम रक्षा करने लगे और उसे रोके रखा और पूर्व द्वार पर वानर सेनापति पराक्रमी नील, मैन्द और द्विविद के साथ ठहरा। महाबली अंगद ऋषभ, गवाक्ष, गज, गवय के साथ दक्षिण द्वार पर डटा, और बलवान् हनुमान् वानर ने प्रजंघ-तरस तथा अन्य वीरों के साथ मिल कर पश्चिम द्वार को सम्भाला। मध्यवर्ती छावनी में स्वयं सुग्रीव तेज और बल में सुवर्ण तथा वायु के समान सब श्रेष्ठ वानरों के साथ ठहरा। सुग्रीव के साथ ३६ यूथपतियों के अधिष्ठातृत्व में ३६ कोटि (सेना का निश्चित दल जैसे कि डिवीजन होता है) सेना मध्य स्थान को घेर कर

निपीड्योपनिविष्टाश्च सुग्रीवो यत्र वानरः ॥१२॥
शासनेन तु रामस्य लक्ष्मणः सविभीषणः ।
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटिं कोटिं न्यवेशयत् ॥१३॥
पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् ।
अदूरान् मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥१४॥
राघवः सन्निवेश्यैवं स्वसैन्यं रक्षसां बधे ।
संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनः पुनः ॥१५॥
आनन्तर्यमभिप्रेप्सुः क्रमयोगार्थतत्त्ववित् ।
विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ॥१६॥
अङ्गदं वालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ।
गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहि मद्वचनात्कपे ॥१७॥

पड़ी थी, और राम के आदेश से विभीषण सहित लक्ष्मण ने प्रत्येक द्वार पर एक-एक कोटि वानर-सेना तैनात की। राम के पीछे की ओर मध्यवर्ती छावनी के समीप बहुत बड़ी सेना को साथ ले सुषेण जाम्बवान् सहित ठहरा।

राम ने राक्षस-बध निमित्त अपनी सेना को इस प्रकार तैनात करके मंत्रियों के साथ परामर्श किया और बार २ उस परामर्श के निष्कर्ष को निकाला। किस समय कौन सा सार्थक कदम उठाना चाहिए, इस के मर्म को समझने वाले राम इस परामर्श से यह निश्चित करना चाहते थे कि अब कौन सा कदम उठाया जावे। तब इस मंत्रणा में विभीषण का मत राजधर्म के अनुसार ठीक जंचा, और तदनुसार वालिपुत्र अंगद को संबोधन करके राम ने कहा—

"सौम्य कपि! तुम लंकापुरी के परकोटे के पार जावो और

लङ्घयित्वा पुरीं लङ्कां भयं त्यक्त्वा गतव्यथः ।
भ्रष्टश्रीकं गतैश्वर्यं मुमूर्षानष्टचेतनम् ॥१८॥
ऋषीणां देवतानां च गन्धर्वाप्सरसां तथा ।
नागानामथ यक्षाणां राज्ञां च रजनीचर ॥१६॥
यच्च पापं कृतं मोहादवलिप्तेन राक्षस ।
नूनं ते विगतो दर्पः स्वयंभूवरदानजः ॥२०॥
यस्य दण्डधरस्तेऽहं दाराहरणकर्शितः ।
दण्डं धारयमाणस्तु लङ्काद्वारे व्यवस्थितः ॥२१॥
पदवीं देवतानां च महर्षीणां च राक्षस ।
राजर्षीणां च सर्वेषां गमिष्यसि युधि स्थितः ॥२२॥
बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रमयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥२३॥

रावण के समीप पहुंच कर निर्भयता पूर्वक आराम से उस राज्यच्युत, ऐश्वर्य-विहीन तथा मरने की इच्छावश बुद्धि को खोए हुए से कहो—"रजनीचर राक्षस ! तुमने वनस्थों, देवों, गन्धर्वों अप्सरसों, नागों, यक्षों तथा राजाओं पर मूढ़तावश घमण्ड में भर कर जो २ अत्याचार किए हैं, अब तुम समझ लो कि परमात्मा के अनुग्रह से प्राप्त उस बल का वह घमण्ड समाप्त हो गया। पत्नी-हरण से सताया हुआ मैं तुम्हारी मौत बन कर दण्ड धारण किए लंका द्वार पर आ पहुंचा हूं। राक्षस ! तुमने देवों, महर्षियों तथा सब राजर्षियों को जिस मौत के घाट उतारा है, अब युद्ध में आकर तुम उसी घाट उतारे जावोगे। राक्षसाधम ! तुम जो छल से मुझे वहां से हटाकर बलात्कार पूर्वक सीता को हर लाए हो, अब उस बल को दर्शाओ। यदि तुम मैथिली को लाकर

अराक्षसमिमं लोकं कर्तास्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम् ॥२४॥
धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः सम्प्राप्तोऽयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम् ॥२५॥
नहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ।
शक्यं मूर्खसहायेन पापेनाविदितात्मना ॥२६॥
युध्यस्व मां धृतिं कृत्वा शौर्यमालम्ब्य राक्षस ।
मच्छरैस्त्वं रणे शान्तस्ततः शान्तो भविष्यसि ॥२७॥
यद्याविशसि लोकाँस्त्रीन् पक्षीभूतो निशाचर ।
मम चक्षुःपथं प्राप्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥२८॥
ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम् ।
सुदृष्टा क्रियतां लङ्का जीवितं ते मयि स्थितम् ॥२९॥

मेरी शरण में नहीं आते, तो मैं पैने बाणों से इस नगरी को राक्षसशून्य कर डालूंगा। धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण मेरे पास पहुँचा है, अब वह इस लंका-राज्य को निश्चित तौर पर निष्कपट होकर भोगेगा। अब इस राज्य को मूर्खसहायी, पापी तथा आत्मा-विहीन तुम अधर्म से एक क्षण भी नही भोग सकोगे? राक्षस! अब तुम अपने उस शौर्य का सहारा लेकर धैर्यपूर्वक मुझ से युद्ध करो, तुम मेरे बाणों से मारे जाकर ही उन पापकर्मों से निवृत्त होगे। निशाचर! यदि तुम पक्षपातियों का सहारा लेकर त्रिलोकी में कहीं भी छिपोगे, तो जब भी मेरे दृष्टिगोचर पड़ोगे जीवित नहीं छुटोगे। इसलिए मैं तुम्हें हितकारी बात कहता हूँ कि तुम अपने मृतशरीर की व्यवस्था करलो, और जब तक मैं ठहरा हुआ हूँ जीते जी लंका को जी भर कर

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
जगामाकाशमाविश्य मूर्तिमानिव हव्यवाट् ॥३०॥
सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम् ।
ददर्शासीनमव्यग्रं रावणं सचिवैः सह ॥३१॥
ततस्तस्याविदूरेण निपत्य हरिपुङ्गवः ।
दीप्ताग्निसदृशस्तस्थावङ्गदः कनकाङ्गदः ॥३२॥
तद्रामवचनं सर्वम् अन्यूनाधिकमुत्तमम् ।
सामात्यं श्रावयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥३३॥
दूतोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
वालिपुत्रोऽङ्गदो नाम यदि ते श्रोत्रमागतः ॥३४॥

देख लो।"

पुण्यकर्मा राम ने तारा के पुत्र अंगद को जब इस प्रकार संदेश पहुंचाने को कहा तो वह मूर्तिमान अग्नि की तरह तेजस्वी बनकर आकाश मार्ग से प्रस्थित हो गया। वह कान्तिमान् अंगद थोड़ी देर में रावण के महल में पहुँच गया, और देखा कि रावण सावधानचित्त हो मंत्रियों के साथ बैठा हुआ है। तब वह हरिश्रेष्ठ रावण के समीप नीचे उतर उसके समक्ष प्रदीप्त अग्नि के समान व सुवर्णनिर्मित बाजूबंद के समान तेजस्वी रूप में जा खड़ा हुआ। तब वहां खड़े होकर उसने पहले अपने आप अपना परिचय दिया और फिर राम के आदेश को ज्यों का त्यों, न न्यून न अधिक, अमात्यों सहित रावण को सुनाया—

"शायद आपने सुन रखा होगा कि मैं कोसल के राजा पुण्यकर्मा राम का दूत बाली-पुत्र अंगद हूं। कौसल्या के प्यारे पुत्र रघुवंशी राम ने आपको कहा है कि—ऐ नृशंस ! महल से

आह त्वां राघवो रामः कौसल्यानन्दवर्धनः ।
निष्पत्य प्रतियुध्यस्व नृशंस पुरुषो भव ॥३५॥
हन्तास्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रज्ञातिबान्धवम् ।
निरुद्विग्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हते त्वयि ॥३६॥
देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम् ॥३७॥
विभीषणस्य चैश्वर्यं भविष्यति हते त्वयि ।
न चेत्सत्कृत्य वैदेहीं प्रणिपत्य प्रदास्यसि ॥३८॥
इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणे हरिपुङ्गवे ।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥३९॥
ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवाँस्तदा ।
गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥४०॥

बाहर निकल कर युद्ध कर, हिजड़ा मत बन, मैं तुम्हें अमात्यों, पुत्रों, ज्ञातियों, बन्धुयों सहित मारने आया हूं। तुम्हारे मारे जाने पर त्रिलोकी निर्भय होगी। मैं देवों, दानवों, यक्षों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों के शत्रु और वनस्थों के कण्टक तुमको जड़-मूल से उखाड़ूंगा, और तुम्हारे मारे जाने पर लंका का राज्य विभीषण का होगा, यदि तुम पांवों में गिर कर सत्कार पूर्वक सीता को नहीं लौटाओगे।"

हरिश्रेष्ठ रावण इस प्रकार कड़ी बात को कह रहा था कि राक्षसराज उसे सहन न कर सका, और क्रोध से तांबे जैसी लाल आंखें करके मंत्रियों को हुक्म दिया—इस पामर को पकड़ लो और बांध दो। तब धधकती आग के समान क्रोध में भरे रावण की अनेकबार कही इस आज्ञा को सुनकर भयंकर चार राक्षस आगे

रावणस्य वचः श्रुत्वा दीप्ताग्निमिव तेजसा ।
जगृहुस्तं ततो घोराश्चत्वारो रजनीचराः ॥४१॥
ग्राहयामास तारेयः स्वयमात्मानमात्मवान् ।
बलं दर्शयितुं वीरो यातुधानगणे तदा ॥४२॥
स ताम्बाहुद्वयासक्तानादाय पतगानिव ।
प्रासादं शैलसंकाशम् उत्पपाताङ्गदस्तदा ॥४३॥
तस्योत्पतनवेगेन निर्धूतास्तत्र राक्षसाः ।
भूमौ निपतिताः सर्वे राक्षसेन्द्रस्य पश्यतः ॥४४॥
विनद्य सुमहानादमुत्पपात विहायसा ॥४५॥
व्यथयन् राक्षसान्सर्वान् हर्षयँश्चापि वानरान् ।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥४६॥

बढ़े और अंगद को पकड़ लिया। वस्तुतः उन्होंने क्या पकड़ा तारा-पुत्र ने अपने आप ही अपने को पकड़वा दिया ताकि राक्षस-संघ में वह वीर अपना बल दर्शा सके। उन राक्षसों ने अंगद की दोनों बाहुयें पकड़ी ही थी कि वह उन्हें पतंगों की तरह थांभ कर झट पर्वत समान ऊंचे विमान-प्रासाद पर उड़ पड़ा (पता लगता है छतरीनुमा कोई ऐसे विमान होते थे, जिन पर सवार हो जहां-तहां आराम से उड़ जाते थे)। वे चारों राक्षस उसके उड़ने के वेग से कम्पायमान होकर नीचे जमीन पर राक्षसराज के देखते २ आ गिरे, और अंगद उच्च नाद से आकाश को गुंजा कर आकाश मार्ग से उड़ गया। इस प्रकार वह सब राक्षसों को व्याकुल और वानरों को हर्षित करता हुआ वानरों के बीच में राम के पास आ पहुंचा।

तब अत्यन्त प्रसन्न तथा सिंह-गर्जन करते हुए वानरों के

रामस्तु बहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवङ्गमैः ।
वृतो रिपुवधाकाङ्क्षी युद्धायैवाभिवर्तत ॥४७॥
कृत्स्नं हि कपिभिर्व्याप्तं प्राकारपरिखान्तरम् ।
ददृशू राक्षसा दीनाः प्राकारं वानरीकृतम् ॥४८॥
हाहाकारमकुर्वन्त राक्षसा भयमागताः ॥४९॥

सर्ग २२

ततस्ते राक्षसास्तत्र गत्वा रावणमन्दिरम् ।
न्यवेदयन्पुरीं रुद्धां रामेण सह वानरैः ॥१॥
ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥२॥
एतच्छ्रुत्वा तदा वाक्यं रावणस्य मुखेरितम् ।
सहसा भीमनिर्घोषमुद्घुष्टं रजनीचरैः ॥३॥

बीच में स्थित राम शत्रु के बध की इच्छा से युद्ध ही के लिए प्रवृत्त हुए। पल भर में प्राकार और परिखा के बीच का स्थान वानरों से ढक गया, और भयभीत राक्षसों ने देखा कि वहां वानरों की एक दूसरे परकोटे की दीवार खड़ी है।

राक्षस और वानरों में भयानक द्वन्द्व युद्ध

यह देखने के बाद वे राक्षस लोग रावण के महल में गए, और जाकर रावण से कहा कि वानरों सहित राम ने लंकापुरी को घेर लिया है। यह सुनकर राक्षसेश्वर रावण क्रोध में भर गया और दूत को आज्ञा दी कि जावो सब सैन्यों को मेरी ओर से हुक्म दो कि वे एकदम युद्ध के लिए कूच करें। रावण के मुख से निकले इस आदेश को दूत द्वारा सुनकर राक्षसों ने एकदम भीम गर्जना

ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः ।
हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समन्ततः ॥४॥
विनेदुश्च महाघोषाः शङ्खाः शतसहस्रशः ।
राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुतपूरिताः ॥५॥
ते बभुः शुक्लनीलाङ्गाः सशङ्खा रजनीचराः ।
विद्युन्मण्डलसन्नद्धाः सबलाका इवाम्बुदाः ॥६॥
निष्पतन्ति ततः सैन्या हृष्टा रावण चोदिताः ।
समये पूर्यमाणस्य वेगा इव महोदधेः ॥७॥
ततो वानरसैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः ।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥८॥

की। इसके बाद राक्षसों के चन्द्रमा के समान शुभ्र मुख वाले बड़े २ नगाड़े स्वर्ण जटित डण्डों से चहुँ ओर बजाये जाने लगे, और भयंकर राक्षसों के मुंह से पूरे बल के साथ फूंके गये महाघोष युक्त सैकड़ों शंख नाद करने लगे।

उबलते हुए खून के कारण उनके मुखों का रंग लाल पड़ गया था। अंग नील मणियों के आभूषणों से शोभायमान थे, शंख बजाना जारी था, और वे कूच करते हुए ऐसे जान पड़ते थे कि मानो चारों ओर चमकती बिजली वाले मेघ आगे २ बक-पंक्ति को रखे हुए उमड़े चले आ रहे हैं।

इस घोष के तुरन्त बाद रावण की आज्ञा पाये हुए वे राक्षस-सैन्य खुशी २ वानरों पर इस प्रकार टूट पड़े जैसे कि पूर्णमासी के दिन महासागर की तरंगें किनारों पर टूटा करती हैं।

तब वानरी सेना ने भी सब ओर से ऐसा नाद गुंजाया कि दूरवर्ती मलयाचल के शिखर प्रदेश और कन्दरायें दोनों गूंज

शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥९॥
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां ह्रेषितैरपि ।
रथानां नेमिनिर्घोषै रक्षसां पदनिःस्वनैः ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे तेषाम् अन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्तत ॥११॥
अङ्गदेनेन्द्रजित्सार्धं वालिपुत्रेण राक्षसः ।
अयुध्यत महातेजास्त्र्यम्बकेण यथाऽन्धकः ॥१२॥
प्रजङ्घेन च सम्पातिर्नित्यं दुर्धर्षणो रणे ।
जम्बुमालिनमारब्धो हनूमानपि वानरः ॥१३॥
संगतस्तु महाक्रोधो राक्षसो रावणानुजः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन मित्रघ्नेन विभीषणः ॥१४॥

उठे। शंखों और नगाड़ों के महाघोष, एवं वीरों के सिंहनाद ने पृथ्वी तथा आकाश को और समुद्र को गुंजा दिया। उधर दूसरी ओर से भी एक साथ हाथियों को चिंघाड़ों, घोड़ों की हिन-हिनाटों, रथों की गड़गड़ाहटों, तथा राक्षसों के पांवों की धपधपा-हटों से पृथ्वी-आकाश-समुद्र गूंज उठे।

इतने में दोनों ओर से एक दूसरे पर धावा बोल दिया गया और राक्षसों तथा वानरों में घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। वह इस प्रकार कि—(१) वाली-पुत्र अंगद के साथ महा-तेजस्वी इन्द्रजित् ऐसे जूझा जैसे कि त्र्यंबक राजा के साथ अंधक जूझा था। (२) रण में सदैव अत्यन्त दुर्धर्ष संपाति वानर प्रजङ्घ राक्षस के साथ भिड़ा। (३) हनुमान जम्बुमाली राक्षस के साथ युद्ध करने लगा। (४) रावण का छोटा भाई विभीषण

तपनेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।
निकुम्भेन महातेजा नीलोऽपि समयुध्यत ॥१५॥
वानरेन्द्रस्तु सुग्रीवः प्रघसेन सुसंगतः ।
संगतः समरे श्रीमान् विरूपाक्षेण लक्ष्मणः ॥१६॥
अग्निकेतुः सुदुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च रामेण सह संगताः ॥१७॥
वज्रमुष्टिश्च मैन्देन द्विविदेनाशनिप्रभः ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपिमुख्यौ समागतौ ॥१८॥
वीरः प्रतपनो घोरो राक्षसो रणदुर्धरः ।
समरे तीक्ष्णवेगेन नलेन समयुध्यत ॥१९॥
धर्मस्य पुत्रो बलवान् सुषेण इति विश्रुतः ।
स विद्युन्मालिना सार्धमयुध्यत महाकपिः ॥२०॥

गुस्से में भरकर प्रचंड वेग के साथ रण में मित्रघ्न राक्षस के साथ जा भिड़ा। (५, ६) महाबली गज तपन राक्षस के साथ, और महातेजस्वी नील निकुम्भ राक्षस के साथ लड़ने लगे। (७, ८) वानराज सुग्रीव प्रघस के साथ भिड़ा, तो श्रीमान् लक्ष्मण युद्ध में विरूपाक्ष के साथ जुटा। (९) दुर्जय अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न, तथा यज्ञकोप ये चार राक्षस मिलकर एकसाथ राम के साथ लड़ने लगे। (१०, ११) वज्रमुष्टि राक्षस मैन्द के साथ, और अशनिप्रभ राक्षस द्विविद के साथ। एवं इन दो भयंकर राक्षसों के साथ ये दो वानर-सेनापति जुटे। (१२) संग्रामसिंह भयंकर प्रतपन नामी वीर राक्षस युद्ध में तीव्र वेग वाले नल के साथ लड़ा। (१३) और सुषेण नाम से प्रसिद्ध धर्म-पुत्र बलवान महाकपि विद्युन्माली राक्षस के साथ जूझा। एवं दूसरे महाबली

वानराश्चापरे घोरा राक्षसैरपरैः सह ।
द्वन्द्वं समीयुः सहसा युद्ध्वा च बहुभिः सह ॥२१॥
तत्रासीत्सुमहद् युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥२२॥
हरिराक्षसदेहेभ्यः प्रसृताः केशशाद्वलाः ।
शरीरसङ्घाटवहाः प्रसुस्रुः शोणितापगाः ॥२३॥
आजघानेन्द्रजित्क्रुद्धो वज्रेणेव शतक्रतुः ।
अङ्गदं गदया वीरं शत्रुसैन्यविदारणम् ॥२४॥
तस्य काञ्चनचित्राङ्गं रथं साश्वं ससारथिम् ।
जघान गदया श्रीमानङ्गदो वेगवान् हरिः ॥२५॥
सम्पातिस्तु प्रजङ्घेन त्रिभिर्बाणैः समाहतः ।

वानर पहले दूसरे अनेक राक्षसों के साथ युद्ध करके, फिर सहसा दूसरे राक्षसों के साथ घोर युद्ध में उतारू हुए।

इस प्रकार जयाभिलाषी राक्षसों और वानरों के बीच रोमांचकारी घोर महायुद्ध चलने लगा। तब वानरों और राक्षसों के देहों से निकली खून की नदियां बहने लगी, जिन में उनके केश काई घास की तरह, और शरीर काष्ठ-संचय के समान दीख पड़ रहे थे।

(१) क्रुद्ध इन्द्रजित् ने शत्रु-संहारकारी वीर अंगद पर गदा से ऐसा जबर्दस्त प्रहार किया, जैसे कि इन्द्र ने शत्रु पर वज्र का प्रहार किया था। इस पर श्रीमान् अंगद वानर ने बड़े जोर के साथ इन्द्रजित् के सुवर्ण-चित्रित रथ को घोड़ों तथा सारथि सहित युद्ध में उसी की गदा से नष्ट भ्रष्ट कर दिया। (२) उधर जब प्रजङ्घ ने संपाति पर तीन बाण मारे, तो बदले में उसने

निजघानाश्वकर्णेन प्रजङ्घं रणमूर्धनि ॥२६॥
जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महाबलः ।
बिभेद समरे क्रुद्धो हनूमन्तं स्तनान्तरे ॥२७॥
तस्य तं रथमास्थाय हनूमान् मारुतात्मजः ।
प्रममाथ तलेनाशु सह तेनैव रक्षसा ॥२८॥
नदन्प्रतपनो घोरो नलं सोऽभ्यनुधावत ।
नलः प्रतपनस्याशु पातयामास चक्षुषी ।
भिन्नगात्रः शरैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहस्तेन रक्षसा ॥२९॥
ग्रसन्तमिव सैन्यानि प्रघसं वानराधिपः ।
सुग्रीवः सप्तपर्णेन निजघान जवेन च ॥३०॥
प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षसं भीमदर्शनम् ।
निजघान विरूपाक्षं शरेणैकेन लक्ष्मणः ॥३१॥

प्रजंघ को अश्वकर्ण वृक्ष के लट्ठ से खत्म कर दिया। (३) रथारोही महाबली क्रुद्ध जम्बुमाली ने रथ पर रखी शक्ति से युद्ध में हनुमान् की छाती को छेदा, तो मारुत-पुत्र हनुमान् ने उसके रथ को पकड़ कर उसे चकनाचूर कर दिया और साथ ही एक ही थप्पड़ से जम्बुमाली राक्षस को भी समाप्त कर दिया। (४) घोर प्रतपन राक्षस नल पर झपटा, तो उसने तत्क्षण प्रतपन की दोनों आंखें निकालकर बाहर फैंक दी, जबकि राक्षस ने बड़ी फुर्ती से तीखे बाण छोड़कर नल के शरीर को बींध डाला था।

(५) प्रघस राक्षस ऐसा युद्ध कर रहा था कि वानर सैन्यों को निगल ही जायगा। तब वानरराज सुग्रीव ने बड़ी फुर्ती करके उसे सप्तपर्ण से बींध दिता और मार डाला। (६) महा-भयानक विरूपाक्ष राक्षस को लक्ष्मण ने पहले बाण-वर्षा से छट-

अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च राक्षसः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च राममादीपयच्छरैः ॥३२॥
तेषां चतुर्णां रामस्तु शिरांसि समरे शरैः ।
क्रुद्धश्चतुर्भिश्चिच्छेद घोरैरग्निशिखोपमैः ॥३३॥
वज्रमुष्टिस्तु मैन्देन मुष्टिना निहतो रणे ।
पपात सरथः साश्वः सुराट्ट इव भूतले ॥३४॥
निकुम्भस्तु रणे नीलं नीलाञ्जनचयप्रभम् ।
निर्बिभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान् ॥३५॥
पुनः शरशतेनाथ क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
बिभेद समरे नीलं निकुम्भः प्रजहास च ॥३६॥
तस्यैव रथचक्रेण नीलो विष्णुरिवाहवे ।

पटाता किया और फिर एक ही वाण से खत्म कर दिया। (७) दुर्जेय अग्निकेतु, रश्मिकेतु, सुप्तघ्न और यज्ञकोप इन चार राक्षसों ने मिलकर राम पर वाण चमकाये। तब उन्होंने आखिरकार क्रुद्ध होकर अग्नि-ज्वाला के समान भयानक चार वाणों से उन चारों के सिर छेद दिए। (८) वज्रमुष्टि को मैन्द ने एक ही मुक्के से रण में पछाड़ दिया। वह मुक्का खाकर रथ और घोड़ों सहित भूमि पर ऐसे गिर पड़ा जैसे कि शराब के नशे में चूर अट्टालिका-जैसा ऊंचा नौजवान गिर पड़ता है।

(९) निकुम्भ राक्षस ने काले सुरमा-पत्थर के ढेर जैसे नील को रण में तीखे वाणों से ऐसे बींधना शुरु किया जैसे कि सूर्य अपनी प्रखर किरणों से मेघ को छेदने लगता है, और फिर बड़ी फुर्ती से उसने नील को समरांगण में वाण-वर्षा से बींध दिया और ठठाके मार कर हंसा। इस पर नील ने विष्णु की तरह

शिरश्चिच्छेद समरे निकुम्भस्य च सारथेः ॥३७॥

वज्राशनिसमस्पर्शो द्विविदश्च समप्रभम् ।
जघान गिरिशृङ्गेण मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥३८॥

द्विविदं वानरेन्द्रं तं द्रुमयोधिनमाहवे ।
शरैरशनिसङ्काशैः स विव्याधाशनिप्रभः ॥३९॥

स शरैरभिविद्धाङ्गो द्विविदः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालेन सरथं साश्वं निजघानाशनिप्रभम् ॥४०॥

विद्युन्माली रथस्थस्तु शरैः काञ्चनभूषणैः ।
सुषेणं ताडयामास ननाद च मुहुर्मुहुः ॥४१॥

तं रथस्थमथो दृष्ट्वा सुषेणो वानरोत्तमः ।
गिरिशृङ्गेण महता रथमाशु न्यपातयत् ॥४२॥

पराक्रम दिखाकर रथचक्र से निकुम्भ का सिर काट दिया और साथ ही उसके सारथि का भी। (१०) वज्राशनि के समान कठोर मुक्के वाले द्विविद ने सब राक्षसों के देखते २ अशनिप्रभ राक्षस के ऊपर भारी भरकम पत्थर दे मारा और फिर उसके बाद जब वह वानरश्रेष्ठ भारी लट्ठ लेकर अशनिप्रभ के ऊपर झपटा तो उसने उसे बिजली के समान दौड़ने वाले बाणों से बींध दिया। इस प्रकार द्विविद जब बाणों से बींधा गया, तो उसे बड़ा भारी गुस्सा आया और अशनिप्रभ को साल द्वारा रथ तथा अश्वों सहित समाप्त कर दिया।

(११) रथ पर आसीन विद्युन्माली राक्षस ने सुवर्ण-भूषित शरों से सुषेण पर प्रहार किया और बार बार ललकार लगायी। वानरश्रेष्ठ सुषेण ने जब यह देखा कि विद्युन्माली तो रथ पर सवार है, तो उसने फौरन एक बड़ी शिला से रथ को चूर २ कर

लाघवेन तु संयुक्तो विद्युन्माली निशाचरः ।
अपक्रम्य रथात्तूर्णं गदापाणिः क्षितौ स्थितः ।।४३।।
ततः क्रोधसमाविष्टः सुषेणो हरिपुङ्गवः ।
शिलां सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ।।४४।।
तमापतन्तं गदया विद्युन्माली निशाचरः ।
वक्षस्यभिजघानाशु सुषेणं हरिपुङ्गवम् ।।४५।।
गदाप्रहारं तं घोरमचिन्त्य प्लवगोत्तमः ।
तां तूष्णीं पातयामास तस्योरसि महामृधे ।।४६।।
शिलाप्रहाराभिहतो विद्युन्माली निशाचरः ।
निष्पिष्टहृदयो भूमौ गतासुर्निपपात ह ।।४७।।
एवं तैर्वानरैः शूरैः शूरास्ते रजनीचराः ।
द्वन्द्वे विमथितास्तत्र दैत्या इव दिवौकसैः ।।४८।।

दिया। तब विद्युन्माली राक्षस बड़ी फुर्ती से रथ के नीचे उतरा और झट हाथ में गदा ले नीचे आ खड़ा हुआ। इस पर हरिश्रेष्ठ सुषेण ने क्रोध में भर कर एक बहुत बड़ी शिला पकड़ी और राक्षस की ओर लपका। हरिश्रेष्ठ सुषेण को अपने ऊपर लपका देखकर विद्युन्माली निशाचर ने गदा पकड़ी और फौरन उसकी छाती पर दे मारी। तब हरिश्रेष्ठ ने उस भयानक गदा-प्रहार की बिना कुछ परवाह किये उस महायुद्ध में उसकी छाती पर चुपके से वह शिला दे मारी। विद्युन्माली निशाचर पर जब इस प्रकार शिला का प्रहार हुआ, तो उसकी छाती चूर-चूर हो गयी और वह मृत अवस्था में भूमि पर गिर पड़ा।

इस प्रकार उन शूर वानरों ने उन शूर राक्षसों को ऐसे मथ डाला जैसे कि देवों ने दैत्यों को मथ डाला था। (इस प्रसंग में

सर्ग २३

युद्ध्यतामेव तेषां तु तदा वानररक्षसाम् ।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥१॥
अन्योऽन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ।
सम्प्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥२॥
ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टा शरवृष्टिभिः ॥३॥
तेषामापततां शब्दः क्रुद्धानामपि गर्जताम् ।
उद्वर्त इव सत्त्वानां समुद्राणामभूत् स्वनः ॥४॥
तेषां रामः शरैः षड्भि षड् जघान निशाचरान् ।
निमेषान्तरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥५॥

संख्या ४ के विभीषण-मित्रघ्न, तथा संख्या ५ के गज-तपन के युद्ध का वर्णन नहीं आया)।

इन्द्रजित् का राम-लक्ष्मण को शरबन्ध से बांधना

उन वानर-राक्षसों में इस प्रकार घोर युद्ध के चलते २ सूर्यास्त हो गया, और प्राणहारिणी रात्रि शुरु हो गयी। तब एक दूसरे के साथ वैर बांधे हुए और अपनी २ विजय चाहते हुए भयानक वानर-राक्षसों का निशा-युद्ध होने लगा। तब वे राक्षस उस महाकाली रात में खुशी २ राम के ऊपर बाण-वर्षा से पिल पड़े। उस समय, जब वे क्रोध में भर कर गर्जते हुए रामपर दौड़े, तो ऐसा घोर शब्द हुआ जैसे कि (उद्वर्त) ज्वारभाटे के समय बड़े २ समुद्रों का हुआ करता है। तब राम ने उन राक्षसों में से दुर्जेय यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय वज्रदंष्ट्र, और वे दोनों शुक तथा सारण, इन छै राक्षसों को अग्निज्वाला के

यज्ञशत्रुश्च दुर्धर्षो महापार्श्वमहोदरौ ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥६॥
ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः ।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ॥७॥
निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः ।
दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महाबलः ॥८॥
ये त्वन्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपि नष्टाः समासाद्य पतङ्गा इव पावकम् ॥९॥
सुवर्णपुङ्खैर्विशिखैः सम्पतद्भिः समन्ततः ।
बभूव रजनी चित्रा खद्योतैरिव शारदी ॥१०॥
राक्षसानां च निनदैर्हरीणां चैव निःस्वनैः ।
सा बभूव निशा घोरा भूयो घोरतराऽभवत् ॥११॥

समान दाहकारी छै वाणों से पल भर में बींध दिया। उसके बाद राम ने उनके सारे मर्मस्थलों में वाणों की झड़ी लगानी शुरु की कि वे रणक्षेत्र से भाग निकले और अपनी जान बचायी।

तदनन्तर महाबली राम ने पल भर में अग्निज्वाला के समान दाहकारी प्रचण्ड बाणों से समस्त दिशा-उपदिशाओं को साफ कर दिया। फिर भी जो कुछ-एक वीर राक्षस राम के मुकाबले में डटे रहे, वे आखिरकार मारे गये, जैसे कि पतंगे अग्नि के पास जाकर जल जाते हैं।

जहां-तहां सोने के पंख वाले वाणों के पड़ने से उस रात की छटा ऐसी दीख पड़ती थी जैसे कि जुगनुओं से शरत्कालीन रात की छटा। एक ओर राक्षसों के नादों, और दूसरी ओर वानरों के गर्जनों से वह भयंकर रात और भी ज्यादा भयंकर बन

तेन शब्देन महता प्रवृद्धेन समन्ततः ।
त्रिकूटः कन्दराकीर्णः प्रव्याहरदिवाचलः ॥१२॥
गोलाङ्गूला महाकायास्तमसा तुल्यवर्चसः ।
सम्परिष्वज्य बाहुभ्यां भक्षयन् रजनीचरान् ॥१३॥
अङ्गदस्तु रणे शत्रून्निहन्तुं समुपस्थितः ॥१४॥
इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ।
अङ्गदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥१५॥
ततः प्रहृष्टा कपयः ससुग्रीवविभीषणाः ।
साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥१६॥
इन्द्रजित्तु तदाऽनेन निर्जितो भीमकर्मणा ।
संयुगे वालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ।

गयी । चहुंओर फैले उस महा-महान् कोलाहल से त्रिकूट पर्वत की कंदरायें ऐसी गूंज उठी मानो कि वह पर्वत ही बोल रहा है ।

गोल-गोल अंगुलियों वाले (गोलांगूलाः) विशालकाय संहाररात्रि-जैसे संहारकारी वानरों ने राक्षसों को बाहुओं में भीच २ कर खा लिया । अंगद तो सचमुच रण में शत्रुओं को चबा डालने के लिए ही उपस्थित था । उसने इन्द्रजित् के रथ में जुते घोड़ों को मार दिया और सारथि को भी मार दिया । तब इन्द्रजित् अत्यन्त परेशान होकर रथ को छोड़ वहीं अदृश्य हो गया ।

इस प्रकार शत्रु इन्द्रजित् को परास्त हुआ देख कर सुग्रीव तथा विभीषण सहित वानर बहुत खुश हुए, और बहुत अच्छा हुआ, बहुत अच्छा हुआ, ऐसा हर्ष-नाद करने लगे ।

तब इस हर्ष-नाद के कारण इन्द्रजित् को महाभयंकर क्रोध

सोऽन्तर्धानगतः पापो रावणी रणकर्शितः ॥१७॥
ब्रह्मदत्तवरो वीरो रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
अदृश्यो निशितान्बाणान् मुमोचाशनिवर्चसः ॥१८॥

रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवौ ।
मायया संवृतस्तत्र मोहयन् राघवौ युधि ॥१९॥
अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२०॥
ततो मर्मसु मर्मज्ञो मज्जयन्निशिताञ्छरान् ।
रामलक्ष्मणयोर्वीरो ननाद च मुहुर्मुहुः ॥२१॥
बद्धौ तु शरबन्धेन तावुभौ रणमूर्धनि ।
निमेषान्तरमात्रेण न शेकतुरवेक्षितुम् ॥२२॥

हुआ कि हैं ! युद्ध में भीमकर्मा बालि-पुत्र अंगद ने मुझे जीत लिया है !! तुरन्त छिपे हुए रण-कर्कश पापी इन्द्रजित् ने, परमात्मा से वर-पाय क्रोध भरे वीर इन्द्रजित् ने, छिपे-छिपे विद्युत् समान तीखे वाण छोड़ने शुरु किये। उन सर्प समान भयानक वाणों से, क्रोध में भर कर, उसने राम और लक्ष्मण दोनों राघवों को युद्ध में बींध दिया। उसने चालाकी से वहां अपने को छिपाए रखा और उससे राम-लक्ष्मण को युद्ध में किंकर्तव्य बिमूढ़ कर दिया। ऐसी स्थिति में उस कूटयोधी निशाचर ने सब शत्रु-सैनिकों से छिपे २ राम-लक्ष्मण भाईयों को शर-बन्ध से बांध लिया। एवं, मर्मस्थलों के जानकार वीर इन्द्रजित् ने राम-लक्ष्मण के मर्मस्थलों में तीखे वाण मारकर बार २ विजय-गर्जना की।

सग्रामस्थली में शरबन्ध से बंधे हुए उन दोनों को कुछ ही

ततो विभिन्नसर्वाङ्गौ शरशल्याचितौ कृतौ ।
ध्वजाविव महेन्द्रस्य रज्जुमुक्तौ प्रकम्पितौ ॥२३॥
तौ सम्प्रचलितौ वीरौ मर्मभेदेन कर्शितौ ।
निपेततुर्महेष्वासौ जगत्यां जगतीपती ॥२४॥
तौ वीरशयने वीरौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ।
शरवेष्टित-सर्वाङ्गावार्तौ परमपीडितौ ॥२५॥
नह्यविद्धं तयोर्गात्रे बभूवाङ्गुलमन्तरम् ।
नानिर्विण्णं न चाध्वस्तमाकराग्रादजिह्मगैः ॥२६॥
तौ तु क्रूरेण निहतौ रक्षसा कामरूपिणा ।
असृक्सुस्रुवतुस्तीव्रं जलं प्रस्रवणाविव ॥२७॥

देर बाद दीखना बन्द हो गया। तदनन्तर अंग-प्रत्यंग से छिदे हुए और शर शल्यों से बिधे हुए वे दोनों इसप्रकार लड़खड़ा उठे जैसे कि राजा इन्द्र के ध्वज (झण्डा चढ़ाने के खम्भे) रस्सी के टूट जाने से लड़खड़ा उठते हैं। तब जगतीपति धनुर्धारी वे वीर राम-लक्ष्मण मर्म-भेदन से व्याकुल तथा लड़खड़ा कर नीचे भूमि पर गिर पड़े। वे वीर वीरों के शयन-स्थान संग्राम में सो रहे थे, रुधिर से तर-बतर थे और परम पीड़ित हो रहे थे। उनके शरीर पर एक अंगुल भी ऐसा स्थान नहीं बचा था जहां कि बाण न बिंधा हुआ हो, और हाथों की अंगुलियों तक में कोई ऐसा बचा हुआ स्थान नहीं था जो कि अच्छी तरह सीधी मार करने वाले बाणों से भिदा न हो, और कोई सा भी भाग हरकत करता हो। कामरूपी क्रूर राक्षस ने उन दोनों को इस प्रकार घायल कर दिया कि उन दोनों के शरीर से खून की धारायें ऐसे बह रहीं थीं जैसे कि झरने जल को बहाया करते हैं।

सर्ग २४

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः सन्ततौ बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१॥
वृष्ट्वेवोपरते देवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥२॥
नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोऽङ्गदः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥३॥
अचेष्टौ मन्दनिःश्वासौ शोणितेन परिप्लुतौ ।
शरजालाचितौ स्तब्धौ शयानौ शरतल्पगौ ॥४॥
राघवौ पतितौ दृष्ट्वा शरजालसमन्वितौ ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥५॥

विभीषण का धीरज बंधाना कि राम लक्ष्मण मरे नहीं

तब जब वानरों ने राम-लक्ष्मण भाईयों को वाणों से बिंधे हुए देखा तो वे आकाश और पृथिवी की ओर ताकने लगे। एवं, सूचना पाते ही सुग्रीव सहित विभीषण उस स्थान पर पहुँच गया, परन्तु जैसे मेघ खूब बरस कर खुल जाता है, वैसे राक्षस राम-लक्ष्मण को शरबन्ध से बांध कर अपना काम तो पूरा कर ही चुका था। इतने में तुरन्त नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद और अंगद भी हनुमान् के साथ पहुँच गए और राम-लक्ष्मण की सोच में पड़ गये। इस समय वे दोनों निश्चेष्ट थे, श्वास मन्द पड़ गया था, खून से सरावोर थे, शर-जाल से बिंधे थे और उसी शरशय्या पर एकटिक पड़े सो रहे थे। इसप्रकार शर-जाल से घिर कर जमीन पर पड़े राम-लक्ष्मण को देख कर विभीषण सहित सब वानर व्यथित हुए।

अन्तरिक्षं निरीक्षन्तो दिशः सर्वाश्च वानराः ।
न चैनं मायया छन्नं ददृशू रावणिं रणे ॥६॥
तं तु मायाप्रतिच्छन्नं माययैव विभीषणः ।
वीक्षमाणो ददर्शाग्रे भ्रातुः पुत्रमवस्थितम् ॥७॥
तमप्रतिमकर्माणम् अप्रतिद्वन्द्वमाहवे ।
ददर्शान्तर्हितं वीरं वरदानाद् विभीषणः ।
तेजसा यशसा चैव विक्रमेण च संयुतः ॥८॥
इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ।
उवाच परमप्रीतो हर्षयन् सर्वराक्षसान् ॥९॥
दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ।
सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥
नेमौ मोक्षयितुं शक्यावेतस्मादिषुबन्धनात् ।

तब उन वानरों ने अन्तरिक्ष और सब दिशाओं को टटोला, परन्तु रणाङ्गन में नकली वेषधारी इन्द्रजित् को नहीं देख पाये। तब उस नकली वेषधारी को नकली वेष से ही विभीषण ने टटोलते हुए पहिचान लिया कि यह भाई का पुत्र इन्द्रजित् सामने खड़ा है। विभीषण प्रभु के वर-दान के कारण तेज यश और विक्रम से युक्त था, इसलिए उसने युद्ध में अनोखे काम कर दिखाने वाले मुकावले रहित, उस छिपे वीर को पहिचान लिया।

तब इन्द्रजित् राम-लक्ष्मण को सुला देने की, अपनी करतूत को, देखकर बड़ा खुश हुआ और सब राक्षसों को खुश करता हुआ बोला—"देखो, दूषण और खर के मारने वाले महाबली राम-लक्ष्मण भाई मेरे बाणों से कैसे मारे गए हैं ? चाहे वनस्थ-संघों को साथ लेकर सारे के सारे देव और असुर

सर्वैरपि समागम्य सर्षिसङ्घैः सुरासुरैः ॥११॥
यत्कृते चिन्तयानस्य शोकार्तस्य पितुर्मम ।
अस्पृष्ट्वा शयनं गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥१२॥
कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ।
सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥१३॥
रामस्य लक्ष्मणस्यैव सर्वेषां च वनौकसाम् ।
विक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरदि तोयदाः ॥१४॥
निष्पन्दौ तु तदा दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
वसुधायां निरुछ्वासौ हतावित्यन्वमन्यत ॥१५॥
हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन् सर्वनैरृतान् ॥१६॥

भी क्यों न आजावें, परन्तु अब ये इस शरबन्ध से छुड़ाए नहीं जा सकते। जिस के कारण सोच करते २ शोकपीड़ित मेरे पिता की तीन पहरों की सारी रात विना सोये कटती है, और जिसके कारण यह सारी लंका वर्षा काल में उथल-पुथल करती हुई नदी के समान उथल-पुथल हुई पड़ी है, सो यह सब की जड़ उखाड़ने वाला अनर्थकारी राम मैंने शान्त कर दिया है। देखो, राम के, लक्ष्मण के, और सभी वानरों के विक्रम कैसे निष्फल हो गए हैं, जैसे कि शरत् काल में मेघ वर्षा-विहीन होने से निष्फल हो जाते हैं।"

इसके बाद इन्द्रजित् ने यह देखकर कि राम-लक्ष्मण भाईयों के सांस का स्पन्दन बन्द है, और जमीन पर विना सांस के पड़े हैं, समझा, ये मर गए। इससे इन्द्रजित् को बड़ी खुशी हुई और युद्ध-विजेता बन कर सब राक्षसों को प्रसन्न करता हुआ लंकापुरी

रामलक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपाङ्गानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥१७॥
तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ।
सबाष्पवदनं दीनं क्रोधव्याकुललोचनम् ॥१८॥
अलं त्रासेन सुग्रीव वाष्पवेगो निगृह्यताम् ।
एवंप्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ॥१९॥
सभाग्यशेषतास्माकं यदि वीर भविष्यति ।
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ॥२०॥
पर्यवस्थापयात्मानम् अनाथं मां च वानर ।
सत्यधर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतं भयम् ॥२१॥
न कालः कपिराजेन्द्र वैक्लव्यमवलम्बितुम् ।
अतिस्नेहोऽपि कालेऽस्मिन्मरणायोपकल्पते ॥२२॥

(खुश-खबरी देने के लिए) पहुँचा ।

उधर बाणों से बिंधे राम-लक्ष्मण के शरीर में सभी अंग-प्रत्यंगों को निश्चेष्ट देखकर सुग्रीव डर गया। तब क्रोध से व्याकुल-नेत्र, आंसुयों से भरपूर-मुख, तथा उदास भयभीत वानर-राज सुग्रीव से विभीषण बोला—"सुग्रीव ! डरिए मत, आंसुओं को बन्द कीजिए, प्राय करके युद्ध ऐसे ही हुआ करते हैं, किसी एक की ही विजय निश्चित नहीं हुआ करती, वीर ! यदि हमारा कुछ भी सौभाग्य शेष होगा, तो ये महाबली महापुरुष अवश्य मूर्छा त्याग देंगे। वानरराज ! आप अपने को संभालिए, और फिर मुझ अनाथ को भी संभालिए, निश्चय जानिए सत्यधर्म में रमे हुए मनुष्यों को ऐसी बुरी मृत्यु का भय नहीं हुआ करता। कपिराजेन्द्र ! यह समय कायरता दिखलाने का नहीं, इस काल

तस्मादुत्सृज्य वैक्लव्यं सर्वकार्यविनाशनम् ।
हितं रामपुरोगाणां सैन्यानामनुचिन्तय ॥२३॥
अथवा रक्ष्यतां रामो यावत्संज्ञाविपर्ययः ।
लब्धसंज्ञौ हि काकुत्स्थौ भयं नौ व्यपनेष्यतः ॥२४॥
नैतत्किंचन रामस्य न च रामो मुमूर्षति ।
नह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम् ॥२५॥
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत्सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम् ॥२६॥
एते हि फुल्लनयनास्त्रासादागतसाध्वसाः ।
कर्णे कर्णे प्रकथिता हरयो हरिसत्तम ॥२७॥
मां तु दृष्ट्वा प्रधावन्तमनीकं सम्प्रहर्षितम् ।

में अतिस्नेह भी मौत दिखलाने का कारण बन जाता है। इसलिये सर्वकार्य-विनाशक कायरता को त्याग दीजिए, और राम के आगे २ चलने वाली सेना को धीरज बंधाइए। यदि आप इसमें असमर्थ हैं तो जब तक राम सचेत नहीं होते, आप इनकी रक्षा कीजिए (मैं सेना को धीरज बंधाता हूँ), निश्चय से राम-लक्ष्मण सचेत होकर हमारे भय को मिटा देंगे। यह शर-बन्ध तो राम के लिए कुछ भी नहीं, और न राम इससे मरे ही हैं। क्योंकि देखिए तो सही कि मरे हुओं के चेहरे पर जो रौनक कभी नहीं होती, वह इनके मुख-मण्डल पर अभी विराजमान है। इसलिए आप अपने को धीरज बंधाइए और अपने बल को ठीक कीजिए, तब तक मैं सब सेना को फिर से जमा देता हूं।

हरिश्रेष्ठ ! देखिए, त्रास फैलने पर मारे डर के वानरों की आंखें कैसे फटी पड़ी हैं, और ये कैसे काना-फूसी कर रहे हैं ?

त्यजन्तु हरयस्त्रासं भुक्तपूर्वामिव स्रजम् ।।२८।।
समाश्वास्य तु सुग्रीवं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विद्रुतं वानरानीकं तत्समाश्वासयत्पुनः ।।२६।।
इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लङ्कां पितरं चाभ्युपागमत् ।।३०।।
तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ।।३१।।
उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ।।३२।।
उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः ।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ।
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ।।३३।।

मैं जब खूब खुशी २ सेना के अन्दर भागूंगा, तो मुझे इसप्रकार खूब खुश हुए को देखकर वे लोग भय को उसीप्रकार त्याग देंगे, जैसे कि कुम्हलायीं माला को गले से उतार कर फैंक देते हैं।"

राक्षसेन्द्र विभीषण ने इसप्रकार सुग्रीव को धीरज बंधाकर फिर जल्दी ही वानर सेना को धीरज प्रदान किया। उधर दूसरी ओर अत्यन्त छलिया इन्द्रजित् अपनी समस्त सेना को साथ ले लंका नगरी पहुंचा और पिता के समीप गया। वहां जाकर रावण को हाथ जोड़ प्रणाम किया और राम-लक्ष्मण के मारे जाने की खुश-खबरी पिता को सुनायी। यह खुश-खबरी सुन कर रावण उछला और खुशी २ पुत्र का आलिंगन किया। रावण ने राक्षसों के बीच में यह सुन कर कि दोनों शत्रु मारे गये हैं, पुत्र का सिर सुंघा और खुशदिल होकर व्यौरेवार सब हाल पूछा।

सर्ग २५

रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव ततः सीतारक्षणी राक्षसीस्तदा ॥१॥
राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्तमुपस्थिताः ।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥२॥
हताविन्द्रजिताऽऽख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥३॥
यदाश्रयादवष्टब्धा नेयं मामुपतिष्ठते ।
सोऽस्या भर्ता सह भ्रात्रा निहतो रणमूर्धनि ॥४॥
निर्विशङ्का निरुद्विग्ना निरपेक्षा च मैथिली ।

पिता के इसप्रकार पूछने पर जैसा गुजरा था वैसा सब हाल पिता को बता दिया कि कैसे मैंने शरबन्ध के द्वारा उन दोनों को निश्चेष्ट और निस्तेज बना दिया है ।

सीता को विमान पर बैठा मृत राम-लक्ष्मण को दिखाना

शत्रुवध की बात सुनकर रावण बड़ा खुश हुआ और पुत्र इन्द्रजित् को विदा करके सीता की रखवाली करने वाली राक्षसियों को बुलाया । आदेश पाते ही राक्षसियां और त्रिजटा भी आ उपस्थित हुई । तब राक्षसराज ने खुश होते हुए उन राक्षसियों को आज्ञा दी—

"जावो, सीता को खबर दो कि इन्द्रजित् ने राम-लक्ष्मण को मार दिया है, और उसे पुष्पक विमान पर ले जाकर रण में उन मरे हुओं को दिखलायो । यह जिसके सहारे ढीठ बनकर मेरे पास नहीं आती थी, वह इसका पति भाई सहित रणभूमि में मारा गया है । अब यह मिथिला देश की सीता निःशंक व

मामुपस्थास्यते सीता सर्वाभरणभूषिता ॥५॥
अद्य कालवशं प्राप्तं रणे रामं सलक्ष्मणं ।
अवेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्यां गतिमपश्यती ।
अनपेक्षा विशालाक्षी मामुपस्थास्यते स्वयम् ॥६॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रावणस्य दुरात्मनः ।
राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्र पुष्पकम् ॥७॥
ततः पुष्पकमादाय राक्षस्यो रावणाज्ञया ।
अशोकवनिकास्थां तां मैथिलीं समुपानयन् ॥८॥
तामादाय तु राक्षस्यो भर्तृशोकपराजिताम् ।
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥९॥
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ।
रावणश्चारयामास पताकाध्वजमालिनीम् ॥१०॥

निर्भय होकर तथा राम की आशा को छोड़कर सब तरह के आभूषणों से सजकर मेरे पास आयेगी। आज रण में लक्ष्मण सहित राम को काल-कवलित देखकर विशालाक्षी आशा-विहीन हो जावेगी और मेरे सिवाय किसी दूसरे सहारे को न देख कर राम की चिन्ता त्याग स्वयं मेरे पास आयेगी।"

दुरात्मा रावण की उस आज्ञा को सुनकर उन राक्षसियों ने 'बहुत अच्छा जी' ऐसा कहा और यहां पुष्पक विमान था वहां पहुची। रावण की आज्ञा से उन्हों ने पुष्पक विमान लिया और अशोकवाटिका-स्थित सीता के पास ले गयीं। पति-शोक से दुःखी सीता को लेकर उन राक्षसियों ने उसे पुष्पक विमान पर चढ़ाया। तब रावण ने त्रिजटा सहित सीता को पुष्पक विमान पर बैठाकर झण्डे-झण्डियों से सजी हुई अयोध्या पर घुमाया,

प्राघोषयत हृष्टश्च लङ्कायां राक्षसेश्वरः ।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजिता रणे ॥११॥

विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥१२॥

प्रहृष्टमनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चातिदुःखार्तान् रामलक्ष्मणपार्श्वतः ॥१३॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥१४॥

विध्वस्तकवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्नसर्वाङ्गौ शरस्तम्बमयौ क्षितौ ॥१५॥

तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कु-माराविव पावकौ ॥१६॥

और राक्षसराज ने खुशी २ लंका में घोषणा करायी कि रण में इन्द्रजित् ने राम और लक्ष्मण को मार दिया है। त्रिजटा सहित सीता ने विमान से जाकर देखा कि वानरों की प्रायः सब सेना गिरा दी गयी है। उसने यह भी देखा कि मांसभक्षी राक्षस लोग खुश हो रहे हैं, और राम-लक्ष्मण के पास में बैठे बचे खुचे वानर लोग अथाह दुःख से परिपीड़ित हो रहे हैं।

इसके बाद सीता ने देखा कि दोनों लक्ष्मण और राम बाणों की शय्या पर पड़े सो रहे हैं। वे वीर संज्ञा-विहीन हैं, बाणों से पीड़ित हैं, कवच कटे पड़े हैं, धनुष टूटे हुए हैं, बाणों से अंग-अंग छिदे पड़े हैं, और ऐसे दीख पड़ रहे हैं कि मानो बाणों के गट्ठर भूमि पर पड़े हों। कमलनयन तथा मुश्किल से बुझने वाली प्रदीप्त अग्नि के समान तेजस्वी उन पुरुषश्रेष्ठ वीर

शरतल्पगतौ वीरौ तथाभूतौ नरर्षभौ ।
दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥१७॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाऽब्रवीत् ।
मा विषादं कृथा देवि भर्ताऽयं तव जीवति ॥१८॥

कारणानि च वक्ष्यामि महान्ति सदृशानि च ।
यथेमौ जीवितौ देवि भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥

नहि कोपपरीतानि हर्षपर्युत्सुकानि च ।
भवन्ति युधि योधानां मुखानि निहते पतौ ॥२०॥

इदं विमानं वैदेहि पुष्पकं नाम नामतः ।
दिव्यं त्वां धारयेन्नेदं यद्येतौ गतजीवितौ ॥२१॥

भाईयों को रणभूमि में सोते हुए देखकर, और फिर नरश्रेष्ठ वीरों को वैसी हालत में शर-शय्या पर पड़े देखकर सीता दुःख से पीड़ित हुई और करुणाजनक शब्दों में अत्यन्त विलाप करने लगी।

तब विलाप करती हुई सीता को त्रिजटा राक्षसी ने कहा—"देवि ! विषाद मत करो, तुम्हारे ये पति जीते हैं। देवि ! मैं तुम्हें बलशाली और ठीक जंचने वाले कारण बतलाती हूँ कि ये राम-लक्ष्मण भाई क्यों जीवित हैं ? पहला तो यह कि सेना-पति के युद्ध में मारे जाने पर योद्धाओं के मुख क्रोध से भरे हुए और फिर हर्ष के लिए उत्कण्ठित नहीं होते, (अपितु रो रहे होते हैं)। दूसरा यह कि देवि ! यह पुष्पक विमान दिव्य है, यदि ये मर गए होते तो तुम्हें इस दिव्य विमान पर न बैठाया जाता, (अपितु पैदल या मामूली सवारी पर लाकर दिखाया जाता)। तीसरा यह कि जिस सेना का मुखिया वीर मारा जाता है, उस सेना का

हतवीरप्रधाना हि गतोत्साहा निरुद्यमा ।
सेना भ्रमति संख्येषु हतकर्णेव नौर्जले ॥२२॥
इयं पुनरसंभ्रान्ता निरुद्विग्ना तपस्विनि ।
सेना रक्षति काकुत्स्थौ मया प्रीत्या निवेदितौ ॥२३॥
सा त्वं भव सुविस्रब्धा अनुमानैः सुखोदयैः ।
अहतौ पश्य काकुत्स्थौ स्नेहादेतद् ब्रवीमि ते ॥२४॥
अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्यामि मैथिलि ।
चारित्रसुखशीलत्वात् प्रविष्टाऽसि मनो मम ॥२५॥
नेमौ शक्यौ रणे जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तादृशं दर्शनं दृष्ट्वा मया चोदीरितं तव ॥२६॥

उत्साह टूट जाता है, उसका उद्यम जाता रहता है, और वह युद्ध भूमि में ऐसे डगमगाने लगती है जैसे कि पतवार के टूट जाने पर नौका जल में डगमगा जाती है। परन्तु, तपस्विनी ! विपरीत इसके यह सेना न डगमगायी है और न घबरायी है, अपितु राम लक्ष्मण की रक्षा कर रही है। इसीलिए मैंने प्रसन्नता पूर्वक निवेदन किया है कि ये जीते हैं मरे नहीं।

इसलिए देवी ! इन उपर्युक्त सुख-परिणामी अनुमानों से विश्वास करो, और राम-लक्ष्मण को जीवित समझो। यह सब मैं तुम्हें स्नेहवश कह रही हूं। मैथिली ! मैंने कभी झूठ नहीं बोला और न कभी बोलूंगी। पातिव्रत के कारण तुमने मेरे अन्तःकरण को सुख-परिपूर्ण कर रखा है, इसलिए तुम मेरे अन्दर पैठी हुई हो।

देवी ! देव-असुरों सहित इन्द्र राजायों से भी ये दोनों रण में नहीं जीते जा सकते। मैंने वैसे लक्षण देखकर ही तुम्हें

इदं तु सुमहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि ।
विसंज्ञौ पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥२७॥
प्रायेण गतसत्त्वानां पुरुषाणां गतायुषाम् ।
दृश्यमानेषु वक्त्रेषु परं भवति वैकृतम् ॥२८॥
त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे ।
रामलक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥२९॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेमाम् एवमस्त्विति मैथिली ॥३०॥
विमानं पुष्पकं तत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥३१॥
ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्य सा ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥३२॥

उपर्युक्त प्रकार कहा है। मैथिली ! जरा इस महान् चमत्कार को तो देखो कि बाणों से ये दोनों मूर्छित अवस्था में पड़े हैं, परन्तु फिर भी मुखमण्डल की कान्ति ज्यों की त्यों है। विपरीत इसके प्रायः करके शक्ति-विहीन तथा मरणासन्न मनुष्यों के मुखमण्डलों पर अत्यधिक विकार आ जाया करता है। अतः, जनकपुत्री ! राम-लक्ष्मण के संबन्ध में शोक, दुःख, और मूढ़ता को छोड़ो, ये अभी मर नहीं सकते।"

देवकन्या-समान मैथिली सीता ने त्रिजटा के कथन को सुनकर हाथ जोड़ कहा, ऐसा ही हो। तदनन्तर त्रिजटा द्रुतगामी पुष्पक विमान को लौटा कर दुखिया सीता को लंका के अन्दर ले आयी, और फिर वह त्रिजटा के साथ पुष्पक विमान से नीचे उतरी और राक्षसियों ने उसे अशोकवाटिका के अन्दर दाखिल कर दिया।

सर्ग २६

घोरेण शरबन्धेन बद्धौ दशरथात्मजौ ।
निःश्वसन्तौ यथा नागौ शयानौ रुधिरोक्षितौ ॥१॥
सर्वे ते वानरश्रेष्ठाः ससुग्रीवमहाबलाः ।
परिवार्य महात्मानो तस्थुः शोकपरिप्लुताः ॥२॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो गदापाणिर्विभीषणः ।
सुग्रीवं वर्धयामास राघवं च जयाशिषा ॥३॥
विभीषणस्तु रामस्य दृष्ट्वा गात्रं शरैश्चितम् ।
लक्ष्मणस्य तु धर्मात्मा बभूव व्यथितस्तदा ॥४॥
जलक्लिन्नेन हस्तेन तयोर्नेत्रे विमृज्य च ।
शोकसम्पीडितमना रुरोद विललाप च ॥५॥
इमौ तौ सत्त्वसम्पन्नौ विक्रान्तौ प्रियसंयुगौ ।
इमामवस्थां गमितौ राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥६॥

गरुड़ वैद्य द्वारा राम-लक्ष्मण का स्वस्थ होना

घोर शर-बन्ध से बंधे हुए दशरथ-पुत्र फणियर सांपों के समान फुंकारें मारते हुए रुधिर से तर-बतर पड़े थे। सुग्रीव सहित सब महाबली वानरश्रेष्ठ उन दोनों महात्माओं को घेर कर शोक में डूबे हुए बैठे थे कि इतने में बीर विभीषण हाथ में गदा लिए पहुँचा और सुग्रीव तथा राम का जयकार गुंजाया। परन्तु जब धर्मात्मा विभीषण ने देखा कि राम तथा लक्ष्मण के गात बाणों से भरे पड़े हैं, तो बहुत दुःखी हुआ। उसने गीले हाथ से उनकी आंखें साफ की और शोकाकुल होकर रोने तथा विलाप करने लगा—"हाय! कपट युद्ध करने वाले राक्षसों ने इन बलवान्, पराक्रमी, तथा युद्धप्रिय दोनों भाईयों को इस हालत में

भ्रातृपुत्रेण चैतेन दुष्पुत्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्मया बुद्ध्या वञ्चितावृजुविक्रमौ ॥७॥
शरैरिमावलं विद्धौ रुधिरेण समुक्षितौ ।
वसुधायामिमौ सुप्तौ दृश्येते शल्यकाविव ॥८॥
एवं विलपमानं तं परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुग्रीवः सत्त्वसम्पन्नो हरिराजोऽब्रवीदिदम् ॥६॥
गरुडाधिष्ठितावेतावुभौ राघवलक्ष्मणौ ।
त्यक्त्वा मोहं वधिष्येते सगणं रावणं रणे ॥१०॥
ततो मुहूर्ताद् गरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥११॥
तमागतमभिप्रेक्ष्य नागास्ते विप्रदुद्रुवुः ।

पहुंचा दिया है ? इस कुपूत दुरात्मा भ्रातृपुत्र ने राक्षसी कुटिल बुद्धि से इन सीधे-सच्चे पराक्रमियों को धोखा दिया है। ये वाणों से बहुत ज्यादा बिंधे हुए हैं और रुधिर से सरावोर हो रहे हैं। ये भूमि पर पड़े वाणों के कारण ऐसे दीख पड़ रहे हैं मानो कि तीखे कांटों वाले सहे सोए पड़े हों।" (शरैः इमौ अलं)

इसप्रकार विभीषण विलाप कर रहा था कि धैर्यवान् वानरराज सुग्रीव ने उसे गले लगाया और कहा—"विभीषण ! ये दोनों राम-लक्ष्मण वैद्यराज गरुड़ के चिकित्सा करते ही मूर्छा को छोड़ देंगे और फिर दल-बल सहित रावण को युद्ध में मार डालेंगे।"

सुग्रीव ने विभीषण को यह कहा ही था कि इतने में वानरों ने विनता के पुत्र महाबली गरुड़ को देखा, जोकि अग्नि के समान तेजस्वी था। जिसप्रकार गरुड़ के आने पर सांप

यैस्तु तौ पुरुषौ बद्धौ शरभूतैर्महाबलैः ॥१२॥
ततः सुपर्णः काकुत्स्थौ स्पृष्ट्वा प्रत्यभिनन्द्य च ।
विममर्श च पाणिभ्यां मुखे चन्द्रसमप्रभे ॥१३॥
वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनू स्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥१४॥
तेजो वीर्यं बलं चौज उत्साहश्च महागुणाः ।
प्रदर्शनं च बुद्धिश्च स्मृतिश्च द्विगुणा तयोः ॥१५॥
तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥१६॥
भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ।

निकल भागते हैं, इसीप्रकार गरुड़ वैद्य के आने पर वे विषैले महाबली बाण उन दोनों के शरीरों में से बाहर निकल पड़े, जिन्हों ने कि उन्हें बांध रखा था। इसके बाद गरुड़ वैद्य ने राम-लक्ष्मण के शरीरों पर हाथ फेरा, उन्हें आशीर्वाद दिया और चन्द्रसमान कान्तिमान् उनके मुखड़ों को सुहराया। इस प्रकार गरुड़ ने जब उनके शरीरों पर हाथ फेरा तो उनके घाव भर गए और उनके शरीर शीघ्र सुन्दर वर्ण वाले और चिकने हो गए। इस चिकित्सा से उनका तेज, पराक्रम, बल, ओज और उत्साह ये महागुण, और परोक्षार्थ-ज्ञान, विवेक और स्मृति पहले से भी बढ़कर हो गये। एवं, उनके स्वस्थ हो जाने पर महातेजस्वी गरुड़ ने इन्द्र समान उन दोनों को हाथ से पकड़ कर उठाया और परम प्रसन्न होकर गले लगाया। तब राम ने गरुड़ से कहा—

"भगवन्! आपकी कृपा से इन्द्रजित् के पैदा किए हुए महाकष्ट से हम दोनों बच निकले, और आपने उपाय द्वारा हमें

उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥१७॥
यथा तातं दशरथं यथाऽजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥१८॥
को भवान् रूपसम्पन्नो दिव्यस्रगनुलेपनः ।
वसानो विरजे वस्त्रे दिव्याभरणभूषितः ॥१९॥
तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ।
पतत्रिराजः प्रीतात्मा हर्षपर्याकुलेक्षणम् ॥२०॥
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियप्राणो बहिश्चरः ।
गरुत्मानिह सम्प्राप्तो युवयोः साह्यकारणात् ॥२१॥
असुरा वा महावीर्या वानरा वा महाबलाः ।
सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥२२॥

शीघ्र बलवान् बना दिया। जैसे पिता दशरथ को, और जैसे पितामह अज को पाकर मेरा हृदय प्रसन्न होता था वैसे आपको पाकर मैं प्रसन्न हो रहा हूं। भला, यह तो बतलाइए कि आप कौन हैं, जोकि इसप्रकार रूपसंपन्न हैं, दिव्य पुष्पमाला पहिने हुए हैं, सुगन्धित चन्दन लगाए हुए हैं, निर्मल वस्त्र धारे हुए हैं, और दिव्य आभूषणों से विभूषित हैं।"

रामके ऐसा पूछने पर महातेजस्वी महाबली विनता का पुत्र वैद्यराज (पतत्रिराज यानि मरणोन्मुखों के त्राण करने वालों में श्रेष्ठ) प्रसन्न मन होकर हर्ष से खिली आंखों वाले राम से बोला—

"काकुत्स्थ ! मैं तुम्हारा बहिर्गत प्राण के समान प्यारा मित्र हूं। मैं गरुड़ यहां तुम दोनों की सहायता करने को आया हूं। चाहे महापराक्रमी असुर आते, चाहे महाबली वानर आते, और चाहे इन्द्र को आगे रखकर गन्धर्वों सहित देव भी क्यों न

नेमं मोचयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ।
मायाबलादिन्द्रजिता निर्मितं क्रूरकर्मणा ॥२३॥

एते नागा काद्रवेयास्तीक्ष्णदंष्ट्रा विषोल्वणाः ।
रक्षोमायाप्रभावेण शरभूतास्त्वदाश्रयाः ॥२४॥

सभाग्यश्चासि धर्मज्ञ राम सत्यपराक्रम ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा समरे रिपुघातिना ॥२५॥

इमं श्रुत्वा तु विक्रान्तस्त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसैवावयोः स्नेहात् सखित्वमनुपालयन् ॥२६॥

मोक्षितौ च महाघोरादस्मात् सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥२७॥

प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥२८॥

आते, पर कोई भी इस भयंकर शर-बन्ध को नहीं हटा सकते थे, क्योंकि छल-प्रपंच के बल से क्रूरकर्मा इन्द्रजित् ने इसे रचा था। राम ! इन्द्रजित् राक्षस के छल-प्रपंच से आपके अन्दर घुसे हुए ये बाण क्या थे, कद्रु जाति के तीखी दाड़ों वाले विषभरे सांप थे। सत्यपराक्रमी धर्मज्ञ राम ! युद्ध में शत्रुघाती भाई लक्ष्मण सहित आप भाग्यशाली हैं, कि इस दुर्घटना को सुनकर मेरे अन्दर सहसा आप दोनों के प्रति स्नेह उपजा और उस स्नेह के कारण मित्रधर्म का पालन करता हुआ मैं एकदम जल्दी से यहां आगया और इस महाभयानक शरबन्ध से आप दोनों को छुड़ा दिया। अब आप दोनों को सदा ही सावधानी वर्तनी चाहिए, क्योंकि सब के सब राक्षस लोग युद्ध में कपटयुद्ध करने के आदी हैं, और आप शुद्धभावों वाले शूरवीरों का बल छलरहित

तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥२९॥
एवमुक्त्वा तदा रामं सुपर्णः स महाबलः ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥३०॥
सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥३१॥
न च कौतूहलं कार्यं सखित्वं प्रति राघव ।
कृतकर्मा रणे वीर सखित्वं प्रतिवेत्स्यसि ॥३२॥
बालवृद्धावशेषां तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणं तु रिपुं हत्वा सीतां त्वमुपलप्स्यसे ॥३३॥

सच्चा है ! इसलिए युद्धस्थली में आपको राक्षसों का कभी विश्वास न करना चाहिए, इसी एक उदाहरण के समान राक्षस लोग सदा कुटिलता वर्ता करते हैं।"

महाबली गरुड़ ने राम को इसप्रकार कह कर प्रीतिपूर्वक गाढ़ आलिंगन किया और फिर इसप्रकार पूछना प्रारम्भ किया—"शत्रुयों के भी प्रेमी धर्मज्ञ मित्र राम ! अब मैं आप से अनुज्ञा चाहता हूं, मैं आपके स्वस्थ हो जाने से सुखी हूं, मैं अब जाऊंगा। राम ! आप मेरी इस मैत्री पर तनिक भी आश्चर्य न करें, वीर ! जब आप रण में अपना कार्य कर चुकेंगे तब आप को इस मित्रता का वृत्तान्त पता लग जावेगा। आप बाण रूपी लहरों से लंका को ऐसी बना देंगे कि वहां बालक और बूढ़ों के सिवाय दूसरा कोई नहीं बचेगा, और एवं आप शत्रु रावण को मार कर सीता को पावेंगे।"

इसप्रकार कह कर, और वानरों के देखते २ बड़ी फुर्ती

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च नीरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥३४॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥३५॥
नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादं तदा नेदुर्लाङ्गूलं दुधुवुश्च ते ॥३६॥

सर्ग २७

तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् ।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥१॥
स्निग्धगम्भीरनिर्घोषं श्रुत्वा तं निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥२॥
यथाऽसौ सम्प्रहृष्टानां वानराणामुपस्थितः ।

से राम को आरोग्ययुक्त करके वीर्यवान् गरुड़ ने राम की प्रदक्षिणा की, आलिंगन किया, और आकाश मार्ग से वायुवेग के समान तेजी से चल दिया। तब वानर-यूथपतियों ने राम-लक्ष्मण को नीरोग देख कर सिंहनाद किया, और नरसिंहा फूँका।

राम-लक्ष्मण की स्वस्थता का समाचार सुनकर युद्ध के लिए धूम्राक्ष को भेजना

तब इस प्रकार गर्जते हुए महाशक्तिशाली उन वानरों का तुमुल नाद राक्षसों सहित रावण ने सुना। उस सुन्दर तथा गम्भीर गर्जना वाले लगातार नाद को सुनकर मंत्रियों के बीच में स्थित रावण ने कहा—

"यह जो गर्जते हुए मेघों के समान सुप्रसन्न बहुत से

बहूनां सुमहान्नादो मेघानामिव गर्जताम् ॥३॥
सुव्यक्तं महती प्रीतिरेतेषां नात्र संशयः ।
तथा हि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥४॥
तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥५॥
एवं च वचनं चोक्त्वा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीपपरिवर्तिनः ॥६॥
ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥७॥
तथोक्तास्ते सुसम्भ्रान्ताः प्राकारमभिरुह्य च ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥८॥
तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥९॥

वानरों का महानाद उठा है, इसमें कोई शक नहीं कि अवश्य इनके अन्दर कोई अत्यन्त खुशी की बात हुई है, क्योंकि इनके महानादों से समुद्र भी हिल उठा है। वे दोनों भाई राम-लक्ष्मण तो तीखे बाणों से जकड़ दिए गए थे, फिर यह महानाद मेरे अन्दर शङ्का को उपजा रहा है।" राक्षसेश्वर ने मन्त्रियों को इस-प्रकार कह कर साथ में रहने वाले राक्षसों को कहा—"जाइए, शीघ्र जानिये कि इन सब वानरों का शोक-काल उपस्थित होने पर इनके प्रसन्न होने का क्या कारण है ?"

इस प्रकार रावण की आज्ञा पाकर हड़बड़ाए हुए वे राक्षस परकोटे पर चढ़े, और महाबली सुग्रीव द्वारा सुरक्षित सेना को देखा। और फिर यह देखकर कि महाभाग्यवान् वे राम-लक्ष्मण महाभयानक शर-बन्ध से छुटकारा पाकर उठ खड़े हैं, बहुत

सन्त्रस्तहृदयाः सर्वे प्राकारादवरुह्य ते ।
विवर्णा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥१०॥
तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद् वाक्यकोविदाः ॥११॥
यौ ताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकम्पभुजौ कृतौ ॥१२॥
विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्येते तौ रणाजिरे ।
पाशानिव गजौ छित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥१३॥
तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्तारोपसमाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥१४॥
घोरैर्दत्तवरैर्बद्धौ शरैराशीविषोपमैः ।

दुःखी हुए। वे भयभीत होकर परकोटे से नीचे उतरे और अत्यन्त उदास और विवर्ण हो रावण के पास पहुंचे। वहां पहुँच कर बात करने में चतुर उन चेहरे-उतरे राक्षसों ने वह सब अप्रिय समाचार यथावत् रावण के समक्ष निवेदन कर दिया—

"राजन्! इन्द्रजित् ने युद्ध में जिन राम-लक्ष्मण भाईयों को शरबन्ध से जकड़ दिया था और भुजाओं को निश्चेष्ट कर दिया था, वे गजेन्द्र सम विक्रमी दोनों भाई फन्दों को काट कर उन्मुक्त हाथियों के समान संप्रति समरभूमि में शरबन्ध से छुटकारा पाए हुए दीख पड़ते हैं।"

महाबली राक्षसराज उनकी इस बात को सुनकर चिन्ता और क्रोध से भर गया, और चेहरा पीला पड़ गया। "अरे! इन्द्रजित ने तो पूरी ताकत लगा कर वर रूप में प्राप्त महा-

अमोघैः सूर्यसङ्काशैः प्रमथ्येन्द्रजिता युधि ॥१५॥
तदस्त्रबन्धमासाद्य यदि मुक्तौ रिपू मम ।
संशयस्थमिदं सर्वमनुपश्याम्यहं बलम् ॥१६॥
निष्फलाः खलु संवृत्ताः शराः पावकतेजसः ।
आदत्तं यैस्तु संग्रामे रिपूणां जीवितं मम ॥१७॥
एवमुक्त्वा तु संक्रुद्धो निःश्वसन्नुरगो यथा ।
अब्रवीद्रक्षसां मध्ये धूम्राक्षं नाम राक्षसम् ॥१८॥
बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमः ।
त्वं वधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥१९॥
एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
परिक्रम्य ततः शीघ्रं निर्जगाम नृपालयात् ॥२०॥

भयानक, विषधर सर्पों-जैसे विषैले, तथा कभी निष्फल न जाने वाले सूर्यसमान तेजस्वी बाणों से इन्हें बांधा था, यदि ये मेरे दुश्मन उस शरबन्ध में बंध कर भी छुटकारा पा गए, तो मैं अपने इस समस्त बल को संशयापन्न समझता हूं। बड़ी हैरानी की बात है कि जिन अग्निसमान धक्-धक् करने वाले बाणों ने संग्राम में मेरे दुश्मनों के प्राण ले लिए थे, वे आज निष्फल हो गए ! !"

इस प्रकार कह कर क्रोध में भरे राक्षस ने सांप की तरह फुंकारे मारते हुए राक्षसों के मध्य में धूम्राक्ष नामी राक्षस को हुक्म दिया—"भीम विक्रमी ! जावो, तुम राक्षसों की बड़ी सेना लेकर वानरों सहित राम के बध के लिए शीघ्र जावो।"

बुद्धिमान् रावण ने जब धूम्राक्ष को इस प्रकार आज्ञा दी तो उसने उसे प्रणाम किया और राजभवन से चल

अभिनिष्क्रम्य तद् द्वारं बलाध्यक्षमुवाच ह ।
त्वरयस्व बलं शीघ्रं किं चिरेण युयुत्सतः ॥२१॥
धूम्राक्षवचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञया भृशम् ॥२२॥
ते बद्धघण्टा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विनद्यमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥२३॥
स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ।
हसन्वै पश्चिमद्वाराद् हनूमान् यत्र तिष्ठति ॥२४॥

सर्ग २८

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकाङ्क्षिणः ॥१॥

पड़ा। राजभवन के द्वार पर पहुंच कर सेनापति को कहा—'बहुत जल्द सेना तय्यार करो, योद्धाओं को विलम्ब करने से क्या लाभ ?'

धूम्राक्ष के संदेश को सुनकर सेना के पीछे चलने वाले सेनाध्यक्ष ने रावण की आज्ञानुसार जल्दी से सेना को तय्यार कर दिया। वे बली तथा भयानक राक्षस-सैनिक गर्जना करते हुए और खुश होते हुए धूम्राक्ष के चारों ओर आ खड़े हुए। तब महापराक्रमी धूम्राक्ष राक्षसों के साथ लेकर हंसता २ लंका के पश्चिम द्वार से बाहर निकला, जिधर कि हनुमान् डटा हुआ था।

हनुमान् द्वारा धूम्राक्ष का मारा जाना

भीमविक्रमी धूम्राक्ष राक्षस को बाहर निकलता हुआ देख कर युद्धाभिलाषी सब वानर प्रसन्न हुए और सिंह-गर्जना करने लगे। तब उन वानर तथा राक्षसों का घोर युद्ध हुआ,

तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यं पादपैर्घोरैर्निघ्नतां शूलमुद्गरैः ॥२॥
तत्सुभीमं महद् युद्धं हरिराक्षससंकुलम् ।
प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादपसंकुलम् ॥३॥
धनुर्ज्यातन्त्रिमधुरं हिक्कातालसमन्वितम् ।
मन्द्रस्तनितगीतं तद् युद्धगान्धर्वमाबभौ ॥४॥
धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान् रणमूर्धनि ।
हसन्विद्रावयामासुर्दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥५॥
धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥६॥
क्रोधाद् द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥७॥

जिसमें कि वे एक-दूसरे पर बड़े २ लट्ठों एवं शूल तथा मुद्गरों से प्रहार करने लगे। वह महायुद्ध वानर - राक्षसों का खूब खुल कर बड़ा भयंकर चला। उसमें शस्त्र तड़ातड़ चल रहे थे। उस समय यह युद्ध संगीतमय बन रहा था : धनुष की ज्या वीणा की मधुर तार थी, वीरों के गिरने के समय की हिचकियां ताल थी, और घायलों का धीमे २ कराहना मन्द-उच्चारित गान था। धूम्राक्ष ने हाथ में धनुष लेकर संग्राम-स्थली में हंसते २ बाण-वृष्टि द्वारा उन वानरों को इधर-उधर भगा दिया।

तब हनुमान् ने जब यह देखा कि उसकी सेना कुचली और पीटी गई है तो वह बहुत अधिक गुस्से में भरा, और बहुत बड़ी शिला लेकर क्रोध से आंखें दुगनी लाल कर तथा पिता के समान पराक्रमी बन उस शिला को धूम्राक्ष के रथ पर दे मारा।

आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥८॥
सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ।
सचक्रकूबरमुखं सध्वजं सशरासनम् ॥६॥
स त्यक्त्वा तु रथं तस्य हनूमान् मारुतात्मजः ।
गिरेः शिखरमादाय धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥१०॥
तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥११॥
तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ॥१२॥
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ।
धूम्राक्षस्य शिरो मध्ये गिरिशृङ्गमपातयत् ॥१३॥
स विस्फारित-सर्वाङ्गो गिरिशृङ्गेण ताडितः ।

धूम्राक्ष ने आती हुई शिला को देख कर एकदम गदा उठाली और जल्दी से रथ पर से कूद कर नीचे भूमि पर डट गया। वह शिला रथ को चकनाचूर कर जमीन पर जा पड़ी : रथ के पहिए, धुरी, घोड़े, झण्डा सब नष्ट हो गए और धनुष भी जाता रहा। इसके बाद हनुमान् धूम्राक्ष के टूटे रथ को छोड़ कर पहाड़ की चट्टान लेकर धूम्राक्ष की ओर लपका। तब पराक्रमी धूम्राक्ष गदा ले गर्जना करता व लपकता हुआ हनुमान् पर एकदम झपटा और कांटों से युक्त उस गदा को क्रोध-भरे हनुमान् के माथे पर गुस्से से दे मारा। वायु समान बली हनुमान् ने उस प्रहार की तनिक भी परवाह न करते हुए धूम्राक्ष के मध्य शिर पर पर्वत की चट्टान दे मारी। चट्टान की चोट से धूम्राक्ष के सब अंग खिल गए

पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥१४॥
धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषा निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ॥१५॥

सर्ग २६

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
क्रोधेन महताविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥१॥
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषीकृतः ।
अब्रवीद्राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥२॥
गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥३॥
तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥४॥

और फटे पर्वत की तरह एकदम भूमि पर गिर पड़ा । एवं मारे गए धूम्राक्ष को देखकर मरने से बचे राक्षस भयभीत हो गये और वानरों से मार खाते हुए लंका के अन्दर घुस गए ।

अंगद द्वारा वज्रदंष्ट्र का मारा जाना

राक्षसेश्वर रावण ने जब यह सुना कि धूम्राक्ष मारा गया है, तो वह सांप के समान फुंकारे मारता हुआ महाक्रोध में भरा, और लम्बे गर्म सांस छोड़ कर क्रोध से तमतमाता हुआ महाबली शूर वज्रदंष्ट्र राक्षस से बोला— "वीर ! जावो, राक्षसों को साथ लेकर निकलो, वानरों सहित दशरथ-पुत्र राम को और सुग्रीव को मारो ।" तब बहुत अच्छा, ऐसा कह कर राक्षस-सेनापति मायावी वज्रदंष्ट्र बहुत-सी सेना को साथ लेकर बहुत तेजी से युद्ध के लिए निकल पड़ा । तिनके के समान दुश्मनों को अनायास जीतने वाले

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा वानरा जितकाशिनः ।
प्रणेदुः सुमहानादान् दिशः शब्देन पूरयन् ॥५॥

ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ।
घोराणां भीमरूपाणाम् अन्योन्यवधकांक्षिणाम् ॥६॥

निष्पतन्ता महोत्साहा भिन्नदेहशिरोधराः ।
रुधिरोक्षितसर्वाङ्गा न्यपतन् धरणीतले ॥७॥

केचिदन्योन्यमासाद्य शूराः परिघबाहवः ।
चिक्षिपुर्विविधाञ्छस्त्रान् समरेष्वनिवर्तिनः ॥८॥

द्रुमाणां च शिलानां च शस्त्राणां चापि निःस्वनः ।
श्रूयते सुमहांस्तत्र घोरो हृदयभेदनः ॥९॥

रथनेमिस्वनस्तत्र धनुषश्चापि घोरवत् ।

वानरों ने तेजी से आते हुए राक्षसों को देखकर ऐसीं सिंह-गर्जना की कि सब दिशायें गूंज उठी।

बस फिर क्या था, एक-दूसरे के वध की इच्छा रखने वाले महाबली, तथा भयानक-मूर्ति वानरों की राक्षसों के साथ घमासान लड़ाई होने लगी। देखते-देखते बड़े जोश के साथ लड़ने वाले राक्षस सिर धड़ से अलग हुए लड़खड़ा कर खून से लथपथ जमीन पर गिरने लगे। उस समय युद्ध भूमि में कभी मुंह न मोड़ने वाले कुछ एक शूर राक्षस हाथ में डण्डा लिए एक-दूसरे पर झपट कर तरह २ से शस्त्र चला रहे थे, लट्ठों पत्थरों और शस्त्रों का हृदयभेदी महाभयानक उच्च शब्द सुनाई पड़ रहा था, और रथ के पहियों की घड़घड़ाहट, धनुष की टंकार, और शंख-भेरी-मृदंगों का उच्च नाद उठ रहा था। कई योद्धा हथियारों को

शङ्खभेरीमृदङ्गानां बभूव तुमुलः स्वनः ॥१०॥

केचिदस्त्राणि संत्यज्य बाहुयुद्धमकुर्वत ।
तलैश्च चरणैश्चापि मुष्टिभिश्च द्रुमैरपि ॥११॥

जानुभिश्च हताः केचिद् भग्नदेहाश्च राक्षसाः ।
शिलाभिश्चूर्णिताः केचिद् वानरैर्युद्धदुर्मदैः ॥१२॥

वज्रदंष्ट्रोऽथ तं दृष्ट्वा रणे वित्रासयन् हरीन् ।
चचार लोकसंहारे पाशहस्त इवान्तकः ॥१३॥

शरैर्विदारयामास कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ।
बिभेद वानरांस्तत्र सप्ताष्टौ नव पञ्च च ॥१४॥

ततो हरिगणान् भग्नान् दृष्ट्वा वालिसुतस्तदा ।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तम् उदीक्षन्तमुदैक्षत ॥१५॥

छोड़कर बाहु-युद्ध कर रहे थे। वे थप्पड़ों से, लातों से, घूसों से और लट्ठों से लड़ रहे थे। युद्ध में मस्त वानरों ने कई राक्षसों के घुटने तोड़ दिए, कईयों के देह काट डाले, और कईयों को पत्थरों से चूर-चूर कर दिया।

वज्रदंष्ट्र ने जब ऐसी स्थिति देखी, तो रण में डट गया और वानरों को भयभीत करता हुआ फन्दा हाथ में लिए मौत के समान सर्वसंहार करने में विचरने लगा। उसने सीधी मार करने वाले कङ्कपत्र बाणों से वानरों को काट गिराया, यहां तक कि एक ही बाण से एक साथ सात २, आठ २, नौ २, पांच २ वानरों को बींध दिया।

तब अंगद ने जब यह देखा कि वानर लोग गिराए जा रहे हैं, तो उसने क्रोधपूर्वक वज्रदंष्ट्र की आंख से आंख मिलाई

वज्रदंष्ट्रो ऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम् ।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥१६॥
चित्रांश्च रुचिरान् मार्गांश्चेरतुः कपिराक्षसौ ।
जघ्नतुश्च तदाऽन्योन्यं नर्दन्तौ जयकाङ्क्षिणौ ॥१७॥
व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ।
युध्यमानौ परिश्रान्तौ जानुभ्यामवनीं गतौ ॥१८॥
निमेषान्तरमात्रेण अङ्गदः कपिकुञ्जरः ।
उदतिष्ठत दीप्ताक्षो दण्डाहत इवोरगः ॥१९॥
निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः ।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य वालिसूनुर्महाबलः ॥२०॥
रुधिरोक्षितगात्रस्य बभूव पतितं द्विधा ।

और वज्रदंष्ट्र तथा अंगद दोनों परस्पर में युद्ध करने लगे। पूरे क्रोध में भर कर उन दोनों का वह युद्ध ऐसा चला कि मानो शेर और मदमत्त हाथी परस्पर में लड़ रहे हों। दोनों तरह २ की बढ़िया पैंतरेबाजियां खेल रहे थे, और विजय की इच्छा से गर्जते हुए एक-दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। प्रहार से जगह २ उन दोनों के जो घाव हो गए थे, उनसे वे ऐसे दीख पड़ रहे थे कि मानो टेसु के पेड़ खिले हुए हों। लड़ते २ जब दोनों थक गए तो घुटने टेक कर भूमि पर बैठ गए।

थोड़ी ही देर में वानरश्रेष्ठ अंगद दण्ड-ताड़ित सांप के समान प्रदीप्त नेत्र किए उठ खड़ा हुआ और महाबली उस वालि-पुत्र ने चमचमाती पैनी तलवार से वज्रदंष्ट्र का सिर काट डाला। तब उसके शरीर में से खून बह रहा था, आंखें बाहर निकल आयी थी, और वह सुन्दर सिर तलवार से कट कर धड़-सिर दो टुकड़े

तच्च तस्य परीताक्षं शुभं खड्गहतं शिरः ॥२१॥
वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः ।
त्रस्ता ह्यभ्यद्रवंल्लङ्कां वध्यमानाः प्लवङ्गमैः ।
विषण्णवदना दीना ह्रिया किंचिदवाङ्मुखाः ॥२२॥

सर्ग ३०

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा वालिपुत्रेण रावणः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥१॥
शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्र-कोविदम् ॥२॥
एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधि सत्तमः ।
भूतिकामश्च मे नित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥३॥

हो भूमि पर गिर पड़ा ।

एवं, वज्रदंष्ट्र को मरा हुआ देखकर राक्षस लोग मारे भय के विमूढ़ बन गए और वानरों से पिटते २, डर कर लंका के अन्दर जा पहुँचे। उस समय उनका चेहरा उतरा हुआ था, दीन हालत में थे, और लज्जा के मारे मुंह नीचे किए हुए थे ।

हनुमान् द्वारा राक्षस-सेनापति अकम्पन का बध

रावण ने जब सुना कि अंगद ने वज्रदंष्ट्र को मार दिया है, तो हाथ जोड़े उपस्थित सेनाध्यक्ष को हुक्म दिया— सब प्रकार के शस्त्रास्त्रों से निपुण अकम्पन के सेनापतित्व में दुर्जेय भीमविक्रमी राक्षस शीघ्र प्रस्थान करें। अकम्पन शत्रुसैन्य को मारने वाला और अपनी सेना की रक्षा करने वाला है। यह युद्ध में श्रेष्ठतम नेता है, नित्य मेरी बढ़ती चाहने वाला है, और सदैव समरप्रिय है। यह राम-लक्ष्मण और महाबली सुग्रीव को जीतेगा,

एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ।
वानरांश्चापरान् घोरान् हनिष्यति न संशयः ॥४॥
परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ।
बलं सम्प्रेरयामास तदा लघुपराक्रमः ॥५॥
ततो नानाप्रहरणा भीमाक्षा भीमदर्शनाः ।
निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥
रथमास्थाय विपुलं तप्तकाञ्चनभूषणम् ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वनमहास्वनः ॥७॥
राक्षसैः संवृतो घोरैस्तदा निर्यात्यकम्पनः ।
नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥८॥
तथा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसः सह राक्षसैः ।
बभूव सुमहान्नादः क्षोभयन्निव सागरम् ॥९॥

तथा दूसरे भयानक वानरों को भी मारेगा, इसमें तनिक भी शक नहीं ।"

तब रावण की आज्ञा पाकर महाबली तथा पराक्रम में फुर्तीले सेनाध्यक्ष ने सेना को तुरन्त तैयार होने की आज्ञा दी। सेनाध्यक्ष की आज्ञा पाते ही तरह-तरह के हथियारों को लिये डरावने नेत्रों वाले भयंकर-मूर्ति प्रमुख राक्षस प्रस्थित हो गए। इस कूच में भयंकर राक्षसों के बीच में एक बड़े रथ पर सवार हो अकम्पन चल रहा था। उसने चमकदार सोने के कुण्डल पहिन रखे थे, डीलडौल मेघ के समान विशाल था, उसी तरह का कृष्णवर्ण था और उसी तरह की घोर गर्जना थी। महायुद्ध में उस अकम्पन को देव लोग भी कंपायमान नहीं कर सकते थे।

जब अकम्पन राक्षसों के साथ युद्ध में निकला तो ऐसा

तेन शब्देन वित्रस्ता वानराणां महाचमूः ।
द्रुमशैलप्रहाराणां योद्धुं समुपतिष्ठताम् ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ।
मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥११॥
ते तु वृक्षैर्महावीरा राक्षसानां चमूमुखे ।
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुङ्गवाः ॥१२॥
तद् दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
क्रोधमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥१३॥
क्रोधमूर्च्छितरूपस्तु धुन्वन्परमकार्मुकम् ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥
तत्रैव तावत्त्वरितो रथं प्रापय सारथे ।
एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून् राक्षसान् रणे ॥१५॥

महानाद गूंजा कि उसने समुद्र को भी खलबला दिया, और उससे युद्ध के लिये समुपस्थित लट्ठ-पत्थर हथियारों को लिये हुए वानरों की बड़ी सेना डर गई। इतने में कुमुद, नल और मैन्द ये वीर वानर क्रोध में भरकर बड़ी तेजी से आगे बढ़े। उन वानरश्रेष्ठ महावीरों ने विना विशेष परिश्रम के सेना के अग्रभाग में स्थित राक्षसों का कचूमर निकाल दिया।

अकम्पन ने जब युद्ध में वानरश्रेष्ठों के इस बढ़े-चढ़े हत्या-कर्म को देखा, तो उसका क्रोध का पारा चढ़ गया। क्रोध से विकराल-मूर्ति अकम्पन ने बड़े धनुष को धुना और दुश्मनों के कर्म को देखकर सारथि से कहा—"सारथि ! वहीं जल्दी से रथ ले चलो, ये बलवान् वानर युद्ध में राक्षसों को बहुत ज्यादा मार रहे हैं। ये मेरे सामने लट्ठ-पत्थर-हथियारों को लिये जो वानर

एते च बलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः ।
द्रुमशैलप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुखे मम ॥१६॥
एतान्निहन्तुमिच्छामि समरश्लाघिनो ह्यहम् ।
एतैः प्रमथितं सर्वं रक्षसां दृश्यते बलम् ॥१७॥
ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनां वरः ।
हरीनभ्यपतद् दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥१८॥
न स्थातुं वानराः शेकुः किं पुनर्योद्धुमाहवे ।
अकम्पनशरैर्भग्नाः सर्वे एवाभिदुद्रुवुः ॥१९॥
तान् मृत्युवशमापन्नान् अकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमान् ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥२०॥
तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
समेत्य समरे वीराः सहिताः पर्यवारयन् ॥२१॥

खड़े हैं, वे बड़े बलवान् हैं और भयंकर क्रोध में भरे पड़े हैं। मैं इन युद्धाभिलाषियों को मारना चाहता हूं। इन्होंने राक्षसों की सम्पूर्ण सेना मथ डाली है।"

तब सारथि ने रथ को हांका, और रथीश्रेष्ठ अकंपन दूर से ही शर-जालों से बानरों को गिराने लगा। बानर लोग अकम्पन के बाणों से बिंधे हुए युद्ध में ठहर नहीं सके, लड़ना तो अलग रहा और सब के सब भाग गए।

महाबली हनुमान ने जब यह देखा कि अकम्पन के शरों से बिंधे साथी मौत के मुंह में पड़ गए हैं, तो वह वहां पहुँचा। उन श्रेष्ठ वानरों ने युद्ध में आये हनुमान् को जब देखा, तो वे सबके सब वीर वानर एकसाथ मिलकर उसको घेर कर खड़े हो गए। युद्ध में डटे हनुमान् को देख कर वानरश्रेष्ठों में विशेष

व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभाः ।
बभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥२२॥
अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥२३॥
अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्छरीरे पातितान्कपिः ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥२४॥
स प्रहस्य महातेजा हनूमान् मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥२५॥
तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च ॥२६॥
स चतुर्दशभिर्बाणैर्निशितैर्देहदारणैः ।
निर्बिभेद महावीर्यं हनूमन्तमकम्पनः ॥२७॥

बल आ गया, क्योंकि अब बलवान् हनुमान् उनके सहारे के लिए आ गया था।

अकम्पन ने पर्वत समान विशाल हनुमान् को डटा हुआ देखकर उस पर महेन्द्र के समान तीव्र शर-धारायें बरसानी प्रारंभ की। महाबली हनुमान् ने अपने पर गिरायी शर-धारायों की बिना परवाह किये अकम्पन के बध के लिए मन को पक्का किया। वह महातेजस्वी मारुत-पुत्र हनुमान् हंसा, और भूमि को कम्पायमान करता हुआ उस राक्षस पर टूटा।

वीर अकम्पन राक्षसों के लिये भयावह क्रोध-भरे हनुमान् को अपने ऊपर झपटता हुआ देखकर झल्लाया और गरजा। तब उसने देह को चीर देने वाले चौदह तीखे बाणों से महापराक्रमी हनुमान् को बींध दिया। उस समय वह धीर हनुमान् तीखी

स तथा विप्रकीर्णस्तु नाराचैः शितशक्तिभिः ।
हनूमान्ददृशे वीरः प्ररूढ इव सानुमान् ॥२८॥
विरराज महावीर्यो महाकायो महाबलः ।
पुष्पिताशोकसङ्काशो विधूम इव पावकः ॥२९॥
ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥३०॥
स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥३१॥
तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
व्यथिता राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव द्रुमाः ॥३२॥
त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्रासाद् वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥३३॥

शक्तियों सहित उन वाणों से विंधा हुआ ऐसा दीख पड़ता था कि मानो कोई वृक्षों से लदा पहाड़ हो। फिर, वह महावीर्य महाकाय महाबली हनुमान् फूले हुए अशोक वृक्ष के समान या धूएं रहित अग्नि के समान लाल अंगारा दीख पड़ता था। तब उसने बड़ी तेजी से एक वृक्ष उखाड़ कर राक्षस-सेनापति अकम्पन के सिर पर तुरन्त दे मारा, और वह राक्षस क्रोध-भरे महाबली वानरश्रेष्ठ हनुमान् द्वारा उस वृक्ष से प्रताड़ित होकर भूमि पर गिर पड़ा और मर गया।

राक्षसों ने जब देखा कि उनका सेनापति अकम्पन भूमि पर मरा पड़ा है, तो वे सब भूकम्प में वृक्षों की तरह कांप उठे, और पराजित हो वानरों से पीछा किए हुए हथियार फैंक मारे डर के लंका की ओर भाग निकले। वे पराजित होकर जब

ते मुक्तकेशाः सम्भ्रान्ता भग्नमानाः पराजिताः ।
भयाच्छ्रमजलैरङ्गैः प्रस्रवद्भिर्विदुद्रुवुः ॥३४॥
अन्योन्यं ते प्रमथ्नन्तो विविशुर्नगरं भयात् ।
पृष्ठतस्ते तु सम्मूढाः प्रेक्षमाणा मुहुर्मुहुः ॥३५॥
तेषु लङ्कां प्रविष्टेषु राक्षसेषु महाबलाः ।
समेत्य हरयः सर्वे हनूमन्तमपूजयन् ॥३६॥
सोऽपि प्रवृद्धस्तान्सर्वान् हरीन्संप्रत्यपूजयत् ।
हनूमान् सत्त्वसम्पन्नो यथार्हमनुकूलतः ॥३७॥

सर्ग ३१

अकम्पनवधं श्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किंचिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥१॥

भागे तो उनके केश खुले हुए थे, घबराए हुए थे, मान जाता रहा था, और पसीना भय के कारण अंगों से बह रहा था। वे भागते हुए जब लंका पहुंचे तो मार्ग में एक-दूसरे से टकरा रहे थे और घबरा कर बार २ पीछे मुड़ कर देख रहे थे कि कहीं शत्रु पीछा तो नहीं कर रहे।

इसप्रकार राक्षसों के लंका पहुंच जाने पर वे सब महाबली वानर इकठ्ठे हुए और हनुमान् की प्रशंसा करने लगे। उत्तर में बलसंपन्न हनुमान ने भी प्रसन्न होकर यथायोग्य उचित रीति से उन सब वानरों की सराहना की कि आप लोगों की सहायता से ही यह सफलता प्राप्त हुई है।

युद्ध में सेनापति प्रहस्त का प्रस्थान

अकम्पन के बध का समाचार सुनकर रावण को गुस्सा भी आया और कुछ चेहरा भी उतरा और मंत्रियों की ओर देखने

स तु ध्यात्वा मुहूर्तं तु मन्त्रिभिः संविचार्य च ।
ततस्तु रावणः पूर्व-दिवसे राक्षसाधिपः ।
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान् गुल्मानवेक्षितुम् ॥२॥
तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ।
ददर्श नगरीं राजा पताकाध्वजमालिनीम् ॥३॥
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥४॥
पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य च ।
नान्यं युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारदाः ॥५॥
अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥६॥
सत्त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।

लगा। उसने थोड़ी देर कुछ सोचा. और फिर मंत्रियों से विचार कर शुरु दिन में समस्त मोर्चों को देखने के लिए लंका में घूमा। इसप्रकार घूमते हुए उसने झण्डे-झण्डियों से सुशोभित नगरी को देखा कि वह राक्षसगणों से सुरक्षित है और अनेक मोर्चों से युक्त है। तदनन्तर, राक्षसराज रावण ने शत्रुओं द्वारा घिरी नगरी को देखकर आपत्काल में अपने हितकारी युद्धविशारद प्रहस्त को कहा—

"ऐ युद्धविशारद ! शत्रु नगरी के अतिसमीप घेरा डाले पड़ा है, और इसलिए वह बलपूर्वक नगरी को सता रहा है। मैं किसी दूसरे को युद्ध में भेजकर इस घेरे को नहीं तोड़ सकता, अपितु मैं, या कुम्भकर्ण, या मेरे सेनापति तुम, या इन्द्रजित, या निकुम्भ ही ऐसे कठिन भार को उठा सकते हैं। इसलिए तुम

विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥७॥
निर्याणादेव तूर्णं च चलिता हरिवाहिनी ।
नर्दतां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्वा नादं द्रविष्यति ॥८॥
चपला ह्यविनीताश्च चलचित्ताश्च वानराः ।
न सहिष्यन्ति ते नादं सिंहनादमिव द्विपाः ॥९॥
विद्रुते च बले तस्मिन् रामः सौमित्रिणा सह ।
अवशस्तु निरालम्बः प्रहस्तवशमेष्यति ॥१०॥
आपत्संशयिता श्रेयो नात्र निःसंशयीकृता ।
प्रतिलोमानुलोमं मा यत्तु नो मन्यसे हितम् ॥११॥
रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदम् असुरेन्द्रमिवोशना ॥१२॥

शीघ्र सामर्थ्यशाली सैन्य को लेकर विजय-लाभ के लिए वानरों के मुकावले के लिए पहुंचो । तुम्हारे पहुंचते ही वानर-सेना तुरन्त उखड़ जावेगी और राक्षसवीरों की सिंह-गर्जना को सुनकर भाग निकलेगी । वानर बड़े चपल हैं, अशिक्षित हैं और अव्यवस्थित-चित्त हैं, वे तुम्हारे नाद को नहीं झेल सकेंगे, जैसे कि सिंह के नाद को हाथी नहीं झेल सकते । तब प्रहस्त ! उस वानर-सेना के भाग जाने पर राम लक्ष्मणसहित प्रभुत्वहीन व निराश्रित होकर तुम्हारे वश में आ जावेगा । इस विषय में मृत्यु का संदेहयुक्त रखना अच्छा है, परन्तु उसका संदेहरहित कर देना अच्छा नहीं । (क्योंकि युद्ध करने पर मृत्यु से बचा भी जा सकता है, परन्तु युद्ध न करने पर मृत्यु अवश्यम्भावी है) । अब तुम, जो हितकारी बात समझते हो, भले ही मेरे प्रतिकूल हो या अनुकूल, वह मुझे कहो ।"

रावण द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर सेनापति प्रहस्त

राजन् मन्त्रितपूर्वं नः कुशलैः सह मन्त्रिभिः ।
विवादश्चापि नो वृत्तः समवेद्य परस्परम् ॥१३॥
प्रदानेन तु सीतायाः श्रेयो व्यवसितं मया ।
अप्रदाने पुनर्युद्धं दृष्टमेव तथैव नः ॥१४॥
सोऽहं दानैश्च मानैश्च सततं पूजितस्त्वया ।
सान्त्वैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां हितं तव ॥१५॥
नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च ।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥१६॥
एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ।

उत्तर में राक्षसराज रावण से इस प्रकार बोला जैसे कि उशनस् ने असुर राजा को उत्तर दिया था—

"राजन् ! पहले हम सब कुशल मंत्रियों ने प्रस्तुत विषय पर विचार किया था, परन्तु परस्पर के विचारों को देख कर हमारे में विवाद उठ खड़ा हुआ था। उस समय मैंने अपना निश्चित मत प्रकट किया था कि सीता को दे देना श्रेयस्कर है, और यदि न दी गयी तो युद्ध अवश्य होगा। सो हमने अब वैसा ही देख लिया। पर फिर भी क्योंकि आपने समय २ पर धनादि दानों और मानों से मेरा निरन्तर सत्कार किया है, तथा अनेक प्रकार से सान्त्वनायें प्रदान करके मेरा धैर्य बंधाया है, अतः आप पर आपत्काल आने पर अब मैं आप का क्या हित न करूंगा ? संप्रति मुझे न अपने जीवन की चिन्ता है और न पुत्र-स्त्री-धनों की फिक्र है। अब आप देखेंगे कि मैं युद्ध में आपके लिये अपने जीवन की कैसे आहुति देता हूं।"

सेनापति प्रहस्त ने राजा रावण को इसप्रकार कह कर

उवाचेदं बलाध्यक्षान् प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥१७॥
समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महाबलम् ।
मद्बाणानां तु वेगेन हतानां तु रणाजिरे ।
अद्य तृप्यन्तु मांसादाः पक्षिणः काननौकसः ॥१८॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षा महाबलाः ।
बलमुद्योजयामासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे ॥१९॥
सा बभूव मुहूर्तेन भीमैर्नानाविधायुधैः ।
लङ्का राक्षसैर्वीरैस्तैर्गजैरिव समाकुला ॥२०॥
अथामन्त्र्य तु राजानं भेरीमाहत्य भैरवाम्
आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् ॥२१॥
ततस्तं रथमास्थाय रावणार्पितशासनः ।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महता वृतः ॥२२॥

सामने उपस्थित सेनाध्यक्षों को कहा—"मेरी राक्षसों की बड़ी सेना तय्यार कीजिए, युद्ध में मेरे बाणों की मार से मरे वानरों के मांस से जंगली मांसाहारी पक्षी आज तृप्त होंगे।" महाबली सेनाध्यक्षों ने प्रहस्त के उस आदेश को सुन कर तुरन्त राक्षस-नगरी में सेना के तय्यार होने की आज्ञा प्रचारित कर दी। तब थोड़ी ही देर में नानाविध आयुधों से युक्त भयंकर राक्षस वीरों से लंका नगरी इसप्रकार भर गयी, मानो कि हाथियों के झुण्ड के झुण्ड आ खड़े हों।

तब प्रहस्त ने राजा से विदा ले नगाड़े को जोरों से गुंजाया और तय्यार होकर सज्जित रथ पर सवार हो गया। एवं, रथ पर सवार हो रावण से आदिष्ट प्रहस्त बड़ी सेना को साथ लिए शीघ्र लंका से निकल पड़ा। सेनापति के प्रस्थान

ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
शुश्रुवे शङ्खशब्दश्च प्रयाते वाहिनीपतौ ॥२३॥
निनदन्तः स्वरान् घोरान् राक्षसा जग्मुरग्रतः ।
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसराः ॥२४॥
नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
प्रहस्तसचिवा ह्येते निर्ययुः परिवार्य तम् ॥२५॥
व्यूढेनैव सुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महता वृतः ॥२६॥

सर्ग ३२

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् ।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिन्दमः ॥१॥
क एष सुमहाकायो बलेन महता वृतः ।
आगच्छति महावेगः किं रूपबलपौरुषः ।

करने पर मेघ-गर्जन के समान नगाड़ों का महाघोष और शंखों का शब्द सुनाई देने लगा। प्रहस्त के पुरोगामी विशालकाय भयंकर राक्षस त्रासजनक रूप में गर्जते हुए प्रहस्त के आगे आगे चले, और नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत ये प्रहस्त के मंत्री उसके इर्दगिर्द प्रस्थित हुए। एवं, प्रहस्त उत्तमतया व्यूह रचना की हुई हस्तिदल-जैसी बड़ी सेना के साथ लंका के द्वार से बाहर निकला।

चारों सचिवों सहित प्रहस्त का मारा जाना

तब रण की तय्यारी करके लंका से बाहर निकले प्रहस्त को देखकर रिपुदमन राम ने हंसते हुए विभीषण से पूछा— "यह भारी भरकम शरीर वाला कौन बड़ी तेजी से बड़ी सेना

आचक्ष्व मे महाबाहो वीर्यवन्तं निशाचरम् ॥२॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥३॥
लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ।
वीर्यवान् अस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥४॥
ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
गर्जन्तं सुमहाकायं राक्षसैरभिसंवृतम् ॥५॥
ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ।
अभिसंजातघोषाणां प्रहस्तमभिगर्जताम् ॥६॥
तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवर्षं च वर्षताम् ॥७॥

को साथ में लेकर आ रहा है, और इसका बल-पराक्रम कैसा है? महाबाहु ! मुझे बतलाओ तो सही यह कौन पराक्रमी राक्षस है ?"

राम के इस वचन को सुनकर विभीषण ने उत्तर दिया—"भगवन् ! यह रावण का सेनापति प्रहस्त नामक राक्षस है। लंका में राक्षस-राजा की जितनी सेना है, उसका तिहाई भाग इसके साथ है। यह वीर्यवान् है, अस्त्रवित् है, शूर है, और इसका पराक्रम प्रसिद्ध है।"

तब जब अत्यन्त बलवान् वानरों की सेना ने राक्षसों के साथ गर्ज कर युद्ध में उतरते हुए विशालकाय भीमपराक्रमी तथा भयंकरमूर्ति प्रहस्त को देखा, तो वे वानर लोग जयनाद गुंजाने लगे और प्रहस्त को अभिमुख करके गर्जने लगे। इतने में वानर और राक्षस एक-दूसरे से भिड़ गए, खूब जोरों से एक दूसरे पर पत्थरों और बाणों की वर्षा होने लगी, और एवं, इनमें महायुद्ध

बहवो राक्षसा युद्धे बहून् वानरपुङ्गवान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥८॥
वानरा राक्षसाः क्रुद्धाः वीरमार्गमनुव्रताः ।
विवृत्तवदनाः क्रूराश्चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥९॥
नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः ॥१०॥
तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृङ्गेण जघानैकं नरान्तकम् ॥११॥
दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः स विपुलद्रुमम् ।
राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥१२॥
जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसि ॥१३॥

छिड़ गया। युद्ध में अनेक राक्षसों ने अनेक श्रेष्ठ वानरों को, तथा अनेक वानरों ने अनेक राक्षसों को मार गिराया। एवं, वानर और राक्षस क्रोध में भर कर वीर-मार्ग (युद्ध में पीठ न दिखाना) के अनुव्रती बन रहे थे, और शरीरों को फुला कर निडर के समान क्रूर कर्म कर रहे थे। नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद, और समुन्नत, ये चारों प्रहस्त के सचिव वानरों को मारते चले जा रहे थे।

जब वानरों ने देखा कि ये राक्षस-सचिव तो उन पर टूट २ कर उन्हें शीघ्र मारते चले आ रहे हैं, तो द्विविद ने उनमें से नरान्तक को भारी शिला से मार डाला। इतने में दुर्मुख वानर ने एक बड़े भारी लट्ठ को उठा कर फुर्ती से समुन्नत राक्षस को पीस डाला। अत्यन्त प्रकुपित तेजस्वी जाम्बवान् ने बड़ी

अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
वृक्षेण महता सद्यः प्राणान् संत्याजयद्रणे ॥१४॥
अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमाश्रितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥१५॥
आवर्त इव संजज्ञे सेनयोरुभयोस्तदा ।
क्षुभितस्याप्रमेयस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥१६॥
महता हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः ।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान् परमाहवे ॥१७॥
वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥१८॥
सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना सम्प्रकाशते ।
संच्छन्ना माधवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥१९॥

भारी शिला लेकर महानाद की छाती पर दे मारी। और युद्ध में पराक्रमी कुम्भहनु तार को पाकर उससे जा भिड़ा कि उसने एक महावृक्ष से कुम्भहनु के प्राण एकदम निकाल दिए।

तब रथ पर सवार प्रहस्त वानरों के इस कर्म को देखकर झल्लाया, और हाथ में धनुष लेकर वानरों की तेजी से हत्या करने लगा। तब दोनों ओर की सेनायों में इस प्रकार का उबाल उठा कि मानो खलबलाए हुए अपार समुद्र का गर्जन हो रहा हो। उस महायुद्ध में क्रोध में भर कर मदोन्मत्त प्रहस्त बाण-वृष्टि से वानरों को मारने लगा। तब वानरों और राक्षसों की लाशों से पटी रणभूमि ऐसी भयंकर दीख पड़ने लगी, मानो कि पर्वत टूट टूट कर गिरे पड़े हों। एवं, खून की धारायों से ढकी वह रणभूमि उस समय ऐसी मालूम पड़ती थी, मानो कि चैत्र मास में खिले

ततः सृजन्तं बाणौघान् प्रहस्तं स्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवङ्गमान् ॥२०॥
उद्धूत इव वायुः खे महदभ्रबलं बलात् ।
समीक्ष्याभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ॥२१॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ।
नीलाय व्यसृजद्बाणान् प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥२२॥
ते प्रेत्य विशिखा नीलं विनिर्भिद्य समाहिताः ।
महीं जग्मुर्महावेगा रोषिता इव पन्नगाः ॥२३॥
नीलः शरैरभिहतो निशितैर्ज्वलनोपमैः ॥२४॥

पलाशों से लाल सुर्ख हो गयी हो ।

इतने में नील ने तीखी नजर से देखा कि प्रहस्त रथ पर सवार होकर बाण-वृष्टि करता जा रहा है और वानरों को मार गिरा रहा है। इस पर सेनापति प्रहस्त यह देखकर कि जैसे आकाश में उठी तेज हवा भारी मेघ-घटा को बड़ी जोर से ले उड़ता है, उसी प्रकार क्रोधरूपी हवा द्वारा नील रूपी मेघ उसकी ओर युद्ध रूपी आकाश में भागा चला आ रहा है, तो वह सूर्य-समान चमकीले रथ से नील पर झपटा, और फिर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ प्रहस्त सेनापति ने महायुद्ध में धनुष को जोरों से खींच कर नील पर बाण फैंकने शुरु किए। वे बाण नील तक पहुँचते, उसे ठीक ढंग से चीरते और फिर बड़े वेग से भूमि में जा घुसते, जैसे कि क्रुद्ध सांप दुश्मनों को काट कर अपनी बिलों में जा घुसते हैं।

नील अग्नि-समान चमकने वाले तीखे बाणों से बिंध

स तं परमदुर्धर्षमापतन्तं महाकपिः ।
प्रहस्तं ताडयामास वृक्षमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥२५॥

स तेनाभिहतः क्रुद्धो नर्दन् राक्षसपुङ्गवः ।
ववर्ष शरवर्षाणि प्लवङ्गानां चमूपतौ ॥२६॥

तस्य बाणगणानेव राक्षसस्य दुरात्मनः ।
अपारयन्वारयितुं प्रत्यगृह्णान्निमीलितः ।
यथैव गोवृषो वर्षं शारदं शीघ्रमागतम् ॥२७॥

रोषितः शरवर्षेण सालेन महता महान् ।
प्रजघान हयान्नीलः प्रहस्तस्य महाबलः ॥२८॥

ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः ।
बभञ्ज तरसा नीलो ननाद च पुनःपुनः ॥२९॥

विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।

गया। तब उस पराक्रमी वानर-सेनापति ने एक वृक्ष उखाड़ा और अपने ऊपर टूटते हुए परम दुर्धर्ष प्रहस्त पर दे मारा। उस से प्रताड़ित राक्षसश्रेष्ठ ने गुस्से में भर कर गर्जना करते हुए वानर सेनापति पर बाणों की झड़ी लगा दी। दुरात्मा राक्षस के इस प्रकार झड़ी के रूप में आते हुए बाणों को रोकने में असमर्थ नील ने उन्हें आंखें मूंद कर उसीप्रकार अपने ऊपर झेला जैसे कि एकदम आयी हुई शरद् ऋतु की वर्षा को सांढ झेला करता है। एवं, उस शरवृष्टि से प्रकोपित महाबली महासेनापति नील ने एक बड़े साल से प्रहस्त के घोड़ों को मार गिराया, और फिर गुस्से में भर कर दुरात्मा के धनुष को झट से तोड़ डाला और बार २ गर्जने लगा।

इसप्रकार नील ने राक्षस-सेनापति प्रहस्त को जब धनुष-

प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥३०॥
तावुभौ वाहिनीमुख्यौ जातवैरौ तरस्विनौ ।
स्थितौ क्षतजसिक्ताङ्गौ प्रभग्नाविव कुञ्जरौ ॥३१॥
उल्लिखन्तौ सुतीक्ष्णाभिर्दंष्ट्राभिरितरेतरम् ।
सिंहशार्दूलसदृशौ सिंहशार्दूलचेष्टितौ ॥ ३॥
विक्रान्तविजयौ वीरौ समरेष्वनिवर्तिनौ ।
काङ्क्षमाणौ यशः प्राप्तुं वृत्रवासवयोरिव ॥३३॥
आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ।
प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥३४॥
ततः शोणितदिग्धाङ्गः प्रगृह्य च महातरुम् ।
प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥३५॥
तमचिन्त्य प्रहारं स प्रगृह्य च महातरुम् ।

रहित कर दिया, तो वह भयानक मुसल को लेकर रथ से नीचे कूद पड़ा। उस समय एक-दूसरे के दुश्मन वे दोनों वेगशाली सेनापति परस्पर में लड़ते २ घायल हाथियों के समान लहु-लुहान हुए खड़े थे, और ऐसा दीख पड़ता था कि सिंह-शार्दूल समान वे दोनों वीर सिंह-शार्दूल समान लड़ते २ अत्यन्त तीखी दाढों से एक-दूसरे को चबा डालेंगे। वे दोनों विक्रमी व विजयी वीर युद्ध से न हटने वाले थे, और वृत्रासुर तथा इन्द्र के समान युद्ध में विजयी बनकर यश पाने की आकांक्षा में लगे हुए थे।

इतने में प्रहस्त ने पूरे बल के साथ नील के माथे पर मुसल से प्रहार किया, और खून बहने लगा। तब महाकपि खून से लथपथ हो गुस्से में भरा, और महावृक्ष ले प्रहस्त की छाती पर दे मारा। परन्तु प्रहस्त ने उस प्रहार को कुछ भी न समझ कर

प्रहस्तस्योरसि क्रुद्धो विससर्ज महाकपिः ॥३६॥
तमचिन्त्य प्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् ।
अभिदुद्राव बलिनं बलान्नीलं प्लवङ्गमम् ॥३७॥
तमुग्रवेगं संरब्धमापतन्तं महाकपिः ।
ततः संप्रेक्ष्य जग्राह महावेगो महाशिलाम् ॥३८॥
तस्य युद्धाभिकामस्य मृधे मुसलयोधिनः ।
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥३९॥
नीलेन कपिमुख्येन विमुक्ता महती शिला ।
बिभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥ ०॥
स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
पपात सहसा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥४१॥
विभिन्नशिरसस्तस्य बहु सुस्राव शोणितम् ।

एक बड़ा मुसल पकड़ा, और बलपूर्वक बली नील वानर पर झपटा।

अत्यन्त फुर्तीले वानर-सेनापति ने जब यह देखा कि प्रहस्त क्रोध में भर कर बड़ी तेजी से उस पर झपट रहा है तो उसने एक बड़ी भारी शिला उठाई, और इससे पूर्व कि वह उस पर मूसल का प्रहार कर सके झट युद्ध केलिए उतारू मूसलयोधी प्रहस्त के सिर पर दे मारी। एवं, वानर-सेनापति ने जब वह भारी शिला प्रहस्त पर फैंकी, तो उसने उसके सिर के चिथड़े २ कर दिए, और वह निर्जीव, कान्तिविहीन, बलहीन तथा निश्चेष्ट होकर जड़-कटे वृक्ष की तरह एकदम भूमि पर गिर पड़ा। उसके छिदे सिर से बहुत खून बहा, और शरीर से भी ऐसा खून बहा कि मानो पहाड़ पर से झरना बहा चला आ रहा हो।

शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्रवणो यथा ।४२।
हते प्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम् ।
राक्षसानामहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥४३॥
न शेकुः समवस्थातुं निहते वाहिनीपतौ ।
सेतुबन्धं समासाद्य विशीर्णं सलिलं यथा ॥४४॥
हते तस्मिंश्चमूमुख्ये राक्षसास्ते निरुद्यमाः ।
रक्षःपतिगृहं गत्वा ध्यानमूकत्वमागताः ।
प्राप्ताः शोकार्णवं तीव्रं विसंज्ञा इव तेऽभवन् ॥४५॥

सर्ग ३३

स काञ्चनमयं दिव्यमाश्रित्य परमासनम् ।
विप्रेक्षमाणो रक्षांसि रावणो वाक्यमब्रवीत् ॥१॥
सर्वं तत्खलु मे मोघं यत्तप्तं परमं तपः ।

इसप्रकार नील द्वारा प्रहस्त के मारे जाने पर राक्षसों की कभी कंपायमान न होने वाली वह महासेना उदास हो लंका की ओर चल दी। जैसे बांध के टूट जाने पर जल नहीं ठहरता, वैसे सेनापति के मारे जाने पर सैनिक लोग नहीं ठहर सके। सेनापति प्रहस्त के मारे जाने पर राक्षस लोग उत्साहहीन हो गए और रावण के महल में पहुंच चुपचाप जा खड़े हुए है। वे तीव्र शोक-सागर में निमग्न हो चेतना-विहीन से बन रहे थे।

युद्ध के लिए कुम्भकर्ण को कहना

तब सोने के बने सुन्दर भद्रपीठ पर बैठे रावण ने जब उन राक्षसों को दुःखी दशा में देखा तो दुःख के साथ बोला—"हाय ! जो मैंने आत्म-बल के संपादन की पूरी तय्यारी कर रखी थी, वह सब व्यर्थ चली गयी, जबकि महेन्द्रसमान प्रभावशाली

यत्समानो महेन्द्रेण मानुषेण विनिर्जितः ॥२॥
समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ।
ज्ञात्वा रक्षो भीमबलम् आदिदेश महाबलः ॥३॥
द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ।
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥४॥
स हि संख्ये महाबाहुः ककुदं सर्वरक्षसाम् ।
वानरान् राजपुत्रौ च क्षिप्रमेव हनिष्यति ॥५॥
एष केतुः परं संख्ये मुख्यो वै सर्वरक्षसाम् ।
कुम्भकर्णः सदा शेते मूढो ग्राम्यसुखे रतः ॥६॥
रामेणाभिनिरस्तस्य संग्रामेऽस्मिन् सुदारुणे ।
भविष्यति न मे शोकः कुम्भकर्णे विबोधिते ॥७॥
किं करिष्याम्यहं तेन शक्रतुल्यबलेन हि ।

मुझ को साधारण मनुष्य ने जीत लिया।" फिर महाबली रावण ने युद्ध में अपने को पराजित तथा प्रहस्त को मारा गया देखकर महासैन्य को आदेश दिया—

"अच्छा, द्वारों पर पहरा बैठा कर और परकोटे पर चढ़ कर शत्रु से नगरी की रक्षा करो, और सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाओ। वह महाबाहु सब राक्षसों के मध्य में सर्वोच्च है, वह वानरों और राम-लक्ष्मण राजपुत्रों को शीघ्र ही मार देगा। यह कुम्भकर्ण युद्ध में उच्च झण्डे के समान अटल है और निश्चय से सब राक्षसों में प्रमुख है। पर यह मूढ़ स्त्री-पुत्र आदि में रमता हुआ सदा बेसुध ही पड़ा रहता है, राज्य की कुछ परवाह ही नहीं करता। कुम्भकर्ण के जाग जाने पर इस भयंकर संग्राम में मेरा, राम द्वारा पराजित का, शोक जाता रहेगा। मैं इन्द्र-

ईदृशे व्यसने घोरे यो न साह्याय कल्पते ॥८॥
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
जग्मुः परमसम्भ्रान्ताः कुम्भकर्णनिवेशनम् ॥९॥
शिरोभिश्च प्रणम्यैनं सर्वतः पर्यवारयन् ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचू रावणचोदिताः ॥१०॥
द्रष्टुं त्वां काङ्क्षते राजा सर्वराक्षसपुङ्गवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं सम्प्रहर्षय ॥११॥
कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥१२॥
स तु राक्षसशार्दूलो निद्रामदसमाकुलः ।
राजमार्गं श्रिया जुष्टं ययौ विपुलविक्रमः ॥१३॥

समान अत्यन्त बलवान् कुम्भकर्ण से क्या करूंगा, यदि वह ऐसी भयंकर आपत् में भी मेरी सहायता के लिए कटिबद्ध नहीं होता।"

वे राक्षस लोग राक्षसराज रावण के इस आदेश को सुन कर बड़ी जल्दी से कुम्भकर्ण के महल में पहुंचे और सिर झुका कर प्रणाम करके चारों ओर खड़े हो रावण की आज्ञानुसार कुम्भकर्ण से बोले—"सब राक्षसों में श्रेष्ठ राजा आपके दर्शन करना चाहते हैं, कृपया पधारिए और भाई को हर्ष प्रदान कीजिए।"

दुर्जेय महाबली कुम्भकर्ण भाई के आदेश को पाकर 'बहुत अच्छा' कह कर पलंग पर से उठ खड़ा हुआ, और नींद जैसी मस्ती में झूमता हुआ महापराक्रमी राक्षस-शार्दूल शोभायमान राजमार्ग पर चल दिया। वह दुर्जेय कुम्भकर्ण जब इसप्रकार

राक्षसानां सहस्रैश्च वृतः परमदुर्जयः ।
गृहेभ्यः पुष्पवर्षेण कीर्यमाणस्तदा ययौ ॥१४॥

स हेमजालविततं भानुभास्वरदर्शनम् ।
ददर्श विपुलं रम्यं राक्षसेन्द्रनिवेशनम् ॥१५॥

सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम ॥१६॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥१७॥

अथासीनस्य पर्यङ्के कुम्भकर्णो महाबलः ।
भ्रातुर्ववन्दे चरणौ किं कृत्यमिति चाब्रवीत् ॥१८॥

पुनः समुदितोत्पत्य रावणः परिषस्वजे ॥१९॥
स भ्रात्रा सम्परिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ।

जा रहा था तो कई वीर राक्षस उसके साथ में थे और पुरवासी लोग घरों पर से उस पर फूल बरसा रहे थे। रास्ता तै करने के बाद कुम्भकर्ण सुवर्ण-जालियों से विस्तृत, सूर्यसमान देदीप्यमान, तथा विशाल रमणीक राजमहल में पहुंच गया। भाई के महल में पहुंच और ड्योढ़ी को पार कर उसने देखा कि उसका बड़ा भाई घबराया हुआ पुष्पक विमान पर बैठा है।

रावण ने जब आते हुए कुम्भकर्ण को देखा, तो खुश होकर जल्दी से उठा और उसे अपने पास लिवा लाया। उसके बाद रावण पलंग पर बैठ गया और महाबली कुम्भकर्ण भाई की पाद-वन्दना करके बोला—"कहिए, क्या कार्य है ?" इस पर रावण परम प्रसन्न होकर फिर उठा, और कुम्भकर्ण का आलिंगन किया। एवं, भाई द्वारा गले लगाये जाने तथा यथाविधि अभिनन्दित

कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥२०॥
स तदासनमाश्रित्य कुम्भकर्णो महाबलः ।
संरक्तनयनः क्रोधाद्रावणं वाक्यमब्रवीत् ॥२१॥
किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन् प्रबोधितः ।
शंस कस्माद्भयं तेऽत्र को वा प्रेतो भविष्यति ॥२२॥
भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवस्थितम् ।
रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥२३॥
अयं ते सुमहान् कालः शयानस्य महाबल ।
सुषुप्तस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥२४॥
एष दाशरथिः श्रीमान् सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं लङ्घयित्वा तु कुलं नः परिकृन्तति ॥२५॥
हन्त पश्यस्व लङ्कायां वनान्युपवनानि च ।

किये जाने के बाद कुम्भकर्ण ने सुन्दर तथा कीमती बढ़िया आसन प्राप्त किया। वह महाबली उस आसन पर बैठ गया और क्रोध से लाल सुर्ख आंखें करके रावण से बोला—"राजन्! आपने मुझे आदर पूर्वक क्यों याद किया है? बतलाइए, आपको किससे भय पैदा हो गया है और कौन मेरे से मौत के मुंह में जावेगा?"

इसप्रकार रावण ने जब भाई को गुस्से में भरा हुआ देखा तो क्रोध के साथ नेत्रों को घुमा कर बोला—"महाबली! तुम्हें बेसुध पड़े हुए इतना काल बीत गया, पर बेसुध तुम को यह भी पता नहीं कि मुझे राम से भय पैदा हुआ २ है? यह कान्तिमान् बली दशरथ-पुत्र सुग्रीव सहित समुद्र को पार करके हमारे कुल का नाश कर रहा है। हाय! देखो, इसने पुल द्वारा आराम से

सेतुना सुखमागत्य वानरैकार्णवं कृतम् ॥२६॥
ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ।
वानराणां क्षयं युद्धे न पश्यामि कथंचन ॥२७॥

तदेतद् भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल ।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥२८॥

सर्वक्षपितकोशं च स त्वमभ्युपपद्य माम् ।
त्रायस्वेमां पुरीं लङ्कां बालवृद्धावशेषिताम् ॥२९॥
भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
मयैवं नोक्तपूर्वो हि भ्राता कश्चित्परन्तप ॥३०॥

त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे ।
देवासुरेषु युद्धेषु बहुशो राक्षसर्षभ ।

इधर आकर लंका के वनों-उपवनों को वानरी सेना का एक विशाल समुद्र बना रखा है। जो हमारे मुख्यतम राक्षस थे, उन्हें वानरों ने युद्ध में मार डाला है, परन्तु युद्ध में वानरों का कुछ भी क्षय मुझे दृष्टिगोचर नहीं हो रहा। महाबली ! बस यह भय पैदा हो गया, इस समय आप इस भय से बचायें। आप इन शत्रुयों का शीघ्र नाश करें, इसीलिए मैंने आपको याद किया है। भाई ! मेरा समस्त खजाना नष्ट हो चुका है, सो आप मेरे पर अनुग्रह कर इस लंकापुरी को बचाइए जिसमें कि अब बालक और बृद्ध ही बचे हुए हैं। महाबाहु ! भाई के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य कीजिए। परन्तप ! मैं आज तक कभी पहले किसी भाई के सामने इसप्रकार नहीं गिड़गिड़ाया। भाई ! आपके प्रति मेरा स्नेह है, और आप द्वारा कार्यसिद्धि की संभावना भी मैं समझता हूं, क्योंकि राक्षसवीर ! आपने देवासुर संग्रामों में

त्वया देवाः प्रतिव्यूह्य निर्जिताश्चामरा युधि ॥३१॥
तदेतत्सर्वमातिष्ठ वीर्यं भीमपराक्रम ।
नहि ते सर्वभूतेषु दृश्यते सदृशो बली ॥३२॥

सर्ग ३४

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ;
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥१॥
दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरा मन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥२॥
शीघ्रं खल्वभ्युपेतं त्वां फलं पापस्य कर्मणः ।
निरयेष्वेव पतनं यथा दुष्कृतकर्मणः ॥३॥
प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥४॥

अनेक वार देवों और असुरों को, मुकाबले की व्यूह रचना करके, जीता है। इसलिए, भीमपराक्रमी! संप्रति आप उस समस्त पराक्रम में आरूढ़ हूजिए, सब लोगों में आप-जैसा बली दूसरा कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।"

कुम्भकर्ण और रावण की बातचीत

रावण के उस विलाप को सुनकर कुम्भकर्ण हंसा और बोला—"हमने पहले विचार-विमर्श करते समय जो खराबी देखी थी, सो हितैषियों के उस निश्चय को न मानकर आपने वह खराबी पा ली। जैसे बुरे काम करने वाले का नरक में गिरना अवश्यंभावी होता है, वैसे पापकर्म का फल आपको शीघ्र ही मिल गया। महाराज! आपने इस पापकर्म को पहले नहीं सोचा, सिर्फ सामर्थ्य के घमण्ड में आकर उसके परिणाम को नहीं

य: पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थित: ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥५॥
देशकालविहीनानि कर्माणि विपरीतवत् ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥६॥
त्रयाणां पञ्चधा योगं कर्मणां य: प्रपद्यते ।
सचिवै: समयं कृत्वा स सम्यग्वर्तते पथि ॥७॥
यथागमं च यो राजा समयं च चिकीर्षति ।
बुध्यते सचिवैर्बुद्धया सुहृदश्चानुपश्यति ॥८॥

विचारा। जो मनुष्य राज-पद पर आरूढ़ होकर पहले किए जाने वाले कर्मों को पीछे, और पीछे किए जाने वाले कर्मों को पहले करता है, वह क्या नीति है और क्या अनीति है इसे नहीं जानता। जैसे कर्त्ता या कर्म का दुष्टता से युक्त यज्ञाग्नियों में डाली गयी हवियें यज्ञकर्ता के लिए अनिष्टकारी होती हैं, वैसे वर्तमान देश-काल का ख्याल न करके विभिन्न देश-काल में किए जाने वाले कर्म करने से वे कर्म कर्ता का अनिष्ट करते हैं।

जो राजा उत्तम-मध्यम-अधम या संधि-विग्रह-तटस्थता, इन तीन प्रकार के कर्मों के प्रयोग का, पांच विषयों में (कार्यारम्भ के उपाय, स्वकीय जनबल-धनबल, देश-काल, आपत्ति का निवारण, तथा कार्य की सफलता) मन्त्रियों के साथ निश्चय स्थिर करके करता है, वह सही नीतिमार्ग पर होता है। जो राजा नीतिशास्त्र के अनुसार करता है, विचार-परामर्श से निश्चय स्थिर क.के करता है, बुद्धि लगा कर मंत्रियों से नेक सलाह को समझता है, और सच्चे हितैषी मित्रों की खोज में रहता है, वह सही नीतिमार्ग पर होता है। राक्षसराज ! जो मनुष्य धर्म को, अर्थ को, काम को,

धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान्वा रक्षसां पते ।
भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः ॥९॥
त्रिषु चैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वा तन्नावबुध्यते ।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम् ॥१०॥
उपप्रदानं सान्त्वं च भेदं काले च विक्रमम् ।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥११॥
काले धर्मार्थकामान् यः संमन्त्र्य सचिवैः सह ।
निषेवेतात्मवाँल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥१२॥
हितानुबन्धमालोक्य कुर्यात् कार्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥१३॥

या इन सब को भजता है, वह इसप्रकार कि काल के अनुसार कभी तीनों को, कभी दो-दो को, और कभी एक को, वह सही नीतिमार्ग पर होता है। परन्तु राजा या राज्याधिकारी इस बात को जानकर कि धर्म इन तीनों में श्रेष्ठ है, तदनुसार नहीं चलता, उसका प्रचुर शास्त्रज्ञान व्यर्थ है।

राजन्! जो मंत्रियों के साथ मंत्रणा करके काल के अनुसार दान साम (सान्त्वना, शान्ति) भेद और दण्ड (पराक्रम, चढ़ाई) को, उपर्युक्त प्रकार के पांचों प्रयोगों एवं उन दोनों नीति-अनीतियों को, और काल के अनुसार धर्म-अर्थ-कामों को सेवता है, वह दुनिया में आत्मवान् कहलाता है, और कभी आपत्ति को नहीं पाता। राजा वह होता है, जो प्रस्तुत विषय के तत्त्वको समझने वाले बुद्धिमान् मंत्रियों के साथ मिलकर, परिणाम को हितकारी देख, दुनिया में अपना कार्य करे। परन्तु वह इस बात का पूरा २ ध्यान रखे कि मंत्रीमंण्डल में अन्तरंग बनाए

अनभिज्ञाय शास्त्रार्थान् पुरुषाः पशुबुद्धयः ।
प्रागल्भ्याद्वक्तुमिच्छन्ति मन्त्रिष्वभ्यन्तरीकृताः ॥१४॥
अशास्त्रविदुषां तेषां कार्यं नाभिहितं वचः ।
अर्थशास्त्रानभिज्ञानां विपुलां श्रियमिच्छताम् ॥१५॥
अहितं च हिताकारं धाष्ट्यार्ज्जल्पन्ति ये नराः ।
अवश्यं मन्त्रबाह्यास्ते कर्तव्याः कृत्यदूषकाः ॥१६॥
विनाशयन्तो भर्तारं सहिताः शत्रुभिर्बुधैः ।
विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीह मन्त्रिणः ॥१७॥
तान्भर्ता मित्रसङ्काशानमित्रान् मन्त्रनिर्णये ।
व्यवहारेण जानीयात् सचिवानुपसंहितान् ॥१८॥

हुए जो मंत्री लोग नीतिशास्त्र के तत्त्व को न समझ कर ढिठाई-वश अण्ट-सण्ट सलाह दे देते हैं, वे बुद्धिमान् नहीं होते अपितु पशुबुद्धि होते हैं। इसलिए नीतिशास्त्र को न जानने वाले उन पशुबुद्धि मंत्रियों की कही हुई बात पर राजा कभी न चले, क्योंकि वे चाहते तो हैं विशाल लक्ष्मी को, परन्तु होते हैं एकदम अर्थ-शास्त्र से अनभिज्ञ।

जो मंत्री लोग धृष्टतावश हित के रूप में अहितकारी सलाह देते हैं, उन्हें अवश्य ही मंत्रणा से बाहर कर देना चाहिए, क्योंकि वे कार्य को बिगाड़ने वाले होते हैं। ऐसे पशुबुद्धि मंत्री लोग समझदार शत्रुओं के साथ मिले हुओं के समान राजा का विनाश करते हुए उससे उलटे काम करवा देते हैं। इसलिए राजा का चहिए कि वह ऐसे पशुबुद्धि अन्तरंग मंत्रियों का व्यवहार के द्वारा (सलाह के परिणाम से) समझे कि वे मंत्रणा-काल में किस प्रकार मित्र के रूप में शत्रु बने हुए हैं। इसका ध्यान रखना

चपलस्येह कृत्यानि सहसानुप्रधावतः ।
छिद्रमन्ये प्रपद्यन्ते क्रौञ्चस्य खमिव द्विजाः ॥१६॥
यो हि शत्रुमवज्ञाय आत्मानं नाभिरक्षति ।
अवाप्नोति हि सोऽनर्थान् स्थानाच्च व्यवरोप्यते ॥२०॥
यदुक्तमिह ते पूर्वं प्रियया मेऽनुजेन च ।
तदेव नो हितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुरु ॥२१॥
तत्तु श्रुत्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णस्य भाषितम् ।
भ्रुकुटिं चैव संचक्रे क्रुद्धश्चैनमभाषत ॥२२॥
मान्यो गुरुरिवाचार्यः किं मां त्वमनुशाससि ।
किमेवं वाक्श्रमं कृत्वा यद् युक्तं तद्विधीयताम् ॥२३॥

चाहिए कि परिणाम को विना विचारे कामों के पीछे दौड़ने वाले व आपातित सुखजनक सलाह से संतुष्ट मनुष्य के छिद्र को एकदम शत्रुलोग पा लिया करते हैं, जैसे कि क्रौञ्च पक्षी के घौंसले को दूसरे पक्षी हथिया लेते हैं। जो शत्रु को हीन समझ कर अपनी रक्षा नहीं करता, वह अनर्थों को पाता है, और अपने पद से भी हटा दिया जाता है। इसलिए, भाई ! आपको जो पहले आपकी प्रिय पत्नी (मेरी प्यारी भावी), और मेरे छोटे भाई ने इस विषय में कहा था, वह ही अब भी हमारी हितकारी सलाह है, अब आप जैसा चाहें वैसा करें।"

कुम्भकर्ण के इस भाषण को सुनकर रावण ने भौहें चढ़ाईं और क्रोध में भर कर उससे बोला— कुम्भकर्ण ! मैं तुम्हारे पिता के समान और तुम्हारे आचार्य के समान मान्य हूँ, तुम मुझे क्या सिखाते हो ? इसप्रकार वाक्-श्रम करके क्या बनेगा, जो युक्त है वह काम करो। मैंने भ्रान्ति के कारण, मूढ़ता

विभ्रमाच्चित्तमोहाद्वा बलवीर्याश्रयेण वा ।
नाभिपन्नमिदानीं यद् व्यर्था तस्य पुनः कथा ॥२४॥
अस्मिन्काले तु यद्युक्तं तदिदानीं विचिन्त्यताम् ।
ममापनयजं दुःखं विक्रमेण समीकुरु ॥२५॥
यदि खल्वस्ति मे स्नेहो विक्रमं वाऽधिगच्छसि ।
यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ॥२६॥
स सुहृद्यो विपन्नार्थं दीनमभ्युपद्यते ।
स बन्धुर्योऽपनीतेषु साहाय्यायोपकल्पते ॥२७॥
तमथैवं ब्रुवाणं स वचनं धीरदारुणम् ।
रुष्टोऽयमिति विज्ञाय शनैः श्लक्ष्णमुवाच ह ॥२८॥
अतीव हि समालक्ष्य भ्रातरं क्षुभितेन्द्रियम् ।

के कारण, या बल-पराक्रम के घमण्ड के कारण जो तुम्हारी बात नहीं मानी, उसकी अब फिर से चर्चा करना व्यर्थ है। इस समय तो जो बात युक्त है, वह सोचो। और यदि मेरे में तुम्हारा स्नेह है, यदि पराक्रम का भरोसा रखते हो, तथा यदि मेरा यह कार्य तुम्हारे दिल में अत्यावश्यक जान पड़ता है, तो मेरी भूल से पैदा हुए दुःख को अपने पराक्रम से ठीक करो। मित्र वह है जो विपत्ति में पड़े दीन पर अनुग्रह करता है, और बन्धु वह है जो बन्धुओं के कुमार्गगामी होते हुए भी उनकी सहायता के लिए तय्यार रहता है।"

'आप जैसा चाहें वैसा करें' इसप्रकार कुम्भकर्ण द्वारा कही गयी बुद्धियुक्त बात के उत्तर में रावण ने जब इसप्रकार कठोर वचन कहे, तो कुम्भकर्ण ने यह समझ कर कि भाई रुष्ट हो गया, धीरे से मधुर वचन कहे। पुरानी बात के याद दिलाने से भाई को अत्यन्त

कुम्भकर्णः शनैर्वाक्यं बभाषे परिसान्त्वयन् ॥२६॥
शृणु राजन्नवहितो मम वाक्यमरिन्दम ।
अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्य ते ।
रोषं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥३०॥
नैतन्मनसि कर्तव्यं मयि जीवति पार्थिव ।
तमहं नाशयिष्यामि यत्कृते परितप्यसे ॥३१॥
अवश्यं च हितं वाच्यं सर्वावस्थां गतं मया ।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥३२॥
सदृशं यच्च कालेऽस्मिन्कर्तुं स्नेहेन बन्धुना ।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥३३॥
अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि ।

विक्षुब्ध देखकर कुम्भकर्ण ने उसे सान्त्वना प्रदान की और धीरे से उससे कहा—

"रिपुदमन राजन् ! दुःखों में पड़े आप मेरी बात सुनिए— वह यह कि राक्षसमहाराज ! सन्ताप पाकर अब आप बस कीजिए, अर्थात् अब सन्ताप छोड़िए, और क्रोध को त्याग कर स्वस्थ (सुप्रसन्न) हूजिए। राजन् ! मेरे जीते हुए यह बात मन में न लानी चाहिए। आप जिसके कारण सन्तप्त हो रहे हैं, मैं उसे अवश्य मारूंगा।

राजन् ! सुख-दुःख की सब हालतों में हितकारी बात अवश्य कहनी चाहिए, इसलिए मैंने बन्धुता तथा भ्रातृ-स्नेह के कारण आपसे वह बात कही थी। परन्तु, इस समय प्रिय बन्धु को जो करना चाहिए, सो आप रण में मेरे द्वारा किए गए शत्रुओं के सर्वनाश को देखिए। महाबाहु ! आज आप देखिए कि संग्राम

हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम् ॥३४॥
अद्य रामस्य तद् दृष्ट्वा मया नीतं रणाच्छिरः ।
सुखी भव महाबाहो सीता भवतु दुःखिता ॥३५॥

सर्ग ३५

एवमुक्तवतो वाक्यं कुम्भकर्णस्य धीमतः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं प्रहसन् राक्षसाधिपः ॥१॥
कश्चिन्मे त्वत्समो नास्ति सौहृदेन बलेन च ।
गच्छ शत्रुवधाय त्वं कुम्भकर्णजयाय च ॥२॥
शयानः शत्रुनाशार्थं भवान् संबोधितो मया ।
अयं हि कालः सुमहान् राक्षसानामरिन्दम ॥३॥
संगच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवान्तकः ।
वानरान् राजपुत्रौ च भक्षयादित्यतेजसौ ॥४॥

में मेरे द्वारा भाई सहित राम के मारे जाने पर वानरी सेना कैसे भागती है। महाबाहु ! आप आज रण में से मेरे द्वारा लाए गए राम के सिर को देख कर खुश हूजिए, और सीता दुःखी होवे।"

राम द्वारा कुम्भकर्ण का मारा जाना

बुद्धिमान् कुम्भकर्ण के ऐसा कहने पर राक्षसराज रावण मारे खुशी के हंसा और बोला—"कुम्भकर्ण ! सचमुच हित साधने में, और बल में तुम्हारे समान मेरा अन्य कोई नहीं है। जाओ, शत्रु-वध के लिए तथा विजय-प्राप्ति के लिए जाओ। इसीलिए तो शत्रु-वध के लिए मैंने आपको सोते से जगाया है। रिपुदमन ! राक्षसों के लिए यह काल बहुत ही बढ़िया है। हाथ में फन्दा लिये मौत के समान तुम त्रिशूल लेकर दुश्मनों पर धावा बोल दो, और वानरों तथा आदित्यसमान तेजस्वी राजपुत्रों को

समालोक्य तु ते रूपं विद्रविष्यन्ति वानराः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥५॥
एवमुक्त्वा महातेजाः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
पुनर्जातमिवात्मानं मेने राक्षसपुङ्गवः ॥६॥
कुम्भकर्णबलाभिज्ञो जानँस्तस्य पराक्रमम् ।
बभूव मुदितो राजा शशाङ्क इव निर्मलः ॥७॥
इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा योद्धुमुद्युक्तवांस्तदा ॥८॥
स लङ्घयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥९॥
ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
विजयन्निव निर्घातान् विधमन्निव पर्वतान् ॥१०॥

खा डालो। तुम्हें देखते ही वानर युद्ध छोड़ भागेंगे, और राम-लक्ष्मण के दिल फट जावेंगे।"

महातेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ ने महाबली कुम्भकर्ण को इस प्रकार कह कर अपना नया जन्म हुआ समझा। कुम्भकर्ण के बल से अभिज्ञ राजा रावण उसके पराक्रम को सोचकर निर्मल चन्द्रमा के समान खिल उठा।

रावण द्वारा इसप्रकार प्रोत्साहित किए जाने पर महाबली कुम्भकर्ण निकल पड़ा, और राजा का आदेश पाकर युद्ध के लिए उद्यत हो गया। तब गिरिकूट के समान मजबूत वह महाबली परकोटे को लांघ कर शीघ्र लंकानगरी से बाहर निकल पड़ा। और बाहर निकल कर उसने ऐसा महानाद गुंजाया कि समुद्र गर्ज उठा, पर्वत हिल उठे और वज्रपात-सा सुनायी पड़ने लगा।

अथ वृक्षान्महाकायाः सानूनि सुमहान्ति च ।
वानरास्तूर्णमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिद्रवन् ॥११॥
कुम्भकर्णः सुसंक्रुद्धो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
धर्षयन्त महाकायः समन्ताद् व्यक्षिपद्रिपून् ॥१२॥
ततः पर्वतमुत्पाट्य द्विविदः प्लवगर्षभः ।
दुद्राव गिरिशृङ्गाभं विलम्ब इव तोयदः ॥१३॥
तं समुत्पाट्य चिक्षेप कुम्भकर्णाय वानरः ।
तमप्राप्य महाकायं तस्य सैन्येऽपतत्ततः ॥१४॥
ममर्दाश्वान्गजांश्चापि रथांश्चापि गजोत्तमान् ।
तानि चान्यानि रक्षांसि एवं चान्यद् गिरेः शिरः ॥१५॥
तच्छैलवेगाभिहतं हताश्वं हतसारथिम् ।
रक्षसां रुधिरक्लिन्नं बभूवायोधनं महत् ॥१६॥

इसप्रकार कुम्भकर्ण को जब युद्ध में उतरते देखा तो विशालकाय वानर वृक्षों तथा बड़ी २ शिलायों को जल्दी से उठा कर कुम्भकर्ण पर झपटे। इस पर विशालकाय पराक्रमी कुम्भकर्ण ने गुस्से में भर कर गदा उठाई, और शत्रुयों को पराभूत करता हुआ उन्हें चहुँ ओर गिराने लगा। तब वानरसेनापति द्विविद ने भारी भरकम शिला उठायी और जलभार से लटकते हुए मेघ के समान कुम्भकर्ण पर झपटा, और उस उखाड़ी हुई शिला को उस पर दे मारा। वह शिला उस महाकाय पर तो नहीं पड़ी परन्तु उसकी सेना पर जा लगी। उस शिला ने घोड़ों, हाथियों, रथों और राज-हाथियों को कुचल दिया। एवं द्विविद ने दूसरी शिला उठा कर उन अन्य प्रसिद्ध राक्षसों पर दे पटकी। उस शिला के जोर से सेना के घोड़े और सारथि मारे गये, और युद्ध क्षेत्र

रथिनो वानरेन्द्राणां शरैः कालान्तकोपमैः ।
शिरांसि नदतां जह्रुः सहसा भीमनिःस्वनाः ॥१७॥
वानराश्च महात्मानः समुत्पाट्य महाद्रुमान् ।
रथानश्वान् गजानुष्ट्रान् राक्षसानभ्यसूदयन् ॥१८॥
हनूमान् शैलशृङ्गाणि शिलाश्च विविधान्द्रुमान् ।
ववर्ष कुम्भकर्णस्य शिरस्यम्बरमास्थितः ॥१९॥
तानि पर्वतशृङ्गाणि शूलेन स बिभेद ह ।
बभञ्ज वृक्षवर्षं च कुम्भकर्णो महाबलः ॥२०॥
ततस्तु नीलो बलवान् पर्यवस्थापयन् बलम् ।
प्रतिचिक्षेप शैलाग्रं कुम्भकर्णाय धीमते ॥२१॥
तदापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मुष्टिनाभिजघान ह ।
मुष्टिप्रहाराभिहतं तच्छैलाग्रं व्यशीर्यत ।

राक्षसों के खून से तर हो गया। इतने में राक्षस-पक्ष के गर्जते हुए रथी लोगों ने मृत्यु समान बाणों से हर्ष-नाद करते हुए मुखिया वानरों के सहसा सिर काटने शुरु कर दिये। इस पर महापराक्रमी वानरों ने बड़े २ वृक्षों को उखाड़ कर रथों, घोड़ों, हाथियों, ऊटों और राक्षसों को चूर २ कर दिया, और ऊपर चढ़े हुए हनुमान् ने पर्वत-सींगों, शिलायों, तथा अनेकविध वृक्षों की कुम्भकर्ण के सिर पर वर्षा करनी प्रारम्भ की। महाबली कुम्भकर्ण ने त्रिशूल से पर्वत-सींगों का छेद दिया और वृक्ष-वर्षा को तोड़ दिया।

तब बलवान् नील ने वानरी सेना को मजबूत किया और बुद्धिमान् कुम्भकर्ण पर पर्वत-शृंग को फैंका। कुम्भकर्ण ने उस आते हुए शैल-शृंग को देखकर उस पर मुक्का मारा। मुक्के के

सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात महीतले ॥२३॥
ऋषभः शरभो नीलो गवाक्षो गन्धमादनः ।
पञ्च वानरशार्दूलाः कुम्भकर्णमुपाद्रवन् ॥ ३॥
शैलैर्वृक्षैस्तलैः पादैर्मुष्टिभिश्च महाबलाः ।
कुम्भकर्णं महाकायं निजघ्नुः सर्वतो युधि ॥२४॥
स्पर्शानिव प्रहारांस्तान् वेदयानो न विव्यथे ।
ऋषभं तु महावेगं बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥२५॥
कुम्भकर्णभुजाभ्यां तु पीडितो वानरर्षभः ।
निपपातर्षभो भीमः प्रमुखागतशोणितः ॥२६॥
मुष्टिना शरभं हत्वा जानुना नीलमाहवे ।
आजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ।
पादेनाभ्यहनत् क्रुद्धस्तरसा गन्धमादनम् ॥२७॥

प्रहार से प्रताड़ित वह शैल-शृंग टुकड़े २ हो गया, और चिनगारियों तथा ज्वालायों सहित भूतल पर जा गिरा। तिस पर ऋषभ, शरभ, नील, गवाक्ष, और गन्धमादन ये पांच वानरकेसरी एक साथ कुम्भकर्ण पर झपटे, और वे महाबली पत्थरों, वृक्षों, थप्पड़ों, पावों और मुक्कों से युद्ध में चारों ओर से उस महाकाय को मारने लगे। परन्तु उस वीर ने उन प्रहारों को पुष्प-स्पर्श के समान समझा और उनसे तनिक भी व्यथित नहीं हुआ। उसने अत्यन्त फुर्तीले ऋषभ को अपनी बाहुओं में दबोच लिया। इस प्रकार वानरश्रेष्ठ भीम ऋषभ जब कुम्भकर्ण की भुजायों से दबोचा गया तो वह नीचे गिर पड़ा और उसके मुंह से खून निकलने लगा। इसके बाद इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्ण ने युद्ध में मुक्के से शरभ को तथा घुटने से नील को गिरा थपड़ से गवाक्ष को तथा प्रबल

दत्तप्रहारव्यथिता मुमुहुः शोणितोक्षिताः ।
निपेतुस्ते तु मेदिन्यां निकृत्ता इव किंशुकाः ॥२८॥
वज्रहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इवान्तकः ।
शूलहस्तो बभौ युद्धे कुम्भकर्णो महाबलः ॥२९॥
यथा शुष्काण्यरण्यानि ग्रीष्मे दहति पावकः ।
तथा वानरसैन्यानि कुम्भकर्णो ददाह सः ॥३०॥
प्रभग्नान्वानरान् दृष्ट्वा वज्रहस्तात्मजात्मजः ।
अभ्यधावत वेगेन कुम्भकर्णं महाहवे ॥॥३१॥
शैलशृङ्गं महद् गृह्य विनदन्स मुहुर्मुहुः ।
त्रासयन्राक्षसान्सर्वान् कुम्भकर्णपदानुगान् ।
चिक्षेप शैलशिखरं कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ॥३२॥

लात से गन्धमादन को दे मारा। इसप्रकार चोटों से पीड़ित वे पांचों के पांचों बेसुध हो गए, खून बहने लगा और कटे पुष्पित पलाश वृक्षों की तरह भूमि पर गिर पड़े। उस समय महाबली कुम्भकर्ण हाथ में त्रिशूल लिए ऐसा बन रहा था कि जैसे हाथ में वज्र लिए इन्द्र हो, या हाथ में फन्दा लिए मौत खड़ी हो। और, जैसे ग्रीष्म काल में अग्नि सूखे जंगलों का दग्ध कर देती है, वैसे वह कुम्भकर्ण वानर-सेनाओं को दग्ध किए जा रहा था।

जब वज्रहस्त के पुत्र (वाली) के पुत्र अंगद ने वानरों को इसप्रकार पिटते देखा तो वह उस महासमर में झपाटे के साथ कुम्भकर्ण की ओर बढ़ा। उसने हाथ में बहुत बड़ा शैल-शृग पकड़ कर बार २ सिंह-गर्जना की और कुम्भकर्ण के सब साथी राक्षसों को दहला कर उस के सिर पर शैल-शृंग दे मारा। एवं, इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्ण के सिर पर जब वह शैल-शृग

चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥३६॥
स कुम्भकर्णस्य शरान् शरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥४०॥
पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान् सुमित्रानन्दवर्धनः ॥४१॥
अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् ।
प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः ॥४२॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान् ॥४३॥
ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥४४॥

को कुचलने वाला तथा शत्रु-नगरों को जीतने वाला है, क्रोध में भर कर युद्ध में उतरा । पराक्रमी लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में एकसाथ सात बाण गड़ा दिये, और फिर और लेकर छोड़े । तब उन बाणों से पीड़ित राक्षस ने उस सब अस्त्र जाल को निःशेषतया निकाल फेंका (विशेषं विगत-शेषं चकार)। इससे सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाला बलवान् लक्ष्मण क्रोध में भरा, और उसके सोने के बने चमचमाते सुन्दर कवच को बाणों से इसप्रकार ढक दिया जैसे कि संध्याकालीन मेघ को हवा ढक लेती है। उससमय काजल के ढेर समान काला वह राक्षस सुवर्ण-विभूषित बाणों से पीड़ित हुआ २ ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो प्रखर-किरण सूर्य मेघों से ढका हुआ हो ।

तब भयंकर राक्षस ने लक्ष्मण को तिरस्कृत करते हुये घटाटोप मेघ के समान गर्ज कर कहा— " ललकार आने पर युद्ध

स तेनाभिहतो मूर्ध्नि शैलेनेन्द्ररिपुस्तदा ।
कुम्भकर्णः प्रजज्वाल क्रोधेन महता तदा ॥३३॥
सोऽभ्यधावत वेगेन वालिपुत्रममर्षणम् ।
कुम्भकर्णो महानादस्त्रासयन्सर्ववानरान् ॥३४॥
शूलं ससर्ज वै रोषादङ्गदे तु महाबलः ॥३५॥
तदापतन्तं बलवान् युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवान्मोक्षयामास बलवान्वानरर्षभः ॥३६॥
उत्पत्य चैनं तरसा तलेनास्यताडयत् ।
स तेनाभिहतः कोपात् प्रमुमोहाचलोपमः ॥३७॥
स लब्धसंज्ञोऽतिबला मुष्टिं संगृह्य राक्षसः ।
अपहासेन चिक्षेप विसञ्ज्ञः स पपात ह ॥३८॥
तस्मिन् काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।

पड़ा, तो वह महाक्रोध से तमतमा उठा और झपाटे के साथ दुःसह्य अंगद की ओर दौड़ा। महाबली कुम्भकर्ण ने घोर गर्जना करते हुए समस्त वानरों को दहला दिया और क्रोध पूर्वक अंगद के ऊपर त्रिशूल दे मारा। युद्धनीति में दक्ष वानरश्रेष्ठ बलवान् अंगद ने उस आते हुए त्रिशूल को देखकर फुर्ती से दूर हट अपने को बचा लिया, और फिर तुरन्त बड़े जोर से उस पर थप्पड़ दे मारा। उस थप्पड़ से प्रताड़ित वह पहाड़ का पहाड़ राक्षस मारे गुस्से के बेसुध हो गया और जब होश में आया तो महाबली बनकर मुक्का बांधा और उपहास पूर्वक अंगद पर ऐसा जमाया कि वह बेहोश होकर नीचे गिर पड़ा।

इसप्रकार बेसुध होकर जब अंगद भूमि पर गिर पड़ा, तो उस समय सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण, जो कि शत्रु-सैन्य

चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥३९॥
स कुम्भकर्णस्य शरान् शरीरे सप्त वीर्यवान् ।
निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः ॥४०॥
पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान् सुमित्रानन्दवर्धनः ॥४१॥
अथास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनदमयं शुभम् ।
प्रच्छादयामास शरैः संध्याभ्रमिव मारुतः ॥४२॥
नीलाञ्जनचयप्रख्यः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
आपीड्यमानः शुशुभे मेघैः सूर्य इवांशुमान् ॥४३॥
ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनम् ।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥४४॥

को कुचलने वाला तथा शत्रु-नगरों को जीतने वाला है, क्रोध में भर कर युद्ध में उतरा। पराक्रमी लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में एकसाथ सात बाण गड़ा दिये, और फिर और लेकर छोड़े। तब उन बाणों से पीड़ित राक्षस ने उस सब अस्त्र जाल को निःशेषतया निकाल फैंका (विशेषं विगत-शेषं चकार)। इससे सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाला बलवान् लक्ष्मण क्रोध में भरा, और उसके सोने के बने चमचमाते सुन्दर कवच को बाणों से इसप्रकार ढक दिया जैसे कि संध्याकालीन मेघ को हवा ढक लेती है। उससमय काजल के ढेर समान काला वह राक्षस सुवर्ण-विभूषित बाणों से पीड़ित हुआ २ ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो प्रखर-किरण सूर्य मेघों से ढका हुआ हो।

तब भयंकर राक्षस ने लक्ष्मण को तिरस्कृत करते हुये घटाटोप मेघ के समान गर्ज कर कहा— "ललकार आने पर युद्ध

अन्तकस्याप्यकष्टेन युधि जेतारमाहवे ।
युध्यता मामभीतेन ख्यापिता वीरता त्वया ॥४५॥
प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिव महामृधे ।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥४६॥
ऐरावतं समारूढो वृतः सर्वामरैः प्रभुः ।
नैव शक्रोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन ॥४७॥
अद्य त्वयाऽहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम् ॥४८॥
यत्तु वीर्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम् ॥४९॥
रामे मयाऽत्र निहते येऽन्ये स्थास्यन्ति संयुगे ।
तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥५०॥

में मौत को भी आराम से जीतने वाले मुझ निर्भय के साथ युद्ध करके तूने अपनी वीरता प्रकट कर दी। महासमर में हाथ में आयुध पकड़े हुए मृत्युरूप मेरे समक्ष जो वीर खड़ा भी हो जाता है, वह मेरा पूज्य होता है, तब उसका तो क्या कहना जो मेरे से युद्ध करता है। सब देवों से घिरा ऐरावत हाथी पर सवार इन्द्र राजा भी कभी पहले युद्ध में मेरे समक्ष नहीं खड़ा हुआ, परन्तु लक्ष्मण ! आज तूने बालक ने अपने पराक्रमों से मुझे रिझा लिया है, इसलिए तेरी अनुमति लेकर मैं अब राम की तरफ जाना चाहता हूं। क्योंकि वीर्य, बल, उत्साह से तूने मुझे रण में रिझा लिया है, इसलिए मैं अकेले राम को ही मारने की इच्छा रखता हूँ, कि जिसके मारे जाने पर तुम सब मरे समझे जावोगे। परन्तु, फिर भी यदि मेरे द्वारा राम के मारे जाने पर कोई दूसरे

इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच स्तुतिसंहितम् ।
मृधे घोरतरं वाक्यं सौमित्रिः प्रहसन्निव ॥५१॥
यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राप्य पौरुषम् ।
तत्सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः ॥५२॥
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ।
इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं स निशाचरः ॥५३॥
अतिक्रम्य च सौमित्रिं कुम्भकर्णो महाबलः ।
राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥५४॥
अथ दाशरथी रामो रौद्रमस्त्रं प्रयोजयन् ।
कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताञ्छरान् ॥५५॥
तस्य रामेण विद्धस्य सहसाभिप्रधावतः ।

युद्ध में डटेंगे, तो उनको मैं अपनी मथने वाली सेना से लड़वाऊंगा ।"

संग्राम स्थली में आत्म-प्रशंसा युक्त चुभने वाली इसप्रकार की बात सुनकर लक्ष्मण ने हंसते हुए उस राक्षस से यह बात कही—"वीर ! जो तुम पौरुष को पाकर इन्द्रादि देवों से अजेय हो, वह सच है, इससे विपरीत नहीं, क्योंकि तुम्हारा पराक्रम आज मैंने देख लिया है । देखो, ये राम अचल पर्वत के समान खड़े हैं ।"

यह सुनकर महाबली कुम्भकर्ण निशाचर, लक्ष्मण की कुछ भी परवाह न करके उसे वहीं छोड़कर भूमि को कंपाता हुआ राम की ही ओर झपटा । तब दशरथ-पुत्र राम ने रौद्र अस्त्र का प्रयोग करते हुए तीखे बाणों को कुम्भकर्ण की छाती पर मारा । राम से विंध कर राक्षस एकदम उनकी ओर दौड़ा ।

अङ्गारमिश्राः क्रुद्धस्य मुखाग्निश्चेरुरर्चिषः ॥५६॥
रामास्त्रविद्धो घोरं वै नदन्राक्षसपुंगवः ।
अभ्यधावत तं क्रुद्धो हरीन्विद्रावयन्रणे ॥५७॥
तस्योरसि निमग्नास्ते शरा बर्हिणवाससः ।
हस्ताच्चास्य परिभ्रष्टा गदा चोर्व्यां पपात ह ॥५८॥
स बाणैरतिविद्धाङ्गः क्षतजेन समुक्षितः ।
रुधिरं परिसुस्राव गिरिः प्रस्रवणं यथा ॥५९॥

सर्ग ३६

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥१॥
राजन्स कालसंकाशः संयुक्तः कालकर्मणा ।
विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान् ॥२॥

उस समय उसके मुख से क्रोध के कारण जलते अंगारों से युक्त चिनगारियां निकल रही थी। राम के तीरों से बिंधा राक्षसराज घोर नाद गुंजाता हुआ क्रोध में भर कर युद्ध में वानरों को खदेड़ता हुआ राम पर झपटा कि इतने में मोर के पंखों वाले बाण उसकी छाती में धँस गये और उसकी गदा उसके हाथ से छूट गयी और वह भूमि पर गिर पड़ा। उसके अंग बाणों से बहुत ज्यादा विंधे हुये थे, रुधिर से शरीर लथपथ था, और खून की धारा इस प्रकार बह रही थी, जैसे कि पहाड़ झरना झरता है।

कुम्भकर्ण की मृत्यु पर रावण का विलाप

महात्मा राम द्वारा कुम्भकर्ण मारा गया है, यह देखकर राक्षस लोगों ने राक्षसराज रावण को खबर दी—"राजन्! मृत्यु समान आपके भाई कुम्भकर्ण मौत जैसे कर्म करते हुए बानरी

प्रतपित्वा मुहूर्तं तु प्रशान्तो रामतेजसा ।
कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः ॥३॥
श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥४॥
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥५॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥६॥
ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुंगवः ।
कुम्भकर्णवधाद् दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥७॥
हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥८॥

सेना को खदेड़ कर तथा नष्ट-भ्रष्ट कर और कुछ काल संतप्त करके राम के प्रभाव से उसके बाणों से पीड़ित होकर मर गए हैं।"

तब महाबली कुम्भकर्ण को युद्ध में मारा गया सुन कर रावण शोक-सन्तप्त हो बेहोश हो गया और गिर पड़ा। चाचा को मारा गया सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय शोकपीड़ित हो रोने लगे। सुखदायी कर्म करने वाले राम द्वारा भाई को मारा गया सुनकर महादर तथा महापार्श्व शोकाकुल हो गए। थोड़ी देर बाद रावण ने मुश्किल से होश में आकर कुम्भकर्ण के बध से दीन तथा व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करना शुरु किया—

"हाय वीर ! शत्रु-दर्प-नाशक ! महाबली कुम्भकर्ण ! तुम मुझे छोड़कर मेरे दौर्भाग्य से मृत्यु लोक में चले गये। हाय महा-

मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क मां संत्यज्य गच्छसि ॥९॥
इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः ।
दक्षिणोऽयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात् ॥१०॥
कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ।
कालाग्निप्रतिमो ह्यद्य राघवेण रणे हतः ॥११॥
यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥१२॥
एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ।
निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः ॥१३॥
ध्रुवमद्यैव संहृष्टा लब्धलक्षाः प्लवंगमाः ।
आरोहयन्ति ह दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ॥१४॥

बली ! तुम मेरे और बन्धुओं के कांटे को बिना निकाले (अर्थात् राम को बिना मारे) और सिर्फ शत्रु-सेना को संतप्त करके मुझे छोड़ अकेले कहां जाते हो ? अब मैं इस दुनिया में कहीं का नहीं रहा, जब कि मेरी यह दाहिनी भुजा गिर गई है जिसका कि सहारा पाकर मैं सुरों-असुरों से नहीं डरा करता था। देवों तथा दानवों के दर्प को चकनाचूर करने वाला कालाग्नि सदृश इस प्रकार का वीर राम ने आज युद्ध में कैसे मार दिया ? जो कभी वज्राघात तक को भी कुछ नहीं समझता था, वह तू आज राम-बाण से पीड़ित होकर महीतल पर कैसे सो रहा है ?

ये देवलोग ऋषियों के साथ आकाश में स्थित होकर रण में तुझे मारा गया देखकर खुश हो हर्षनाद कर रहे हैं। निश्चय से आज ही वानर लोग अवसर पा खुश होकर दुर्गम लंका-द्वारों

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे मतिः ॥१५॥

यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥१६॥

अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
नहि भ्रातॄन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥१७॥

देवा हि मां हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ।
कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ॥१८॥

तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् ।
यदज्ञानान् मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ॥१९॥

विभीषणवचस्तावत् कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।

पर सब ओर से चढ़ाई कर देंगे। राज्य से मेरा अब कुछ काम नहीं, और सीता को लेकर भी अब में क्या करूंगा ? कुम्भकर्ण से विहीन होकर मैं अब जीना नहीं चाहता। यदि मैं युद्ध में भाई के हत्यारे राम को नहीं मारता, तो मेरा मर जाना ही श्रेयस्कर है, यह व्यर्थ का जीना ठीक नहीं। सो, मैं आज ही उस देश को जाऊंगा जहां कि मेरा छोटा भाई गया है। मैं भाईयों को छोड़कर क्षण भर भी जीना नहीं चाहता। जिन देवों का मैं पहले अपकार कर चुका हूं, वे अब मुझे देखकर हंसी उड़ायेंगे, क्योंकि तुम कुम्भकर्ण के मारे जाने पर मैं अब कैसे इन्द्र को जीत सकूंगा ? मैंने महात्मा विभीषण की अज्ञानवश जो सही बात नहीं मानी थी, उसी का यह प्रतिफल मुझे मिला है। जब से प्रहस्त और कुम्भकर्ण का यह विनाश हुआ है, तब से विभीषण का वचन (मेरे स्मृतिपथ में आ-आकर) मुझे अत्यधिक

विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ।।२०।।
तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान्स निरस्तो विभीषणः ।।२१।।

सर्ग ३७

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ।।१।।
एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः ।
न तु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान् ।।२।।
नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो ।
स कस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ।।३।।

लज्जित कर रहा है। जो मैंने धार्मिक श्रीमान् विभीषण को अपमानित कर निकाल दिया है, उसी दुष्कर्म का यह शोकप्रद फल मुझे प्राप्त हुआ है।"

रावणपुत्र त्रिशिरा, नरान्तक, देवान्तक और अतिकाय तथा रावण-भाई महोदर, महापार्श्व युद्ध के लिये उतरे, और अंगद द्वारा नरान्तक मारा गया

इसप्रकार कुम्भकर्ण-वध को सुनकर शोक-विह्वल दुरात्मा रावण के विलाप करने पर पुत्र त्रिशिरा पिता से बोला—

"पिता जी! यह ठीक है कि हमारा मझौला महापराक्रमी चाचा ऐसे ही मारा गया, परन्तु राजन्! सत्पुरुष इसप्रकार विलाप नहीं किया करते जैसे कि आप कर रहे हैं। स्वामिन्! आप तो त्रिभुवन-विनाश की पूरी शक्ति रखते हैं, फिर आप कैसे मामूली मनुष्य की तरह इसप्रकार अपने को शोकग्रस्त कर रहे हैं। आपके पास परमात्मा की दी हुई अमोघ शक्ति है, कवच है,

ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचं सायको धनुः ।
सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघसमस्वनः ॥४॥

त्वयाऽसकृद्धि शस्त्रेण विशस्ता देवदानवाः ।
स सर्वायुद्धसंपन्नो राघवं हन्तुमर्हसि ॥५॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥६॥

शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ।
तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥७॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥८॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥९॥

बाण है, धनुष है, और मेघ समान उच्च शब्द करने वाला बलवान् खच्चरों से युक्त रथ है। आपने अनेकबार शस्त्र से देवों तथा दानवों को काटा है, तो सर्वायुधसम्पन्न आप राम को भी काट सकते हैं। महाराज! आप जरा ठहरिये, मैं रण में जाऊंगा और आपके दुश्मनों को ऐसे काट गिराऊंगा जैसे कि गरुड़ सर्पों को काट गिराता है। जैसे देवराज ने शम्बर को और विष्णु ने नरक को सदा के लिये भूमि पर सुला दिया था, वैसे युद्ध में मेरे से गिराया गया राम भूमि पर सोवेगा।"

त्रिशिरा के वचनों को सुनकर राक्षसराज ने समझा कि मेरा पुनर्जन्म हो गया है, क्योंकि उसके सिर पर तो काल नाच रहा था। दूसरी ओर भाई त्रिशिरा के वचनों को सुनकर देवान्तक, नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय युद्ध के लिए हर्षित होने लगे।

ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।
रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥१०॥
अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ।
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे समरदुर्मदाः ॥११॥
सर्वे सुबलसंपन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते स्म निर्जिताः ॥१२॥
स पुत्रान् संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥१३॥
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥१४॥
तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥१५॥

तब वे चारों पराक्रम में इन्द्र के समान रावण के राक्षसश्रेष्ठ पुत्र 'मैं लड़ने जाऊंगा–मैं लड़ने जाऊंगा' इसप्रकार गर्जना करने लगे। ये सबके सब आकाश में उड़ने में दक्ष थे, सब मायावी थे, सब देवों तक के दर्प को चूर करने वाले थे, और सब युद्ध में अजेय थे। सब अच्छे बल से सम्पन्न थे, सब की कीर्तियां फैली हुई थी, और सब युद्ध में पहुंच कर कभी पराजित न सुने गए थे।

इस पर रावण ने पुत्रों का आलिंगन किया, भूषणों से अलंकृत किया और प्रशस्त आशीर्वादों के साथ उन्हें रण में भेजा। अपिच, इन कुमारों की रक्षा के लिए रावण ने युद्धोन्मत्त (महोदर) तथा मत्त (महापार्श्व) भाइयों को इनके साथ युद्ध में भेजा। ये छै के छै महाकाय राक्षस शत्रुओं को रुलाने वाले महात्मा रावण

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥१६॥
त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥१७॥
ततः सुदर्शनं नागं नीलजीमूतसंनिभम् ।
ऐरावतकुले जातम् आरुरोह महोदरः ॥१८॥
सर्वायुधसमायुक्तस्तूणीभिश्चाप्यलंकृतः ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥१९॥
हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥२०॥
त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।

को अभिवादन करके और उसकी प्रदक्षिणा करके चल पड़े। एवं युद्धाभिलाषी ये छै महाबली राक्षसश्रेष्ठ (घाव भरने की) सब औषधियों तथा (बेहोशी आदि के निवारणार्थ) गन्धों सहित युद्ध सामग्री को लेकर प्रस्थित हुए। सच पूछो तो ये त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक और नरान्तक तथा महोदर और महापार्श्व काल से प्रेरित होकर रण के लिए चले थे।

रण के लिए प्रस्थान करते समय महोदर ऐरावत नस्ल के काले मेघ समान सुदर्शन नामी हाथी पर सवार हुआ। सब प्रकार के आयुधों से युक्त तथा तरकसों से लैस महोदर हाथी पर बैठ कर ऐसा दीख पड़ता था कि मानो अस्ताचल में स्थित सूर्य हो। रावण का पुत्र त्रिशिरा श्रेष्ठ रथ पर सवार हुआ, जिसमें बढ़िया किस्म के घोड़े जुते हुए थे, और जिस पर सब प्रकार के हथियार रखे हुए थे। धनुर्धारी त्रिशिरा रथ

सविद्युदुल्कः सज्वालः सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥२१॥
अतिकायोऽतितेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥२२॥
सुचक्राक्षं सुसंयुक्तं सानुकर्षं सकूबरम् ।
तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥२३॥
हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् ।
मनोजवं महाकायम् आरुरोह नरान्तकः ॥२४॥
गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः ।
शक्तिमादाय तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा ॥२५॥
देवान्तकः समादाय परिघं हेमभूषणम् ।

पर बैठ कर ऐसा दीख पड़ता था कि मानो शोलों वाली बिजली की मशाल हो या इन्द्रधनुष वाला मेघ हो। रावण का पुत्र अतितेजस्वी अतिकाय, जोकि समस्त धनुर्धारियों में श्रेष्ठ था, बढ़िया रथ पर सवार हुआ। इस रथ के पहिये और धुरे बढ़िया एवं खूब मजबूत थे तथा अनुकर्ष और कूबर लगे हुए थे (कूबर जूए को धारण करता है, और इस कूबर का आधार अनुकर्ष होता है जोकि धुरे से ऊपर स्थापित होता है), चमचमाते तरकश, बाण तथा धनुष रखे हुए थे और भालों, तलवारों, गदाओं से युक्त था।

महाकाय नरान्तक उच्चैःश्रवा नस्ल के अत्यन्त वेगवान् सुवर्ण भूषित सफेद घोड़े पर सवार हुआ। यह नरान्तक जलती मशाल जैसे भाले को हाथ में लिए ऐसा मालूम पड़ता था कि हाथ में शक्ति लिए मोर सदृश वाहन में स्थित तेजस्वी गुह हो। देवान्तक सुवर्ण-मण्डित परिघ लेकर हाथों में भारी भरकम

परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥२६॥
महापार्श्वो महातेजा गदामादाय वीर्यवान् ।
विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥२७॥
ते प्रतस्थुर्महात्मानोऽमरावत्याः सुरा इव ॥२८॥
तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः ।
अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥२९॥
ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे ॥३०॥
प्रगृहीता बभौ तेषां वस्त्राणामावलिः सिता ।
शरदभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे ॥३१॥
मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ।

शिला उठाए विष्णु को मात कर रहा था। और महातेजस्वी वीर्यशाली महापार्श्व गदा लेकर युद्ध में गदापाणि कुबेर सा दीख पड़ता था। एवं ये छै महात्मा लोग अमरावती से निकले देवों के समान लङ्का नगरी से प्रस्थित हुए। आगे आगे ये चले और इनके पीछे हाथियों, घोड़ों और मेघ समान शब्द करने वाले रथों पर सवार हो बढ़िया हथियार लिए लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले राक्षस सैनिक चले। सूर्य समान प्रतापी वे महाबली राजकुमार मुकुट धारण किए हुए शोभा से ऐसे दमक रहे थे कि आकाश में नक्षत्र चमक रहे हों। उन कुमारों और सैनिकों के धारण किए हुए सफेद वस्त्रों की कतारें ऐसी मालूम पड़ रही थीं कि मानो शरत्कालीन मेघ के समान स्वच्छ सफेद हंसों की कतार आकाश में उड़ रही हो।

ये युद्धाभिलाषी वीर जब रण के लिए निकले तो यह

इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः ॥३२॥
जगर्जुश्च प्रणेदुश्च चिक्षिपुश्चापि सायकान् ।
जगृहुश्च महात्मानो निर्याता युद्धदुर्मदाः ॥३३॥
क्ष्वेडितास्फोटितानां वै संचचालेव मेदिनी ।
रक्षसां सिंहनादैश्च संस्फोटितमिवाम्बरम् ॥३४॥
तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ।
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम् ॥३५॥
हरयोऽपि महात्मानो ददृशू राक्षसं बलम् ।
हस्त्यश्वरथसंबाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥३६॥
यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुंगवाः ।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ।

निश्चय करके निकले कि या तो मरेंगे या शत्रुओं को पराजित करेंगे। एवं, युद्ध के नशे में भरकर निकलते हुए उन महावीरों ने शेरों की दहाड़ व हाथियों की चिंघाड़ मचाई, तथा मारो, काटो इत्यादि तानाकशी करते हुए बाणों को थांमा। राक्षसों के सिंहनादों और पटाखों से पृथिवी कम्पायमान हो गई, और सिंहनादों से आकाश फट पड़ा।

उन महाबली राक्षसश्रेष्ठों ने युद्ध में उतर कर देखा कि वानरी सेना ने शिलायें और वृक्ष ले रखे हैं। एवं, महावीर वानरों ने भी राक्षसी सेना को देखा कि उसमें बहुत से हाथी, घोड़े, रथ हैं, जिनके हिलने पर सैकड़ों घण्टियों का शब्द सुनाई पड़ता है। तब वानर-सेनापति राक्षसों पर हमला करने की सोच ही रहे थे कि नरान्तक ने वानरों पर धावा बोल कर उन्हें बींधना शुरु कर दिया। उसने वानर सेना को इसप्रकार दग्ध करना

ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥३७॥
यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्छैलान् वनौकसः ।
तावत्प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥३८॥
ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य सङ्ग्रामान्ते नरान्तकः ।
दिक्षु सर्वासु बलवान्विचचार नरान्तकः ।
प्रमृद्नन्सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथाऽनिलः ॥३९॥
ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः ।
ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥४०॥
प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥४१॥
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥४२॥

प्रारम्भ किया, जैसे कि अग्नि वनों को जला डालती है। तब वानरों ने अपने बचाव के लिए जितने में वृक्षों और शिलाओं को उखाड़ना शुरु किया कि इतने में वे वज्रों से काटे गए पहाड़ों की तरह भालों से मारे जाकर भूमि पर गिर पड़े। इस प्रकार बलवान् नरान्तक युद्ध में चहुं ओर विचर रहा था और वानरों को सब ओर से ऐसे कुचल रहा था, जैसे कि वर्षा काल में हवा मेघों को कुचल कर नीचे गिरा देती है।

जो महाबली वानरश्रेष्ठ पहले कुम्भकर्ण द्वारा गिरा दिए गए थे, वे अब स्वस्थ होकर सुग्रीव के समीप उपस्थित हो रहे थे कि इतने में सुग्रीव ने देखा कि वानरी सेना नरान्तक से भयभीत होकर इधर-उधर भाग रही है। भागती हुई सेना को देखने के बाद सुग्रीव ने देखा कि घोड़े की पीठ पर बैठा

दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥४३॥
गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः ।
भक्षयन्तं परबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥४४॥

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्तदा ।
अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान् ॥४५॥
शैलसंघात-संकाशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः ।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥४६॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन्वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि ॥४७॥
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ।

हाथ में भाला लिए नरान्तक आ रहा है। इसे देख कर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव ने पराक्रम में इन्द्र के समान राजकुमार वीर अङ्गद को कहा—"वीर! वह जो घोड़े पर सवार है, उस पर जावो, अपनी सेना को खाते हुए शत्रु-सैन्य को शीघ्र प्राणों से वियुक्त करो।"

तब राजा का आदेश सुन कर अङ्गद मेघ समान शत्रु-सेना के अन्दर से उसी प्रकार बाहर निकला जैसे कि प्रखर किरणों वाला सूर्य मेघ से बाहर निकला करता है। पर्वत-टीले के समान मजबूत, वानरों में उत्तम वालिपुत्र अङ्गद नरान्तक के समीप पहुंच कर उससे बोला—"नरान्तक! ठहरो, इन मामूली वानरों से तुम क्या करोगे? मेरी इस छाती पर वज्र-समान भाला चलाओ।"

अंगद के इस वचन को सुनकर नरान्तक क्रोध में भरा

संदश्य दशनैरोष्ठं निःश्वस्य च भुजंगवत् ॥४८॥
स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥४६॥
तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रस्तुरंगमस्याभिजघान मूर्ध्नि ॥५०॥
निमग्नपादः स्फुटिताक्षितारो निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसंनिकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥५१॥
नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हतं तुरंगं पतितं समीक्ष्य ।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥५२॥
अथाङ्गदो मुष्टिविशीर्णमूर्धा सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि संज्ञां समासाद्य विसिस्मिये च ॥५३

और दांतों से होंठ को चबा कर, भुजंग के समान फुंकारें छोड़ते हुए, निशाना तान, बलपूर्वक अंगद पर चमचमाता भाला छोड़ा। वह भाला वालिपुत्र की वज्रतुल्य छाती पर लग कर टूट गया और टुकड़े २ होकर भूमि पर गिर पड़ा।

तब गरुड़ द्वारा टुकड़े २ किए गए सांप के शरीर समान काटे गए उस भाले को देखकर अंगद ने तान कर चपत नरान्तक के घोड़े के सिर पर दे मारी। उस चपत के प्रहार से पर्वत-समान मजबूत घोड़े के पांव बैठ गए, आंख की पुतली फट गयी, जीभ बाहर निकल आयी, सिर बिखर गया और भूमि पर गिर पड़ा। तब भूतल पर गिरे मृत अश्व को देखकर नरान्तक को बड़ा क्रोध आया और मुक्का तान कर उस युद्ध में महाबली ने अंगद के सिर पर दे मारा। इससे उसका सिर फट गया, और खूब गर्म खून तेजी से बहने लगा। अंगद को और अधिक

अथाङ्गदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा नरान्तकस्योरसि वालिपुत्रः ॥५४॥
स मुष्टिनिर्भिन्न-निमग्नवक्षा ज्वाला वमञ्छोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात यथाऽचलो वज्रनिपातभग्नः ॥५५॥
तदान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां वनौकसां चैव महाप्रणादः ।
बभूव तस्मिन्निहतेऽग्र्यवीर्ये नरान्तके वालिसुतेन संख्ये ॥५६॥
अथाङ्गदो राममनःप्रहर्षणं सुदुष्करं तं कृतवान् हि विक्रमम् ।
विसिस्मिये सोऽप्यथ भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः॥५७

गुस्सा आया और बेहोश हो गया। थोड़ी देर बाद होश आया तो हैरान हुआ कि यह क्या हो गया ? तब महाबली वालिपुत्र अंगद ने वेग में मौत के समान गिरिशृंग तुल्य मुक्के को जोर से घुमा कर नरान्तक की छाती पर मारा। इससे नरान्तक की छाती मुक्के से फट कर बैठ गयी, ज्वाला सदृश लाल खून मुंह से उगलने लगा, शरीर खून से तर हो गया, और भूमि पर ऐसे गिर पड़ा जैसे कि वज्र से फटा पर्वत गिर पड़ता है। एवं, जिस समय वालिपुत्र ने युद्ध में प्रमुख वीर्यशाली नरान्तक को मार गिराया, तब मुखिया देवों तथा वानरों के महात हर्षनाद से आकाश गूंज उठा। दूसरी ओर, अंगद को यह देखकर विस्मय हुआ कि उसने किसप्रकार राम के मन को हर्षित करने वाला यह अत्यन्त कठिन पराक्रम कर लिया है। तब भीमकर्मा अंगद के अन्दर युद्ध के लिए और अधिक जोश उमड़ पड़ा।

हनुमान द्वारा देवान्तक और त्रिशिरा, तथा नील द्वारा महोदर, एवं ऋषभ द्वारा महापार्श्व का मारा जाना

नरान्तक को मारा हुआ देखकर राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक,

सर्ग ३८

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥१॥
आरूढो मेघसङ्काशं वारणेन्द्रं महोदरः ।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान् ॥२॥
भ्रातृव्यसनसन्तप्तस्तदा देवान्तको बली ।
आदाय परिघं घोरम् अङ्गदं समभिद्रवत् ॥३॥
रथमादित्यसङ्काशं युक्तं परमवाजिभिः ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्यगात् ॥४॥
स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत् समभिद्रुतः ।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥५॥
स वेगवान् महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः ।
तलेन समभिद्रुत्य जघानास्य महागजम् ।
पेततुर्नयने तस्य विननाश स कुञ्जरः ॥६॥

त्रिशिरा और पुलस्त्यवंशी महोदर अत्यन्त दुःखी हुए। तब वेगवान् महोदर मेघसदृश काले हाथी पर सवार हो महापराक्रमी अंगद पर चढ़ा कि भाई की मृत्यु से सन्तप्त बली देवान्तक घोर परिघ लेकर झपटा, और वीर त्रिशिरा बढ़िया घोड़ों से जुते आदित्य समान चमकीले रथ पर बैठकर वालिपुत्र पर टूटा। एवं, एकसाथ उन तीनों राक्षसश्रेष्ठों के चढ़ आने पर भी वह महातेजस्वी प्रतापी अंगद नहीं घबराया।

उस अजेय वेगवान् ने आगे बढ़कर महोदर के विशाल हाथी को बड़े जोर से चपत जमा कर मार डाला : उसकी आखें बाहर निकल पड़ी और वह चल बसा। इतने में महाबली अंगद

विषाणं चास्य निष्कृत्य वालिपुत्रो महाबलः ।
देवान्तकमभिद्रुत्य ताडयामास संयुगे ॥७॥
स विह्वलस्तु तेजस्वी वातोद्धूत इव द्रुमः ।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं महत् ॥८॥
अथाश्वस्य महातेजाः कृच्छ्राद् देवान्तको बली ।
आविध्य परिघं वेगादाजघान तदाङ्गदम् ॥९॥
परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥१०॥
तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह ॥११॥
ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः ।
हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥१२॥

ने उसका दांत निकाल झपट कर युद्ध में देवान्तक पर दे मारा। तेजस्वी देवान्तक वायु से उखाड़े गए वृक्ष की तरह हिल उठा, और लाक्षा-रस के रंग जैसा लाल खून बहुत बहा। तब कुछ दम लेकर महातेजस्वी बलवान् देवान्तक ने निशाना बांध कर बड़े जोर के साथ अंगद पर परिघ दे मारा। परन्तु वानरेन्द्र (वाली) का पुत्र अंगद परिघ से बुरी तरह घायल होने पर भी घुटनों के बल जमीन पर गिर कर फिर उठ खड़ा हुआ। वह वाली का पुत्र अभी उठा ही था कि त्रिशिरा ने उसके माथे पर तीन तीखे तिरछे बाण दे मारे।

तब हनुमान् और नील ने यह देखकर कि अंगद पर एक साथ तीन राक्षसवीर टूट पड़े हैं, उस ओर दौड़े। वहां पहुँच कर नील ने त्रिशिरा के सिर पर शैल-शृंग मारा कि उस बुद्धिमान्

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ।
तद्रावणसुतो धीमान् बिभेद निशितैः शरैः ॥१३॥
तद्बाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम् ।
सविस्फुलिङ्गं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥१४॥
स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तको बली ।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥१५॥
तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान् कपिकुञ्जरः ।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥१६॥
स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥१७॥
तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये महाबले संयति देवशत्रौ ।

रावण-पुत्र ने उसे तीखे वाणों से रास्ते में ही तोड़ गिराया। शिला का निचला भाग और ऊपरला भाग कट कर टुकड़े २ हो गया और वह शैल-शृंग चिनगारियां और ज्वालायें छोड़ता हुआ भूमि पर गिर पड़ा। (लोहे के वाणों के पत्थर पर जोर से लगने से चिनगारियां व ज्वालायें निकली)। उधर बलवान् देवान्तक ने जब यह देखा कि शैलशृंग फट गया है तो वह बड़ा खुश हुआ और युद्ध में हनुमान् पर परिघ लेकर टूटा। तब वानर-वीर हनुमान् ने अपने पर टूटते हुए देवान्तक को देखकर उसके सिर पर वज्र तुल्य मुक्का जड़ा। मुक्के की मार से देवान्तक का सिर फट गया, दांत-आंख बाहर उगल पड़े, जीभ बाहर लटक गयी और राक्षसराज-पुत्र प्राणहीन होकर एकदम भूमि पर गिर पड़ा।

इसप्रकार युद्ध में देवों के शत्रु तथा महाबली मुख्य राक्षस-

क्रुद्धस्त्रिशीर्षा निशितास्त्रमुग्रं ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥१८॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव ॥१९॥

ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योपर्यपातयत् ।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रं स गर्जन्निव तोयदः ॥२०॥

ततः शरौघैरभिवृष्यमाणो विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ।
नीलो बभूवाथ विसृष्टगात्रो विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥२१॥

ततस्तु नीलः प्रतिलब्धसंज्ञः शैलं समुत्पाट्य सवृक्षखण्डम् ।
ततः समुत्पत्य महोग्रवेगो महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥२२॥

ततः स शैलाभिनिपातभग्नो महोदरस्तेन महाद्विपेन ।
व्यामोहितो भूमितले गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥२३॥

योद्धा देवान्तक के मारे जाने पर त्रिशिरा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और नील की छाती पर तीखे बाणों की तीव्र झड़ी लगा दी। उधर महोदर ने भी प्रकुपित होकर मन्दराचल (अस्ताचल) पर आरूढ़ सूर्य के समान, पर्वत तुल्य उच्च हाथी पर पुनः सवार होकर नील की छाती पर बाण-वृष्टि प्रारम्भ की। उस समय ऐसा लगता था कि गर्जता हुआ मेघ पहाड़ पर विद्युत-चक्र-वज्र की वर्षा कर रहा है। एवं, त्रिशिरा तथा महोदर द्वारा एक साथ कपि-सैन्यपाल नील के ऊपर बाणों की झड़ी लग जाने पर उस का शरीर छिद गया और शिथिल पड़ा, तथा उसे महाबली महोदर ने मूर्छित कर दिया। कुछ देर बाद जब नील स्वस्थ हो गया, तो उसने एक साथ पेड़ और शिला को उखाड़ा, तेजी करके महोदर पर टूटा, और उसके सिर पर दे मारा। तब उस शैलप्रहार से महागज सहित महोदर चूर २ हो गया और मूर्छित एवं प्राणविहीन होकर

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ।
हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥२४॥
स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥२५॥
तद् व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं तदा कपिः ।
विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥२६॥
तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् ।
त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥२७॥
हनूमांस्तु समुत्पत्य हयं त्रिशिरसस्तदा ।
विददार नखैः क्रुद्धो नागेन्द्रं मृगराडिव ॥२८॥
अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः ।

पृथिवी पर गिर पड़ा ऐसे जैसे कि कोई पहाड़ वज्र-प्रताड़ित होकर गिर पड़ा हो ।

चाचा को मारा गया देखकर त्रिशिरा ने धनुष पकड़ा और गुस्से में भर कर तीखे-बाणों से हनुमान् को बींधना शुरु किया । इस पर प्रकुपित होकर हनुमान् ने त्रिशिरा पर शैल-शृंग फैंका, पर बली त्रिशिरा ने उसे तीखे बाणों से रास्ते में ही काट गिराया । तब हनुमान् ने शैल-शृंग का प्रहार व्यर्थ गया देख कर रावण-पुत्र पर वृक्ष की वर्षा की । पर, प्रतापी त्रिशिरा ने उस वृक्ष-वर्षा को आते देख कर आकाश में ही तीखे बाणों से काट गिराया और हर्ष-नाद किया । इस पर हनुमान् झपटा और क्रुद्ध होकर जैसे शेर हाथी को नखों से फाड़ देता है वैसे, व्याघ्र-नखों से त्रिशिरा के घोड़े को फाड़ दिया । तब रावण-पुत्र त्रिशिरा ने शक्ति लेकर हनुमान् पर ऐसे दे मारी, जैसे कि मौत काल रूपी रात्रि को

चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥२९॥
दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसंगताम्।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥३०॥
तां दृष्ट्वा घोरसङ्काशां शक्तिं भग्नां हनूमता।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा यथा ॥३१॥
ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः।
निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥३२॥
खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मारुतात्मजः।
आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥३३॥
स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥३४॥
स तस्य पततः खड्गं तमाच्छिद्य महाकपिः।
ननाद गिरिसङ्काशस्त्रासयन् सर्वराक्षसान् ॥३५॥

दे मारती है। परन्तु वानर-केसरी ने आकाश से गिरे वज्र की तरह उस असामयिक शक्ति को बीच में ही पकड़ कर तोड़ दिया और हर्ष-नाद किया। हनुमान् ने उस भयानक शक्ति को तोड़ दिया है, यह देखकर वानर लोगों ने हर्षित हो मेघ के समान नाद गुंजाया।

तब राक्षसश्रेष्ठ त्रिशिरा ने खड्ग उठाया और हनुमान् की छाती पर चुभो दिया। इसपर वीर्यवान् मारुत-पुत्र हनुमान् ने खड्ग-प्रहार से घायल होकर त्रिशिरा की छाती पर लात जमायी। उस लात के प्रहार से त्रिशिरा के हाथ से खड्ग जमीन पर छूट गया, और वह महातेजस्वी प्राण विसर्जन करके नीचे गिर पड़ा। उसके गिरते ही पर्वतसमान वीर वानर ने उस खड्ग को पकड़

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा युद्धोन्मत्तं तथैव च ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥३६॥
चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा ॥३७॥
हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम् ।
विराजमानां विपुलां शत्रुशोणिततर्पिताम् ॥३८॥
तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ।
ऐरावत–महापद्म–सार्वभौम–भयावहाम् ॥३९॥
गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥४०॥
अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् ।

कर तोड़ दिया और सब राक्षसों को भयभीत करते हुए हर्षनाद गुंजाया।

त्रिशिरा तथा महोदर, और अजेय देवान्तक तथा नरान्तक को मारे गए देखकर अत्यन्त असहिष्णु राक्षसश्रेष्ठ महापार्श्व को गुस्सा आया और संपूर्णतः लोहे की बनी चमचमाती गदा को पकड़ा, जिस पर कि सोने की पत्ती मढ़ी हुई थी, मांस-मिश्रित खून से फूलने वाली थी, बहुत बड़ी थी, दुश्मनों के खून की प्यासी थी, अग्रभाग तेज से विशेष चमचमाता था, लालरंग की माला से विभूषित थी, और ऐरावत महापद्म तथा सार्वभौम नस्ल के हथियों को भी दहलाने वाली थी। प्रकुपित राक्षसश्रेष्ठ महापार्श्व इस गदा को लेकर वानरों पर ऐसा टूटा जैसे कि प्रलय-कालीन जलती हुई अग्नि हुआ करती है। तब बलवान् ऋषभ वानर कूदा, और रावण के छोटे भाई महापार्श्व सेनापति के

मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥४१॥
तं पुरस्तात्स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥४२॥
स तयाऽभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥४३॥
स सम्प्राप्य चिरात्संज्ञामृषभो वानरेश्वरः ।
अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः ॥४४॥
तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनःपुनः ।
मत्तानीकं महात्मा स जघान रणमूर्धनि ॥४५॥
स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ।
निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥४६॥
विशीर्णनयनो भूमौ गतसत्त्वो गतायुषः ।
पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥४७॥

समीप पहुँच कर उसके आगे जा डटा। क्रुद्ध महापार्श्व ने पर्वत जैसे उस वानर को अपने मुकाबले में खड़ा हुआ देखकर वज्र जैसी गदा से उसकी छाती पर प्रहार किया। महापार्श्व द्वारा उस गदा से प्रताड़ित उस वानरश्रेष्ठ की छाती फट गयी, शरीर विचलित हो उठा, और बहुत सा खून बहा। कुछ देर बाद जब वानर-सेनापति ऋषभ को चेतना आयी, तो वह उस महाबली की गदा लेने को झपटा। उसकी भयंकर गदा को लेकर महाबली ऋषभ ने सेनापति महापार्श्व का बार २ निशाना बांधा और उसके सिर पर दे मारी। उस अपनी ही गदा के प्रहार से महापार्श्व के दांत टूट गये, आंख फट गयी, और वज्राहत पर्वत की भांति जमीन पर गिर पड़ा। एवं, जब वह भूमि पर गिर पड़ा

सर्ग ३६

स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं लोमहर्षणम् ।
भ्रातृंश्च निहतान् दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥१॥
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे संनिपातितौ ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसोत्तमौ ॥२॥
चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसङ्काशो देव-दानव-दर्पहा ॥३॥
स भास्करसहस्रस्य सङ्घातमिव भास्वरम् ।
रथमारुह्य शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥४॥
स विस्फार्य तदा चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ।
नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥५॥

तो वह आंख-फटा निर्जीव होकर मर गया, तथा उस राक्षस के गिर पड़ने पर राक्षसी सेना भाग खड़ी हुई ।

लक्ष्मण द्वारा अतिकाय का बध

अपनी सेना को घबरायी हुई, शत्रुपक्ष के उच्च हर्ष-नाद, तथा पराक्रम में इन्द्रसमान भाइयों का मारा जाना देखकर, और युद्ध में दोनों चाचाओं के बध को देख कर, जोकि महोदर तथा महापार्श्व दोनों भाई वीर राक्षस थे, महातेजस्वी अतिकाय अत्यन्त कुपित हुआ । यह युद्ध में परमात्मा का उत्कृष्ट वर पाया हुआ था, पर्वतसमान विशालकाय था, और देवों-दानवों के दर्प को दलन करने वाला था । वह इन्द्र-शत्रु अनेकों सूर्यों के समूह-समान चमकीले रथ पर सवार होकर वानरों पर झपटा । कानों में कुण्डल पहिने, और सिर पर मुकुट धारे उसने महाधनुष की टंकार लगायी और अपना नाम सुनाते हुए सिंह-नाद किया ।

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥६॥

तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ।
अभिपेतुर्महात्मानः प्रधाना ये वनौकसः ॥७॥

कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥८॥

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः कनकभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥९॥

तांश्चैव सर्वान् स हरीञ्छरैः सर्वायसैर्बली ।
विव्याधाभिमुखान्संख्ये भीमकायो विशारदः ॥१०॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण भिन्नगात्राः पराजिताः ।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महाहवे ॥११॥

एवं, उसने उस सिंह-नाद से, नाम सुनाने से, और भयंकर धनुष की टंकार से वानरों को भयभीत कर दिया ।

रथ पर स्थित रथी-श्रेष्ठ भीमकाय अतिकाय को देखकर प्रमुख बलवान् उस पर पिल पड़े । कुमुद, द्विविद, मैन्द, नील, और शरभ एक साथ वृक्षों और गिरि-शृंगों को लेकर उस पर टूट पड़े । अस्त्रवेत्तायों में श्रेष्ठ महातेजस्वी अतिकाय ने सुवर्ण-भूषित वाणों से उन वृक्षों और गिरि-शृंगों को काट गिराया । और फिर, भीमकाय, दक्ष तथा बली अतिकाय ने सन्मुख आये हुये उन सब वानरों को लोहमय वाणों से बींध दिया । अतिकाय की वाण-वर्षा से वे पीड़ित हो गए थे, शरीर छलनी बन गया था, और पराजित हो गए थे । वे युद्ध में अब उसका मुकाबला करने में असमर्थ थे ।

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥१२॥
पूरयन् स महीं सर्वामाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन् रजनीचरान् ॥१३॥
सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा प्रतिभयं तदा ।
विसिस्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥१४॥
तदातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥१५॥
बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ।
गच्छ किं कालसङ्काशं मां योधयितुमिच्छसि ॥१६॥
नहि मद्बाहुसृष्टानां बाणानां हिमवानपि ।

तब क्रुद्ध होकर लक्ष्मण आगे बढ़ा, तरकस से बाण निकाला और अतिकाय के सामने महाधनुष को जोर से ऐसा खींचा कि संपूर्ण पृथिवी आकाश समुद्र और दिशाओं को भरपूर करता हुआ, तथा राक्षसों को भयभीत करता हुआ लक्ष्मण का तीव्र ज्या-शब्द (धनुष की टंकार) गूंजा। तब लक्ष्मण की भयावह धनुष-टंकार को सुनकर रावण का पुत्र महातेजस्वी बली विस्मित हुआ कि हैं ! यह किस की टंकार है ? इतने में प्रकुपित अतिकाय ने आगे खड़े लक्ष्मण को देखकर तीखा बाण संभाल उसे कहा—

"लक्ष्मण ! तू अभी बालक है, और युद्धविद्या में भी कच्चा है, इसलिए जा भाग जा, तू मौत के रूप में विद्यमान मुझ से क्यों युद्ध मोल ले रहा है ? मेरी भुजाओं द्वारा छोड़े गये बाणों के वेग को हिमालय आकाश पृथिवी कोई नहीं सह सकता।

सोढुमुत्सहते वेगम् अन्तरिक्षमथो मही ॥१७॥
सुखप्रसुप्तं कालाग्निं विबोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्व प्राणान्न जहि मद्गतः ॥१८॥
अथवा त्वं प्रतिस्तब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥१९॥
पश्य मे निशितान् बाणान् रिपुदर्पनिषूदनान् ।
ईश्वरायुधसंकाशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥२०॥
एष ते सर्पसंकाशो बाणः पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ।
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि सन्दधे ॥२१॥
श्रुत्वातिकायस्य वचः सरोषं सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स संचुकोपातिबलो मनस्वी उवाच वाक्यं च ततो बृहच्छ्रीः ॥२२॥

तू सुख से सोयी हुई मौत रूपी अग्नि को जगाना चाहता है। इसलिए धनुष को फैंक कर लौट जा, मुझ से भिड़ कर प्राणों को मत खो। परन्तु यदि तू घमण्ड में आकर नहीं लौटना चाहता, तो ठहर, प्राणों को तजकर यमलोक पहुँचेगा। देख, इन तीखे बाणों को, ये दुश्मन के दर्प को दलन करने वाले हैं, साक्षात् ईश्वर के अमोघ आयुध हैं, और तपे सोने से विभूषित हैं। यह सर्पतुल्य बाण तेरे खून को पीयेगा, जैसे कि क्रुद्ध शेर हाथी के खून को पीता है।" ऐसा कह कर प्रकुपित हो उसने धनुष पर बाण चढ़ाया।

राजपुत्र लक्ष्मण युद्ध में अतिकाय के इसप्रकार रोष एवं गर्व परिपूर्ण वचन को सुनकर क्रोध में भरा, और महाबली, मनस्वी तथा अत्यन्त कान्तिमान् ने प्रत्युत्तर में कहा—

कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥२३॥
सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।
शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥२४॥
ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।
मारुतः कालसंयुक्तं वृन्तात्तालफलं यथा ॥२५॥
अद्य ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।
पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥२६॥
बालोऽयमिति विज्ञाय न चावज्ञातुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥२७॥
लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ।
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥२८॥

"अरे ! कर्म से अपने को दर्शा, व्यर्थ में बढ़ाई मत बघार। जो पौरुष से युक्त होता है, वह ही शूर माना गया है। तू सब प्रकार के आयुधों से संपन्न है, धनुर्धारी है, और रथ पर सवार है, तू बाणों से और यदि चाहे तो अस्त्रों से भी पराक्रम को दर्शा। तेरे उस पराक्रम को देख कर तब मैं तेरे सिर को तीखे बाणों से ऐसे गिराऊंगा, जैसे कि हवा पके हुए नारियल-फल को डण्डी से गिरा देती है। आज मेरे तपे सोने से विभूषित बाण तेरे शरीर में से, उन्हीं द्वारा किए घावों से, निकले खून को पीयंगे। यह बालक है, यह समझ कर तू मेरे से लापरवाह मत हो। मैं चाहे बालक हूं चाहे बूढ़ा हूं, तू मुझे युद्ध में अपनी मौत समझ।"

लक्ष्मण के इस युक्तियुक्त तथा अर्थ-परिपूर्ण उत्तर को

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥२९॥
तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥३०॥
तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् ।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान्समादधे ॥३१॥
ताञ्छरान् सम्प्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
तानप्राप्ताञ्छितैर्बाणैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥ ३॥
स ताञ्छित्वा शितैर्बाणैर्लक्ष्मणः परवीरहा ।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥३३॥
तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च सायकम् ॥३४॥

सुनकर अतिकाय आग-बबूला हो गया और तीखा बाण संभाला। एवं, प्रकुपित अतिकाय ने बाण को धनुष पर चढ़ा आकाश को छोटा करते हुए अर्थात बड़े वेग से लक्ष्मण पर छोड़ा। पर शत्रु-वीर-हन्ता लक्ष्मण ने उस आते हुए विषधर सर्प जैसे तीखे बाण को अर्ध-चन्द्राकार बाण से काट गिराया। गरुड़ द्वारा टुकड़े २ किए गए सर्प के समान उस कटे बाण को देखकर अतिकाय राक्षस अत्यन्त प्रकुपित हुआ और एक साथ पांच बाण चिल्ले पर चढ़ा कर लक्ष्मण पर छोड़े। परन्तु भरत के छोटे भाई ने उन्हें बीच में ही तीखे बाणों से काट गिराया। एवं, उन्हें काट कर शत्रुवीर-हन्ता पराक्रमी लक्ष्मण ने चमचमाता तीखा बाण लिया, धनुपश्रेष्ठ पर चढ़ाया, वेग से खींचा, और दुश्मन पर ऐसा छोड़ा कि पूरा तान कर फैंके हुए उस तिरछे बाण ने अतिकाय के

पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठम् आजघान स वीर्यवान् ॥३५॥
स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥३६॥
राक्षसः प्रचकम्पेऽथ लक्ष्मणेषुप्रपीडितः ।
रुद्रबाणहतं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥३७॥
चिन्तयामास चाश्वस्य विमृश्य च महाबलः ।
साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥३८॥
विधायैवं विदार्यास्यं विनम्य च महाभुजौ ।
स रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार ह ॥३९॥
एवं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान् राक्षसर्षभः ।

माथे को बींध दिया। वह बाण भीम राक्षस के माथे के अन्दर धंस गया। उस समय वह खून-सना बाण ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो सांप पर्वत के अन्दर घुसा बैठा हो। लक्ष्मण के बाण से प्रपीडित अतिकाय ऐसे हिल उठा जैसे कि रुद्र राजा के बाण से त्रिपुर असुर की नगरी का मुख्य बड़ा फाटक हिल उठा था।

महाबली ने अपने को सचेत किया, कुछ सोचा और अगले कर्तव्य का निश्चय किया। उसने विशाल बाहुओं को झुकाया और मुंह फाड़ कर उच्चस्वर से लक्ष्मण को कहा—"शाबाश! अच्छा बाण छोड़ा, तुम मेरे शत्रु होते हुए भी प्रशंसा के योग्य हो।" इसप्रकार कह कर राक्षसश्रेष्ठ अतिकाय रथ पर बैठकर युद्ध भूमि में विचरने लगा, और रथ पर बैठे ही बैठे तीन-चार-सात बाणों को एक साथ ले, चिल्ले पर चढ़ा,

आददे सन्दधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥४०॥
ते बाणाः कालसंकाशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः ।
हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥४१॥
ततस्तान् राक्षसोत्सृष्टाञ्छरौघान् राघवानुजः ।
असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥४२॥
अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ।
अभ्यवर्षत संक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥४३॥
तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रमर्दितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥४४॥
तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा विक्षिप्ताम्बरभूषणम् ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥४५॥

धनुष को पूरा तान लक्ष्मण पर फैंकना प्रारम्भ किया। राक्षस-सेनापति के धनुष से छुटे उन कालरूपी सुवर्ण पुंख वाले चमचमाते बाणों ने आकाश को जगमगा सा दिया। तब राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने राक्षस द्वारा छोड़े गए उन बाण-समूहों को बिना घबराए बहुत से तीखे बाणों से काट दिया। और फिर, क्रोध में भर कर उसने रावण-पुत्र पर धारा-रूप में बाणों की ऐसी झड़ी लगा दी, जैसे कि मेघ धारा-रूप में वर्षा करता है। तब लक्ष्मण के बाणों से छलनी हुआ अतिकाय का सिर मुकुट सहित धड़ाम से पृथिवी पर ऐसे गिर पड़ा, जैसे कि हिमालय की चोटी गिर पड़ी हो। तब बिखरे वस्त्रों व बिखरे आभूषणों वाले उस को भूमि पर पड़ा देख कर बाकी के सब राक्षस अत्यन्त दुःखी हुए।

इन्द्रजित् द्वारा मुखियायों व राम-लक्ष्मण का अधमरा किया जाना

रावण ने जब एकदम सुना कि वे सब के सब छै वीर

सर्ग ४०

ततो हतांस्तान्सहसा निशम्य राजा महावाष्पपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं विचिन्त्य राजा विपुलं प्रदध्यौ ॥१॥
ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं शोकार्णवे सम्परिपुप्लुवानम् ।
रथर्षभो राक्षसराजसूनुस्तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे ॥२॥
न तात मोहं परिगन्तुमर्हसे यत्रेन्द्रजिज्जीवति नैर्ऋतेश ।
नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्प्राणान्समर्थः समरेऽभिपातुम् ॥३॥
पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ।
गतायुषं भूमितले शयानं शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ॥४॥
इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन सन्तर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥५॥

मारे गए हैं, तो टप २ आंसु गिरने लगे। चारों पुत्रों और दोनों भाईयों के भयावह वध को सोच कर वह गहरे सोच में पड़ गया। तब रथीश्रेष्ठ राजपुत्र इन्द्रजित् ने राजा को दीन तथा शोकसागर में डूबा हुआ देखकर कहा—"राक्षसराज पिता जी! जब तक इन्द्रजित् जीता है, आपको सोच में न पड़ना चाहिए, क्योंकि इन्द्रशत्रु इन्द्रजित् के वाणों से बींधा गया कोई योद्धा प्राणों को वचाने में समर्थ नहीं हो सकता। पिता जी! आप आज देखिये कि लक्ष्मण सहित राम का देह मेरे वाणों से कट कर विखरा पड़ा है, वह जीवन-विहीन होकर भूमि पर सोया पड़ा है, और उसके समस्त अंग-प्रत्यंग में वाण गड़े पड़े हैं। इन्द्रशत्रु! आप पौरुष तथा प्रभुप्रसाद के बल से युक्त मेरी इस सुनिश्चित प्रतिज्ञा को सुनिए कि मैं आज ही अमोघ वाणों से लक्ष्मण सहित राम को तृप्त कर दूंगा।"

स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रुरापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः ।
समारुरोहानिलतुल्यवेगं रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम् ॥६॥

समास्थाय महातेजा रथं हरिरथोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिन्दमः ॥७॥

तं प्रस्थितं महात्मानम् अनुजग्मुर्महाबलाः ।
संहर्षमाणा बहवो धनुःप्रवरपाणयः ॥८॥

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिन्दमः ।
स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥९॥

रावणिस्तु सुसंक्रुद्धस्तान्निरीक्ष्य निशाचरान् ।
हृष्टा भवन्तो युध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥१०॥

इसप्रकार कह कर देवराज के शत्रु विशिष्ट पराक्रमी इन्द्रजित् ने रावण से आज्ञा ग्रहण की और वायु के समान तीव्र वेगवाले रथ पर सवार हो गया, जिसमें कि बढ़िया खच्चरें जुती हुईं थी और जिस पर दुश्मनों को (सम् आधि) तीव्र पीड़ा पहुंचाने वाले शस्त्रास्त्र रखे हुए थे। एवं, महातेजस्वी रिपुदमन इन्द्रजित् सूर्यरथ जैसे चमकते रथ पर सवार होकर झटपट उधर चल पड़ा जहां कि युद्ध हो रहा था। उस महावीर के प्रस्थित होने पर उसके पीछे बहुत से महाबली हाथों में धनुष लिए हुए और खुशियां मनाते हुए चले।

महातेजस्वी अरिमर्दन इन्द्रजित् ने युद्ध भूमि में पहुंचकर अपने रथ के चहुं ओर राक्षसों को तैनात किया, और उनका निरीक्षण करके क्रोध पूर्वक रावण-पुत्र ने उन्हें कहा—"वानरों के बध की अभिलाषा से आप लोग पुलकित-गात्र होकर युद्ध करें।"

इन्द्रजित् की इस आज्ञा को पाकर उन सब के सब विजय-

ततस्ते राक्षसाः सर्वे गर्जन्तो जयकाङ्क्षिणः ।
अभ्यवर्षंस्ततो घोरान् वानराञ्छरवृष्टिभिः ॥११॥
स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
रक्षोभिः संवृतः संख्ये वानरान् विचकर्ष ह ॥१२॥
ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः ।
अभ्यवर्षन्त सहसा रावणिं शैलपादपैः ॥१३॥
इन्द्रजित्तु तदा क्रुद्धो महातेजा महाबलः ।
वानराणां शरीराणि व्यधमद्रावणात्मजः ॥१४॥
शरेणैकेन च हरीन् नव पञ्च च सप्त च ।
विभेद समरे क्रुद्धो राक्षसान् सम्प्रहर्षयन् ॥१५॥
हनूमन्तं च सुग्रीवम् अङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्ववन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥१६॥
मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गवयं तथा ।

कांक्षी राक्षसों ने गरजते हुए बहादुर वानरों पर बाणवृष्टि की झड़ी लगा दी। इधर राक्षसों को साथ ले इन्द्रजित् ने युद्ध में वानरों को बन्दूकों, बाणों, गदाओं और मूसलों से घायल कर दिया। तब युद्ध में मारे जा रहे वृक्षायुधी वानरों ने इन्द्रजित् पर बड़े जोर से पत्थरों और वृक्षों की वर्षा करनी प्रारम्भ की। इसपर महा-तेजस्वी महाबली इन्द्रजित् ने गुस्से में भर कर वानरों के शरीर बींधने शुरु किए। उसने युद्ध में प्रकुपित होकर राक्षसों को हर्षित करते हुए एक-एक बाण से एकसाथ सात, पांच, नौ वानरों को बींध दिया: उसने एक बाण से हनुमान् सुग्रीव अंगद गन्धमादन जाम्बवान् सुषेण वेगदर्शी इन सात को, एक बाण से मैन्द द्विविद नील गवाक्ष गवय इन पांच को, और एक बाण से केसरि

केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥१७॥
सूर्याननं ज्योतिर्मुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥१८॥
प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः ॥१९॥
स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्निर्भिद्य बाणैस्तपनीयवर्णैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥२०॥
ततस्तु ताविन्द्रजितोऽस्त्रजालैर्बभूवतुस्तत्र तदा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विषादयित्वा ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः ॥२१॥
ततस्तदा वानरसैन्यमेवं रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन ।
निषूदयित्वा सहसा विवेश पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥२२॥
संस्तूयमानः स तु यातुधानैः पित्रे च सर्वं हृषितोऽभ्युवाच ॥२३॥

हरिलोम विद्युद्दंष्ट्र सूर्यानन ज्योतिमुख दधिमुख पावकाक्ष नल कुमुद इन नौ वानरों को बींध डाला। और फिर, दूसरे सब वानरवीरों को उसने खूब सोच-विचार कर आवश्यकतानुसार खड्गों, त्रिशूलों या तीखे बाणों से बींधा।

एवं, गदाओं, बाणों तथा चमचमाते खड्गों से वानरदल के मुखियाओं को बींध कर इन्द्रजित् ने सूर्य की प्रखर किरणों जैसे बाणों की तीव्र झड़ी राम और लक्ष्मण पर लगादी। इसपर वे दोनों इन्द्रजित् के बाण-जालों से अधमरे हो गए। तब इन्द्रजित् ने युद्ध में उन दोनों को विषादयुक्त बना कर मारे हर्ष के जय-नाद गुंजाया, और इसप्रकार वानरी सेना तथा राम-लक्ष्मण को युद्ध में परास्त करके तत्क्षण दसों दिशाओं को निगलने वाले रावण की भुजाओं से सुरक्षित नगरी में चला गया। वहां पहुंचने पर

सर्ग ४१

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे मुमोह सैन्यं हरियूथपानाम् ।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्ववन्तो न चापि किंचित्प्रतिपेदिरे ते ॥१॥
ततो विषण्णं समवेद्य सर्वं विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरानाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥२॥
मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ ।
तन्मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥३॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा हनूमन्तं स जाम्बवान् ।

राक्षसों ने उसकी खूब बढ़ाई की और खुशी २ उसने पिता को सब वृत्तान्त कह सुनाया ।

राम-लक्ष्मण के घाव व मूर्छा हनुमान् द्वारा हिमालय से लायी गयी महौषधियों से जाते रहे

राम और लक्ष्मण के इसप्रकार युद्ध में मूर्छित हो जाने पर वानर-यूथपतियों की सेना किंकर्तव्य विमूढ़ हो गयी, यहां तक कि सुग्रीव नील अंगद जाम्बवान् जैसे मुखिया भी कुछ न समझ पाये कि क्या किया जावे। तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण ने उन सब को विषाद में पड़े हुए देखकर सुग्रीव आदि वीरों को कालोचित शब्दों से धीरज बंधाते हुए कहा—"आप लोग भयभीत मत होवें, इस मूर्छा में विषाद की कोई बात नहीं, क्योंकि ये घायल आर्यपुत्र शत्रु के चंगुल में नहीं पड़े, इसलिए यद्यपि राजपुत्र युद्ध में गिरा दिये गये हैं, परन्तु ये अवश्य दुश्मनों को स्तम्भित (आश्चर्यचकित, मान धातु स्तम्भार्थक है) करेंगे। इसलिए यहां विषाद का कौन सा अवसर है ?"

विभीषण के ऐसा कहने पर महातेजस्वी जाम्बवान् हनुमान्

आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥४॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ।
त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कंचन ॥५॥
ऋक्षवानरवीराणाम् अनीकानि प्रहर्षय ।
विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥६॥
गत्वा परममध्वानम् उपर्युपरि सागरम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनूमन् गन्तुमर्हसि ॥७॥
ततः काञ्चनमत्युग्रमृषभं पर्वतोत्तमम् ।
कैलासशिखरं चात्र द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥८॥
तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥९॥

से बोला—"वानरकेसरी ! आवो, वानरों की रक्षा करो । हनुमान् ! एक तो तुम इन वानरों के परम मित्र हो, और दूसरे, इस रक्षा के करने में तुम्हारे में पराक्रम भी पर्याप्त है, वैसा पराक्रम अन्य किसी में नहीं । तुम्हारे पराक्रम का यह समय है, इस में मैं अन्य किसी को उपयुक्त नहीं देखता । तुम ऋक्षों और वानरों के वीरों की सेना को आनन्दित करो, और इन मूर्छित राम-लक्ष्मण के घावों को भी दूर करो । हनुमान् ! तुम सागर के ऊपर ही ऊपर आकाश में बहुत लम्बा रास्ता तै करके पर्वतश्रेष्ठ हिमालय पर जावो । अरिदमन ! वहां तुम्हें एक ओर अत्यन्त ऊंची काञ्चन या ऋषभ नाम की उत्तम चोटी दीखेगी, और दूसरी ओर कैलास चोटी दीखेगी । उन दोनों चोटियों के मध्यवर्ती प्रदेश में वीर ! तुम अनुपम छटा वाले चमकते हुए सर्वौषध-भण्डार औषधि-पर्वत को देखोगे । वानरकेसरि ! उस पर्वत के ऊपर पैदा हुई तुम

तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवाः ।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्तीर्दिशो दश ॥१०॥
मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ।
सुवर्णकरणीं चैव सन्धानीं च महौषधीम् ॥११॥
ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥१२॥
श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः ।
आपूर्यत बलोद्धर्षैर्वायुवेगैरिवार्णवः ॥१३॥
आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतश्रमः ।
हनूमांस्त्वरितो वीरः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥१४॥
जवेन महता युक्तो मारुतिर्वातरंहसा ।
जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन नादयन् ॥१५॥
स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्भीमविक्रमः ।

चार औषधियें देखोगे, जोकि चमकती रहती हैं और दसों दिशाओं को चमकाती रहती हैं। वे महौषधियां मृतसंजीवनी, विशल्य-करणी, सुवर्णकरणी और संधानी हैं। (अर्थात् मरे हुए को जिलाने वाली, घावों को भरने वाली, देह के सौन्दर्य को लाने वाली, तथा टूटी हड्डियों आदि को जोड़ने वाली)। पवनपुत्र हनुमान्! उन सब को लेकर तुम शीघ्र आवो, और इनके द्वारा इन्हें प्राणों से जोड़कर वानरों को धीरज बंधायो।"

जाम्बवान् का आदेश पाकर पिता के समान पराक्रमी वीर हनुमान् विना थके तुरन्त आकाश मार्ग से चल पड़ा। आकाश मार्ग से जब हरिशार्दूल हनुमान् वायु जैसी तीव्र गति से गया, ता दिशायें शब्द से गूंज उठी। भीमविक्रमी महाकपि

ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥१६॥
स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन् मारुतात्मजः ॥१७॥
महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥१८॥
स ता महात्मा हनुमानपश्यंश्चुकोप रोषाच्च भृशं ननाद ।
अमृष्यमाणोऽग्निसमानचक्षुर्महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥१९॥
किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते यद्राघवे नासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो विकीर्णमात्मानमथो नगेन्द्रः ॥२०॥
स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।

मारुति जाम्बवान् की बात को ध्यान में रख कर जल्दी ही हिमालय पर पहुँच गया, और लम्बा मार्ग तै करके दिव्यौषधि वाले पर्वत पर औषधियों की तलाश में घूमने लगा। परन्तु उन चारों महौषधियों को वह आया हुआ अभिलाषी पहिचान नहीं पाया।

महाबुद्धिमान् हनुमान् जब उन महौषधियों को नहीं पहिचान पाया, तो वह तिलमिलाया और तिलमिला कर जोर से पुकारा कि कोई हो तो इन महौषधियों का पता दे दे, परन्तु कोई नहीं दीख पड़ा। तब उस असफलता को न सह कर तेजस्वी नेत्रों वाला हनुमान् औषधि-पर्वत को सामने रखकर बुड़बुड़ाया कि क्या इस पर्वत ने यही पक्का निश्चय कर रखा है कि राम पर कृपा नहीं की जावेगी। अच्छा, मैं औषधि-पर्वत को ही उखाड़ ले जाऊंगा। यह सोच कर उसने उस प्रदेश के समस्त चमकने वाले पौदों तथा पौदों पर चढ़ी बेलों को पकड़ा और जोर

विकीर्णकूटं ज्वलिताग्रसानुं प्रगृह्य वेगात्सहसोन्ममाथ ॥२१॥
स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात जगाम वेगाद् गरुडोग्रवेगः ।
ततो महात्मा निपपात तस्मिञ्छैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ॥२२॥
हर्युत्तमेभ्यः शिरसाभिवाद्य विभीषणं तत्र च सस्वजे सः ॥२३॥
तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।
बभूवतुस्तत्र तदा विशल्यावुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥२४॥

सर्ग ४२

विशल्यौ च महात्मानौ तावुभौ रामलक्ष्मणौ ।
असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी वरे ॥१॥

से झटका देकर सुनहरे किस्म के पत्र-पुष्पों व अन्य अनेक प्रकार के बीजों आदि सहित उखाड़ लिया। इसप्रकार उस प्रदेश के समस्त औषधि-खण्ड को उखाड़ कर हनुमान् आकाश में चढ़ गया और गरुड़ के तीव्र वेग के समान बड़ी तेजी से चल पड़ा। तत्पश्चात् वह महापुरुष युद्धभूमि के टीले पर वानरी सेना के बीच आकाश से नीचे उतरा, और बूढे वानरों को सिर से प्रणाम करके विभीषण से गले मिला।

तब वे दोनों राजपुत्र राम और लक्ष्मण उन महौषधियों की गन्ध को सूंघ कर घावरहित हो गए, और इसीप्रकार दूसरे वानर-वीर भी उठ खड़े हुये।

राम द्वारा लंका के मुख्य द्वार को गिराने तथा दूसरे द्वारों पर एकसाथ धावा बोलने पर रावण का कुम्भ-निकुम्भ के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ तथा कंपन को भेजना

तब महाबली राम-लक्ष्मण दोनों ने स्वस्थ होते ही सावधान हो बढ़िया धनुष पकड़ लिए। पकड़ कर राम ने धनुष को ताना

ततो विस्फारयामास रामश्च धनुरुत्तमम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः ॥२॥
अशोभत तदा रामो धनुर्विस्फारयन् महत् ।
भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ॥३॥

उद्‌घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निःस्वनम् ।
ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावति रामस्य शुश्रुवे ॥४॥

वानरोद्‌घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निःस्वनः ।
ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप दिशो दश ॥५॥
तस्य कार्मुकनिर्मुक्तैः शरैस्तत् पुरगोपुरम् ।
कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमभवद् भुवि ॥६॥
ततो रामशरान् दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ।

कि राक्षसों को दहलाने वाला तुमुल नाद गूंज उठा। उससमय महाधनुष को ताने हुए राम ऐसे शोभायमान हो रहे थे, जैसे कि तेज-यश आदि ऐश्वर्यों से युक्त राजा शिव क्रोध में भर कर धनुर्वेद के अनुसार बने धनुष को तान कर शोभायुक्त हुये थे। राम के धनुष की टंकार इतनी ऊंची थीं कि वह वानरों के हर्ष-घोष और राक्षसों के सिंह-गर्जन, इन दोनों को दबाकर सुनाई पड़ रही थी। (तौ उभौ शब्दौ अतिक्रम्य रामस्य ज्याशब्दः शुश्रुवे)। एवं, वानरों का हर्ष-घोष, राक्षसों का सिंह-गर्जन, तथा राम का धनुष-डोरी का शब्द, ये तीनों शब्द दसों दिशाओं में गूंज उठे।

बस फिर क्या था, राम के धनुष से छुटे बाणों से लंका नगरी का कैलास-शिखर समान ऊंचा मुख्य द्वार टूट कर जमीन पर आ गिरा। तब इसप्रकार के सर्वसंहारी राम के बाणों को देखकर अत्युच्च महलों तथा घरों में बैठे हुए राक्षसवीर युद्ध के

सन्नाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ॥७॥
तेषां संनह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ।
शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ॥८॥
आदिष्टा वानरेन्द्रास्ते सुग्रीवेण महात्मना ।
आसन्नं द्वारमासाद्य युध्यध्वं च प्लवङ्गमाः ॥९॥
यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र तत्राप्युपस्थितः ।
स हन्तव्योऽभिसंप्लुत्य राजशासनदूषकः ॥१०॥
तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ।
स्थितेषु द्वारमाश्रित्य रावणं क्रोध आविशत् ॥११॥
तस्य जृम्भितविक्षेपाद् व्यामिश्रा वै दिशो दश ।
रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत ॥१२॥

लिए घोर तैयारी में जुट गए। वे राक्षसवीर तय्यारी भी करते जा रहे थे और सिंह-गर्जना भी गुंजा रहे थे, इससे वह रात कालरात्रि जैसी भयानक बन गयी। इस पर महाबुद्धिमान् सुग्रीव ने उन वानर-सेनापतियों को आदेश दिया—"फुर्तीले वानरो! अपने २ पास के लंका-द्वार पर एकदम हमला बोल दो। जो वहां-वहां मोर्चे पर उपस्थित होकर मेरे इस आदेश को पूरा नहीं करता, उसे एकदम झपाटे के साथ मार डालो, क्योंकि वह राजशासन की अवहेलना करने वाला है।"

सुग्रीव की आज्ञा पाकर वानरवीरों ने तीव्र प्रकाश वाली जलती हुई मशालें हाथ में ली और द्वारों पर धावा बोल दिया। इस आक्रमण को देखकर रावण के क्रोध का पारा चढ़ गया। इसप्रकार क्रोध में भर कर उसने जोर से अंगड़ाई ली। उस डरावने रूप से चहुँ ओर खड़े लोग भयभीत हो उठे, क्योंकि

स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥१३॥
यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा ।
निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात् ॥१४॥
शशास चैव तान्सर्वान् राक्षसान्स महाबलान् ।
राक्षसा गच्छताद्यैव सिंहनादं च नादयन् ॥१५॥
ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ।
लङ्कायां निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥१६॥
तद् दृष्ट्वा बलमायातं राक्षसानां दुरासदम् ।
संचचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥१७॥
जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद् बलं रक्षसां महत् ।

उस रुद्ररूपी रावण के अंग २ में क्रोध मूर्तिमान् होकर दीख पड़ रहा था। तब रावण ने क्रोधयुक्त होकर तथा अनेक राक्षसों को साथ लेकर कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों, कुम्भ तथा निकुम्भ, को युद्ध में प्रेषित किया। रावण के आदेश से यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ तथा कम्पन सेनापति कुम्भ-निकुम्भ के साथ प्रस्थित हुए। राक्षस-राज ने उन सब महाबली राक्षसों को चलते वक्त आदेश दिया—"राक्षसो ! सिंह-नाद गुंजाते हुए आज इसी रात में प्रस्थान करो।" राजा के इस आदेश को पाकर राक्षसवीर तेज हाथियारों को लेकर बार २ सिंह-नाद करते हुए लंका से चल पड़े।

राक्षसों के इस दुर्दम्य सैन्य को आते हुए देखकर वानरों की सेना में हलचल मच गयी और उच्च स्वर से गरजी। इतने में राक्षसों की बड़ी सेना तेजी से कूद कर शत्रु-सेना पर ऐसे टूटी जैसे कि पतंगे दीप-शिखा पर गिरा करते हैं। उस समय उन

अभ्ययात्प्रत्यरिबलं पतंगा इव पावकम् ॥१८॥
तेषां भुज-परामर्श-व्यामृष्ट-परिघाशनि ।
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयः परमशोभत ॥१९॥
तत्रोन्मत्ता इवोत्पेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ।
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् ॥२०॥
तथैवापततां तेषां हरीणां निशितैः शरैः ।
शिरांसि सहसा जह्रु राक्षसा भीमविक्रमाः ॥२१॥
समुद्यतमहाप्रासं मुष्टिशूलासिकुन्तलम् ।
प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानर-रक्षसाम् ॥२२॥

सर्ग ४३

प्रवृत्ते संकुले तस्मिन् घोरे घोरजनक्षये ।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥१॥

राक्षसों की वह श्रेष्ठ सेना, भुजा को जोर से घुमाकर भुज-बन्धन के बल पर परिघ और वज्र को फैंकने से, और भी ज्यादा शोभायमान हो रही थी। इसप्रकार जब राक्षस लोग वानरों पर परिघ और वज्र फैंक रहे थे, तो लड़ने के लिए तय्यार वानर लोग राक्षसी सेना पर रणोन्मत्त की तरह टूट पड़े और पेड़ों पत्थरों तथा मुक्कों से राक्षसों को मारने लगे। इसप्रकार वानर और राक्षसों का महाभयानक युद्ध चल पड़ा, जिसमें कि बड़े २ फरसे, मुक्के, त्रिशूल, और तलवारें चल रही थीं।

कंपन, प्रजंघ, शोणिताक्ष, यूपाक्ष का मारा जाना

एवं, वह कंपाने वाला घोर जन-क्षयकारी युद्ध चल रहा था कि रण का मतवाला अंगद वीर कंपन पर झपटा। इस पर कंपन ने क्रोधपूर्वक अंगद को ललकारा और तेजी से उस पर

आहूय सोऽङ्गदं कोपात् ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥२॥
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥३॥
ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ।
रथेनाभ्यपतत् क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥४॥
सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ।
शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः कालाग्निसमविग्रहैः ॥५॥
क्षुर-क्षुरप्र-नाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ।
कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥६॥
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् ।

गदा का प्रहार किया। अंगद जोर से प्रताड़ित होकर पहले तो विचलित होगया, परन्तु शीघ्र ही चेतना पाकर तेजस्वी बन कंपन पर गिरि-शिखर दे मारा। इस प्रहार से कंपन कुचला गया और भूमि पर गिर पड़ा।

शोणिताक्ष ने जब रण में कंपन को मारा गया देखा, तो रथ पर सवार हो निर्भयता पूर्वक झटिति अंगद की ओर बढ़ा, और वेगपूर्वक अंगद को तीखे बाणों से बींध दिया। वे कालाग्नि सदृश तीखे बाण शरीर को छलनी कर देने वाले थे। क्षुर (छुरे जैसी धार वाले), क्षुरप्र (अर्धचन्द्राकार), नाराच (संपूर्ण लौहमय) वत्सदन्त (बछड़े के दांत के आकार वाले), शिलीमुख (कंक पत्र जैसे), कर्णी (कान के आकार जैसे), शल्य (लम्बे फलक वाले), विपाठ (करवीर के अग्रभाग जैसे) नामी अनेक तीखे बाणों से विंधे प्रतापी वालीपुत्र बली अंगद ने

धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसा बली ॥७॥
शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे ।
उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥८॥
तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्याङ्गदो बली ।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥९॥
तस्यांसफलके खड्गं निजघान ततोऽङ्गदः ।
यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥१०॥
तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनःपुनः ।
वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥११॥
प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥१२॥

तेजी से शोणिताक्ष के उग्र धनुष, रथ, तथा बाणों को तोड़-मरोड़ दिया ।

इस पर शोणिताक्ष ने झटपट ढाल-तलवार संभाली और क्रुद्ध होकर विना आगा-पीछा विचारे बड़ी तेजी से अंगद पर टूट पड़ा । इस पर बली अंगद ने फुर्ती से झपटकर शोणिताक्ष को पकड़ लिया और उसके हाथ से उस तलवार को छीन कर हर्ष-नाद किया । तदनु कपिकुञ्जर ने उसके बांये कन्धे पर वह तलवार इस ढंग से चलायी कि शोणिताक्ष यज्ञोपवीत की तरह छिद गया । तब वालिपुत्र ने उस बड़ी तलवार को लेकर और बार २ ललकार लगा कर रणभूमि में अन्य दुश्मनों पर आक्रमण करना प्रारम्भ किया ।

इस पर वीर बली यूपाक्ष प्रजङ्घ के साथ रथ पर सवार हो गुस्से में भर कर महाबली अंगद पर दौड़ा कि कुछ काल सांस

आयसीं तु गदां गृह्य स वीरः कनकाङ्गदः ।
शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥१३॥

प्रजङ्घस्तु महावीरो यूपाक्षसहितो बली ।
गदयाऽभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥१४॥

तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः ।
विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाबभौ ॥१५॥

अङ्गदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च ।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥१६॥

अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियत्ता महाबलाः ।
राक्षसा वानरान् रोषादसिबाणगदाधराः ॥१७॥

त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवैः ।
संसक्तानां महद् युद्धमभवद् रोमहर्षणम् ॥१८॥

ते तु वृक्षान् समादाय सम्प्रचिक्षिपुराहवे ।

ले सोने के बाजूबंद धारे वीर शोणिताक्ष लोहे की गदा लेकर अंगद पर टूट पड़ा। इतने में महावीर बली प्रजंघ यूपाक्ष के साथ गुस्से में भर कर महाबली अंगद पर गदा सहित झपटा। उससमय शोणिताक्ष और प्रजंघ के बीच में पड़ा कपिश्रेष्ठ ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो विशाख नक्षत्रों के बीच में पड़ा पूर्णिमा का चन्द्रमा हो। उस समय अंगद के अंगरक्षक मैन्द और द्विविद मुकाबले के दुश्मन की तलाश में उसके समीप खड़े थे।

इतने में विशालशरीर महाबली राक्षस सावधान होकर तलवार, बाण, गदा ले क्रोधपूर्वक वानरों पर टूट पड़े। तब तीन राक्षस वीरों के साथ तीन जुटे हुए वानरश्रेष्ठों का रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध हुआ। उन वानरों ने लट्ठ लेकर युद्ध में

खड्गेन प्रतिचिक्षेप तान्प्रजङ्घो महाबलः ॥१९॥
रथान्सर्वान्द्रुमाञ्छैलान् प्रतिचिक्षिपुराहवे ।
शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो महाबलः ॥२०॥
सृष्टान्द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान् ।
बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान् ॥२१॥
उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम् ।
प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥२२॥
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥२३॥
बाहुं चास्य सनिस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ।
वालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः ॥२४॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसंनिभम् ।

राक्षसों पर फैंके, तो महाबली प्रजंघ ने तलवार से उन्हें परे फैंक दिया। वानरों ने संग्राम में एकसाथ सब रथों पर पेड़ तथा पत्थर फैंके तो महाबली यूपाक्ष ने उन्हें बाण-जालों से काट गिराया। और द्विविद-मैन्द द्वारा उखाड़ कर फैंके गये पेड़ों को प्रतापी पराक्रमी शोणिताक्ष ने गदा के द्वारा बीच में ही तोड़ गिराया।

तदनु, शत्रु के मर्म को चीरने वाली बड़ी तलवार को उठा कर प्रजंघ अंगद पर बड़ी तेजी से झपटा। तब अपने ऊपर आते प्रजंघ को देखकर महाबली वानरश्रेष्ठ ने अश्वकर्ण पेड़ से उसे बड़े जोर से प्रताड़ित किया, और तलवार-पकड़ी बांह पर मुक्का मारा। अंगद के मुक्का-प्रहार से वह तलवार भूमि पर गिर पड़ी। मूसल जैसी तलवार को इसप्रकार भूमि पर गिरा देखकर महाबली

मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥२५॥
स ललाटे महावीर्यम् अङ्गदं वानरर्षभम् ।
आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चचाल ह ॥२६॥
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
प्रजङ्घस्य शिरः कायात् खड्गेनापातयत् क्षितौ ॥२७॥
स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे ।
अवरुह्य रथात् क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥२८॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥२९॥
गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलम् ।
आजघान गदाग्रेण वक्षसि द्विविदं ततः ॥३०॥

प्रजंघ ने वज्रतुल्य मुक्के को घुमाकर ताना, और महातेजस्वी ने महापराक्रमी वानरश्रेष्ठ अंगद के माथे पर ऐसा मारा कि वह कुछ देर के लिए चकरा गया। परन्तु, होश पाते ही प्रतापी तेजस्वी वालिपुत्र ने तलवार के द्वारा प्रजंघ का सिर धड़ से अलग कर भूतल पर गिरा दिया।

रण में चचा के मारे जाने पर यूपाक्ष की आंखों में आंसु भर आये और उसने रथ पर से शीघ्र नीचे उतर कर तलवार थांभी, क्योंकि बाण उसके समाप्त हो चुके थे। बली द्विविद ने जब यह देखा कि यूपाक्ष अंगद पर आक्रमण कर रहा है, तो उसने फुर्ती करके गुस्से में भर कर उस की छाती पर प्रहार किया और बड़ी मजबूती से उसे पकड़ लिया। महाबली शोणिताक्ष ने पकड़े गए भाई को देखकर द्विविद की छाती पर गदा के अग्र भाग से प्रहार किया। वह महाबली शोणिताक्ष की गदा से

स ततोऽभिहतस्तेन चचाल च महाबलः ।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विविदाभ्याशमागमत् ॥३२॥
तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवङ्गाभ्यां तरस्विनौ ।
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥३३॥
द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे ।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥३४॥
यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुङ्गवः ।
पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥३५॥
हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तथा ।
जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥३६॥

प्रताड़ित होकर क्षणिक चकराया, परन्तु ज्योंही उसने दुबारा गदा उठायी, द्विविद ने उसकी गदा को छीन लिया। इसी बीच वीर मैन्द वानरसेनापति ने यूपाक्ष की छाती पर बलपूर्वक चपेट जमायी।

फिर क्या था, फुर्तीले शोणिताक्ष और यूपाक्ष राक्षस द्विविद-मैन्द वानरों के साथ युद्ध में प्रबल खींचा-खांची और झकझोरा-झकझोरी करने लगे। पराक्रमी द्विविद ने व्याघ्रनखों से शोणिताक्ष का मुंह फाड़ दिया और उसे भूमि पर पटक कर जोर से मसल दिया। उधर वानर-सेनापति मैन्द ने क्रोध में भरकर यूपाक्ष को अपनी भुजायों से ऐसा दबाया कि वह भूमि पर गिर पड़ा और मर गया। एवं, राक्षस वीरों के मारे जाने पर राक्षसी सेना व्यथित हो उठी, और कुम्भकर्ण के पुत्र के पास पहुंची।

सर्ग ४४

अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवंगमैः ।
निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा ।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥१॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान् देहविदारणान् ॥२॥
तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद् द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥३॥
आकर्णकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन हाटकपुङ्खेन पत्रिणा पत्रवाससा ॥४॥
सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ।
निपपात त्रिकूटाभो विह्वलन् प्लवगोत्तमः ॥५॥

कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ का मारा जाना

जब तेजस्वी कुम्भ को पता लगा कि उत्कृष्ट राक्षसी सेना के महावीरों को महापराक्रमी निशानेवाज वानरों ने मार गिराया है, तो उसने संग्राम में अत्यन्त दुष्कर वीरता प्रदर्शित की।

धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कुम्भ ने धनुष पकड़ा और एकाग्र-चित्त हो कर विषधर सर्पों जैसे देह-विदारक वाणों को छोड़ा। उसका वह वाण तथा वह उत्तम धनुष ऐसा दीख पड़ रहा था कि मानो इन्द्र का ऐरावत नामी दूसरा धनुष है और उस पर विद्युत् नामी वाण चढ़ा हुआ है। कुम्भ ने सोने के पुंख वाले कङ्क पत्र लगे उस वाण को कान तक खींच कर छोड़ा और द्विविद को घायल कर दिया। उस वाण से सहसा घायल होकर वानरश्रेष्ठ लड़खड़ा गया और विकल होकर पर्वत-शिखर की तरह धड़ाम से नीचे

मैन्दस्तु भ्रातरं तत्र भग्नं दृष्ट्वा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥६॥

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पञ्चभिः शरैः ॥७॥

सन्धाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥८॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥९॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा मथितौ तु महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥१०॥

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातङ्गमिव तोमरैः ॥११॥

गिर पड़ा।

महासमर में भाई को घायल देखकर महाबली मैन्द भारी शिला लेकर बड़ी तेजी से उधर आया, और कुम्भ राक्षस पर दे मारी। परन्तु, महातेजस्वी कुम्भ ने वह शिला बीच में ही चमचमाते पांच बाणों से काट गिरायी, और विषधर सर्प जैसे एक दूसरे पैने बाण को चिल्ले पर चढ़ा कर द्विविद के बड़े भाई मैन्द की छाती बींध दी। वानर-सेनापति मैन्द के मर्म-स्थल पर उस प्रहार से घाव हो गया और वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

अंगद ने जब देखा कि दोनों महाबली मामे घायल कर दिए गए हैं, तो वह तेजी से धनुष ताने कुम्भ पर झपटा। तब उसने अपने पर झपटते हुए अंगद को पांच लोहे के, तथा तीन

अकुण्ठधारैर्निशितैस्तीक्ष्णैः कनकभूषणैः ।
अङ्गदः प्रतिविष्टाङ्गो वालपुत्रो न कम्पते ॥१२॥
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ।
स प्रचिच्छेद तान्सर्वान् बिभेद च पुनः शिलाः ॥१३॥
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान् वालिपुत्रसमीरितान् ।
आपतन्तं च संप्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ॥१४॥
भ्रुवौ विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ।
तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ॥१५॥
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ।
सालमासन्नमेकेन परिजग्राह पाणिना ॥१६॥
सम्पीड्योरसि सस्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च ।

दूसरे तीखे वाणों से ऐसे बींध दिया जैसे कि हाथी को अंकुशों से बींध दिया जाता है। परन्तु इन तेज धार वाले पैने तीखे सुवर्ण-जटित वाणों से बींधे जाने पर भी वालीपुत्र अंगद घबराया नहीं, अपितु कुम्भ के सिर पर पत्थरों और वृक्षों की झड़ी लगा दी। कुम्भ ने उन सब वृक्षों को काट गिराया और पत्थरों को चूर-चूर कर दिया। वालिपुत्र फिर भी बाज नहीं आया, पुनरपि उस द्वारा फैंके गए पत्थरों तथा झपटते हुए वानरसेनापति को देखकर कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ ने दो वाणों से उसकी दोनों भौहें ऐसे बींध दी जैसे कि जलती लकड़ियों से हाथी को बींध दिया जाता है। इससे उसके खून बहने लगा और आंखें बन्द हो गयी। अंगद ने एक हाथ से तो रुधिर से तर आंखों को बन्द किया और दूसरे हाथ से समीपवर्ती एक साल को पकड़ा। वह इसप्रकार कि तने सहित साल को छाती में दबा कर और हाथ

किंचिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ यथा गजः ॥१७॥
तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसन्निभम् ।
समुत्सृजत वेगेन मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥१८॥
स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ।
अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं स पपात मुमोह च ॥१९॥
अङ्गदं पतितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरम् ।
दुरासदं हरिश्रेष्ठा राघवाय न्यवेदयन् ॥२०॥
रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं महाहवे ।
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्-प्रमुखांस्ततः ॥२१॥
ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ।
अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥२२॥

से थांभ कर कुछ नीचे झुकाया और उसकी पत्ते-टहनियां तोड़ डाली जैसे कि हाथी (कर) सूंड से तोड़ डालता है। फिर इन्द्र-ध्वज के समान मोटे और मन्दर पर्वत के समान ऊंचे उस लट्ठ को उसने बड़े वेग के साथ सब राक्षसों के देखते २ कुम्भ पर दे मारा। तिस पर कुम्भ ने शरीर-भेदक तीखे सात बाणों से अंगद को छेद दिया, जिससे वह बुरी तरह घायल हो गया, जमीन पर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया।

ठहरे हुए निश्चल समुद्र की तरह दुर्जेय अंगद को बेसुध गिरा हुआ देखकर हरिश्रेष्ठों ने राम से निवेदन किया। तब राम ने वालिपुत्र को महायुद्ध में व्यथित पड़ा जान कर जाम्बवान् प्रमुख वानरश्रेष्ठों को आदेश दिया कि जावो अंगद की सहायता करो। राम की आज्ञा पाकर वे वानरवीर क्रोध में भरे, और धनुष-ताने कुम्भ पर जा झपटे : जाम्बवान्, सुषेण और वेगदर्शी

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ॥२३॥
समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान् महाबलान् ।
आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ॥२४॥
तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरनिवर्तितुम् ।
वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ॥२५॥
तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्छरवृष्टिभिरर्दितान् ।
अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ॥२६॥
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे ।
शैलसानु-चरं नागं वेगवानिव केसरी ॥ ७॥
कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुःप्रभम् ।
अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ॥२८॥

वानर कुम्भकर्ण के वीर पुत्र पर क्रोध पूर्वक लपके। तब कुम्भ ने महावली उन वानरसेनापतियों को अपने ऊपर लपकते देख कर शर-जाल से आगे बढ़ने से रोक दिया, जैसे कि पहाड़ झील आदि जलाशय को आगे वहने से रोक देता है। वे महाबली सेनापति कुम्भ के वाणों के सामने पड़ कर आगे नहीं बढ़ सके, जैसे कि महासमुद्र तट को नहीं लांघ सकता।

तब वानरराज सुग्रीव ने जब यह देखा कि वानर लोग दुश्मन की शर-वृष्टि से घायल हो रहे हैं, तो उसने रण में अंगद को अपने पीछे करा और आप आगे बढ़कर कुम्भकर्ण के पुत्र पर ऐसा झपटा जैसे कि पर्वत पर विचरने वाले हाथी पर शेर तेजी से झपटा करता है। झपट कर कुम्भ का इन्द्रधनुष जैसा धनुष छीन लिया और तोड़ दिया। और फिर गुस्से में भर कर उससे

निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगं तदद्भुतम् ।
सन्नतिश्च प्रभावश्च तव वा रावणस्य वा ॥२९॥
एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं बलवत्तरम् ।
विक्रमस्व महायुद्धे कर्माणि मम पश्य च ॥३०॥
धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च ।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोऽसि बलवीर्यतः ॥३१॥
महाविमर्दं समरे मया सह तवाद्भुतम् ।
अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥३२॥
कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ।
पातिता हरिवीराश्च त्वयैते भीमविक्रमाः ॥३३॥

बोला, जोकि उस हाथी जैसा निस्तेज हो गया था जिसके कि दांत टूट गए हों—

"निकुम्भ के बड़े भाई ! तेरा पराक्रम और तेरी बाण चलाने की फुर्ती अद्भुत है। यथावसर धीरे २ झुक जाना और प्रभाव, ये दोनों गुण या तो तेरे हैं या रावण के हैं। बलवत्तर पिता के अनुरूप एक तू पैदा हुआ है। महायुद्ध में पहले तू अपना पूरा विक्रम प्रदर्शित कर दे, और फिर मेरे कर्तवों को देख। तू धनुर्विद्या में इन्द्रजित् के समान है, और प्रताप में रावण के समान। तू आज राक्षस-जगत् में बल वीर्य से सर्वश्रेष्ठ है। इन्द्र (देव) और शम्बर (दानव) में जैसा घोर युद्ध हुआ था, वैसा मेरे साथ तेरा आज रणभूमि में अद्भुत घोर युद्ध होगा, उसे सब लोग देखें। तूने अपनी असाधारण वीरता दिखला दी, और अस्त्र-कौशल भी दिखला दिया, जिससे तूने भीमविक्रमी हरिवीर घायल कर गिरा दिये। वीर ! मैंने उपालम्भ के भय से

उपालम्भभयाच्चैव नासि वीर मया हतः ।
कृतकर्मपरिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥३४॥
तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ।
अग्नेराज्यहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥३५॥
ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा ।
गजाविवावीतमदौ निःश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः ॥३६॥
अन्योन्यगात्रग्रथितौ कर्षन्ताावितरेतरम् ।
सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥३७॥
तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन्मही ।
व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥३८॥
ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपात्य च ।

तुझे अभी नहीं मारा (कि जाम्बवान् आदि बहुतों से अकेला युद्ध करता हुआ थक गया था, तब सुग्रीव ने उस थके-मान्दे को सहसा मार दिया), तू बहुतों के साथ लड़ने से बहुत थक गया है, विश्राम कर ले, फिर तूने मेरा बल देखना।"

कुम्भ सुग्रीव के इन अपमान-जनक शब्दों से अपमानित होकर ऐसे भड़क उठा जैसे कि घी की आहुति से यज्ञाग्नि भड़क उठती है। भड़क कर उसने सुग्रीव को बाहुयों से पकड़ लिया और मदमस्त हाथियों की तरह लड़ते २ हांफ उठे। वे दोनों एक दूसरे के शरीर से चिपटे हुए एक दूसरे को खींच रहे थे, और थकावट के कारण मुंह से धूंए (भाप) सहित ज्वाला बाहर फैंक रहे थे। उन दोनों के पावों की धमक से जमीन नीचे धंस रही थी और समुद्र लहरें उछालता हुआ विक्षुब्ध हो उठा। गुत्थमगुत्था होते २ अन्त में कुम्भ ने उछल कर सुग्रीव को गिरा दिया और गुस्से में

आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥३६॥
तस्य चर्म च पुस्फोट संजज्ञे चापि शोणितम् ।
तस्य मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥४०॥
स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥४१॥
अर्चिःसहस्रविकच-रविमण्डलवर्चसम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥४२॥
स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः ।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥४३॥
मुष्टिनाऽभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद् दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥४४॥
कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ।

भर कर उसकी छाती पर वज्र समान मुक्का दे मारा। मुक्के की चोट से छाती की चमड़ी फट पड़ी, खून निकल आया, और अस्थिपञ्जर हिल उठा।

वानरराज महाबली सुग्रीव की छाती पर कुम्भ ने जब इसप्रकार मुक्का जमाया, तो उस पराक्रमी ने वज्र समान अपना मुक्का घुमाया और हजारों किरणों से खिले हुए रविमण्डल के समान तेजस्वी मुक्के को कुम्भ की छाती पर दे मारा। कुम्भ मुक्के के उस प्रहार से विह्वल तथा अतिपीड़ित होकर भूमि पर गिर पड़ा और बुझी आग की तरह शान्त हो गया, अर्थात् मर गया। उस मुक्के की चोट से राक्षस इतनी जल्दी नीचे गिरा जैसे कि चमकता हुआ लाल रंग का सितारा आकाश पर से टूट कर प्रकृतिवश नीचे गिरा करता है। मुक्के से छाती के फटने पर कुम्भ जब नीचे गिरा, तो उसका रूप ऐसा दीख पड़ा

बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवां पतेः ॥४५॥

सर्ग ४५

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥१॥
ततः स्रग्दामसंनद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं शुभम् ।
आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् ॥२॥
दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ।
क्रोधेन्धनो निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥३॥
राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥४॥
परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ॥५॥

जैसे कि रुद्र राजा से मारे जाने पर गोपति का रूप बना था ।

कुम्भ के भाई निकुम्भ का मारा जाना

सुग्रीव द्वारा भाई को मारा गया देखकर निकुम्भ ने कोप से जलाते हुए के समान वानरराज सुग्रीव को देखा, और फिर धीर बनकर बहुत बड़ी गदा को लिया, जिस पर कि रज्जु रूप में माला लिपटी हुई थी और पकड़ते २ पांचों अंगुलियों के सुन्दर चिन्ह पड़े हुए थे। उस समय वह निकुम्भरूपी अग्नि प्रलय-कालीन उठी हुई अग्नि के समान बनी हुई थी, जिसके पास पहुँचना अशक्य था। क्रोध इस अग्नि का इन्धन था, और परिघ भूषण तेज था, और मारे भय के न राक्षस और न वानर कोई भी अपनी जगह से हिल नहीं सके। परन्तु बली हनुमान् अपनी छाती फुला कर उसके सामने जा खड़ा हुआ। तब गदा

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विकीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ॥६॥
स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः ।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥७॥
स तथाऽभिहतस्तेन हनूमान् प्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥८॥
तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् ।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः ॥९॥
तत्र पुस्फोट चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् ।
मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता ॥१०॥
स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल च ।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनूमन्तं महाबलम् ॥११॥

जैसी मोटी बाहुओं वाले बलवान् निकुम्भ ने उस बली की छाती पर सूर्यसमान चमकती हुई गदा दे मारी। परन्तु उसकी वैसी ही फूली हुई छाती पर वह गदा टकरा कर चकनाचूर हो गयी और सैकड़ों टुकड़ों में ऐसे बिखर गयी जैसे कि आकाश में टूटा हुआ तारा बिखर जाया करता है। गदा से प्रताड़ित वह महाकपि उस प्रहार से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुआ, जैसे कि भूचाल से पर्वत विचलित नहीं होता।

तब इसप्रकार निकुम्भ से प्रताड़ित होने पर महाबली वानरोत्तम हनुमान् ने पूरे बल के साथ मुक्का घुमाया और तान कर महातेजस्वी, पराक्रमी, वायु-समान बली तथा फुर्तीले ने फुर्ती के साथ निकुम्भ की छाती पर मारा। इससे वहां की चमड़ी फट गयी और खून बह निकला। छाती पर पड़े उस मुक्के से निकुम्भ ऐसा दीख पड़ता था कि मानो मेघ में बिजली दौड़ रही हो। उस प्रहार

चुक्रुशुश्च तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः ।
निकुम्भेनोद्यतं दृष्ट्वा हनूमन्तं महाबलम् ॥१२॥
स तथा ह्रियमाणोऽपि हनूमांस्तेन रक्षसा ।
आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥१३॥
आत्मानं मोक्षयित्वाऽथ क्षितावभ्यवपद्यत ।
हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥१४॥
निक्षिप्य परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च ।
उत्पत्य चास्य वेगेन पपातोरसि वेगवान् ॥१५॥
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥१६॥

से निकुम्भ हिल उठा। परन्तु थोड़ी देर बाद स्वस्थ होकर उसने महाबली हनुमान् को पकड़ लिया। तब निकुम्भ द्वारा पकड़े गए महाबली भीम हनुमान् को देखकर राक्षस लोगों ने समर भूमि में हर्षनाद गुंजाया।

इसप्रकार यद्यपि निकुम्भ राक्षस हनुमान् को उठा कर ले जा रहा था, फिर भी वायुपुत्र ने वज्रतुल्य मुक्का उसकी छाती पर जड़ ही दिया। मुक्के के जड़ते ही हनुमान् ने अपने को निकुम्भ से छुड़ा लिया और जमीन पर कूद पड़ा, और फिर मारुत-पुत्र ने निकुम्भ को झटपट पटक दिया। पटक कर पूरे बल के साथ उसे खूब मसला, और झुंझलाया हुआ उछल कर बड़े जोर से उसकी छाती पर कूद पड़ा। कूद कर दोनों बाहुयों से पकड़ कर उसकी गर्दन को खूब मरोड़ा और शिर को धड़ से अलग उखाड़ फैंका। निकुम्भ भयंकर ऊंची चीख-पुकार करता ही रह गया।

सर्ग ४६

निकुम्भं निहतं दृष्ट्वा कुम्भं च विनिपातितम् ।
रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥१॥
नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः ।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥२॥
गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसौ ॥३॥
रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः ।
बाढमित्यब्रवीद् धृष्टो मकराक्षो निशाचरम् ॥४॥
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद् रावणस्याज्ञया बली ॥५॥

खर के पुत्र मकराक्ष का मारा जाना

निकुम्भ और कुम्भ के मारे जाने का वृत्तान्त सुन रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो आग की तरह भड़क उठा। राक्षस क्रोध और शोक दोनों से बेसुध हो गया और बड़ी २ आंखों वाले खर के पुत्र मकराक्ष को आदेश दिया—"पुत्र ! मेरी आज्ञा से सेना को साथ लेकर जाओ, वानरों सहित उन राम-लक्ष्मण को मार डालो।"

इस पर अपने को शूर मानने वाले खर-पुत्र मकराक्ष ने रावण की बात सुन कर खुशी २ राक्षस को कहा–'बहुत अच्छा'। तत्पश्चात् बली मकराक्ष ने रावण को अभिवादन किया, उसकी प्रदक्षिणा की, और रावण की आज्ञा से शुभ्र भवन से निकल पड़ा।

वानर-सेनापतियों ने जब देखा कि मकराक्ष मुकाबले के

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुङ्गवाः ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥६॥
ततः प्रवृत्तं सुमहत् तद् युद्धं लोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवंगानां देवानां दानवैरिव ॥७॥
वृक्षशूलनिपातैश्च गदापरिघपातनैः ।
अन्योऽन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥८॥
शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च बाणपातैः समन्ततः ॥९॥
पाशमुद्गरदण्डैश्च निर्घातैश्चापरैस्तथा ।
कदनं कपिसिंहानां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥१०॥
बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
संभ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥११॥

लिए निकला है, तो वे सब एकदम कूदे और युद्ध के लिए तय्यार हो गए। तब वानरों का राक्षसों के साथ रोमांचकारी महायुद्ध इस प्रकार चल पड़ा, जैसा कि देवों का दानवों के साथ हुआ था। वानर और राक्षस एक दूसरे को वृक्षों तथा शूलों की मारों एवं गदा और परिघों के प्रहारों से कुचलने लगे। शक्ति-खड्ग-गदा-बर्छी-तोमरों से तथा पटों-भिन्दिपालों एवं बाणों से राक्षस लोग चहुं ओर प्रहार करने लगे। वे राक्षस वानरवीरों का बध फन्दों, मूंगरों, दण्डों तथा दूसरे प्रकार के निर्घात अस्त्रों से करने लगे। उधर दूसरी ओर खर के पुत्र मकराक्ष ने वानरों को बाण-वृष्टि से छलनी बना दिया। इससे वे सब वानर घबरा कर और भय-भीत होकर भाग निकले।

राक्षसों ने जब यह देखा कि वानर लोग भाग रहे हैं,

तान्दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान्वनौकसः ।
नेदुस्ते सिंहवद् दृप्ता राक्षसा जितकाशिनः ॥१२॥
विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ।
रामस्तान्वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥१३॥
वारितान्राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
कोपानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥१४॥
तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति ।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥१५॥
यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान् मम ।
तदग्रतः स्वकर्मस्थं स्मृत्वा रोषोऽभिवर्धते ॥१६॥
दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन्मम राघव ।
यन्मयाऽसि न दृष्टस्त्वं तस्मिन्काले महावने ॥१७॥

तो उन्होंने विजय से फूलकर गर्वपूर्वक सिंह के समान घोर गर्जना की। तब इधर-उधर उन वानरों के भागने पर राम ने वानरों को खदेड़ने वाले राक्षसों को शर-वृष्टि से घेर लिया। जब मकराक्ष राक्षस ने देखा कि राक्षस लोग घेर लिए गए हैं तो उसने कोपाग्नि से फुंक कर राम को कहा—

"राम ! ठहर, अब तेरा मेरे साथ द्वन्द्व युद्ध होगा। धनुष से छोड़े गए तीखे वाणों से मैं तेरे प्राणों को निकालूंगा। तब दण्डकारण्य में जो तूने मेरे पिता (खर) को मारा है, सो उसी दिन से लेकर इस हत्या के कर्म में स्थित तुझे स्मरण करके मेरा क्रोध उमड़ पड़ा है। दुरात्मन् राम ! जो मैं तुझे उस काल में महावन दण्डकारण्य में नहीं देख पाया, इससे मेरे अंग अत्यधिक जल रहे हैं। राम ! बड़ी खुशी की बात है कि आज

दिष्ट्याऽसि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥१८॥
अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः ।
ये त्वया निहताः शूराः सह तैश्च वसिष्यसि ॥१९॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥२०॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा रणाजिरे ।
अभ्यस्तं येन वा राम वर्ततां तेन वा मृधम् ॥२१॥

मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥२२॥
कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि ते ।
न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात् ॥२३॥
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ।

तू यहां मुझे दीख पड़ा है। मुझे भूखे सिंह के आगे हिरण की तरह तेरी चाह है। आज तू मेरे बाण-वेग से यमलोक पहुँच कर उन्हीं शूरों के साथ निवास करेगा जिन्हें कि तूने मारा है। राम ! मेरी बात सुन, संप्रति बहुत कहने से क्या, आज सब लोग तेरा और मेरा युद्ध देखें। राम ! चाहे अस्त्रों से, चाहे गदा से और चाहे बाहुओं से, जिससे तुझे लड़ने का अभ्यास हो, उस से लड़ !"

दशरथ-पुत्र राम मकराक्ष की बात को सुनकर हंसे, और बढ़-बढ़ कर बात करने वाले से बोले—"अरे राक्षस ! तू क्यों बहुत और अनुचित बकबक कर रहा है ? अरे ! इस बकबक के बल पर तो तू रण में बिना युद्ध के जीत नहीं सकता। अरे ! मैंने अकेले ने दण्डक वन में अत्यन्त साहसिक १४ राक्षसों को,

त्रिशिरा दूषणश्चापि दण्डके निहतो मया ॥२४॥
स्वाशिताश्चापि मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुशाः ॥२५॥

राघवेणैवमुक्तस्तु मकराक्षो महाबलः ।
बाणौघानमुचत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥२६॥
ताञ्छराञ्छरवर्षेण रामश्चिच्छेद नैकधा ।
निपेतुर्भुवि विच्छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सुवाससः ॥२७॥

तद् युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योऽन्यमोजसा ।
खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥२८॥
जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोरिव ।
धनुर्मुक्तः स्वनोऽन्योन्यं श्रूयते च रणाजिरे ॥२९॥

तेरे पिता को त्रिशिरा को और दूषण को मारा है। ऐ पापी! अब तेरे मांस से भी तीखी चोंचों व तीखे नखों वाले गीध, सियार व कौए भर-पेट होंगे।"

राम के इस उत्तर को सुनकर महाबली मकराक्ष ने संग्राम-भूमि में राम पर वाणों की झड़ी लगा दी। राम ने उन वाणों को शर-वृष्टि से टुकड़े-टुकड़े करके काट दिया, जिससे सोने के पुंख लगे वे सैंकड़ों वाण कट-कट कर भूमि पर गिरने लगे। इस प्रकार खर के पुत्र मकराक्ष और दशरथ के पुत्र राम में परस्पर में जूझ कर बड़े जोरों से लड़ाई चली। तब दोनों ओर की धनुष की डोरियों की टंकार ऐसी घोर हो रही थी कि मानो आकाश में दो मेघों की टक्कर की गर्जना हो रही हो। इसप्रकार धनुष से निकला शब्द युद्धभूमि में दोनों ओर से सुनाई पड़ रहा था।

यह युद्ध ऐसा हो रहा था कि जब एक, दूसरे के अंग को

विद्धमन्योऽन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते बलम् ।
कृतप्रतिकृतान्योऽन्यं कुरुतां तौ रणाजिरे ॥३०॥
राममुक्ताँस्तु बाणौघान् राक्षसस्त्वच्छिनद् रणे ।
रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥३१॥
बाणौघविततः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
संच्छन्ना वसुधा चैव समन्तान्न प्रकाशते ॥३२॥
ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे ।
अष्टभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥३३॥
भित्त्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत् ।
विरथो वसुधास्थः स मकराक्षो निशाचरः ॥३४॥
तत्तिष्ठद् वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।

बींधता था, तो उस बिंधे हुए का बल दूना बढ़ जाता था, और जब एक, दूसरे के जिस अंग को बींधता था तो वह दूसरा भी बदले में उसके उसी अंग को बींधता था। राम से छोड़े बाणों को राक्षस रण में काट गिराता था, और राक्षस से छोड़े बाणों को राम शरों से खण्ड-खण्ड करके काट डालते थे। एवं, उस शर-वृष्टि से सब दिशायें-उपदिशायें ढक गयी, तथा सब की सब रण-भूमि ऐसी पट गयी कि वह दीख ही न पड़ती थी।

इस हालत को देखकर महाबाहु राम का क्रोध उमड़ पड़ा और उसने इस लड़ाई में मकराक्ष का धनुष काट डाला, और फिर आठ बाणों से सारथि को बींध दिया। तदनन्तर राम ने बाणों से रथ को तोड़ डाला और घोड़ों को मार गिराया। इससे मकराक्ष रथरहित होकर भूमि पर आ खड़ा हुआ।

तब राक्षस ने भूमि पर खड़े होकर हाथ में त्रिशूल पकड़ा।

त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥३५॥
दुरवापं महच्छूलं रुद्रदत्तं भयंकरम् ।
जाज्वल्यमानमाकाशे संहारास्त्रमिवापरम् ॥३६॥
यं दृष्ट्वा देवताः सर्वा भयार्ता विद्रुता दिशः ॥३७॥
विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ।
स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महात्मने ॥३८॥
तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ।
बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥३९॥
स भिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ।
व्यशीर्यत महोल्केव रामबाणार्दितो भुवि ॥४०॥
तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ।

यह त्रिशूल सबके लिए त्रासजनक और तेज में प्रलयाग्नि-सदृश था। यह दुष्प्राप्य भयंकर महाशूल रुद्र ने इसे प्रदान किया था। चलाए जाने पर यह शूल आकाश में इसप्रकार प्रदीप्त होता था कि मानो प्रलयाग्नि के अतिरिक्त यह कोई दूसरा सर्वसंहारी अस्त्र है, जिसे देखकर पहले सब देवलोग भयपीड़ित होकर भाग निकले थे। उस जलते हुए महाशूल को मकराक्ष ने घुमाया और पूरे क्रोध के साथ महात्मा राम पर दे मारा।

मकराक्ष के हाथ से छुटे जलते हुए उस शूल को अपने ऊपर पड़ता देखकर राम ने चार वाणों से उसे आकाश में ही काट गिराया। वह सोने से मढ़ा बढ़िया शूल राम के वाणों से प्रताड़ित हो खण्ड २ कट कर भूमि पर ऐसे बिखर पड़ा, जैसे कि कोई बड़ा उल्का-पिण्ड भूमि पर आ गिरा हो।

तब मकराक्ष राक्षस ने उस शूल को काटा गया देखकर

मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥४१॥
स तं दृष्ट्वाऽऽपतन्तं तु प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः संदधे तु शरासने ॥४२॥
तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥४३॥

सर्ग ४७

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः ।
रोषेण महताविष्टो दन्तान्कटकटाय्य च ॥१॥
कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन् ।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥२॥
जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥३॥

मुक्का ताना और राम को ललकारा—'ठहर, ठहर'। रघुनन्दन अपने पर झपटते हुए मकराक्ष को देखकर हंसे, और धनुष पर आग्नेयास्त्र चढ़ाया। तब राम ने रण में उस अस्त्र के द्वारा राक्षस को मार डाला : उसका हृदय कट गया, वह वहीं गिर पड़ा और मर गया।

इन्द्रजित् का राम-लक्ष्मण से घोर युद्ध

जब समरविजयी रावण ने मकराक्ष के मारे जाने का संवाद सुना तो दांत पीस कर बड़े गुस्से में भरा। और तब कुपित होकर, अब क्या करना चाहिए, इसका विचार किया। तदनन्तर, संक्रुद्ध होकर युद्ध के लिए पुत्र इन्द्रजित् को आदेश दिया—"वीर! जाओ, महापराक्रमी राम-लक्ष्मण भाईयों को खत्म करो। तुम चाहे लुक-छिप कर उनसे युद्ध करो, और चाहे मुकाबले में सामने

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे ।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥४॥
तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ।
यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥५॥
अद्य निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं च लक्ष्मणम् ।
करिष्ये परमां प्रीतिमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥६॥
आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः ।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥७॥
स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव ।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥८॥
इमौ ताविति संचिन्त्य सज्यं कृत्वा च कार्मुकम् ।

डट कर, दोनों हालतों में तुम उनसे अधिक बली हो। तुम अनुपम वीरकर्म करने वाले इन्द्र को युद्ध में जीत चुके हो, तो क्या फिर तुम मामूली दो मनुष्यों को युद्ध में पाकर न मार डालोगे ?"

पिता रावण द्वारा इसप्रकार आदेश पाकर इन्द्रजित् ने उसे स्वीकार किया, और यज्ञभूमि में पहुँचकर विधिपूर्वक अग्निहोत्र किया। और तदनन्तर 'आज राम-लक्ष्मण को मार कर तथा पृथिवी को वानर-शून्य बनाकर मैं पिता को परम प्रसन्न करूंगा' ऐसा कहकर वह तुरन्त वहां से चल दिया: और फिर रावण से आदिष्ट प्रचण्ड इन्द्रशत्रु इन्द्रजित् प्रचण्ड धनुष व पैने बाणों को साथ ले क्रोधमूर्ति बन युद्धभूमि में आ पहुँचा। वहां पहुँच कर उसने देखा कि महापराक्रमी वीर राम-लक्ष्मण तीन फन वाले सांपों के समान वानरों के मध्य में खड़े हुए बाण-जालों को फैंकते चले जा रहे हैं। बस, ये ही दोनों राम-लक्ष्मण हैं ऐसा समझ कर धनुष पर चिल्ला

संततानिषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ।।९।।
स तु वैहायसरथो युधि तौ रामलक्ष्मणौ ।
अचक्षुर्विषये तिष्ठन्विव्याध निशितैः शरैः ।।१०।।
तौ तस्य शरवेगेन परीतौ रामलक्ष्मणौ ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं प्रचक्रतुः ।।११।।
प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ ।
तमस्त्रैः सूर्यसंकाशैर्नैव पस्पर्शतुः शरैः ।।१२।।
स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसाऽऽवृताः ।।१३।।
नैव ज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः ।

चढ़ाया और इषु-धारायों से उन्हें ऐसे पाट दिया जैसे कि वृष्टिमान् मेघ जल की धारायें बरसाया करता है। इन्द्रजित् तो आकाश-गत विमान-रथ में सवार था, परन्तु राम-लक्ष्मण रणभूमि में खड़े थे, इसप्रकार राम-लक्ष्मण की आंखों से ओझल होकर वह तीखे बाणों से उन्हें बींधने लगा।

राम-लक्ष्मण उसके बाण-वर्षण से जब बिंध गए तो वे धनुषों पर बाण चढ़ा कर दिव्य अस्त्र फैंकने लगे। उन महाबलियों ने यद्यपि शर-जालों से आकाश को ढांप दिया, परन्तु सूर्यसमान प्रतापी उन शरास्त्रों से वे इन्द्रजित् को छू न सके, क्योंकि वह तो आकाश में छिपे रूप में विद्यमान था। कारण, उस श्रीमान् ने धूम्रास्त्र द्वारा धूआं फैला कर आकाश को अन्धकारमय बना रखा था, और साथ ही दिशायें भी कोहरे के अन्धेरे से ढांप रखी थी। और फिर, न चिल्ले की टंकार सुनाई पड़ती थी, न उसके इधर-उधर विचरने पर विमान-रथ के चक्रों का प्रखर शब्द सुनाई पड़ता

शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥१४॥
घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम् ।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥१५॥
स रामं सूर्यसंकाशैः शरैर्दत्तवरैर्भृशम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥१६॥
तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान्मुमुचतुः शरान् ॥१७॥
अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः ।
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणिताप्लुताः ॥१८॥
अतिमात्रं शरौघेण दीप्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिषून्पततो भल्लैरनेकैर्विचकर्ततुः ॥१९॥
यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपतिताञ्छितान् ।

था, और न उसका रूप ही दिखाई पड़ता था। जैसे घने अन्धकार से युक्त अंधियारे रात्रिकाल में प्रचुर ओलों की वृष्टि हो, वैसे वह महाबाहु अदृश्य रूप में नाराच-बाणों की वृष्टि कर रहा था। इसप्रकार इन्द्रजित् ने क्रुद्ध होकर वरदान में पाए हुए सूर्यसमान बाणों से राम को युद्ध में अंग-अंग में बींध दिया।

तब जैसे वृष्टि-धारायों से पर्वत प्रताड़ित होते हैं, वैसे नाराच-बाणों से प्रताड़ित नरव्याघ्र राम-लक्ष्मण ने सुवर्ण-पुंख वाले तीखे बाणों को छोड़ना प्रारम्भ किया। वे कंकपत्री बाण आकाश में पहुँच इन्द्रजित् को काट खून-सने होकर भूमि पर गिरने लगे। वे नरोत्तम भी यद्यपि इन्द्रजित् के बहुत से बाणों से घायल हो गए, परन्तु वे इन गिरते हुए बाणों को भाले सदृश अनेक बाणों से बीच में ही काटते रहे। वे जिस ओर से शत्रु के

ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥२०॥
रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथोऽपतत् ।
विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रौ निशितैः शरैः ॥२१॥

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहतैः ।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥२२॥

नास्य वेगगतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् ।
न चास्य विदितं किंचित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥२३॥

तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥२४॥
लक्ष्मणस्तु ततः क्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।

तीखे वाण आते देखते, उधर ही वे दोनों भाई ताक कर उत्तम अस्त्र चलाते। उधर महारथी इन्द्रजित् निशाना बांधने के लिए इधर-उधर सर्वत्र रथ द्वारा आकाश में घूम २ कर दूर की मार करने वाले वाणों से युक्त राम-लक्ष्मण को तीखे वाणों से बींधने लगा। वे वीर राम-लक्ष्मण इन्द्रजित् द्वारा बढ़िया सुवर्णपुंख वाणों से इतने अधिक विंध गए कि खून के कारण खिले पलाश वृक्षों की तरह दीख पड़ने लगे। घोर बादलों में छिप जाने पर जैसे सूर्य दिखाई नहीं पड़ता, वैसे धूमान्धकार में छिपा होने के कारण इन्द्रजित् की न गतिविधि को, न रूप को, न धनुष को, और न वाणों को कोई देख सका। एवं, इसका कुछ भी तो विदित न हो सका। इन्द्रजित् द्वारा बहुत से वानर बींधे गए और निष्प्राण होकर मारे गए, तथा रणभूमि में सैंकड़ों वानर पछाड़ खाकर भूतल पर गिर पड़े।

इस पर क्रुद्ध होकर लक्ष्मण ने भाई को कहा—'भाई!

ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥२५॥
तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥२६॥
अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।
पलायमानं मत्तं वा न हन्तुं त्वमिहार्हसि ॥२७॥
तस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यामि महाभुज ।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥२८॥

सर्ग ४८

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
स निवृत्याहवात्तस्मात्प्रविवेश पुरं ततः ॥१॥
सोऽनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् ।

एकसाथ समस्त राक्षसों के वध के लिए मैं ब्राह्म अस्त्र का प्रयोग करूंगा।' उत्तर में राम ने शुभलक्षण-संपन्न लक्ष्मण को कहा—"लक्ष्मण ! एक के कारण पृथिवी भर के राक्षसों का मार डालना तुम्हारे लिए उचित नहीं। युद्ध न करने वाले को, जान बचाने के लिए छिपे हुए को, हाथ जोड़ शरण में आए हुए को, भागते हुए को, किंवा उन्मत्त को मारना तुम्हारे लिए ठीक नहीं। इसलिए, महाबाहु ! मैं उसी एक इन्द्रजित् को मारने का यत्न करूंगा। तदर्थ हम दोनों विषधर सर्पों जैसे महावेगवान् अस्त्रों को छोड़ेंगे।"

रणभूमि में पुनः आकर हनुमान् के समक्ष नकली सीता को काट डालना

इन्द्रजित् को महात्मा राम के सकल्प का पता लग गया, इसलिए वह युद्धभूमि से हट कर नगरी चला गया। पर थोड़ी देर बाद यह सोच कर कि मेरे चले आने पर बलवान् राक्षस मारे

क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः ॥२॥
स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ।
इन्द्रजित् सुमहावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥३॥
इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायात्युद्धतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥४॥

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा ।
बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥५॥
मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥६॥

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं सर्वे ते काननौकसः ।
उत्पतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥७॥

जावेंगे, क्रोध से लाल सुर्ख आंखें किए शूर इन्द्रजित् नगरी से फिर निकल पड़ा। देवों का कांटा पुलस्त्यवंशी महापराक्रमी इन्द्रजित राक्षसों से घिरा हुआ नगरी के पश्चिम द्वार से युद्धभूमि में उतरा। बाहर निकल कर उसने देखा कि वीर राम-लक्ष्मण भाई युद्ध के लिए बड़े उतावले हैं, तो उसने (उनसे जीतना कठिन समझ कर) एक जाल रचा। उसने (हूबहू असली सीता जैसी) नकली सीता रथ में बैठाई और बड़ी भारी सेना से उसे घेर कर उसके बध के लिए तय्यार हुआ। उस दुष्टमति ने सब शत्रुपक्ष वालों को धोखा देने के लिए, ऐसा विचार स्थिर किया था, और तदनुसार सीता को मारने का निश्चय करके वानरों के समक्ष चल पड़ा।

जब उन सब वानरों ने देखा कि इन्द्रजित् नगरी के बाहर निकल रहा है, तो वे युद्धाभिलाषी क्रोध में भर कर शिलायें हाथों

हनूमान् पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥८॥
स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥९॥
परिक्लिष्टैकवसनाम् अमृजां राघवप्रियाम् ।
रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥१०॥
तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीमध्यवस्य च ।
बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥११॥
अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
दृष्ट्वा रथस्थितां दीनां राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥१२॥
किं समर्थितमस्येति चिन्तयन्स महाकपिः ।

में लिए उस पर झपट पड़े। कपिकुंजर हनुमान् उन सब से आगे था, और हाथ में पर्वत की बड़ी भारी असह्य चट्टान लिए हुए था। इतने में उसने देखा कि इन्द्रजित् के रथ पर सीता बैठी हुई है, जोकि शोकग्रस्त है, सिर्फ एक जूड़ा बांधे हुए है, दीन है, और उपवासों से मुंह मुर्झाया हुआ है। राम की प्रिया सिर्फ एक मैले वस्त्र को पहिने हुए है, उबटन आदि न लगाने से शरीर अस्वच्छ है, और सब धूल-मैल चढ़े अंगों से युक्त है, परन्तु फिर भी सुन्दरी है। कुछ देर उसे ध्यान पूर्वक देखकर और सीता का निश्चय कर हनुमान् अत्यन्त दुःखी हुआ, क्योंकि उसने इस जनकपुत्री को अभी कुछ दिन पूर्व देखा था।

इन्द्रजित् के वश में पड़ी शोकपीड़िता तथा दुखिनी तपस्विनी सीता को रथ में बैठी हुई देखकर हनुमान् सोच में पड़ गया कि इस इन्द्रजित का संप्रति क्या मंशा है? और इस

सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥१३॥
तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
कृत्वा विकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतामकर्षयत् ॥१४॥
तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥१५॥
गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान्दैन्यमागतः ।
दुःखजं वारि नेत्राभ्यामुत्सृजन्मारुतात्मजः ॥१६॥
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥१७॥
दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥१८॥
धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ।

प्रकार सोच में पड़ कर महाकपि ने उन वानरश्रेष्ठों के साथ इन्द्रजित् पर धावा बोल दिया। तब वह अपने पर झपटे वानर-सैन्य को देखकर क्रोध से बेसुध हो गया, और म्यान में से तलवार को निकाल कर सीता के सिर पर ले गया, और फिर नकली रूप से रथ पर बैठायी हुई उस स्त्री को उन वानरों के देखते २ इन्द्रजित् ने (केश पकड़ कर) प्रताड़ित किया, जिससे वह 'हा राम ! हा राम !' ऐसा रोने-चिल्लाने लगी। केशों के खींचने को देखकर हनुमान् अत्यन्त दुःखी हुआ। तब हनुमान् ने राम की सुन्दरी प्रिया पत्नी को इस हालत में देखकर आंखों से आंसु बहाते हुए क्रोधपूर्वक राक्षसराज के पुत्र को इसप्रकार कठोर बात कही—

"दुरात्मन् ! तूने आत्म-नाश के लिए ये केश पकड़े हैं, तू ब्रह्मर्षि-कुल में पैदा होकर राक्षसी योनि में तो पहले ही पहुँचा

नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥१९॥
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ।
किं तवैषाऽपराद्धा हि यदेनां हंसि निर्दय ॥२०॥
सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथंचन ।
वधार्हकर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥२१॥
ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रतिलप्स्यसे ॥२२॥
इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥२३॥
आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ।

हुआ है। ऐ नृशंस ! ऐ अनार्य ! ऐ दुराचारिन् ! ऐ नीच ! ऐ पापमय पराक्रमी ! तुझ पापाचारी को धिक्कार है, जिसकी ऐसी नीच बुद्धि है। अनार्य का ऐसा कर्म ? ऐ निर्दयी ! तेरे में क्या तनिक की दया नहीं ? मैथिली घर से अलग हुई, राज्य से अलग हुई और फिर राम से भी अलग हुई, इसने तेरा कौनसा अपराध किया है, जिससे ऐ निर्दयी ! तू इसे मारना चाहता है ? अरे ! सीता को मार कर तो तू कुछ देर के लिए भी किसी तरह जीवित न रहेगा। ऐ बध के योग्य ! उस हत्याकर्म के कारण तू मेरे हाथ में ही पड़ा हुआ है। अरे ! स्त्रीघातियों के जो निकृष्टतम लोक हैं, जोकि लोक-बध्यों तक से कुत्सित माने गए हैं, तू इस शरीर को त्याग कर मरणानन्तर उन्हीं लोकों को पावेगा।"

ऐसा कहकर क्रोध से भरपूर हनुमान् सशस्त्र वानरों के साथ रावण-पुत्र इन्द्रजित् पर झपटा। महापराक्रमी उस वानरी सेना को

रक्षसां भीमकोपानाम् अनीकेन न्यवारयत् ॥२४॥
स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ।
हनूमन्तं हरिश्रेष्ठम् इन्द्राजित्प्रत्युवाच ह ॥२५॥
सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ।
तां वधिष्यामि वैदेहीम् अद्यैव तव पश्यतः ॥२६॥
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ।
सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ॥२७॥
न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद् ब्रवीषि प्लवंगम ।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥२८॥
तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥२९॥
यज्ञोपवीतमार्गेण छिन्ना तेन तपस्विनी ।

अपने ऊपर झपटते देखकर इन्द्रजित् ने चण्डीरूपधारिणी राक्षसी सेना के द्वारा उसे परे खदेड़ दिया। एवं, हजारों बाणों से वानरी सेनाको विक्षुब्ध करके उसने वानर-सेनापति हनुमान् को प्रत्युत्तर में कहा—"अरे! सुग्रीव, तू, और राम जिस कारण से यहां आए हैं, मैं उस सीता को अभी तेरे देखते २ मार डालूंगा। वानर! इसे मारने के बाद फिर, राम को, लक्ष्मण को, तुझ को, सुग्रीव को, और उस अनार्य विभीषण को खत्म करूंगा। वानर! जो तू यह कहता है कि स्त्रियों को नहीं मारना चाहिए, उसका जवाब यह है कि जो काम शत्रुओं को पीड़ा पहुँचाने वाला हो, वह अवश्य करना ही चाहिए।"

ऐसा कहकर इन्द्रजित् ने स्वयं तीखी धार वाली तलवार से रोती हुई नकली सीता को काट डाला। उसने तपस्विनी सीता

सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥३०॥
तामिन्द्रजित् स्त्रियं हत्वा हनूमन्तमुवाच ह ।
मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिपूदिताम् ।
एषा विशस्ता वैदेही निष्फलो वः परिश्रमः ॥३१॥
ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥३२॥
वानराः शुश्रुवुः शब्दम् अदूरे प्रत्यवस्थिताः ।
व्यादितास्यस्य नदतस्तद् दुर्गं संश्रितस्य तु ॥३३॥

सर्ग ४६

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ।
श्रुत्वा सङ्ग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥१॥
सौम्य नूनं हनुमता कृतं कर्म सुदुष्करम् ।

को, जैसे यज्ञोपवीत धारण किया जाता है वैसे, काटा, और वह पृथुजघना सुन्दरी कटते ही भूमि पर गिर पड़ी। इसप्रकार सीता को काट कर इन्द्रजित् हनुमान् से बोला— "मेरे द्वारा तलवार से काटी गयी राम की इस प्रिया को देख, यह वैदेही मार डाली गयी, अब तुम लोगों का परिश्रम निरर्थक है।"

तत्पश्चात्, इन्द्रजित्ने बड़ी तलवारसे सीता के स्वयं टुकड़े २ किए और पुलकितगात्र हो रथपर सवार होकर बड़ी जोर से विजय-नाद गुंजाया। मुंह फाड़कर गर्जते तथा लङ्कादुर्ग के भीतर पहुँचे हुए इन्द्रजित् के उस नाद को समीपस्थ वानरें ने सुना।

हनुमान् द्वारा सीता का कत्ल सुन राम का बेहोश होना

रामने राक्षसों तथा वानरों का वह महान् रण-घोष सुनकर जाम्बवान् से कहा— "सौम्य! पता लगता है हनुमान् ने कोई बहुत बड़ा कठिन काम किया है, क्योंकि हथियारों का भयानक

श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥२॥
तद् गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥३॥

ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनूमान् यत्र वानरः ॥४॥
अथाऽऽयान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिस्तदा ।
वानरैः कृतसङ्ग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥५॥
दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं संनिवार्य न्यवर्तत ॥६॥

स तेन सह सैन्येन संनिकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥
समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः ।

तथा महान् शब्द सुनाई पड़ रहा है। इसलिए ऋक्षराज ! अपनी सेना लेकर शीघ्र जाओ, और लड़ते हुए कपिश्रेष्ठ हनुमान् की सहायता करो।"

ऋक्षराज ने 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर अपनी सेना को साथ लिया और पश्चिम द्वार की ओर, यहां कि हनुमान् वानर विद्यमान था, चल पड़ा। इतने में उसने क्या देखा कि लड़ते २ थक जाने के कारण हांफती हुई सेना के साथ हनुमान् इधर ही आ रहा है। काले मेघों के समान भयानक ऋक्षसेना को मार्ग में, युद्ध के लिए समुद्यत देखकर हनुमान् ने उसे रोक कर लौट चलने को कहा। तब उस ऋक्ष-सैन्य को भी साथ ले महायशस्वी हनुमान् शीघ्र राम के समीप पहुंचा, और दुःखित होकर राम से निवेदन किया—

जघान रुदतीं सीताम् इन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥८॥
उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिंदम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥९॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१०॥
तं भूमौ देवसंकाशं पतितं दृश्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥११॥
आसिञ्चन्सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
प्रदहन्तमसंहार्यं सहसाऽग्निमिवोत्थितम् ॥१२॥
तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥१३॥

"भगवन् ! रावण के पुत्र इन्द्रजित् ने रण में युद्ध करते हुए हम लोगों के देखते २ रोती हुई सीता को कत्ल कर दिया है। अरिंदमन ! उन्हें देखकर मेरा चित्त पागल-सा हो गया है और मैं अत्यन्त दुःखी हूं, अतः मैं उस वृत्तान्त को सुनाने के लिए आपके समीप आया हूं।"

हनुमान् की इस खबर को सुनकर राम शोक से मूर्छित हो गए, और जड़ से कटे वृक्ष की तरह धड़ाम से भूमि पर गिर पड़े। तब भूमि पर पड़े देवतुल्य राम को देखकर चहुँ ओर से भाग कर कपिश्रेष्ठ उन्हें घेर कर खड़े हो गए, और कमल पुष्पों की सुगन्धि से सुवासित जल से छींटे देने लगे, ऐसे जैसे कि अचानक उठी धधकती हुई फैली अग्नि को जल से शान्त किया जाता है। इतने में अत्यन्त दुःखी लक्ष्मण ने व्याकुल राम को भुजाओं में लपेट कर इसप्रकार युक्तियुक्त बात कही—

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥१४॥
उत्तिष्ठ नरशार्दूल दीर्घबाहो धृतव्रत ।
किमात्मानं महात्मानम् आत्मानं नावबुध्यसे ॥१५॥

सर्ग ५०

राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ।
निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥१॥
नानाप्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिरभिसंवृतः ।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातंगैरिव यूथपैः ॥२॥
सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं शोकलालसम् ।
वानरांश्चापि ददृशे बाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥३॥
राघवं च महात्मानम् इक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ।

"वीर ! इन्द्रजित् ने आज यह बहुत बड़ा दुःख हम पर बरपा किया है, मैं कर्म द्वारा इस दुःख को दूर करूंगा, इसलिए राम ! आप उठिए। हे नरशार्दूल ! दीर्घबाहु ! व्रतधारी ! उठिए, आप अपने स्वरूप को और अपने महान् बुद्धिबल को क्यों नहीं पहिचानते ?"

विभीषण द्वारा भेद का मिलना

भ्रातृवत्सल लक्ष्मण इसप्रकार राम को समझा ही रहा था कि विभीषण सेनाओं को अपने २ मोर्चों पर छोड़ कर वहां आ पहुँचा। उसके साथ नाना आयुधों को लिए हुए चार वीर मंत्री थे, जोकि काले भुजंग यूथपति हाथियों के समान दीख पड़ते थे। वहां पहुँच कर उसने देखा कि महात्मा राम शोकग्रस्त हैं, और वानरों की आंखें डबडबा रही हैं। साथ ही उसने यह भी देखा

दद‍र्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितम् ॥४॥
व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥५॥
विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ।
लक्ष्मणोवाच मन्दार्थमिदं बाष्पपरिप्लुतः ॥६॥
हता इन्द्रजिता सीता इति श्रुत्वैव राघवः ।
हनूमद्वचनात्सौम्य ततो मोहमुपाश्रितः ॥७॥
कथयन्तं तु सौमित्रिं संनिवार्य विभीषणः ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥८॥
मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तस्त्वं हनूमता ।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥९॥
अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः ।

कि इक्ष्वाकु कुल के प्यारे महाबुद्धिमान् राम मूर्छाग्रस्त हो लक्ष्मण की गोद में पड़े हैं। विभीषण राम को लज्जित तथा शोकसंतप्त देखकर अन्तर्वेदना से अत्यन्त व्याकुल हुआ और पूछा यह क्या बात है ? तब विभीषण के मुख को देखकर, और सुग्रीव तथा उन वानरों को देखकर लक्ष्मण ने आंखें डबडबाते हुए थोड़े से शब्दों में उत्तर दिया—"सौम्य ! हनुमान् के मुख से यह बात सुनकर ही कि इन्द्रजित् ने सीता को मार दिया है राम मूर्छित हो गए हैं।"

लक्ष्मण यह बात कह ही रहा था कि विभीषण ने उसे रोका-और यह सही बात संज्ञाहीन राम से कही—"नरश्रेष्ठ ! दुःखपीड़ित हनुमान् ने जो समाचार आपको दिया है, उसे मैं उतना ही गलत समझता हूँ जैसे कि कोई कहदे कि समुद्र सूख गया। महाबाहु ! मैं सीता के विषय में दुरात्मा रावण के अभि-

सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥१०॥
याच्यमानः सुबहुशो मया हितचिकीर्षुणा ।
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत् कृतवान् वचः ॥११॥
नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ।
सा द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥१२॥
वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥१३॥
तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ।
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥१४॥
इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ सत्त्वसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥१५॥
एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ।

प्राय को अच्छी तरह जानता हूं, वह सीता की हत्या कभी न करेगा। मैंने हितकामना से उससे अनेक बार प्रार्थना की कि सीता को छोड़ दीजिए, परन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी। उसने जब न समझाने से, न दान से, और न भेद से सीता को छोड़ा तो वह धमकाने से कैसे छोड़ सकता था? उसे तो कोई दूसरा पुरुष देख तक भी नहीं सकता, तो फिर दूसरे से उसका मारा जाना कैसा? महाबाहु! निश्चय से वह इन्द्रजित् राक्षस वानरों को छल कर चला गया है, आप उसे नकली सीता समझिए, असली नहीं है। उसने युद्ध में वानरों के पराक्रम में विघ्न पैदा करने की गरज से धोखा देने के लिए यह जाल रचा है। इसलिए आप तो चित्त को स्वस्थ बनाकर सावधान हो यहां ठहरिए, और हम सेनापतियों के साथ लक्ष्मण को भेजिए। यह नरशार्दूल तीखे

त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥१६॥
तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम् ॥१७॥
तत्संदिश महाबाहो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
राक्षसस्य विनाशाय वज्रं वज्रधरो यथा ॥१८॥

सर्ग ५१

राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥१॥
यद् वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ।
हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ॥२॥
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ।

बाणों से इन्द्रजित् को उस छल-कर्म से छुड़ा देगा और फिर असली भेष में आने पर वह मारा जावेगा। लक्ष्मण के वे अत्यन्त तीखे बाण, जोकि बाज पक्षी के पंखों जैसे बड़े वेग से जाने वाले, और नोच २ कर खाने वाले पक्षियों की तरह खूंखार हैं, इन्द्रजित् के खून को पीयेंगे। महाबाहु! इसलिए शुभ लक्षण वाले लक्ष्मण को राक्षस के विनाश के लिए अनुज्ञा देवें, जैसे कि वज्रधारी इन्द्र वज्र को छोड़ता है।"

युद्ध के लिए लक्ष्मण आदि का प्रस्थान और इन्द्रजित्-विभीषण की झड़प

राम को जब दुरात्मा दुश्मन के मायाजाल का पता लगा, तो उन्होंने कीर्तिसंपन्न लक्ष्मण को आदेश दिया— लक्ष्मण! जावो, वानरराज सुग्रीव की जो सेना है उस सबको साथ लेकर, हनुमान् आदि प्रमुख सेनापतियों को संग में लेकर, और सैन्य-

जहि तं राक्षसखुतं मायाबलसमन्वितम् ।।३।।
अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ।
अभिज्ञातश्च मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।।४।।
राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठम् अन्यद् भीमपराक्रमः ।।५।।
सन्नद्धः कवची खड्गी सशरी वामचापभृत् ।
रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ।।६।।
अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ।
लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ।।७।।
अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ।।८।।

सहित ऋक्षराज जाम्बवान् को साथ में लेकर उस रावण-पुत्र मायावी इन्द्रजित् को खत्म करो। ये महात्मा विभीषण अपने चारों मंत्रियों सहित तुम्हारे साथ जावेंगे, ये उसके मायाजालों से भलीप्रकार परिचित हैं।"

राम के इस आदेश को सुनकर भीमपराक्रमी लक्ष्मण ने विभीषण को साथ लिया, एक दूसरा बढ़िया धनुष पकड़ा, कवच कसा, कमर में तलवार बांधी, पीठ पर वाणों से भरा तरकश लटकाया और बाऐं हाथ में धनुष को पकड़ कर राम के चरणों को छू खुशी २ उनसे निवेदन किया—"आज मेरे धनुष से छुटे वाण इन्द्रजित् को बींध कर लंका तक पहुँचेगे, ऐसे जैसे कि हंस पुष्करिणी में पहुंचते हैं। आज ही महाधनुष की डोरी से छुटे मेरे वाण उस क्रूर के शरीर को छेद कर उसे समाप्त कर देंगे।"

तेजस्वी लक्ष्मण भाई के आगे इसप्रकार कह कर इन्द्रजित्

एवमुक्त्वा तु वचनं द्युतिमान् भ्रातुरग्रतः ।
स रावणिवधाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्वरितं ययौ ॥९॥
सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
कृतस्वस्त्ययनो भ्रात्रा लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ॥१०॥
वानराणां सहस्रैस्तु हनूमान् बहुभिर्वृतः ।
विभीषणश्च सामात्यो लक्ष्मणं त्वरितं ययौ ॥११॥
महता हरिसैन्येन सवेगमभिसंवृतः ।
ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम् ॥१२॥
स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद् व्यूहमाश्रितम् ॥१३॥
स सम्प्राप्य धनुष्पाणिर्मायायोगमरिन्दमः ।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन विजेतुं रघुनन्दनः ॥१४॥

के बध का अभिलाषी बन तुरन्त चल पड़ा : उसने बड़े भाई की पाद-वन्दना की, उनकी प्रदक्षिणा की, और उत्तर में भाई द्वारा स्वस्ति-वाचन पाकर शीघ्र प्रस्थित हो गया। उसके संग कई हजार वानरसैन्यों के साथ हनुमान् ने, तथा अमात्यों सहित विभीषण ने तुरन्त कूच किया। इसप्रकार बड़ी भारी वानर-सेना को साथ लिए लक्ष्मण बड़ी तेजी से चला जा रहा था कि उसने मार्ग में ऋक्षराज तथा उस की सेना को तय्यार खड़े देखा।

लम्बा मार्ग तै करने के पश्चात् मित्रों को आनन्द देने वाले लक्ष्मण ने दूर से इन्द्रजित् की सेना को देखा कि वह मोर्चे पर डटी हुई है। तब हाथ में धनुष लिए अरिमर्दन रघुनन्दन, छल-कपट के साथ टक्कर लेने के उपाय को ग्रहण कर, विजय पाने के लिए धनुर्वेद के विधानानुसार युद्ध में जा डटा। उस समय

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
अङ्गदेन च वीर्येण तथाऽनिलसुतेन च ॥१५॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् रावणात्मजः ।
इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥१६॥

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥१७॥

एवमुक्तो महातेजा मनस्वी रावणात्मजः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१८॥

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद् भ्राता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥१९॥

न जातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।

उसके साथ प्रतापी राजपुत्र विभीषण, तथा वीर अंगद और पवनपुत्र हनुमान् भी था।

रण में पहुंचने पर दीख पड़ा कि रावणपुत्र बलवान् इन्द्रजित् अग्नि-तुल्य रथ पर सवार है, कवच पहने हुआ है, कमर में तलवार बंधी है, और हाथ में धनुष पकड़े है। तब कभी न पराजित हुए पुलस्त्यवंशी इन्द्रजित् को महातेजस्वी लक्ष्मण ने कहा—'मैं तुझे युद्ध में ललकारता हूं, आ, मेरे संग पूरी ताकत के साथ युद्ध कर।'

एवं, महातेजस्वी मनस्वी इन्द्रजित् को जब ऐसा कहा गया, तो उसने वहीं पास में खड़े विभीषण को देखकर उससे इसप्रकार कठोर बात कही—"तुम इस राक्षसकुल में पैदा हुए, यहीं बड़े हुए, और साक्षात् मेरे पिता के भाई हो, सो राक्षस ! तुम मेरे चचा हो, पुत्र के साथ क्यों द्रोह करते हो ? दुर्मति ! न यह तेरी

प्रमाणं न च सोदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥२०॥
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥२१॥
नैतच्छिथिलया बुद्ध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥२२॥
गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥२३॥
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥२४॥
निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं पौरुषं रावणानुज ॥२५॥

बिरादरी है, न यहां तेरी मित्रता है, न यह तेरी जाति है, न एक मां-जाया होना कारण है, और धर्मदूषक ! न स्वजन-त्याग धर्म है। दुर्बुद्धि ! तुम्हारे इस पतन को देखकर भले लोग शोक मनाते हैं और तुम्हारी निन्दा करते हैं, जोकि तुम स्वजनों को त्याग कर परायों की चाकरी में आ गए हो। तुम मन्दबुद्धिता के कारण इस बड़े भारी भेद को नहीं समझते कि कहां अपनों के साथ घुल-मिल कर रहना और कहां नीच परायों के आश्रय में रहना। चाहे पराये कितने ही गुणी हों और अपने कितने ही गुणहीन हों, तो भी अपने गुणहीन अच्छे हैं, जो पराये हैं वह पराये ही हैं। अतः, जो अपने पक्ष को छोड़ कर परपक्ष का आश्रय लेता है, वह अपने पक्ष के क्षीण हो जाने पर पीछे उन परपक्ष वालों से ही मारा जाता है। रावण के छोटे भाई राक्षस ! तुम्हारे में जैसी यह निर्दयता है, उससे तो जान पड़ता है कि

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥२६॥
राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात् ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ।
गुणो यः प्रथमो नृणां तन्मे शीलमराक्षसम् ॥२७॥
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ।
भ्रात्रा विषमशीलोऽपि कथं भ्राता निरस्यते ॥२८॥
धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥२६॥

तुम अपनों के साथ बुराई करने में अपना पूरा बल लगा सकते हो।"

भाई के पुत्र इन्द्रजित् ने विभीषण को जब इसप्रकार कठोर वचन कहे, तो उसने प्रत्युत्तर में कहा—

"राक्षस ! मेरे शील को न जानते हुए के समान तू क्यों बकवास कर रहा है ? ऐ साधुस्वभावरहित ! रावण के पुत्र ! अपने चचा के गौरव का ख्याल करके इस कठोरता को त्याग दे। यद्यपि मैं क्रूरकर्मा राक्षसों के कुल में पैदा हुआ हूं, परन्तु मनुष्यों का जो प्रथम गुण (भूतदया) है, वह मेरा शील है जोकि राक्षसों के साथ नहीं मिलता। न मैं निष्ठुरकर्म को कभी पसन्द करता हूं, और न अधर्म को। पर मुझे यह समझ में नहीं आता कि विरुद्ध शील वाले भी भाई को भाई कैसे निकाल दे ? (जैसे कि तेरे पिता ने किया है)। जो इस मामूली धर्म से गिरे हुए शील का पुरुष बुराई करने पर उतारू हो, तो उसे छोड़कर ही मनुष्य सुख को पाता है, जैसे कि विषधर सांप को हाथ में से

परस्वाहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्म प्रज्वलितं यथा ॥३०॥
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥३१॥
महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥३२॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ॥३३॥
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ॥३४॥
अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।

छोड़ देने में ही भलाई है। और फिर बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि दूसरे के धन को हरने वाले तथा दूसरे की स्त्री को छीनने वाले दुरात्मा को छोड़ देना चाहिए, जैसे कि धक-धक करके जलते हुए मकान को छोड़ दिया जाता है। दूसरे के धन को हरना, पराई स्त्री पर हाथ डालना, और मित्रों के विषय में अत्यन्त सन्देह करना, ये तीन दोष नाश करने वाले हैं।

फिर महर्षियों का घोर बध, सभी देवों के साथ झगड़ा, अभिमान, रोष, वैर, और दूसरे के काम में रोड़े अटकाना, ये जीवन और ऐश्वर्य के नाश करने वाले दोष मेरे भाई में हैं। इन दोषों ने भाई के गुणों को उसीप्रकार ढक रखा है जैसे कि घने मेघ पर्वतों को ढक लेते हैं। बस, इन दोषों के कारण मैंने भाई को, जोकि तुम्हारे पिता हैं, छोड़ा है। अब न यह लंकापुरी रहेगी, न तू रहेगा, और न तेरे पिता रहेंगे। राक्षस ! तू अभी छोकरा

बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥३५॥
अद्येह व्यसनं प्राप्तं यन्मां परुषमुक्तवान् ।
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम ॥३६॥
धर्षयित्वा च काकुत्स्थं न शक्यं जीवितुं त्वया ।
युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह ।
हतस्त्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमक्षयम् ॥३७॥

सर्ग ५२

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।
उवाचैनं सुसंरब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ॥१॥
तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम् ।

है, तिस पर अपने को बहुत बड़ा समझने वाला और दुर्विनीत। तू मौत के फन्दे से बंधा पड़ा है, इसलिए जो २ तेरे मुंह में आवे मुझे कहले।

राक्षसाधम ! दुःख में पड़े हुए मुझ को जो तूने आज यहां कठोर बोल बोले हैं, बस अब तू बरगद पेड़ के समान रक्षा करने वाले मुझ से कोई रक्षा न पा सकेगा। और लक्ष्मण को सता कर अब तू जीवित नहीं रह सकता। अब तू रणभूमि में नरदेव लक्ष्मण के साथ युद्ध कर, मारा जाकर तू देवों का कार्य पूरा करेगा, जोकि तू मृत्युलोक में पहुँचेगा।"

लक्ष्मण इन्द्रजित् का घोर युद्ध व इन्द्रजित् के सारथि का मारा जाना

विभीषण के बोल को सुनकर इन्द्रजित् भड़क उठा और तना हुआ विभीषण सहित लक्ष्मण से तथा उन वानरसेनापतियों से बोला—"अच्छा, मेरे पराक्रम को देखो। आज तुम युद्ध में

अद्य मत्कार्मुकोत्सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ।
मुक्तवर्षमिवाकाशे धारयिष्यथ संयुगे ॥२॥
अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ।
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ॥३॥
तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नान् शूलशक्त्यृष्टिसायकैः ।
अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ॥४॥
सृजतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य संयुगे ।
जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ॥५॥
रात्रियुद्धे तदा पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ तौ मया भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥६॥
स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं यातो यमक्षयम् ।
आशीविषसमं क्रुद्धं यन्मां योद्धुमुपस्थितः ॥७॥

मेरे धनुष से छुटी असह्य शर-वृष्टि को अपने ऊपर पड़ती ऐसी देखोगे, जैसी कि आकाश में जल-धारा बरसती हो। आज महाधनुष से निकले मेरे बाण तुम्हारे शरीरों को ऐसे दग्ध कर देंगे, जैसे कि रूई के ढेर को अग्नि दग्ध कर देती है। तीखे बाणों से छिदे तुम सब को आज मैं शूल-शक्ति-ऋष्टि-पटों से यमलोक पहुँचाऊंगा। बड़ी फुर्ती से जब मै युद्ध में तुम्हारे ऊपर बाण बरसाऊंगा और गर्जते मेघ के समान गरजूंगा तो कौन मेरे आगे ठहरेगा ? क्या तुम्हें याद नहीं रहा कि पहले तुम निशायुद्ध में मेरे द्वारा वज्राशनि समान बाणों से साथियों सहित अत्यधिक मूर्छित करके सुला दिए गए थे ? अथवा मैं समझता हूं कि तुम दोनों सचमुच यमलोक को जा रहे हो, जोकि तुम विषधर सर्प के समान क्रुद्ध मुझ से युद्ध करने के लिए उपस्थित हुए हो।"

तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं राघवस्तदा ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ॥८॥
उक्तश्च दुर्गमः पारः कार्याणां राक्षस त्वया ।
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ॥९॥
स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् ।
वाचा व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ॥१०॥
अन्तर्धानगतेनाजौ यत्त्वया चरितस्तदा ।
तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ॥११॥
यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽस्मि तव राक्षस ।
दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ॥१२॥
एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ।

लक्ष्मण ने इन्द्रजित् की इस गर्जना को सुनकर बिना किसी तरह के भय के क्रुद्ध होकर प्रत्युत्तर में उसे कहा — "राक्षस! किसी दुष्कर काम को न कर जबान हिलाकर कह देना तो आसान बात है, परन्तु उसे करके दिखाना कठिन होता है। अतः बुद्धिमान् वही होता है जोकि उस काम को करके दिखा दे। दुर्मति ! हमें परास्त करने के जिस काम को कोई नहीं कर सकता, उस काम में तू निष्फल निकला है, इसलिए केवलमात्र वाणी से कह कर तू समझता है कि मैं सफल हो गया। तूने उस निशा-युद्ध में लुक-छिप कर जो करतूत की थी, वह चोरों की करतूतों का मार्ग है, उस मार्ग को वीर लोग नहीं अपनाते। राक्षस ! जैसे मैं तेरे बाणों की मार में खड़ा हूं, उसीतरह तू भी मेरे बाणों की मार में खड़ा होकर आज अपना वह तेज दर्शा, वृथा डींगे मारने से क्या मतलब ?"

ससर्ज निशितान्बाणान् इन्द्रजित्समितिञ्जयः ॥१३॥
शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतो भीमनिःस्वनम् ।
सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ॥१४॥
तयोरथ महान् कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं क्लमं चाप्युपजग्मतुः ॥१५॥
अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान् ।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥१६॥
ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
सम्पूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा ।
महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्य विचरिष्यतः ॥१७॥
स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ।

लक्ष्मण ने जब इन्द्रजित् को इसप्रकार ताना दिया, तो उस युद्धविजयी महाबली ने भयंकर धनुष पकड़ा और लक्ष्मण पर तीखे बाण वरसाने प्रारम्भ किए। तब जैसे आकाश में अत्यन्त काले मेघ धारा रूप में वरसा करते हैं, वैसे युद्ध में तड़ातड़ शब्द वाली घोर शरवृष्टि करते हुए उनका (लक्ष्मण तथा इन्द्रजित् का) बहुत ज्यादा समय व्यतीत हो गया, परन्तु फिर भी उन्होंने न युद्ध से मुंह मोड़ा और न थके।

इसप्रकार घोर युद्ध चल रहा था कि लक्ष्मण ने इन्द्रजित के सोने से विभूषित काले चारों घोड़ों को चार वाणों से बींध दिया। और उसके वाद उस श्रीमान् ने पीले रंग के, तीखे, कान तक खींच कर छोड़े हुए, सुन्दर पंख से युक्त, चमचमाते, इन्द्र के वज्र तुल्य संहारकारी, और चिल्ले से छूटते समय वज्रपात जैसा शब्द करने वाले भल्ल नामी वाण-वज्र से, रथ को हांक कर

लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत् ॥१८॥
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः ।
शरवर्षेण सौमित्रिम् अभ्यधावत रावणिः ॥१९॥

सर्ग ५३

ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः ।
स्तुन्वानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥१॥
तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥२॥
धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगे ॥३॥
तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे हि वनौकसः ।

समरांगण में इतस्ततः विचरते हुए सारथि के सिर को बड़ी सफाई से धड़ से अलग कर दिया। तब इन्द्रजित् घोड़ों के और सारथि के मारे जाने पर रथ से नीचे कूद पड़ा, और शर-वृष्टि करता हुआ लक्ष्मण पर झपटा।

घोर युद्ध के बाद लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजित् का मारा जाना

तब उन सब राक्षसों को हर्षाते हुए और उनकी प्रशंसा करते हुए इन्द्रजित् ने प्रसन्न होकर कहा—"राक्षसोत्तमो ! ये सब दिशायें संप्रति गाढ़ अन्धकार से लिप्त हैं, अतः अपना व पराया पहिचान में नहीं आ रहा। इसलिए आप लोग वानरों को धोखे में रखने के लिए कि वे यह ही समझते रहें कि इन्द्रजित् ही लड़ रहा है, धृष्टता पूर्वक लड़ते रहें, मैं रथ लेकर अभी युद्ध में आता हूँ। बल्कि आप लोग ऐसा यत्न करें कि बलशाली वानर लोग मेरे लंका जाने पर लड़ें ही नहीं।"

न युध्येयुर्महात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥४॥
इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥५॥
स रथं भूषयित्वाऽथ रुचिरं हेमभूषितम् ।
प्रासासिशरसंयुक्तं युक्तं परमवाजिभिः ॥६॥
अधिष्ठितं हयज्ञेन सूतेनाप्तोपदेशिना ।
आरुरोह महातेजा रावणिः समितिञ्जयः ॥७॥
स राक्षसगणैर्मुख्यैर्वृतो मन्दोदरीसुतः ।
निर्ययौ नगराद्वीरः कृतान्तबलचोदितः ॥८॥
सोऽभिनिष्क्रम्य नगराद् इन्द्रजित्परमौजसा ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्लक्ष्मणं सविभीषणम् ॥९॥
ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् ।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः ।

ऐसा कह कर शत्रुहन्ता इन्द्रजित् वानरों को धोखे में रख कर रथ लेने के लिए लंकापुरी पहुंच गया। वहां पहुंच कर युद्ध-विजेता महातेजस्वी इन्द्रजित् ने एक सुवर्णमण्डित सुन्दर रथ सजवाया, जिस पर बहुत से भाले तलवारें और बाण रखे हुए थे, बढ़िया घोड़ों से जुता हुआ था, और घोड़ों को पहिचानने वाला तथा नेक सलाह देने वाला सारथि बैठा हुआ था। इन्द्रजित् उस रथ पर सवार हुआ और प्रधान प्रधान राक्षसों को साथ लेकर मौत से खिंचा हुआ शीघ्र नगरी से बाहर निकला। वह पूरी ताकत के साथ नगरी से बाहर निकल वेगवान् घोड़ो से लक्ष्मण-विभीषण के समक्ष जा पहुंचा। जब लक्ष्मण ने, महाबली वानरों ने, और राक्षस विभीषण ने देखा कि इन्द्रजित् रथ पर

विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः ॥१०॥
ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥११॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं चक्रे त्वरन्निव ।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत ॥१२॥
अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः ।
विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः ॥१३॥
ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः ।
निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः ॥१४॥
स च्छिन्नधन्वा रुधिरं वमन् वक्त्रेण रावणिः ।
जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ॥१५॥
स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ।

सवार है, तो वे उस चतुर की फुर्ती पर अत्यन्त विस्मित हुए।

तब समर-कोप से जले हुए लक्ष्मण ने हाथ की फुर्ती दिखलाते हुए उसके धनुष को काट डाला। इस पर इन्द्रजित् ने एक दूसरा धनुष लेकर उस पर जल्दी से ज्यों ही चिल्ला चढ़ाया कि उसे भी लक्ष्मण ने तीन बाणों से काट गिराया, और उसके तुरन्त बाद कटे-धनुष की छाती को विषधर सांपों-जैसे विषमय पांच बाणों से बींध डाला। वे महाधनुष से छुटे बाण इन्द्रजित् के शरीर को फाड़ कर धरणी पर ऐसे जा पड़े कि मानो लाल रंग के महासर्प हैं।

कटे-धनुष इन्द्रजित् के मुंह से खून वह रहा था कि उसने एक मजबूत चिल्ले वाले शक्तिशाली उत्तम धनुष को लिया और हाथ की विशेष सफाई दर्शाते हुए लक्ष्मण पर बाणों की ऐसी

ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ॥१६॥
मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिन्दमः ।
आवारयदसम्भ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ॥१७॥
सन्दर्शयामास तदा रावणिं रघुनन्दनः ।
असम्भ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥१८॥
ततस्तान् राक्षसान् सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे ।
अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं सम्प्रदर्शयन् ॥१९॥
राक्षसेन्द्रस्तु तं चापि बाणौघैः समताडयत् ॥२०॥
सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना ।
असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्छरान् ॥२१॥
तानप्राप्ताञ्छितैर्बाणैश्चिच्छेद परवीरहा ।

झड़ी लगा दी कि जैसे विद्युत्संघट्ट तड़ातड़ वर्षा किया करता है। परन्तु अरिमर्दन लक्ष्मण ने इन्द्रजित् द्वारा बरसायी उस असह्य शरवृष्टि को विना घबराये रोक दिया। उस समय महातेजस्वी लक्ष्मण ने विना घबराये इन्द्रजित् को जो अपना पराक्रम दर्शाया, सचमुच वह अद्भुत था।

तदनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध लक्ष्मण ने फुर्ती से वाण छोड़ने के कौशल को दर्शाते हुए युद्ध में एक साथ छोड़े गए तीन-तीन वाणों से उन सब राक्षसों को एक-एक करके बींध दिया, और फिर इन्द्रजित को भी वाणों से अच्छी तरह बींध दिया। एवं, जब शत्रुघाती बलवान् शत्रु से इन्द्रजित् बुरी तरह बिंध गया, तो उसने बीच में विना रुके लगातार लक्ष्मण पर अनेक वाण छोड़ने प्रारम्भ किए। परन्तु, शत्रुओं के वीरों को मारने वाले तथा रथियों में रथश्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मण ने उन्हें तीखे वाणों से बीच में ही

सारथेरस्य च रणे रथिनां रथसत्तमः ।
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा ॥२२॥
असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः ।
मण्डलान्यभिधावन्ति तदद्भुतमिवाभवत् ॥२३॥
अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ।
प्रत्यविध्यद्धयांस्तस्य शरैर्वित्रासयन् रणे ॥२४॥
अमर्षमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो रणे ।
विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं रोमहर्षणम् ॥२५॥
ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्वविषोपमाः ।
विलयं जग्मुरागत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ॥२६॥
अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ।
ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ।

काट गिराया, और रण में उसके सारथि का सिर पैने एवं सीधे पोरुओं वाले भल्ल वाण से काट दिया। तब सारथि के विना वे घोड़े स्वयं विना घबराये वहने लगे और मण्डलाकार चक्र काटने लगे। सचमुच यह दृश्य अद्भुत था। तब दृढ़विक्रमी लक्ष्मण ने इस बात को सहन न कर उसके घोड़ों को वाणों से बींध दिया और एवं रण में एक भय फैला दिया।

बलवान् रावण-पुत्र ने असहनशील लक्ष्मण के इस कर्म को सहन न कर उस पर दस वाण छोड़े, परन्तु उसके वे वज्रतुल्य व सर्पविष-जैसे वाण सोने की तरह चमकने वाले कवच से टकरा कर नष्ट हो गए। तब इन्द्रजित् ने यह जानकर कि इसका कवच अभेद्य है, उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर शीघ्र वाण चलाने के कौशल को दर्शाते हुए बढ़िया पुंख वाले तीन वाणों से लक्ष्मण के माथे

अविध्यत्परमक्रुद्धः शीघ्रमस्त्रं प्रदर्शयन् ॥२७॥
तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ।
रणाग्रे समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥२८॥
स तथाप्यर्दितो बाणै राक्षसेन तदा मृधे ।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ।
विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ॥२९॥
लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ।
अन्योऽन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमबिक्रमौ ॥३०॥
ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ।
रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ॥३१॥
तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ।
घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ॥३२॥

को बींध दिया। तब वह युद्धप्रिय लक्ष्मण ललाट-स्थित उन तीन वाणों से रण में ऐसे दीख पड़ रहा था कि मानो तीन चोटियों वाला कोई पहाड़ है।

एवं, राक्षस द्वारा युद्ध में वाणों से घायल हो जाने पर भी लक्ष्मण ने बड़ी फुर्ती से उसे पांच वाणों से घायल कर दिया। कान तक खींच कर छोड़े गए ये वाण इन्द्रजित् के कुण्डल-विभूषित मुंह पर लगे।

एवं, महाशक्तिशाली धनुषों को धारे हुए भीमविक्रमी लक्ष्मण व इन्द्रजित् वीर एक दूसरे को तीखे वाणों से ऐसा मार रहे थे कि खून से तर-वतर वे दोनों वीर रण में फूलों से खिले पलाशवृक्षों-जैसे दीख पड़ रहे थे। इसप्रकार अपनी-अपनी विजय में दृढ़निश्चयी वे दोनों धनुर्धारी मुकाबले में डट कर एक-दूसरे

ततः समरकोपेन संयुतो रावणात्मजः ।
विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे ॥३३॥
अयोमुखैस्त्रिभिर्विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
एकैकानभिविव्याध तान्सर्वान् हरियूथपान् ॥३४॥
तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान् ।
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः ॥३५॥
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्मथितसारथिः ।
अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह ॥३६॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः ।
चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधाऽपातयद्भुवि ॥३७॥
तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः ।

के समस्त अंगों को भयानक वाणों से घायल कर रहे थे ।

तव समर-कोप से युक्त इन्द्रजित् ने विभीषण के सुन्दर मुख कर तीन वाण छोड़ कर उसे घायल कर दिया । एवं, राक्षस-राज विभीषण को लोहे की नोकों वाले तीन वाणों से घायल कर उन सब वानर-सेतापतियों को पक-एक करके बींध दिया । तिस पर अतिक्रुद्ध हो महातेजस्वी विभीषण ने गदा से दुरात्मा इन्द्रजित् के घोड़ों को मार डाला । घोड़ों के मारे जाने पर महातेजस्वी इन्द्रजित् रथ से नीचे कूदा, क्योंकि सारथि तो पहले ही मारा जा चुका था, और चचा के ऊपर शक्ति का प्रहार किया । इसपर सुमित्रा के दुलारे लक्ष्मण ने उस आती हुई शक्ति को देख कर उसे बीच में ही तीखे वाणों से छेद दिया और दस टुकड़े करके भूमि पर गिरा दिया । तिस पर क्रुद्ध हो दृढ़ धनुष वाले विभीषण ने रथ-हीन इन्द्रजित् की छाती पर वज्रतुल्य कठोर पांच वाण छोड़े ।

वज्रस्पर्शसमान् पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ॥३८॥
ते तस्य कायं भित्त्वा तु रुक्मपुङ्खा निमित्तगाः ।
बभूवुर्लोहितादिग्धा रक्ता इव महोरगाः ॥३९॥
स पितृव्यस्य संक्रुद्धः इन्द्रजिच्छरमाददे ।
उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलम् ॥४०॥
तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन सन्धितम् ।
लक्ष्मणोऽप्याददे बाणम् अन्यद् भीमपराक्रमः ॥४१॥
कुबेरेण स्वयं स्वप्ने यद्दत्तममितात्मना ।
दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ॥४२॥
तयोस्तु धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः ।
विकृष्यमाणे बलवत् क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ॥४३॥
ताभ्यां तु धनुषी श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ।

वे लक्ष्यगामी सुवर्णपुंखी वाण उसके शरीर को छेद कर ऐसे खून-सने हो गए जैसे कि कोई लालरंग के महासर्प हों।

तब चचा पर महाक्रोध करके इन्द्रजित् ने राक्षसों के बीच में यम के दिए हुए महावली उत्तम वाण को लिया कि भीम-पराक्रमी महातेजस्वी लक्ष्मण ने भी उस महावाण को उस द्वारा चिल्ले पर चढ़ा देख कर एक दूसरे दुर्जेय तथा इन्द्र राजाओं सहित देव-असुरों से भी असह्य वाण को पकड़ा, जिसे कि अपरिमित शक्तिशाली कुबेर ने स्वयं स्वप्न में प्रदान किया था। जब उन दोनों के ये श्रेष्ठ धनुष परिघ समान वाहुओं से जोर से कर्ण पर्यन्त खींचे गए, तो इन्होंने क्रौञ्च पक्षियों के समान घोर शब्द किया। और फिर जब अपने-अपने श्रेष्ठ धनुषों पर चढ़े बढ़िया वाणों को लक्ष्मण-इन्द्रजित् वीरों ने कर्णपर्यन्त खींचा तो

विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ॥४४॥
तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ।
मुखेन मुखमाहत्य सन्निपेततुरोजसा ॥४५॥
सन्निपातस्तयोश्चासीच्छरयोर्घोररूपयोः ।
सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ॥४६॥
तौ महाग्रहसङ्काशावन्योऽन्यं सन्निपत्य च ।
सङ्ग्रामे शतधा यातौ मेदिन्यां चैव पेततुः ॥४७॥
शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ।
व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ॥४८॥
स संरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ।
रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धेऽप्यसृजद् युद्धविष्ठितः ।
तेन तद्विहतं शस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् ॥४६॥

वे वाण अग्नि से जल-से उठे। और फिर वे वाण धनुषों से छूट कर आकाश में चमकते हुए नोक से नोक भिड़ा कर बड़ी जोर से धरती पर गिर पड़े। उन भयंकर वाणों का गिरना ऐसा था कि पहले धूएं सहित चिनगारियां उठी, और फिर उनसे बड़ी भयंकर आग प्रकट हो गयी। वे वाण महाग्रहों के समान परस्पर में टकराकर रणस्थली में चूर-चूर हो गए और भूमि पर गिर पड़े। तब वे दोनों लक्ष्मण-इन्द्रजित् रणभूमि में इसप्रकार वाणों के टकराने को देखकर लज्जित हुए और गुस्से में भरे।

अब प्रकुपित होकर लक्ष्मण ने वारुण अस्त्र पकड़ा, तो युद्ध में स्थित इन्द्रजित् ने भी रौद्र अस्त्र छोड़ा। उस रौद्र अस्त्र ने परम अद्भुत वारुण अस्त्र को बेकार कर दिया। और उसके तुरन्त बाद क्रुद्ध महातेजस्वी युद्धविजयी इन्द्रजित् ने शत्रुसैन्यों

ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः ।
आग्नेयं सन्दधे दीप्तं सलोकं संहरन्निव ।
सौर्येणास्त्रेण तं वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत् ॥५०॥
अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् ॥५१॥
तस्माच्चापाद् विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ।
शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः ॥५२॥
तद् दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रं सुदारुणम् ।
अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशस्त्रविदारणम् ।
माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥५३॥
अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुःश्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ।

सहित लक्ष्मण का संहार कर देने के लिए चमचमाते आग्नेय अस्त्र को धनुष पर चढ़ाया, तो वीर लक्ष्मण ने सौर्य अस्त्र द्वारा उसे बेकार कर दिया। अग्नेय अस्त्र को बेकार हुआ देखकर इन्द्रजित् क्रोध से पागल हो उठा, और शत्रु को चीर देने वाले तीखे आसुर बाण को पकड़ा। उसे धनुष पर रख कर छोड़ने पर उससे चमचमाते कांटेदार मुद्गर, शूल, भुशुण्डिया, गदायें, खड्ग, और फरसे निकले, तो तेजस्वी लक्ष्मण ने युद्ध में इस अत्यन्त भयानक अस्त्र को देख कर, जोकि किसी से रोका नहीं जा सकता और सब शस्त्रों को बेकार करने वाला है, उसे माहेश्वर अस्त्र द्वारा निष्फल कर दिया।

इसके बाद लक्ष्मीवान् सुमित्रापुत्र लक्ष्मण ने युद्धों में कभी व्यर्थ न जाने वाले शरों में श्रेष्ठ ऐन्द्र अस्त्र को श्रेष्ठ धनुष पर

लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ॥५४॥
धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥५५॥
इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥५६॥
तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले ॥५७॥
तद्राक्षसतनूजस्य भिन्नस्कन्धं शिरो महत् ।
तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ॥५८॥
हतः स निपपाताथ धरण्यां रावणात्मजः ।
कवची सशिरस्त्राणो विप्रविद्धशरासनः ॥५९॥
हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं च रणक्षितौ ।

खींचते हुए अपने अभिप्राय की साधक यह बात कही—"ऐ वाण ! यदि दशरथ के पुत्र राम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं, और यदि उनका पौरुष प्रतिद्वन्द्विता-रहित है, तो इस इन्द्रजित् को मार डालो।" ऐसा कह कर वीर लक्ष्मण ने ठीक सीधा जाने वाले वाण को कान तक खींचा और युद्ध में इन्द्रजित् पर दे मारा। उस वाण ने इन्द्रजित् के सिर को शिरस्त्राण तथा चमकते हुए कीमती कुण्डलों सहित धड़ से अलग कर भूतल पर गिरा दिया। रावण-पुत्र का कन्धों के पास से कटा हुआ वह बड़ा सिर रुधिर से भीगा होने के कारण भूमि पर पड़ा सोने जैसा दीख पड़ रहा था। एवं, सिर के कटते ही कवच पहिने, शिरस्त्राण ओढ़े और हाथ में टूटा धनुष लिए इन्द्रजित् पृथ्वी पर धड़ाम से गिर पड़ा। तब इन्द्रजित् को मरा और रणभूमि में सदा के लिए सोता हुआ

राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित्प्रत्यदृश्यत ॥६०॥
यथाऽस्तं गत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ॥६१॥

सर्ग ५४

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥१॥
ततः स जाम्बवन्तं च हनूमन्तं च वीर्यवान् ।
सन्निपत्य महातेजास्तांश्च सर्वान् वनौकसः ॥२॥
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥३॥
ततो रामसभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थः शक्रस्येन्द्रानुजो यथा ॥४॥

देखकर हजारों राक्षसों में से कोई भी वहां न दीख पड़ा। जैसे सूर्य के अस्त हो जाने पर किरणें नहीं ठहरती, वैसे उसके मारे जाने पर वे सब राक्षस इधर-उधर भाग गए।

लक्ष्मण की प्रशंसा और सब घायलों की चिकित्सा

रुधिर-सना शुभलक्षणों वाला लक्ष्मण युद्ध में समरविजयी इन्द्रजित् को मार कर बड़ा खुश हुआ, और तब उस खुशी में महातेजस्वी तथा पराक्रमी लक्ष्मण, जाम्बवान हनुमान् एवं उन सब वानरों को साथ में ले विभीषण तथा हनुमान् का सहारा पकड़ (क्योंकि वह अत्यन्त घायल था) शीघ्र सुग्रीव-राम के पास पहुंचा। वहां पहुंच उसने राम की प्रदक्षिणा कर उन्हें अभिवादन किया और भाई के समीप खड़ा हो गया, जैसे कि इन्द्र के समक्ष उसका छोटा भाई खड़ा हुआ करता है। और वहां

निष्टनन्निव चागत्य राघवाय महात्मने ।
आचचक्षे तदा वीरो घोरमिन्द्रजितो वधम् ॥५॥
रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥६॥
श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे वाक्यं चेदमुवाच ह ॥७॥
साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म चासुकरं कृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥८॥
स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं कीर्तिवर्धनम् ।
लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥९॥
उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥१०॥

पहुंच कर वीर ने इन्द्रजित् के कठिनतम बध की सूचना मात्र देते हुए उक्त समाचार महात्मा राम से कहा। इस पर हर्षित होते हुए विभीषण ने राम से निवेदन किया "महाराज ! इन्द्रजित् का सिर महात्मा लक्ष्मण ने काटा है।"

महापराक्रमी राम ने जब यह सुना कि लक्ष्मण ने इन्द्रजित् का बध किया है, तो वे बहुत ही खुश हुए और बोले—"लक्ष्मण ! शाबास, मैं तुम से बहुत खुश हूं, तुमने बड़ा कठिन काम किया है, इन्द्रजित् के बध से अब हमने युद्ध जीत लिया, यह निश्चित समझो।" यह कह कर वीर्यवान् राम ने कीर्तिबर्धन लक्ष्मण का सिर सूंघा, और लजाते हुए को स्नेहवश बरबस अपनी गोद में बिठाया। गोद में बैठा कर भाई का गाढ़ आलिंगन किया, और स्नेह भरी दृष्टि से बार बार देखा कि वह बाणों से पीड़ित है, जगह २

शल्यसम्पीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् ।
रामस्तु दुःखसन्तप्तं तं तु निःश्वासपीडितम् ॥११॥
मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥१२॥
कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥१३॥
अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन्दुरात्मनि ।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥१४॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ।
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद् रणे ॥१५॥
अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथंचिद्विनिपातितः ।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥१६॥

घाव पड़े हुए हैं और हांफ रहा है। तब पुरुषोत्तम ने दुःख से सन्तप्त तथा हांफने से पीड़ित उसके सिर को पुनः सूंघा, और जल्दी २ उसके शरीर पर हाथ फेर कर सान्त्वना देते हुए कहा—

"कठिन काम करने वाले तुमने परम कल्याणकारी काम किया है। आज रण में पुत्र के मारे जाने पर मैं रावण को मरा हुआ समझता हूं। उस दुरात्मा शत्रु के मारे जाने पर आज मैं विजयी हूं। वीर! सचमुच तुमने नृशंस रावण की रण में दाहिनी भुजा काट दी है, यह उसका बड़ा भारी सहारा था। एवं, विभीषण हनुमान् ने भी इस लड़ाई में बड़ा भारी काम किया है, जिससे तीन दिन-रात में किसी तरह वीर मारा गया। अब मैं शत्रुरहित कर दिया गया हूं। अब रावण अवश्य बाहर निकलेगा, बड़ी भारी सेना लेकर बाहर निकलेगा, पुत्र का मारा

बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः ।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥१७॥
तं पुत्रवधसंतप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥१८॥

त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ।
न दुष्प्रापा हते तस्मिञ्छक्रजेतरि चाहवे ॥१९॥

स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ।
रामः सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥२०॥

विशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुदाचर ॥२१॥

विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ॥२२॥
ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ।
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा ।

जाना सुनकर बड़ी भारी सेना के साथ बाहर निकलेगा । अब मैं पुत्रबध से सन्तप्त बाहर निकले दुर्जेय राक्षसराज को बड़ी सेना साथ में ले मार डालूंगा । लक्ष्मण ! परमसहायक तुम्हारे द्वारा इन्द्रविजयी इन्द्रजित् के युद्ध में मारे जाने पर अब मेरे लिए सीता और पृथिवी का पाना कोई मुश्किल नहीं रहा ।"

इसप्रकार राम ने भाई की प्रशंसा व आलिंगन करके प्रसन्नता पूर्वक सुषेण को अपने समीप बुला कर कहा—"ऐ मित्र ! यह महाबुद्धिमान् प्यारा लक्ष्मण जिसप्रकार पीड़ा-रहित होकर सुखी हो जावे, वैसी चिकित्सा कीजिए । मित्र ! प्यारे लक्ष्मण को शीघ्र पीड़ा रहित कीजिए । तथा, ऋक्षसेना व वानरसेना के द्रुमयोधी जो अन्य शूर लड़े हैं, उनमें जिनके तीर विंधे हैं और

तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियतां सुखिनस्तथा ॥२३॥
एवमुक्तः स रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेणः परमौषधम् ॥२४॥
स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ।
तदाऽनिर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ॥२५॥
विभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत्तदा ॥२६॥
ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतक्लमः ।
सौमित्रिर्मुमुदे तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥२७॥

सर्ग ५५

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितो वधम् ।

घाव हैं, उन सब को भी प्रयत्न पूर्वक सुखी कीजिए।"

राम ने जब वानरसेनापति महात्मा सुषेण को इसप्रकार कहा तो उसने लक्ष्मण की नाक में परमौषध दी। वह उस औषध की गन्ध सूंघ कर शल्य-रहित हो गया। तब उसकी पीड़ा भी जाती रही और उसके घाव भी सब भर गए। तब उसके बाद सुषेण ने राम की आज्ञानुसार विभीषण आदि मित्रों, तथा समस्त वानर-प्रमुखों की चिकित्सा की। तब थोड़ी ही देर बाद लक्ष्मण पहले जैसा स्वस्थ बन गया। उसके घाव जाते रहे और उसकी पीड़ा दूर हो गयी। एवं, कष्टरहित होकर लक्ष्मण आनन्द-प्रसन्न हो गया।

इन्द्रजित्-बध से पागल हो रावण सीता-बध के लिए दौड़ा कि मंत्री सुपार्श्व ने रोका

रावण के मंत्रियों को जब इन्द्रजित् के बध का समाचार

आचचक्षुरवज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥१॥
युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषणसहायेन मिषतां नो महाद्युतिः ॥२॥
शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥३॥
गतः स परमांल्लोकाञ्छरैः संतर्प्य लक्ष्मणम् ॥४॥
स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ॥५॥
उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुंगवः ।
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥६॥
हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महाबल ।
जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशंगतः ॥७॥

मिला तो उन्हों ने तुरन्त उसकी सचाई को परख कर रावण को सूचित किया—"महाराज ! लक्ष्मण ने युद्ध में विभीषण की सहायता से हमारे योद्धाओं के देखते २ महातेजस्वी आपके पुत्र को मार दिया है। जो शूर शूर के साथ टक्कर लेकर युद्धों में कभी पराजित नहीं हुआ, उस देवेन्द्रविजेता आपके शूर पुत्र को लक्ष्मण ने मार दिया। पर, उसने लक्ष्मण को बाणों से अच्छी तरह तृप्त करके उत्कृष्ट गति को पाया है।"

इस पर रावण युद्ध में इन्द्रजित् पुत्र के भयजनक एवं अति-दारुण वध को सुनकर महामूर्छा में पड़ गया। कुछ देर बाद जब राक्षसश्रेष्ठ राजा को होश आया तो पुत्र-शोक से व्याकुल व व्यथित होकर बड़ी बेकली से विलाप करने लगा—

"हा राक्षसी-सेना के मुखिया महाबली मेरे पुत्र ! तुम

मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् ।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥८॥
स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणेन च राघवे ।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः ॥९॥
एवमादि विलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविवेश महान्कोपः पुत्रव्यसनसंभवः ॥१०॥
प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ।
दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः ॥११॥
स पुत्रवधसंतप्तः क्रूरः क्रोधवशं गतः ।
समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ॥१२॥
प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः ।

इन्द्र तक को जीत कर लक्ष्मण के वश में कैसे पड़ गए ? वीर ! अवस्था के अनुसार पहले मेरे मरने पर तुम्हें मेरा अन्त्येष्टि कर्म करना था, परन्तु तुम इससे विपरीत कर्म में प्रवृत्त हो गए। तुम सुग्रीव के, और लक्ष्मण सहित राम के जीते हुए मेरे कांटे को विना उखाड़े हमें छोड़ कर कहां चल दिए ?" इत्यादि प्रकार से राक्षसराज रावण विलाप से पीड़ित होता हुआ पुत्र की मृत्यु के कारण महाक्रोध में भरा। रावण स्वभाव से पहले ही क्रोधी था, तिसपर यह पुत्र-व्यथा, इस व्यथा ने जलते हुए को और अधिक जला दिया, जैसे कि ग्रीष्म ऋतु में गर्म किरणें सूर्य को और गरम बना देती हैं।

इसप्रकार पुत्र-बध से सन्तप्त शूर रावण ने क्रोध में भर कर सोच-विचार के बाद सीता को मार डालना तै किया। उससमय दुखिया रावण ने चित्त को क्रूर, शक्ल को महाभयानक, और

दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान् ॥१३॥
मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ।
किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥१४॥
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ।
वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥१५॥

इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ।
उत्प्लुत्य गुणसम्पन्नं विमलाम्बरवर्चसम् ॥१६॥

निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः ।
रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः ।
संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः ।

आंखों को लाल सुर्ख बनाया, और भरी आवाज वाले उन सब राक्षसों को एक एक करके देख कर कहा—"मेरे पुत्र ने वानरों के ठगने के लिए युद्ध में चातुरी से मारा तो किसी दूसरी वस्तु को, परन्तु दिखला यह दिया कि यह सीता है। सो, मैं इस झूठी बात को आज सत्य ही करूंगा, क्योंकि यह मुझे प्रिय है। मैं क्षत्रियाधम की अनुव्रता सीता को आज मार डालूंगा।"

मंत्रियों को ऐसा कह कर रावण ने तुरन्त कूद कर माला से विभूषित और निर्मल आकाश की कान्ति के समान स्वच्छ तलवार को उठा लिया, और बड़ी तेजी से मंत्रियों को साथ में ले सपत्नीक महल से बाहर निकला। वह पुत्रशोक से अत्यन्त व्याकुल-चित्त और गुस्से में भरा हुआ था, तलवार लेकर एकदम वहां पहुँच गया जहां कि सीता को रखा हुआ था। इसी बीच में उचित समय देख कर उसके शीलवान् शुद्धाचारी और मेधावी

सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् ।
निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥१८॥

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वै श्रवणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य च ॥१९॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तथा ।
स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥२०॥
मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ।
तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥२१॥

अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यं विजयाय बलैर्वृतः ॥२२॥
शूरो धीमान् रथी खड्गी रथं प्रवरमास्थितः ।

सुपार्श्व नामी मंत्री ने दूसरे मंत्रियों के रोकने पर भी राक्षसश्रेष्ठ रावण से कहा—

"दसों दिशाओं को निगलने वाले और साक्षात् कुबेर के छोटे भाई! आप क्यों क्रोधवश धर्म को त्याग कर सीता को मारना चाहते हैं? राक्षसेश्वर वीर! आप वेदविषय में विद्या-स्नातक और व्रतस्नातक हैं, तथा अपने क्षात्रधर्म में नित्य तत्पर रहते हैं, फिर आप स्त्री के बध को कैसे अच्छा मानते हैं? राजन्! रूपवती सीता को क्षमा कीजिए, और युद्ध में हमारे साथ मिल कर उसी असली शत्रु राम पर क्रोध उतारिए। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को ही आप युद्ध की पूरी तय्यारी कीजिए, और तय्यारी करके कल अमावास्या के दिन सेना को साथ ले विजय के लिए दुर्ग से बाहर निकलिए। आप शूर हैं, बुद्धिमान् हैं, अच्छे रथी हैं, और तलवार चलाने में दक्ष हैं, आप बढ़िया

हत्वा दाशरथिं भीमं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् ।।२३।।

सर्ग ५६

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ।।१।।
उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः ।
क्रोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ।।२।।
महोदरं महापार्श्वं विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ।।३।।
कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ।
अनुप्रयान्तु मां युद्धे येऽत्र शिष्टा निशाचराः ।।४।।

रथ पर सवार होकर भयावह राम को मार सीता को प्राप्त कर लेंगे।"

महोदर, महापार्श्व तथा विरूपाक्ष सेनापतियों को साथ ले रावण का युद्ध में उतरना

सीता-वध से सुपार्श्व के रोकने पर उदास तथा परम दुःखी राजा राजसभा में लौट आया और साँसें छोड़ता हुआ क्रुद्ध सिंह जैसा बन कर राजासन पर बैठ गया। बैठकर राक्षसराज पास में बैठे हुए राक्षसों से बोला: क्रोध के कारण यद्यपि उसके मुख से साफ २ शब्द नहीं निकल रहे थे, परन्तु अपने नेत्रों से भस्म करता हुआ-सा महोदर, महापार्श्व, तथा विरूपाक्ष राक्षसों से बोला—"जावो, मेरी आज्ञा से सेना को कहो कि शीघ्र कूच के लिए निकले। एवं, मेरा रथ शीघ्र तय्यार कराओ और मेरा धनुष शीघ्र लाओ। और जो २ राक्षस युद्धविद्या सीखे हुए हैं वे सब युद्ध में मेरे पीछे चलें।"

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद्वचः ।
बलाध्यक्षान् स्थितांस्तत्र बलं संत्वर्यतामिति ॥५॥
एतस्मिन्नन्तरे सूतः स्थापयामास तं रथम् ।
दिव्यास्त्रवरसम्पन्नं नानालङ्कारभूषितम् ॥६॥
तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय रावणो राक्षसेश्वरः ।
द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ।
आरुरोह तदा भीमं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥७॥
रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥८॥
ते तु हृष्टाऽभिनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥९॥
ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ।

राजा के इस आदेश को पाकर महापार्श्व ने सभा में विद्यमान सेनापतियों को आदेश दिया कि आप लोग शीघ्र अपनी सेना को तय्यार कीजिए ।

इतने में सारथि रावण के रथ को ले आया, जिसपर दिव्य बढ़िया अस्त्र रखे हुए थे और नाना अलंकारों से विभूषित था । उसे देखकर राक्षसेश्वर रावण एकदम उठा और उस पर सवार हुआ । यह रथ द्रुतगामी था, उसपर सारथि सवार था, आठ घोड़े जुते हुए थे, और अपनी छटा से भयानक रूप में चमक रहा था । रावण की आज्ञा से महापार्श्व, महोदर, तथा अदम्य विरूपाक्ष भी रथों पर सवार हुए । ये समस्त विजयाभिलाषी सैन्य मारे हर्ष के विजय-नाद गुँजाते हुए, भूमि को विदीर्ण करते हुए, और भयजनक सिंह-नाद करते हुए रण के लिए निकले । तेजस्वी रावण चिल्ला-

निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥१०॥
ततः प्रजविताश्वेन रथेन स महारथः।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥११॥
तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम्।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत।
अन्योऽन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥१२॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥१३॥

सर्ग ५७

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम्।
आससाद ततो युद्धे त्वरितं राघवं रणे ॥१॥

चढ़े धनुष को हाथ में ले बड़ी भारी राक्षसी सेना के साथ युद्ध के लिए ऐसे निकला जैसे कि साक्षात् सर्वसंहारकारी यमराज ही आ उपस्थित हुआ हो। थोड़ी ही देर में महारथी रावण अति-वेगवान घोड़ों से जुते रथ से नगरी के उस द्वार से बाहर निकला जहां कि राम-लक्ष्मण तैनात खड़े थे। उन महाबली राक्षसों के रथघोष को सुनकर वानरों की सेना भी युद्ध के लिए जुट गयी। विजय की अभिलाषा से राक्षसी और वानरी सेना एक दूसरे को ललकारने लगी। तब दशों दिशाओं को निगलने वाले रावण ने सुवर्ण-विभूषित बाणों से वानरी सेना का महासंहार करना शुरु किया।

सुग्रीव द्वारा विरूपाक्ष का बध

रावण शीघ्रता पूर्वक वानरों को मार भगाता हुआ झट रणाङ्गन में आगे बढ़ा, और युद्धनिमित्त राम के समीप पहुँच

सुग्रीवस्तान् कपीन्दृष्ट्वा भग्नान्विद्रावितान् रणे।
गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धे द्रुतं मनः ॥२॥
आत्मनः सदृशं वीरं स तं निक्षिप्य वानरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुखं शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥३॥
पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे वानरयूथपाः ।
अनुजग्मुर्महाशैलान् विविधांश्च वनस्पतीन् ॥४॥
ननर्द युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।
पोथयन् विविधांश्चान्यान् ममन्थोत्तमराक्षसान् ॥५॥
अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु नदत्सु च पतत्सु च ॥६॥
विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ।

गया। जब सुग्रीव ने यह देखा कि मार-पीट कर वानरों को रण में से भगा दिया गया है, तो उसने सुषेण को छावनी में नियत कर आप युद्ध में जाने की ठानी। तदनुसार उसने अपने समान शूरवीर सुषेण को अपनी जगह रखा और आप वृक्षायुध को हाथ में ले शत्रु के मुकाबले के लिए चल पड़ा। उसके साथी दूसरे सब वानर-सेनापति शिलाओं तथा अनेक प्रकार के वृक्षायुधों को ले उसके अगल-बगल व पीछे चले। सुग्रीव ने युद्ध में पहुंच कर महामहान् स्वर से सिंह-गर्जना की और अनेकों को पीटते हुए प्रमुख राक्षसों को मथ डाला।

जब धनुधारी तथा दुर्जेय विरूपाक्ष राक्षस ने यह देखा कि सुग्रीव ने सब ओर से राक्षसों को नष्ट करना शुरु किया है और वे घायल हो हो कर चिल्ला रहे हैं और गिर रहे हैं, तो वह अपना नाम सुना कर रथ से नीचे उतरा और हाथी पर सवार हुआ।

रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥७॥
स तं द्विपमथारुह्य विरूपाक्षो महाबलः ।
ननर्द भीमनिर्ह्रादं वानरानभ्यधावत ॥८॥
सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ।
स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् संप्रहर्षयन् ॥९॥
सोऽतिविद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ।
चुक्रोश च महाक्रोधो बधे चास्य मनो दधे ॥१०॥
ततः पादपमुद्धृत्य शूरः सम्प्रधनो हरिः ।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तं महागजम् ॥११॥
स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च ॥१२॥
गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥१३॥

एवं, उस महाबली ने हाथी पर सवार हो देर तक भयंकर सिंह-गर्जना की और फिर वानरों पर पिल पड़ा। उसने वानरी सेना के आगे खड़े सुग्रीव पर तीखे वाण वरसाने शुरु किये और डरे हुए राक्षसों को उत्साह देते हुए रण में डटाया।

वानरराज सुग्रीव जब विरूपाक्ष द्वारा तीखे वाणों से ज्यादा बिध गया, तो क्रोध में भर कर उसने ललकार लगायी और उसके बध की ठानी। तब रणकुशल शूर वानर ने एक वृक्ष उखाड़ा और आगे बढ़ कर विरूपाक्ष के देखते २ उसके महागज पर दे मारा। सुग्रीव द्वारा प्रताड़ित वह महागज एक धनुष यानि चार हाथ पीछे हटा, चिघाड़ा और बैठ गया। हाथी को पिटा हुआ जान पराक्रमी विरूपाक्ष झट उससे नीचे उतर पड़ा और

आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ।
भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥१४॥
स हि तस्यापि संगृह्य प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ।
विरूपाक्षस्य चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥१५॥
स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अपक्रम्य सुविक्रान्तः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥१६॥
तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः ।
मुहूर्तमभवद् भूमौ विसंज्ञ इव वानरः ॥१७॥
सहसा स तदोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे ।
मुष्टिं संवर्त्य वगेन पातयामास वक्षसि ॥१८॥
मुष्टिप्रहाराभिहतो विरूपाक्षो निशाचरः ।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ।

शत्रु सुग्रीव के समक्ष जा खड़ा हुआ । उस फुर्तीले ने फौरन बैल के चमड़े की ढाल और तलवार संभाली और सामने खड़े सुग्रीव को फटकारता हुआ उस पर लपका। सुग्रीव ने एक ओर तो विरूपाक्ष के प्रहार को रोका और दूसरी ओर मेघ समान बरसने वाली बड़ी शिला लेकर उस पर दे मारी।

राक्षसश्रेष्ठ अपने ऊपर आती हुई उस शिला को देख परे हट गया और विक्रम करके सुग्रीव पर तलवार का वार किया। बली राक्षस के उस खड्ग-प्रहार से सुग्रीव घायल हो गया, और थोड़ी देर के लिए भूमि पर बेहोश हो गिरा रहा। कुछ देर बाद वह एकदम उठा और मुक्का घुमा कर बड़े वेग के साथ युद्ध में राक्षस की छाती पर दे मारा। मुष्टिप्रहार से प्रताड़ित हो विरूपाक्ष राक्षस बड़े गुस्से में भरा, और सेना के आगे खड़े सुग्रीव के कवच

कवचं पातयामास पद्भ्यामभिहतोऽपतत् ॥१९॥
स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ।
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम् ॥२०॥
तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ।
नैपुण्यान्मोचयित्वैनं मुष्टिनोरसि ताडयत् ॥२१॥
ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ॥२२॥
स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ।
ततोऽन्यं पातयत्क्रोधाच्छङ्खदेशे महातलम् ॥२३॥
महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ।
पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं हि समुद्गिरन् ॥२४॥
स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥२५॥

को खड्ग से काट गिराया और उसके दोनों पावों पर ऐसा प्रहार किया कि वह नीचे गिर पड़ा। तुरन्त वानर उठा और बड़े शब्द वाला वज्रतुल्य थप्पड़ विरूपाक्ष पर जमाना चाहा कि राक्षस ने सुग्रीव द्वारा उठाये थप्पड़ को बड़ी निपुणता से बचा लिया और उलटा उसकी छाती पर मुक्का दे मारा।

राक्षस ने एक तो सुग्रीव के मुक्का जमाया, और दूसरे उसके प्रहार को बचा लिया, इस दोहरी मार को देखकर सुग्रीव का पारा बहुत चढ़ गया और वह विरूपाक्ष पर घातक प्रहार करने के अवसर की ताक में था कि ज्यों ही उसे वह अवसर मिला उसने बड़े गुस्से में भर कर उसके माथे पर बड़ी जोर से चपेट लगायी। इन्द्र राजा के वज्र जैसी उस चपेट से मार खाकर विरूपाक्ष रुधिर-सना भूमि पर गिर पड़ा, और मुंह नाक कान

विवृत्तनयनं क्रोधात् सफेनं रुधिराप्लुतम् ।
ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥२६॥
स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् ।
करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥२७॥

सर्ग ५८

हन्यमाने बले तूर्णमन्योऽन्यं ते महामृधे ।
सरसीव महाघर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः ॥१॥
स्वबलस्य तु घातेन विरूपाक्षवधेन च ।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥२॥
प्रक्षीणं स्वबलं दृष्ट्वा वध्यमानं वलीमुखैः ।
बभूवास्य व्यथा युद्धे दृष्ट्वा दैवविपर्ययम् ॥३॥

आदि छिद्रों से खून उसीप्रकार उगलने लगा जैसे कि झरना पानी झरा करता है। वानरों ने जब उसे देखा तो उसकी आंखें क्रोध के कारण घूमी हुई थी, और झाग वाले खून से तर था। इस समय विरूपाक्ष सचमुच अत्यधिक कुरूप आंखों वाला बना हुआ था। फिर वानरों ने यह भी देखा कि वह दुश्मन खून से सराबोर धरती पर छटपटा रहा है, करवटें बदल रहा है, और कराह रहा है।

सुग्रीव द्वारा महोदर का बध

महायुद्ध में एक-दूसरे की सेना को जल्दी २ मारने पर दोनों ओर की सेनायें अत्यन्त गरमी के दिनों में तलैया के समान क्षीण हो गयी। अपनी सेना के विनाश और विरूपाक्ष के बध के कारण राक्षसराज रावण का पारा दुगना ऊपर चढ़ गया। और साथ ही, युद्ध में वानरों द्वारा अपनी सेना की क्षीणता तथा विरूपाक्ष के बध को देखकर वह व्यथित हुआ, और

उवाच च समीपस्थं महोदरमनन्तरम् ।
अस्मिन् काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥४॥
जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्वेष्टुं साधु युध्यताम् ॥५॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः ।
प्रविवेशारिसेनां स पतङ्ग इव पावकम् ॥६॥

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः ।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥७॥

वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः ।
प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते सर्वराक्षसान् ॥८॥
महोदरः सुसंक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः ।

उसकी यह व्यथा और भी बढ़ गयी जबकि उसने देखा कि दैव भी उससे उलटा है। तब उसने पास में खड़े दूसरे सेनापति महोदर को कहा—"महाबाहु! इस समय अब मेरी विजय-आशा तुम्हारे में है। वीर! जाओ, शत्रु की सेना को खत्म करो, और आज अपना पराक्रम दर्शाओ। स्वामी का खाया नमक हलाल करके दिखाने का यही अवसर है। जाओ, अच्छी तरह लड़ो।"

रावण ने राक्षसेन्द्र महोदर को जब इसप्रकार कहा, तो 'बहुत अच्छा' ऐसा जबाब देकर वह शत्रुसेना पर ऐसे पिल पड़ा जैसे कि पतंगा आग पर जाता है। तब राजा द्वारा की गयी अपनी प्रशंसा से फूल कर, तथा अपने पराक्रम से उकसाए जाकर महाबली ने वानरों को खाना शुरु किया। उधर दूसरी ओर महाबली वानरों ने भी बड़ी २ शिलायें लेकर और अरिसैन्य में घुस कर बुरी तरह सब राक्षसों को मारना शुरु किया। इस पर

चिच्छेद पाणिपादोरु वानराणां महाहवे ॥९॥
ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसानां महामृधे ।
दिशो दश द्रुताः केचित् केचित्सुग्रीवमाश्रिताः ॥१०॥
प्रभग्नं समरे दृष्ट्वा वानराणां महाबलम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम् ॥११॥
प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥१२॥
तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ।
असम्भ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद ततः शिलाम् ॥१३॥
रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा ।
निपपात तदा भूमौ गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥१४॥
तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्च्छितः ।

महोदर का पारा और चढ़ा, और उसने युद्ध में सुवर्णविभूषित बाणों से वानरों के हाथ-पैर-जांघें काटनी शुरु की। राक्षसों के उस महायुद्ध में वानरों की जब यह दुर्गति हुई तो कई इधर-उधर भाग गए और कई सुग्रीव के पास पहुंच गए।

जब सुग्रीव ने यह देखा कि युद्ध में वानरों की बड़ी सेना बुरी तरह पीटी गयी है, तो उसी दम महोदर पर धावा बोला। महातेजस्वी वानरराज ने बहुत बड़ी पहाड़ की पहाड़ शिला उठायी और उसके बध के लिए उस पर दे मारी। महोदर ने उस आती हुई शिला को ज्यों ही देखा कि बिना घबराये उसे बाणों से काट गिराया। राक्षस के बाणों से कटी वह शिला खण्ड-खण्ड होकर भूमि पर ऐसे गिर पड़ी कि मानो व्याकुल गिद्धों का झुण्ड गिरा पड़ा हो। सुग्रीव बीच में ही कटी शिला को देखकर

सालमुत्पाट्य चिक्षेप तं स चिच्छेद नैकधा ॥१५॥
शरैश्च विददारैनं शूरः परबलार्दनः ।
स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥१६॥
आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ।
परिघेणोग्रवेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥१७॥
तस्माद्धतहयाद्वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् ।
गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥१८॥
गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनाविव सविद्युतौ ॥१९॥
ततः क्रुद्धो गदां तस्य चिक्षेप रजनीचरः ।
ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः ॥२०॥

क्रोध से पागल हो उठा, और साल को उखाड़ कर उस पर दे पटका। परन्तु महोदर ने उसको भी टुकड़े २ कर काट दिया, और शत्रुसैन्य-संहारी शूर सुग्रीव को भी बाणों से छलनी कर दिया। इस पर क्रुद्ध हुए सुग्रीव को भूमि पर पड़ा परिघ दीख पड़ा। उसने उस चमचमाते को ठोक-पीट कर पहले अजमाया, और फिर महोदर को दिखा कर उससे बड़े जोर के साथ उसके घोड़ों को मार डाला।

वीर महोदर राक्षस ने जब यह देखा कि उसके घोड़े मारे गए हैं, तो वह रथ से नीचे उतरा और क्रुद्ध होकर गदा उठायी। तब ये दोनों वीर एक गदा और दूसरा परिघ हाथ में लेकर सांढों की तरह शब्द करते हुए और विजली वाले बादलों की तरह गरजते हुए एक दूसरे से भिड़ गए। इतने में क्रुद्ध महोदर राक्षस ने सूर्य की तरह चमकती व जलती हुई गदा सुग्रीव पर फैंकी।

गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः ।
सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥२१॥
आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ।
पपात तरसा भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥२२॥
ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात् ।
आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥२३॥
स तमुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यस्य प्राक्षिपद् गदाम् ।
भिन्नावन्योऽन्यमासाद्य पेततुस्तौ महीतले ॥२४॥
ततो भिन्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः ।
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥२५॥
जघ्नतुस्तौ तदान्योऽन्यं नदन्तौ च पुनः पुनः ।

परन्तु मारे क्रोध के लाल आंखों वाले महाबली वानरराज सुग्रीव ने युद्ध में अपने ऊपर आती हुई उस महाभयानक गदा को देखा और कस कर परिघ से उसे तोड़ डाला। परन्तु गदा की टक्कर से सुग्रीव का परिघ भी टूट कर भूमि पर गिर पड़ा।

तब तेजस्वी सुग्रीव ने पृथिवी पर पड़ा सुवर्ण-मण्डित लोहे का एक भयंकर मूसल उठाया, और उसे कस कर मारा। इसने भी महोदर की दूसरी गदा को गिरा दिया, परन्तु साथ ही वे दोनों गदा तथा मूसल परस्पर में टकरा कर टूट गए और भूमि पर गिर पड़े।

इसप्रकार जब दोनों के हथियार बेकार हो गए, तो प्रदीप्त अग्नि की तरह तेज-बल से भर कर वे दोनों मुक्कों से एक-दूसरे पर पिले। इस घमासान में वे दोनों एक दूसरे पर घूंसे जड़ रहे थे, फिर-फिर ललकार लगा रहे थे, और एक-दूसरे पर चपेटें

तलैश्चान्योऽन्यमासाद्य पेततुश्च महीतले ॥२६॥
उत्पेततुस्तदा तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम् ।
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योऽन्यम् अपराजितौ ॥२७॥
जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परन्तपौ ।
जहार च तदा खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥२८॥
ततो रोषपरीताङ्गौ नदन्तावभ्यधावताम् ।
उद्यतासी रणे हृष्टौ युद्धे शस्त्रविशारदौ ॥२९॥
दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं सम्परीयतुः ।
अन्योऽन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ॥३०॥
स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः ।
महावर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ॥३१॥

जमाते हुए एक-दूसरे को जमीन पर पटक रहे थे। वे तुरन्त फिर उठते थे, फिर एक-दूसरे को मारते थे और भुजाओं से परे फेंकते थे। परन्तु वे दोनों वीर आपस में किसी को हरा नहीं सके।

इस बाहुयुद्ध में वे दोनों शत्रुतापी वीर थक गए। तब उनमें से प्रत्येक ने पास पड़ी तलवार को पकड़ा। शस्त्र चलाने में चतुर वे दोनों क्रोधित व हर्षित हो तलवार उठाये २ रण में गरजते हुए पैंतड़ेबाजी खेलने लगे। वे दोनों योद्धा दाहिनी ओर मण्डलाकार रूप में जल्दी २ चक्कर काटने लगे। उस समय वे दोनों एक-दूसरे पर क्रोध उतार रहे थे और दोनों अपनी २ विजय में दत्तचित्त थे। इतने में अपने पराक्रम को सराहने वाले दुर्मति शूर महोदर ने बड़ी जल्दी करते हुए सुग्रीव के महाकवच पर तलवार का वार कर दिया। वह तलवार सुग्रीव के कवच में बुरी तरह अटक गयी। महोदर उस तलवार को बाहर खींच रहा था

लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः ।
जहार स शिरस्त्राणं कुण्डलोपगतं शिरः ॥३२॥

सर्ग ५९

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात्संरक्तलोचनः ।
अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास मार्गणैः ॥१॥
स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि राक्षसः ।
पातयामास कायेभ्यः फलं वृन्तादिवानिलः ॥२॥
केषांचिदिषुभिर्बाहूंश्चिच्छेदाथ स राक्षसः ।
वानराणां सुसंरब्धः पार्श्वं केषांचिदाक्षिपत् ॥३॥
तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ।
विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः ॥४॥
निशम्य बलमुद्विग्नम् अङ्गदो राक्षसार्दितम् ।

कि तुरन्त कपिश्रेष्ठ ने कुण्डलों से विभूषित उसका सिर शिरस्त्राण सहित अपनी तलवार से काट गिराया ।

अङ्गद द्वारा महापार्श्व का वध

सुग्रीव द्वारा महोदर-बध को देख कर महाबली महापार्श्व की आंखें मारे क्रोध के लाल हो गयी, और बदले में अंगद की भयंकर सेना को बाणों से विक्षुब्ध करने लगा। उसने प्रमुख २ वानरों के सिरों को धड़ से ऐसे अलग करना शुरु किया जैसे कि तेज हवा डंडी से फल को अलग कर देती है। इसने बाणों से बड़ी तेजी से कई वानरों के बाहु काट दिए और कईयों की पसलियां। एवं, महापार्श्व द्वारा बाण-वृष्टि से पीड़ित वे वानर लोग मारे विषाद के निस्तेज हो गए।

वेगं चक्रे महावेगः समुद्र इव पर्वसु ॥५॥
आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ।
समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ॥६॥
स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ।
ससूतस्यन्दनात्तस्माद् विसंज्ञश्चापतद् भुवि ॥७॥
तस्यर्क्षराजस्तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ।
निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वयूथान् मेघसन्निभात् ॥८॥
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः स विपुलां शिलाम् ।
अश्वाञ्जघान तरसा बभञ्ज स्यन्दनं च तम् ॥९॥
मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ।
अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ॥१०॥

अंगद ने जब यह सुना कि उसकी सेना महापार्श्वसे पीड़ित होकर चलायमान हो गयी है, तो उफना हुआ वह पर्व-दिनों में ज्वारभाटे के समान अत्यधिक उफना। उस वानर-श्रेष्ठ ने तेज में सूर्यकिरण-समान लोहे के बने परिघ को लेकर युद्ध में महापार्श्व पर तान कर दे मारा। उसके प्रहार से वह अचेतन हो गया और उसी अचेतन हालत में सारथि सहित रथ से नीचे भूमि पर गिर पड़ा। इतने में काले सुरमे के ढेर समान, तेजस्वी तथा महापराक्रमी ऋक्षराज जाम्बवान् मेघ समान फैली हुई अपनी सेना से बाहर निकला और क्रोध पूर्वक पहाड़ की पहाड़ बहुत बड़ी शिला को लेकर उसके घोड़ों को मार डाला, और तत्काल उस रथ को भी तोड़ डाला।

थोड़ी देर बाद जब महाबली महापार्श्व को होश आया, तो उसने बाण-वृष्टि से अंगद को अत्यधिक घायल कर दिया।

जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ॥११॥
गवाक्षं जाम्बवन्तं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ।
जग्राह परिघं घोरम् अङ्गदः क्रोधमूर्च्छितः ॥१२॥
तस्याङ्गदः सरोषाक्षो राक्षसस्य तमायसम् ।
दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम् ॥१३॥
द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्वा च वेगवत् ।
महापार्श्वाय चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः ॥१४॥
स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ।
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्राणं च पातयत् ॥१५॥
तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
तलेनाभ्यहनत् क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ॥१६॥

तीन बाणों से ऋक्षराज जाम्बवान् की छाती वींध दी, और बहुत से बाणों से गवाक्ष को घायल कर दिया। गवाक्ष और जाम्बवान् को शरपीड़ित देखकर अंगद क्रोध से पागल हो उठा और भयंकर परिघ पकड़ा। अपने से दूर खड़े राक्षस पर मारे क्रोध के लाल आंखें करके, वालिपुत्र ने सूर्यकिरण सामन चमचमाते लोहनिर्मित परिघ को दोनो भुजायों से कसकर पकड़ा और बड़ी जोर से घुमा कर महापार्श्व पर उसके बध के लिए फैंका। उस राक्षस पर बली द्वारा फैंके गये परिघ ने उसके हाथ से बाण सहित धनुष को नीचे गिरा दिया, और शिरस्त्राण भी नीचे पटक दिया। इतने में प्रतापी वालिपुत्र झपाटे से उसके समीप पहुँचा और क्रोध में भर कर कुण्डलयुक्त कनपटी पर जोर से चपत जमायी।

इस पर महाप्रतापी महापार्श्व को बड़ा भारी गुस्सा आया

स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ।
करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ॥१७॥
तं तैलधौतं विमलं शैलसारमयं दृढम् ।
राक्षसः परमक्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ॥१८॥
तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपातितम् ।
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः सपरश्वधम् ॥१९॥
स वीरो वज्रसंकाशम् अङ्गदो मुष्टिमात्मनः ।
संवर्तयत् सुसंक्रुद्धः पितुस्तुल्यपराक्रमः ॥२०॥
राक्षसस्य स्तनाभ्याशे मर्मज्ञो हृदयं प्रति ।
इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ॥२१॥
तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ।
पफाल हृदयं चास्य स पपात हतो भुवि ॥२२॥
तस्मिन् विनिहते भूमौ तत्सैन्यं सम्प्रचुक्षुभे ।

और झटपट एक हाथ से बहुत बड़ा फरसा पकड़ा। यह फरसा तेल से साफ किया हुआ था, निर्मल था, और हीरे के समान मजबूत था। राक्षस ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह फरसा तान कर अंगद पर मारा। उसने यह फरसा अंगद के बांये कन्धे पर मारा, परन्तु उसने क्रोध पूर्वक उस फरसे को बचा लिया। एवं अपने को बचाकर पितृतुल्य पराक्रमी वीर अंगद ने वज्र-जैसा अपना मुक्का क्रोध पूर्वक जोर से घुमाया और मर्मस्थल को जानने वाले ने स्तन के समीप हृदय पर इतनी जोर से जमाया कि वह इन्द्रराजा के वज्र जैसा पड़ा। अंगद के उस मुक्के के लगने से महापार्श्व का हृदय महायुद्ध में फट गया और वह मर कर भूमि पर गिर पड़ा।

उसके भूमि पर गिर पड़ने पर इस ओर तो उसकी सेना

अभवच्च महान् क्रोधः समरे रावणस्य तु ॥२३॥
वानराणां प्रहृष्टानां सिंहनादः सुपुष्कलः ॥२४॥
स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ।
महेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवन्महान् ॥२५॥

सर्ग ६०

महोदर-महापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा स रावणः ।
तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥१॥
आविवेश महान् क्रोधो रावणं तु महामृधे ।
सूतं संचोदयामास वाक्यं चेदमुवाच ह ॥२॥
निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दुःखमेवापनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥३॥
रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।

विक्षुब्ध हो गयी तथा युद्ध में रावण को बड़ा भारी क्रोध हुआ, और दूसरी ओर अत्यन्त प्रसन्न वानरों ने इतना ज्यादा सिंहनाद गुंजाया, कि मानो वे इस नाद से अटारियों तथा मुख्य द्वारों सहित लंका पुरी को ही तोड़ गिरायेंगे।

राम-रावण का घोर युद्ध

रावण ने जब यह देखा कि महोदर, महापार्श्व मारे गये हैं, और वह महाबली वीर विरूपाक्ष भी मारा गया है, तो उसे महायुद्ध में बड़ा भारी क्रोध आया। तब उसने सारथि को रथ हांकने को कहा और बोला—

"अमात्यों के मारे जाने तथा नगर के घेरे जाने का दुःख अब मैं राम-लक्ष्मण दोनों को मार कर ही सदा के लिए दूर करूंगा। मैं राम रूपी वृक्ष को रण में काटूंगा, जोकि सीता

प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्ववान् कुमुदो नलः ॥४॥
द्विविदश्चैव मैन्दश्च अङ्गदो गन्धमादनः ।
हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥५॥
स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ।
नादयन् प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यधावत ॥६॥
तामसं सुमहाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ।
निर्ददाह कपीन् सर्वास्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥७॥
उत्पपात रजो भूमौ तैर्भग्नैः सम्प्रधावितैः ।
नहि तत्सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥८॥
तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥९॥
ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ।

रूपी फूल फल को देने वाला है, जिसकी शाखायें जाम्बवान, कुमुद, नल, द्विविद, मैन्द, अंगद, गन्धमादन, हनुमान् और सुषेण, तथा अन्य सब वानरसेनापति है।" ऐसा कह कर महामहारथी रावण रथ की गड़गड़ाहट से दसों दिशायों को गुंजाता हुआ शीघ्र राम पर पिल पड़ा।

तब उसने महाभयंकर तथा अत्यन्त दारुण तामस अस्त्र फैंका और सब वानरों को जला दिया। वे जल कर ठौर-ठौर गिर पड़े और फिर उसी हालत में भाग खड़े हुए, जिससे रण भूमि में धूल ही धूल उठ खड़ी हुई और वे लोग स्वयं ब्रह्मा के बनाये उस तामस अस्त्र को नहीं सह सके। तब राम रावण के उत्तम तामस बाणों से सैंकड़ों सैनिक-दलों को घायल देखकर, रावण से लड़ने के लिए आगे बढ़े। वानर-सेना को भगाकर राक्षस केसरी ने देखा कि

स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥१०॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा ।
आलिखन्तमिवाकाशम् अवष्टभ्य महद्धनुः ॥११॥
पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिन्दमम् ।
ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ॥१२॥
वानरांश्च रणे भग्नान् आपतन्तं च रावणम् ।
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥१३॥
विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥१४॥
रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च ।
शब्देन राक्षसास्तेन पेतुश्च शतशस्तदा ॥१५॥
तयोः शरपथं प्राप्य रावणो राजपुत्रयोः ।

किसी से न हारे हुए राम लक्ष्मण भाई के साथ उसके आगे ऐसे खड़े हैं जैसे कि विष्णु राजा के साथ इन्द्र राजा खड़ा हो। उस समय उन्होंने महाधनुष ऐसे थांभ रखा था कि मानो अभी आकाश को छेद देंगे। उनकी आंखें कमलपत्र की तरह बड़ी २ थी, भुजायें लम्बी थी, और अरिदमन बने हुए थे।

तब लक्ष्मण सहित महातेजस्वी बली राम ने यह देखकर कि वानर रण में घायल हो गए हैं और रावण अपने पर हमला करने ही वाला है, प्रहर्षित हो धनुष को बीच में से पकड़ा और उस उत्तम धनुष को महावेग तथा महानाद पूर्वक ऐसे टंकारना प्रारम्भ किया कि मानो पृथिवी को ही छेद देंगे। रावण के बाणों तथा राम की टंकार से उठे उस शब्द से सैकड़ों राक्षस मारे डर के गिर पड़े। उस समय उन दोनों राजपूतों के बाणों के निशाने

स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥१६॥
तमिच्छन्प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥१७॥
तान्मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
बाणान् बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥१८॥
एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन्दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥१९॥
अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिंजयः ।
आससाद रणे रामं स्थितं शैलमिवापरम् ॥२०॥
स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥२१॥
शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः ।

के अन्दर आकर रावण ऐसा दीख पड़ रहा था जैसे कि चन्द्र तथा सूर्य के समीप राहु आ गया हो ।

उससमय लक्ष्मण की इच्छा हुई कि तीखे बाणों से पहले मैं लड़ूं, अतः उसने धनुष को कान तक खींच कर अग्निज्वाला जैसे बाणों को छोड़ा । धनुर्धारी लक्ष्मण द्वारा छोड़े गए उन बाणों के वार को महातेजस्वी रावण ने बाणों द्वारा आकाश में रोक दिया : अपने हस्त-कौशल को दर्शाते हुए उसने लक्ष्मण के एक बाण को एक बाण से, तीन को तीन से, और दस को दस से काट दिया, और फिर, युद्ध-विजयी रावण लक्ष्मण को छोड़ कर चट्टान की तरह रण में डटे राम की ओर पहुँचा । वहां पहुँच कर राक्षसेश्वर रावण ने क्रोध से लाल आंखें करके राम पर शर-वृष्टि करनी प्रारम्भ की ।

दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥२२॥
ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।
दीप्यमानान् महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान् ॥२३॥

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा ।
अन्योऽन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥२४॥
चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगान् समुत्क्षिप्तावन्योऽन्यमपराजितौ ॥२५॥
ततः संरक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः ।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥२६॥
रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम् ।

तब राम ने रावण के धनुष से छुटी शर-धारा शीघ्र ही अपने ऊपर पड़ती देखकर तुरन्त भल्ल बाणों को लिया और उन तीखे भल्लों से रावण के बाणों को काट गिराया। ये भल्ल बाण चमचमा रहे थे, अत्यन्त भयानक थे, और कालकूट विष वाले सांपों जैसे थे।

एवं, राम रावण पर और रावण राम पर एक-दूसरे पर बड़ी फुर्ती से तरह २ के तीखे बाणों की वर्षा कर रहे थे, और एक-दूसरे पर बड़ी जोर से बाणों को छोड़ते हुए तथा किसी से कोई न हारते हुए वे दोनों बायें-दायें बड़े सुन्दर ढंग से देर तक चक्कर काटते रहे।

बाण चलाते २ शत्रुओं को रुलाने वाले रावण के हाथ खूब लाल हो गए थे। उसने उन्हीं तपे हाथों से राम के मस्तक पर नाराच नामी बाणों की माला छोड़ी। परन्तु राम रौद्र रावण के धनुष से छुटी नीलकमलदल-जैसी चमकती हुई उस बाण-माला को

शिरसाऽधारयद् रामो न व्यथामभ्यपद्यत ॥२७॥
अथ मन्त्रानपि जपन् रौद्रमस्त्रमुदीरयन् ।
शरान् भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ।
मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥२८॥
ते महामेघसङ्काशे कवचे पातिताः शराः ।
अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ॥२९॥
पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ।
ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलोऽभिनत् ॥३०॥
ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ।
श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ॥३१॥
निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।

अपने माथे पर लेकर भी व्यथित नहीं हुए। प्रत्युत्तर में अति-तेजस्वी पराक्रमी राम ने रौद्र मंत्रों का जप करते हुए रौद्र बाण-अस्त्र ऊपर की ओर छोड़ा, और फिर वैसे बहुत से बाण लेकर तथा धनुष को पूरा खींच कर क्रोध में भर उन्हें रावण पर छोड़ा। वे बाण राक्षसराज के महामेघ-सदृश काले कवच पर छोड़े गए, परन्तु चूंकि वह कवच अभेद्य था इसलिए वे बाण रावण को कोई पीड़ा न पहुँचा सके।

तब सब प्रकार के बाण-अस्त्रों में कुशल राम ने रथ पर चढ़े रावण के माथे पर परम बाणास्त्र से प्रहार किया। परन्तु रावण के प्रतीकार से वे बाण उसे विना छूए, एक-एक परम अस्त्र पांच २ बाणों के रूप में फूट कर, पांच सिरों वाले सांपों की तरह सनसनाते हुए भूमि के अन्दर जा घुसे। इसप्रकार राम के परमास्त्र को बेकार करके क्रोध में पागल रावण ने एक दूसरा अत्यन्त

आसुरं सुमहाघोरम् अन्यदस्त्रं चकार सः ॥३२॥
आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुपुङ्गवः ।
ससर्जास्त्रं महोत्साहं पावकं पावकोपमः ॥३३॥
तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ॥३४॥

सर्ग ६१

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥१॥
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ।
उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे ॥२॥
ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ।
कामुर्काद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥३॥

भयानक आसुर अस्त्र राम पर छोड़ा। जब रघुबीर पर आसुर अस्त्र छोड़ा गया, तो उन्हों ने अत्यन्त कारगर अग्निसमान आग्नेय अस्त्र छोड़ा। तब बिना किसी कष्ट के आग्नेयास्त्र चलाए हुए राम से रावण के उस आसुर अस्त्र को बेकार देखकर सब कामरूप के वानर हर्षित हो हर्ष-नाद गुंजाने लगे।

रावण से घोर युद्ध व राम की प्रतिज्ञा

राक्षसराज रावण ने अपने उस आसुर अस्त्र को निष्फल हुआ देख दुगुना क्रोध किया, और मारे क्रोध के मय दानव का बनाया हुआ अतितेजस्वी एक दूसरा भयानक रौद्र अस्त्र तत्काल राम पर छोड़ा। उस अस्त्र के चलाते ही धनुष से चहुं ओर चमचमाते वज्रसमान दारुण शूल गदायें और मूसल निकलने लगे। किन्तु बढ़िया अस्त्रों के जानने वालों में श्रेष्ठ महाप्रतापी

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ।
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥४॥
तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदीरयत् ॥५॥
ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
कार्मुकाद् भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥६॥
तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि तु स राघवः ।
आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥७॥
तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥८॥
स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥९॥
ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिंजयः ।

श्रीमान् राम ने उस रौद्र अस्त्र को गान्धर्व नामी परम अस्त्र से बेकार कर दिया। राम द्वारा रौद्रास्त्र के बेकार किए जाने पर रावण ने मारे क्रोध के लाल आंखें कर राम पर सौर अस्त्र छोड़ा। इससे अत्यन्त फुर्तीले बुद्धिमान् रावण के धनुष से चमकते हुए बड़े २ चक्र निकले। परन्तु राम ने रावण की सेना के देखते २ उन चक्रों को, तथा अन्य विचित्र प्रकार के आयुधों को बाणों से बेकार कर दिया। तब राक्षसाधिप रावण ने उस सौर अस्त्र को बेकार हुआ देखकर राम को सब मर्मस्थलों पर दस बाणों से बींध दिया। पर महातेजस्वी राम रावण द्वारा महाधनुष से निकले दस बाणों से बिंध कर भी घबराए नहीं, अपितु युद्धविजयी उन्होंने क्रोध में भर कर रावण के सारे शरीर को बहुत से बाणों से

राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥१०॥
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा ॥११॥
तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥१२॥
सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः ॥१३॥
तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तदा ॥१४॥
नीलमेघनिभाञ्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥१५॥
हताश्वात्तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
कोपमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥१६॥

बींध दिया।

इतने में राम के छोटे भाई शत्रुवीरहन्ता बली लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर सात बाण पकड़े, और तेज में भर कर उन महावेगवान् सात बाणों से रावण का मनुष्यशिर-चिन्हित झण्डा टुकड़े २ करके काट गिराया। फिर महाबली श्रीमान् लक्ष्मण ने राक्षसराज रावण के सारथि का चमचमाते कुण्डलों से विभूषित सिर एक ही बाण से काट डाला। और फिर, उसने रावण के हाथी-सूंड जैसे धनुष को तीखे पांच बाणों से काट दिया। इतने में विभीषण कूदा और उसने रावण के पर्वत समान ऊंचे तथा काले मेघ जैसे कृष्णवर्ण सधे हुए घोड़ों को गदा द्वारा मार डाला।

तब रावण उस मरे घोड़ों वाले महारथ से शीघ्र नीचे

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१७॥
अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ।
अथोदतिष्ठत् संनादो वानराणां महारणे ॥१८॥
सम्पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी ।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥१९॥
ततः सम्भावितत्तरां कालेनापि दुरासदाम् ।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥२०॥
सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना ।
जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥२१॥
एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् ।

उतरा, और भाई पर बड़ा क्रोध किया। और फिर महाशक्तिशाली प्रतापी राक्षसेन्द्र ने जलती हुई बिजली के समान प्रदीप्त (शक्ति) बरछी विभीषण पर फैंकी। परन्तु लक्ष्मण ने बरछी के विभीषण तक पहुँचने से पूर्व ही उसे तीन बाणों से काट दिया। इससे महायुद्ध में वानरों का उच्च हर्षनाद गूंज उठा। सुवर्णमाला से विभूषित वह शक्ति चिनगारियां निकालती और जलती हुई तीन टुकड़े हो कर भूमि पर ऐसे गिर पड़ी, जैसे कि आकाश से कोई महोल्का-पात हुआ हो।

तब दुरात्मा बलवान् रावण ने अमोघरूप से सर्वत्र विख्यात तथा काल से भी असह्य एक बहुत बड़ी बरछी ली, जो कि अपने ही तेज से खूब चमकती थी, और जलती बिजली के समान प्रदीप्त उस अतिसामर्थ्य वाली बरछी को बड़े जोर के साथ विभीषण पर छोड़ना चाहा कि वीर लक्ष्मण विभीषण के प्राण

प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥२२॥
तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥२३॥
कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥२४॥
मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥२५॥
मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥२६॥
एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥२७॥

संकट में पड़े देख झट उधर पहुँचा और उसे बचाने के लिए हाथ में शक्ति लिए रावण पर शरवृष्टि करनी आरम्भ कर दी। इस पर महाबलवान् लक्ष्मण के बाणों की मार से रावण का पराक्रम जाता रहा और उसने भ्रातृ-बध की इच्छा त्याग दी।

जब रावण ने देखा कि लक्ष्मण ने उसके भाई विभीषण को बचा लिया है, तो वह लक्ष्मण के सामने आ खड़ा हुआ और बोला—"ऐ अपने बल को सराहने वाले! यतः तूने इस प्रकार विभीषण को बचा लिया है, इसलिए अब यह शक्ति राक्षस को छोड़ कर तेरे पर गिरायी जावेगी। यह शत्रु का खून पीने वाली रुधिर-चिन्हित बरछी परिघ सदृश मेरे बाहुओं से छोड़ी जाने पर तेरे हृदय को चीर कर तेरे प्राणों को लेकर ही जायेगी।"

यह कह कर उस शक्ति को, जोकि मय दानव की बनायी

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ।
मयेन मायाविहिताम् अमोघां शत्रुघातिनीम् ॥२८॥
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥२९॥
न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।
जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥३०॥
ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ।
शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥३१॥
तदवस्थं समीपस्थो लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवः ।
भ्रातृस्नेहान् महातेजा विषण्णहृदयोऽभवत् ॥३२॥
स मुहूर्तमिव ध्यात्वा बाष्पपर्याकुलेक्षणः ।
बभूव संरब्धतरो युगान्त इव पावकः ॥३३॥

हुई थी तथा जो कभी व्यर्थ न जाती थी, एवं जिसमें आठ घंटियां जोर से बजा करती थी और जो शत्रुघातिनी थी, और जो अपने ही तेज से जल-सी रही थी, रावण ने परम क्रुद्ध होकर लक्ष्मण पर तान कर फैंकी और हर्षनाद गुंजाया। सर्पराज की जीभ की तरह लपलपाती वह अतितेजस्वी शक्ति लक्ष्मण की छाती पर बड़ी जोर से लगी। रावण द्वारा बहुत दूर से बलपूर्वक छाती में गाढ़ी गयी उस शक्ति से लक्ष्मण का कलेजा छिद गया और वह भूमि पर गिर पड़ा।

पास में खड़े महातेजस्वी राम ने लक्ष्मण को जब इस अवस्था में देखा, तो वे भ्रातृस्नेह-वश बहुत दुःखी हुए। उनकी आंखों में आंसु छलछला रहे थे, परन्तु उन्होंने थोड़ी देर सोचा और फिर प्रलयकारी आग की तरह अत्यन्त भड़क उठे। उन्हों ने

न विषादस्य कालोऽयमिति संचित्य राघवः ।
चक्रे सुतुमुलं युद्धं रावणस्य वधे धृतः ॥३४॥
सर्वयत्नेन महता लक्ष्मणं परिवीक्ष्य च ।
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ।
बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान् विचकर्ष च ॥३५॥

तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥३६॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥३७॥

लक्ष्मणं परिवार्यैवं तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ।
पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥३८॥

यह सोच कर कि यह विषाद का समय नहीं, रावण के वध में मन को पक्का कर घोर युद्ध छेड़ दिया। परन्तु युद्ध छेड़ने से पूर्व उन्होंने पूरे महान् यत्न के साथ लक्ष्मण को भलीप्रकार देखा और देखकर वहीं रणभूमि में क्रोध में भरे बलवान् राम ने उस भयानक शक्ति-बाण को दोनों हाथों से पकड़ा, पकड़ कर बाहर खींचा, और बाहर खींच कर तोड़ डाला। जिस समय राम उस शक्ति-बाण को बाहर निकाल रहे थे, बलवान् रावण ने उनके शरीर को मर्मबेधी बाणों से बींध दिया। परन्तु राम ने उन मर्मवेधी बाणों की कुछ भी परवाह न कर लक्ष्मण को गले लगाया और हनुमान् तथा वानरराज सुग्रीव को कहा—

"वानरश्रेष्ठो ! आप लक्ष्मण की देखभाल के लिए उसके पास यहीं ठहरिए, मेरे लिए यह चिरकांक्षित पराक्रम दर्शाने का समय आ उपस्थित हुआ है। यह पापनिश्चयी दुरात्मा रावण

पापात्माऽयं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ।
काङ्क्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥३९॥
अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात् सत्यं प्रतिशृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगद् द्रक्ष्यथ वानराः ॥४०॥
यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ।
सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः ॥४१॥
चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति ।
दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः ॥४२॥

सर्ग ६२

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ।
सुमहद् द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥१॥

आज मेरे से बध को पावेगा। मैं चिरकाल से इसे पाना चाहता था, जैसे कि वर्षाकाल में चातक मेघ के दर्शनों का उत्सुक रहता है। मैं इस समय आपके समक्ष प्रतिज्ञा करता हूं कि आप वानर लोग बहुत जल्दी दुनिया को रावण-रहित या राम-रहित देखेंगे। जिस काम के लिए समुद्र पर पुल बांधा और उसे पार किया, सो आज यह पापी रण में मेरी आंखों के सामने पड़ गया है। यह रावण अब मेरी आंखों के सामने पड़कर जीवित नहीं रह सकता, जैसे कि विषैली दृष्टि वाले सांप की दृष्टि में पड़कर कोई आदमी बच नहीं सकता।"

राम द्वारा रावण का वध

लक्ष्मण की शुश्रूषा-व्यवस्था ठीक करने के पश्चात् राम-रावण में अत्यन्त क्रूर महायुद्ध छिड़ पड़ा। इस युद्ध में दोनों महारथी अपने २ रथ में सवार थे, और दोनों पक्षों के लिए

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥२॥
संप्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ।
व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥३॥
नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च सर्वे ते नाभिजग्मुः परस्परम् ॥४॥
रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥५॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद् युद्धं रामरावणम् ॥६॥

भयावह था। इस घोर युद्ध को देखकर राक्षसों की सेना और वानरों की महासेना हाथों में हथियार पकड़े स्तब्ध खड़ी रह गयी। भयंकर युद्ध करते हुओं उन बलवान् नर-राक्षसों को देखकर सब सैनिकों के दिल वहीं अटक गए और वे आश्चर्यचकित हो उठे। दोनों पक्षों के सैनिक यद्यपि नानाप्रकार के हथियारों से लैस थे, परन्तु इस घोर युद्ध को देखकर वे सब के सब अवाक् खड़े रह गए, एक-दूसरे पर हमला नहीं कर पाए। उस समय रावण को राक्षस-सैन्य और राम को वानर-सैन्य जिसप्रकार निश्चेष्ट होकर आश्चर्य भरी आंखों से देख रहे थे, उससे देखने वालों को पता लगता था कि ये कोई निर्जीव चित्र रखे हुए हैं। वे सैनिक उस राम-रावण के युद्ध को देखकर कह रहे थे कि यह राम-रावण का युद्ध राम-रावण के युद्ध-जैसा है, अर्थात् इसकी उपमा अन्य कोई नहीं।

इसप्रकार का तुला हुआ घोर युद्ध चल रहा था कि इन्द्र

अथ संस्मारयामास मातली राघवं तदा ।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥७॥
विसृजास्मै बधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥८॥
ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ।
जग्राह स शरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥६॥
यं तस्मै प्रथमं प्रादाद् अगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महद्बाणम् अमोघं युधि वीर्यवान् ॥१०॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वम् इन्द्रार्थममितौजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥११॥

राजा के सारथि मातलि ने राम को स्मरण दिलाया—"वीर ! आप तो रावण के साथ ऐसे जूझ रहे हैं कि जैसे आप इसके बधोपाय को जानते ही नहीं। राजन् ! आप इसके वध के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिए, देवों ने इसके विनाश का जो काल बतलाया था वह आज उपस्थित है।" मातलि ने जब राम को ब्रह्मास्त्र का ध्यान दिलाया, तो उन्होंने उस प्रदीप्त ब्रह्मास्त्र शर को निकाला, जोकि फुफकारें मारते हुए सांप के समान शब्द करता था।

वीर्यशाली भगवान् अगस्त्य ऋषि ने पूर्वकाल में यह ब्रह्मास्त्र राम को प्रदान किया था। यह महाबाण ब्रह्मा का दिया हुआ था, जोकि युद्ध में अमोघ था। अपरिमित शक्ति वाले ब्रह्मा ने पूर्वकाल में यह अस्त्र इन्द्र राजा के लिए बनाया था, और बनाकर देवराज को त्रिलोकी के विजय के लिए दिया था। इसके पंखों में हवा जैसा वेग है, फले में (नोक में) अग्नि-सूर्य जैसा तेज है, शरीर

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दरौ ॥१२॥
जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥१३॥
सधूममिव कालाग्निं दीप्तमाशीविषोपमम् ।
नरनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥१४॥
द्वाराणां परिघाणां च गिरीणां चापि भेदनम् ।
नानारुधिरदिग्धाङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥१५॥
वज्रसारं महानादं नानासमितिदारणम् ।
सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥१६॥
कङ्कगृध्रबकानां च गोमायुगणरक्षसाम् ।

आकाश-जैसा व्याप्ति गुण रखता है (अर्थात् जब यह फटता है तो इसका असर दूर २ तक फैल जाता है), दबाव में मेरु-मन्दर पर्वतों जैसा है (अर्थात् इसका धक्का असह्य होता है), अत्यधिक चमक वाला है, सुन्दर पुंख सुवर्ण से विभूषित हैं, पृथिवी-अप्-तेज-वायु-आकाश पांचों भूतों के सामर्थ्य से बना हुआ है, सूर्य जैसा प्रतापी है, धूएं वाली प्रचण्ड अग्नि जैसा है, चमकते हुए विषधर सर्प जैसा है, मनुष्यों-हाथियों-घोड़ों के झुण्डों को भेदने वाला है, तुरन्त कारगर है, किलों के मुख्य द्वारों परकोटों तथा पर्वतदुर्गों तक को तोड़ देने वाला है, तरह २ के रुधिरों और चर्बियों से सन कर अतिदारुण बन चुका है, वज्र की तरह मजबूत है, छुटते वक्त महाशब्द करने वाला है, तरह २ के कपट-युद्धों को दलने वाला है, सब दुश्मनों में एकसाथ त्रासजनक है, फुफकारते सर्प के समान भयानक है, कंकपक्षियों गीधों बगुलों

नित्यभक्तप्रदं युद्धे यमरूपं भयावहम् ॥१७॥
नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् ।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥१८॥

तमुत्तमेषुं लोकानाम् इक्ष्वाकुभयनाशनम् ।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥१९॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥२०॥

तस्मिन्सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि संत्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥२१॥
स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम् ॥२२॥

सियारों तथा इसी प्रकार के दूसरे इकट्ठे होकर नोचने वालों को सदा खाना देने वाला है, और युद्ध में साक्षात् मौत जैसा डरावना है।

गरुड़ के अनेकविध सुन्दर चित्रित पंखों से जड़ा हुआ यह ब्रह्मास्त्र संप्रति वानरेन्द्रों के हर्ष के लिए और राक्षसों के विनाश के लिए विद्यमान था। यह दुनिया भर में सर्वश्रेष्ठ बाण इक्ष्वाकुकुल के भय-निवारणार्थ दुश्मनों की पराजय व अपनी विजय के लिए ठीक था। मातलि के ध्यान दिलाने पर महाबली राम ने अपने साथियों से विचार किया और उस महाबाण को धनुर्वेदोक्त विधि के अनुसार धनुष पर चढ़ाया। राम द्वारा उस उत्तम बाण के चढ़ाए जाने पर सब प्राणी भयभीत हो गए और पृथिवी कांप उठी।

राम ने अत्यन्त क्रोध में भर कर धनुष को कान तक खींचा

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः ।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥२३॥
स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः ।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥२४॥
रुधिराक्तः स वेगेन शरीन्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन् प्राणान विवेश धरणीतलम् ॥२५॥
स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः ।
कृतकर्मा निभृतवत्स तूर्णीं पुनराविशत् ॥२६॥
तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम् ।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानश्च जीवितात् ॥२७॥
गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः ।

और पूरे जोर के साथ मर्मविदारक वाण रावण पर छोड़ दिया। इन्द्र की सी भुजाओं से छोड़ा हुआ वह वज्र-जैसा असह्य वाण सिर पर सवार मौत की तरह अनिवार्य बन कर रावण की छाती पर लगा। वह छोड़ा हुआ महावेगवान् वाण अच्छा शरीरान्तकारी सिद्ध हुआ। उसने दुरात्मा रावण के हृदय को चीर दिया। लगते के साथ ही शरीरान्तकारी वह रुधिरसना वाण रावण के प्राणों को हर कर पृथिवी पर जा गिरा। गीले रुधिर से शोभायमान उस वाण ने रावण को मार कर अपना काम पूरा कर दिया था, अतः राम ने नित्य साथ रहने वाले के समान उस वाण को उठा कर पुनः तरकश में रख लिया।

उधर जीवन से हाथ धोए तथा मरे हुए रावण के हाथ से उसके धनुष तथा वाण उसके प्राणों के साथ ही भूमि पर गिर पड़े। प्राणों के निकलते ही महावेगवान् तथा महाप्रतापी

पपात स्यन्दनाद् भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥२८॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः ॥२६॥
ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्बधम् ॥३०॥
ततः सकामं सुग्रीवम् अङ्गदं च विभीषणम् ।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥३१॥

सर्ग ६३

रावणं निहतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥१॥
वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यो रणपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यः शोकार्ता गावो वत्सहता यथा ॥२॥

राक्षसराज रथ से भूमि पर ऐसे लुड़क पड़ा, जैसे कि इन्द्र द्वारा वज्र से मारा गया वृत्र असुर लुड़क पड़ा था। निर्जीव हालत में भूमि पर पड़े रावण को देखकर बाकी बचे हुए राक्षस स्वामी-बध से भयभीत होकर सारी युद्धभूमि से भाग गए। तिस पर प्रसन्न हो विजयी वानर हर्षनाद करने लगे, और राम के विजय तथा रावण के बध के नारे लगाने लगे। इसप्रकार राक्षसराज रावण को मार कर प्रसन्न राम ने सुग्रीव, अंगद, तथा विभीषण की मनोकामना पूरी कर दी।

रावण-बध पर स्त्रियों का विलाप

महाबली राम ने रावण को मार दिया है, यह सुनकर राक्षसियां शोक विह्वल होगयी और अन्तःपुर से बाहर निकली। वे सब बार २ रोकी जाने पर भी मृतवत्सा गौओं की तरह दुःख-

उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥३॥
ददृशुस्ता महाकायं महावीर्यं महाद्युतिम् ।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥४॥
एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद् भूयस्ताः पर्यदेवयन् ॥५॥
येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥६॥
गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन रणे दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥७॥
असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
भयं यो न विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम् ॥८॥

पीड़ित हो शिर के बाल खोले जमीन पर धूल में लोटने लगी। वे राक्षसों के साथ उत्तरद्वार से नगरी के बाहर निकली और भयंकर समरभूमि में जा मृत पति को ढूंडने लगी। तब उन्होंने देखा कि विशालकाय महापराक्रमी महाप्रतापी रावण काले सुरमे के ढेर के समान भूमि पर मरा पड़ा है। इस हालत में मृत रावण पति को भूमि पर पड़ा देख कर दुःख पीड़ित हो शोक से रह रह कर रोई और बहुत विलाप करने लगी—

"जिसने इन्द्र को भयभीत कर दिया, जिसने यम राजा को भयभीत कर दिया, जिसने वैश्रवण (कुवेर) राजा से पुष्पक विमान छीन लिया, और जिसने गन्धर्वों ऋषियों तथा बड़े २ देवों को युद्ध में डरा दिया, वह यह रण में मरा पड़ा सो रहा है। जिसने कभी असुरों से, सुरों से, और नागों से भी भय को नहीं जाना, उसे यह मनुष्य से भय उठाना पड़ा? जः देवों से तथा

अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयं रणे शेते मानुषेण पदातिना ॥९॥
यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ।
सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः ॥१०॥
एवं वदन्त्यो रुरुदुस्तस्य ता दुःखिताः स्त्रियः ।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥११॥
अशृण्वता तु सुहृदां सततं हितवादिनाम् ।
मरणायाहृता सीता राक्षसाश्च निपातिताः ॥१२॥
ब्रुवाणोऽपि हितं वाक्यम् इष्टो भ्राता विभीषणः ।
धृष्टं परुषितो मोहात् त्वयात्मवधकाङ्क्षिणा ॥१३॥
यदि निर्यातिता ते स्यात् सीता रामाय मैथिली ।
न नः स्याद् व्यसनं घोरम् इदं मूलहरं महत् ॥१४॥

दानवों और राक्षसों से सदा अबध्य रहा वह एक पैदल मनुष्य से मारा जाकर रणभूमि में सो रहा है ? जिसे देव नहीं मार सके, यक्ष नहीं मार सके, तथा असुर नहीं मार सके, उसने मामूली प्राणी की तरह निर्वीर्य होकर एक मनुष्य के हाथ से मौत पायी ?"

रावण की वे दुःखिया स्त्रियें इसप्रकार बोलती हुई बार २ रोयीं, और फिर दुःखसे पीड़ित होकर पुनः२ विलाप करने लगी—

"इसने निरन्तर हितवादी मित्रों की सलाह को अनसुनी करके अपनी मौत के लिए सीता को हरा और राक्षस भी मरवा डाले। प्रिय भाई विभीषण ने तुम्हें हितकारी बात कही थी, परन्तु तुमने उससे मूढ़ता में पड़ कर आत्मबध की इच्छा से धृष्टता पूर्वक कठोर बोल बोले। यदि विभीषण के कहे अनुसार तुमने सीता राम को लौटा दी होती, तो हमें जड़मूल से उखाड़

वृत्तकामो भवेद् भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ।
वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ॥१५॥
त्वया पुनर्नृशंसेन सीतां संरुन्धता बलात् ।
राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ॥१६॥'
विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः ।
कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥१७॥

सर्ग ६४

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसान्त्व्यताम् ॥१॥
तमुवाच ततो धीमान् विभीषण इदं वचः ॥२॥
विमृश्य बुद्ध्या प्रश्रितं धर्मार्थसहितं हितम् ।

देने वाली यह भयंकर विपत्ति प्राप्त न होती, अपितु विपरीत इसके तुम्हारा भाई भी सफल-मनोरथ हो जाता और राम भी तुम्हारे मित्र बन जाते। अतिरिक्त इसके हम सब सुहागिनी रहती, और शत्रुयों की कामनायें भी पूरी न होती। परन्तु तुम नृशंस ने बलात्कार पूर्वक सीता को कैद करते हुए राक्षसों को, हम को, और अपने को तीनों को एक साथ मार डाला।"

इसप्रकार वे राक्षसराज की स्त्रियां आंखों में आंसु भर कर कुररी पक्षियों की तरह दुःखपीड़ित हो विलाप करने लगी।

रावण का अन्त्येष्टि संस्कार

इसप्रकार स्त्रियां विलाप कर रही थी कि इसी बीच में राम ने विभीषण को कहा—'अच्छा, अब भाई का दाहसंस्कार कीजिए और स्त्रियों को दिलासा दीजिए।'

इस पर बुद्धिमान् विभीषण ने बुद्धि से भलीप्रकार सोच-

त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ॥३॥
नाहमर्हामि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शनम् ॥४॥
भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः।
रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ॥५॥
नृशंस इति मां राम वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि।
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः ॥६॥
तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः।
विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञं वाक्यकोविदः ॥७॥
तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावान्मया जितम्।

विचार कर राम के दिल की बात जानने के लिए धर्मार्थयुक्त हितकारी यह बात कही--"राम ! जिसने धर्मव्रत का परित्याग कर दिया है, क्रूर है, नृशंस है, और झूठा है, तथा जिसने पराई स्त्री का हरण किया है, उसका मैं संस्कार नहीं कर सकता। रावण यद्यपि बड़ा भाई होने के कारण मेरा पूज्य है, परन्तु वह पूजा का पात्र नहीं, क्योंकि यह भाई रूप में मेरा शत्रु है और सब की बुराई में तत्पर रहता है। राम ! यदि मैं इसका संस्कार न करूंगा, तो बेशक दुनिया में पहले सब लोग मुझे अतिनिष्ठुर कहेंगे, परतु पीछे उसके दुर्गुणों को सुन कर सब के सब यही कहेंगे कि हां अच्छा किया (ऐसे दुष्ट का संस्कार न ही करना चाहिए था)।"

विभीषण के इस उत्तर को सुनकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम परम प्रसन्न हुए, और वाक्यविशारद बनकर बात को समझने वाले विभीषण ने कहा—"राक्षसेश्वर ! आपके प्रभाव से मैंने विजय-लाभ किया है, सो अब मुझे भी आपका प्रिय कार्य करना

अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर ॥८॥
अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः ।
तेजस्वी बलवाञ्छूरः संग्रामेषु च नित्यशः ॥९॥
शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ।
महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः ॥१०॥
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥११॥
त्वत्सकाशान्महाबाहो संस्कारं विधिपूर्वकम् ।
क्षिप्रमर्हति धर्मेण त्वं यशोभाग्भविष्यसि ॥१२॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ।

है (अर्थात् आपको राजगद्दी पर बैठाना है)। इसलिए जो बात उचित है, वह मुझे आपको अवश्य कहनी है। बेशक यह ठीक है कि रावण अधर्मी और झूठा है, परन्तु उसके साथ यह भी तो सही है कि वह तेजस्वी है, बलवान् है और युद्धों में सदैव शूर-वीर है। एवं यह भी सुना जाता है कि वह महाबुद्धिमान् बलसंपन्न तथा शत्रुओं को रुलाने वाला रावण सैंकड़ों कल्याणकारी काम करने वाले देवों से पराजित नहीं हुआ था। ऐसी अद्भुत वीरता के अतिरिक्त दूसरी बात यह भी है कि दुश्मनी मरण पर्यन्त रहती है, सो हमारा प्रयोजन पूरा हो चुका। इसलिए जाइए, इसका अन्त्येष्टि संस्कार कीजिए, अब यह जैसा आपका भाई है वैसा मेरा भी है। महाबाहु ! भ्रातृधर्म व क्षात्रधर्म के अनुसार यह विधि-पूर्वक आपके हाथ से शीघ्र संस्कार पाने का अधिकारी है। ऐसा करने से आप यश के भागी बनेंगे।"

इसप्रकार राम की बात को सुनकर विभीषण जल्दी २ मृत

संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् ॥१३॥
स प्रविश्य पुरीं लङ्कां राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् ॥१४॥
शकटान्दारुरूपाणि अग्नीन्वै याजकांस्तथा ।
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च ॥१५॥
अगुरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा ।
मणिमुक्ताप्रवालानि निर्यापयति राक्षसः ॥१६॥
आजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिवारितः ।
ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः ॥१७॥
सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् ।
रावणं राक्षसाधीशम् अश्रुपूर्णमुखा द्विजाः ॥१८॥

भाई रावण के संस्कार-कृत्य में जुट गया। राक्षसेन्द्र विभीषण लंकापुरी के अन्दर पहुँचा और रावण की अग्निहोत्र-अग्नि को शीघ्र श्मशान भूमि में ले चलने को कहा। एवं यज्ञसबन्धी काष्ठपात्रों, याजकों, चन्दन व दूसरी विविध प्रकार की लकड़ियों, अत्यन्त सुगन्धि वाले अगरों व अन्य सुरभि युक्त गन्ध पदार्थों, तथा मणियों-मोतियों-हीरों को छकड़ों पर धर कर ले चलने को कहा।

विभीषण इसप्रकार अन्त्येष्टि-कृत्य की तय्यारी कर रहा था कि थोड़ी ही देर में मामा माल्यवान् अन्य बहुत से राक्षसों को संग ले आ पहुँचा। तब वह माल्यवान् के साथ मिलकर उसी तय्यारी में लगा रहा। तय्यारी हो चुकने पर रेशमी वस्त्रों में लपेट कर राक्षसराज रावण को सोने की बनी सुन्दर डोली पर रखा, और रोते हुए ब्राह्मण कन्धों पर उठा कर ले चले। उस श्मशान

तूर्यघोषैश्च विविधैः स्तुवद्भिश्चाभिनन्दितम् ।
पताकाभिश्च चित्राभिः सुमनोभिश्च चित्रिताम् ॥१९॥
उत्क्षिप्य शिविकां तां तु विभीषणपुरोगमाः ।
दक्षिणाभिगताः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे ॥२०॥
अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाऽध्वर्युसमीरिताः ।
शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः ॥२१॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् ।
पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वशः ॥२२॥
रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः ।
चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ॥२३॥
ब्राह्मया संवर्तयामासू राङ्कवास्तरणावृताम् ।
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् ॥२४॥

यात्रा काल में वाजों की स्तुतिपरक अनेक आवाजों से रावण अभिनन्दित हो रहा था, और उसकी डोली अत्यन्त मनोहारी चित्र-विचित्र झण्डियों से सुशोभित थी। डोली के आगे विभीषण को रखकर उसे उठा वे सब के सब दक्षिण दिशा की ओर चल पड़े और संग में संस्कार संबन्धी लकड़ी आदि पदार्थ भी ले चले। उस समय रावण की वे सब प्रदीप्त अग्नियां अग्निकुण्डों में रखी हुई व अध्वर्यु लोगों से पकड़ी हुई रावण के आगे २ ले जायी जा रही थीं।

श्मशान-भूमि में पहुँचकर उन लोगों ने रावण को शुद्ध स्थान पर रखा, और रंकु नामी कृष्णमृग के चमड़े से बिछी हुई चिता चन्दन एवं दूसरी कीमती लकड़ियों तथा पद्मपराग-खस चन्दनचूरा आदि सुगन्धित पदार्थों से वेदसम्मत प्रक्रिया के

सर्ग ६५

अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् ।
सौमित्रिं मित्रसम्पन्नं लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ॥१॥
विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ।
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ॥२॥
एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥३॥
एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ।
तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥४॥

अनुसार तय्यार की। इसप्रकार चिता के तय्यार हो जाने पर उन लोगों ने रावण का अन्त्येष्टि संस्कार अत्युत्तम ढंग से संपन्न किया। (किसी बुजुर्ग के अन्त्येष्टि संस्कार को पितृमेध और छोटों या समान वालों के संस्कार को नरमेध कहा जाता है। क्योंकि रावण विभीषण का बड़ा भाई था, अतः यहां पितृमेध का प्रयोग किया गया है)।

राम के आदेशानुसार विभीषण का राज्याभिषेक

रावण का अन्त्येष्टि संस्कार हो चुकने के बाद राम ने पास में बैठे हुए शुभलक्षण संपन्न सामर्थ्यवान् सुमित्रा-पुत्र लक्ष्मण को कहा—"सौम्य ! जाओ, लंका में इस विभीषण का राज्याभिषेक करा दो। यह हमारा अनुरागी है, भक्त है, और पूर्वोपकारी है। सौम्य ! मेरी यह परम कामना है कि मैं रावण के इस छोटे भाई विभीषण को लंका में अभिषिक्त हुआ देखूं।"

महात्मा राम ने लक्ष्मण को जब इसप्रकार कहा, तो उसने 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर प्रसन्नतापूर्वक राज्याभिषेक के लिए

तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ।
व्यादिदेश महासत्त्वः समुद्रसलिलं तदा ॥५॥
अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः ।
आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥६॥
ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद् विभीषणम् ॥७॥
लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ।
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गण-समावृतः ॥८॥
अभ्यषिञ्चँस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तथा ।
प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि ॥९॥
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ।
दृष्ट्वाऽभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ॥१०॥

सोने का कलश लिया और शीघ्रगामी श्रेष्ठ वानरों के हाथ देकर महाशक्तिशाली ने उन्हें आदेश दिया कि जावो समुद्र का जल ले आवो। वे शीघ्रगामी वानरोत्तम तुरन्त वहां से चल दिए और समुद्र से जल लेकर आ गए। तब कलश को लेकर और विभीषण को सिंहासन पर बैठा कर लक्ष्मण ने कलश के समुद्रजल से उसका राज्याभिषेक कर दिया। उसने राम की आज्ञानुसार लंका नगरी में राक्षसों के मध्य में मित्रों के साथ मिल कर वेदोक्त विधि से विभीषण को राजा बनाया। एवं लक्ष्मण द्वारा विभीषण का राज्याभिषेक करने के पश्चात् सब राक्षसों और वानरों ने उस का राजतिलक किया। विभीषण के मंत्री और जो इसके भक्त राक्षस लोग थे वे अत्यधिक हर्षित हुए, और अतुल हर्ष को पाकर राम की ही प्रशंसा करने लगे।

राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ।
सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत् ॥११॥
दध्यक्षतान् मोदकांश्च लाजाः सुमनसस्तवा ।
आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः ॥१२॥
स तान्गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ।
माङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान् ॥१३॥
कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ।
प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रतिकाम्यया ॥१४॥
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् ।
उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥१५॥
अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् ।

राम लंका में राक्षसेन्द्र विभीषण को राज्याभिषिक्त देख कर लक्ष्मण सहित अत्यधिक सन्तुष्ट हुए। उधर विभीषण प्रजा-जनों और अमात्यों को प्रसन्न करके राम के समीप पहुंचा। इतने में पुरवासी राक्षस लोग प्रसन्न होकर विभीषण के लिए मधुपर्क-श्रीखण्ड आदि दध्यक्षत, और लड्डू खीलें तथा बढ़िया किस्म के फूल लाए। अदम्य तथा पराक्रमी विभीषण ने वे सब वस्तुयें स्वीकार कर सब की सब मांगलिक भेंटें राम तथा लक्ष्मण की सेवा में प्रस्तुत कर दी। राम ने विभीषण को सफल-मनोरथ व राज्यलक्ष्मी-संपन्न देख कर उसी की खुशी निमित्त वे सब भेंटें स्वीकार कर ली।

तत्पश्चात् राम ने हाथ-जोड़े विनम्र भाव से पास में बैठे पर्वत समान अडिग वीर हनुमान वानर को कहा—"सौम्य ! लंका नगरी में जाओ, और महाराजा विभीषण की अनुमति

प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम् ॥१६॥
वैदेह्या मां च कुशलं सुग्रीवं च सलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥१७॥
प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य तु सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥१८॥

सर्ग ६६

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥१॥
प्रविश्य च पुरीं लङ्काममुज्ञाप्य विभीषणम् ।
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान वृक्षवाटिकाम् ॥२॥
सम्प्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः ।
ददर्श मृजया हीनां सातङ्कां रोहिणीमिव ॥३॥

लेकर सीता को कुशल संदेश पहुंचाओ। संदेश देने वालों में श्रेष्ठ! उनसे जाकर कहो कि राम, सुग्रीव और लक्ष्मण सब कुशल पूर्वक हैं और रावण युद्ध में मार डाला गया है। हरीश्वर! यह हमारा प्रिय संदेश सीता को कह सुनाओ, और उनका कुशल-संदेश लेकर यहां पहुँचो।"

राम का हनुमान को सीता के पास भेजना

राम का आदेश पाकर मारुत-पुत्र हनुमान् लंकापुरी पहुँचा। राक्षसों ने उसका आदर-सत्कार किया। वहां पहुंच कर उसने विभीषण से अनुज्ञा प्राप्त की, और अनुज्ञा पाकर अशोक वाटिका पहुँचा। सीता का पहिचाना हुआ हनुमान् न्यायानुसार वहां पहुँचा। वहां पहुँच कर उसने देखा कि सीता ग्रहण लगे रोहिणी नक्षत्र के समान मलिन है, और राक्षसियों से घिरी हुई

वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः परीवृताम् ।
निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोऽभिगम्याभिवाद्य च ॥४॥
दृष्ट्वा समागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् ।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाऽभवत्तदा ॥५॥
सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान् प्लवगोत्तमः ।
रामस्य वचनं सर्वम् आख्यातुमुपचक्रमे ॥६॥
वैदेहि कुशली रामः सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥७॥
विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥८॥
प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये ।
तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे ॥९॥

वृक्ष के नीचे उदास बैठी है। हनुमान् चुपचाप धीरे से उनके समीप पहुँच गया और नम्र भाव से शीष झुकाकर अभिवादन किया। देवी पहिले तो महाबली हनुमान् को देखकर चुपचाप रही, परन्तु फिर देखकर और स्मरण करके प्रसन्न हुई। तब वानर-श्रेष्ठ हनुमान् ने सीता को प्रसन्नमुख देखकर राम का पूरा सन्देश कहना प्रारम्भ किया—

"वैदेही ! राम कुशल-पूर्वक हैं, और लक्ष्मण सहित सुग्रीव भी सकुशल हैं। वे शत्रुओं को मारकर शत्रुजित् होकर सफल-मनोरथ हो गए है, उन्होंने आपकी कुशलता चाही है। देवि ! वीर्यवान् राम ने सहायक विभीषण, वानरों और लक्ष्मण के साथ मिलकर रावण को मार दिया है। देवि ! मैं आपको प्रिय सन्देश सुना रहा हूँ, और आपको फिर फिर आनन्दित कर रहा

लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा ।
रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चैव वशीकृता ॥१०॥
मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये ।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥११॥
सम्भ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ।
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥१२॥
तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे ।
अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥१३॥
एवमुक्ता तु सा देवी सीता शशिनिभानना ।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥१४॥
ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम् ।

हूं कि ऐ धर्मज्ञ सीता ! राम ने आपके प्रभाव से युद्ध में यह महान् विजय पाई है, इसलिये आप व्यथा को दूर कर प्रसन्न हूजिये । शत्रु रावण मारा जा चुका है, और लंका जीत ली गई है । आपके उद्धार निमित्त कृत-निश्चयी मैंने निद्रा त्यागकर और महासमुद्र पर पुल बांधकर यह प्रतिज्ञा पूरी कर दी है । अब आपको रावण के महल में रहते हुए भय न करना चाहिये, क्योंकि यह सब लंका का राज्य विभीषण के हाथ में सौंप दिया गया है । अतः, आप निश्चिन्त हूजिये और समझिये कि अपने घर में रह रही हैं । देखिये, प्रसन्न होकर आपके दर्शनों के लिये यह विभीषण भी अभी आते हैं ।"

चन्द्रमुखी सीता देवी को जब यह प्रिय सन्देश सुनाया गया, तो उनका गला मारे हर्ष के रुक गया और वे कुछ बोल न सकी । जब सीता कुछ न बोली, तो बानरश्रेष्ठ ने पूछा—"देवि !

किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे ॥१५॥
एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता ।
अब्रवीत् परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥१६॥
प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्याऽस्मि क्षणान्तरम् ॥१७॥
नहि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवङ्गम ।
आख्यानकस्य भवतो दातुं प्रत्यभिनन्दनम् ॥१८॥
न च पश्यामि सदृशं पृथिव्यां तव किंचन ।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम् ॥१९॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च ।
राज्यं वा त्रिषु लोकेषु एतन्नार्हति भाषितम् ॥२०॥

आप क्या सोच रही हैं. और आप मुझसे क्यों नहीं बोल रही ?"

जब हनुमान् ने इस प्रकार पूछा तो धर्म-पथ पर आरूढ़ सीता ने परम प्रसन्न होकर गद्गद् वाणी से उत्तर दिया— "प्लवंगम ! भर्ता के विजय-विषयक इस प्रिय संवाद को सुनकर मुझे इतना अधिक हर्ष हुआ है कि कुछ देर केलिये मेरे से बोला ही नहीं गया। और फिर मैं सोचते २ यह भी नहीं देख पा रही हूं कि मेरा प्रिय संवाद सुनाने वाले आपको देने के लिए तदनुरूप पारितोषिक क्या है ? (इस सोच में पड़ जाने के कारण भी तुरन्त कुछ बोल नहीं सकी)। सो, मैं आपके अनुरूप पृथिवी भर में किसी वस्तु को नहीं देख पा रही, प्रिय संवाद के अनुरूप जिसे आपको देकर सुखी होऊं। क्योंकि चांदी, सोना तथा नाना प्रकार के रत्न, यहां तक कि त्रिलोकी का राज्य भी इस प्रिय संवाद का बदला नहीं चुका सकता।"

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥२१॥
भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यनिन्दिते ॥२२॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ॥२३॥
अतिलक्षणसम्पन्नं माधुर्यगुणभूषणम् ।
बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ॥२४॥
श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं सुतः परमधार्मिकः ।
बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ॥२५॥
तेजः क्षमा धृतिः स्थैर्यं विनीतत्वं न संशयः ।
एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ॥२६॥

जब हनुमान् को सीता ने इस प्रकार कहा तो हाथ जोड़ कर हर्षवश उनके आगे खड़े होकर उसने जबाब दिया—"पति के प्रिय हित में तत्पर रहने वाली ! तथा पति के विजय की अभिलाषिणी शुद्ध चरित्रे ! ऐसी स्नेहभरी बात आप ही कह सकती हैं।

जनकपुत्री मैथिली ने पवनपुत्र के उस वचन को सुन कर उससे भी बढ़ कर यह बात कही—"हनुमान् ! साधुत्व संपन्न, माधुर्य गुण से विभूषित, और अष्टांग बुद्धि से युक्त बात आप ही कह सकते हैं। पवन के पुत्र आप सराहने योग्य हैं और परम धार्मिक हैं। बल, शौर्य, बहुश्रुतता, एकनिष्ठा, विक्रम, उत्तम दक्षता तेज, क्षमा, धारणा शक्ति, धैर्य और विनम्रता, ये और इसीप्रकार के अन्य बहुत से गुण, इस में कोई शक नहीं कि आप में ही शोभायमान हो रहे हैं।"

अथोवाच पुनः सीताम् असम्भ्रान्तो विनीतवत् ।
प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥२७॥
इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ।
हन्तुमिच्छामि ताः सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ॥२८॥
क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वाम् अशोकवनिकां गताम् ।
घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥२९॥
इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला ।
हनूमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च ॥३०॥
राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥३१॥
भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद् दुष्कृतेन च ।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥३२॥

इसके बाद हनुमान् ने विना हिचकिचाए विनीत की तरह हाथ जोड़ कर तथा हर्षवश सीता के आगे खड़े होकर पुनरपि कहा—"देवि ! जिन राक्षसियों ने आपको पहले डराया-धमकाया है, यदि आप अनुमति दें तो मैं इन सब को मार डालना चाहता हूं। क्योंकि आप तो पतिदेव के वियोग से क्लेश को पाती हुई अशोकवनिका में बन्द पड़ीं हैं, तिस पर इन क्रूर तथा क्रूरतर आंखों वालियों ने आप से घोर व्यवहार किया है।"

हनुमान् के ऐसा कहने पर दयालु दीनबन्धु सीता ने सोच-विचार करके उसे उत्तर दिया—"वानरोत्तम ! राजसेवावश दूसरों की आज्ञा से कार्य करके हुक्म बजाने वाली दासियों पर भला कौन क्रोध कर सकता है ? मैंने यह सब दुःख विपरीत भाग्यदोष से, व पूर्वजन्म में किए दुष्कर्म से पाया है, क्योंकि किया

मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परा गतिः ।
प्राप्तव्यं तु दशायोगात् मयैतदिति निश्चितम् ॥३३॥
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ।
आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम् ।
हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥३४॥
एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम ॥३५॥
युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता ।
प्रतिसन्दिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥३६॥
एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
साऽब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥३७॥

हुआ ही भोगा जाता है। इसलिए महाबाहु ! ऐसा मत कहिए, क्योंकि यह दैवी गति सब से बढ़कर है। यह निश्चित बात है कि दशा-योग से यह सब मुझे पाना ही चाहिए था, अतः मैं दुर्बल रावण की दासियों का दुर्व्यवहार यहां सहती रही। रावण की आज्ञा पाकर ये राक्षसियां मुझे धमकाया करती थी, परन्तु मारुत-पुत्र ! अब उसके मारे जाने पर ये मुझे नहीं धमकाती।"

बात करने में कुशल हनुमान् को जब सीता ने इसप्रकार उत्तर दिया, तो उसने पवित्रचरित्र रामपत्नी सीता से फिर कहा—"ठीक है, आप सही हैं, आखिरकार आप राम की गुणवती धर्म-पत्नी ही तो हैं। अच्छा, देवि ! अब आप मुझे प्रत्युत्तर में संदेश दीजिए, मैं राम के पास जाऊंगा।"

जनकपुत्री वैदेही से हनुमान् ने जब इसप्रकार पूछा तो उसने कहा—"आप उन्हें मेरा यह संदेश पहुंचा दीजिए कि मैं

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
हर्षयन् मैथिलीं वाक्यम् उवाचेदं महामतिः ॥३८॥
पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम् ।
स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥३९॥
तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।
आजगाम महातेजा हनूमान् यत्र राघवः ॥४०॥

सर्ग ६७

तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः ।
रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥१॥
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः ।

भक्तवत्सल भर्ता के दर्शन करना चाहती हूं।"

महामति मारुत पुत्र हनुमान् सीता का यह संदेश सुनकर उन्हें हर्षित करता हुआ बोला—"लक्ष्मण सहित पूर्णिमा के चन्द्र समान मुख वाले राम के दर्शन आप आज करेंगी। आप मित्रों के संग बैठे हुओं तथा दुश्मनों को मारे हुओं के दर्शन आज उसी प्रकार करेंगी जैसे कि शची ने देवराज इन्द्र के किये थे।"

साक्षात् विष्णु की पत्नी श्री-जैसी तेजस्विनी सीता को इसप्रकार कह कर महातेजस्वी हनुमान् राम के पास लौट आया।

सीता का संदेश पाकर राम का विभीषण द्वारा उन्हें अपने पास बुलवाना

वहां पहुंच कर महाबुद्धिमान् प्लवंगम हनुमान् ने धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कमलनयन राम को अभिवादन करके कहा—"प्रभु! जिनके लिए यह सब युद्ध का आयोजन किया गया है, और जो सेतुबन्धन आदि कर्मों की फल-प्राप्ति रूप हैं, शोक-संतप्त

तां देवीं शोकसन्तप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥२॥
सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकाङ्क्षति ॥३॥
पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥४॥
एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ।
आगच्छत् सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥५॥
स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसङ्काशं विभीषणमुपस्थितम् ॥६॥
दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥७॥

उन सीता देवी के दर्शन कीजिए। भगवन्! सीता शोक में पड़ी बैठी थी कि आपका विजय सन्देश सुनकर मारे हर्ष के आंखें डब डबा उठी, और आपके दर्शनों की अभिलाषा व्यक्त की। पहले के परिचय के कारण वे मुझ से विश्वस्त हो गयी, और आंखों में आंसु भर कहा कि मैं भर्ता के दर्शन करना चाहती हूँ।"

हनुमान् ने धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम को जब इसप्रकार सीता का सन्देश सुनाया, तो उनकी आंखें कुछ डबडबा उठी और प्रबलता के साथ सीता के ध्यान में पड़ गए। उन्होंने लम्बी सांस छोड़ कर इधर-उधर देखा और पास में आए मेघसमान सुखप्रद विभीषण से कहा—"विभीषण! जावो, सीता को अच्छी तरह उबटन करा कर सिर से स्नान करवाओ और फिर बढ़िया आभूषणों से आभूषित कराके यहां लिवा लाओ, देखो देरी मत करो"

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत् ॥८॥
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाच विभीषणः ।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिः श्रीमान् विनीतो राक्षसेश्वरः ॥६॥
दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥१०॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता ।
भर्तृभक्त्याऽऽवृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥११॥
ततः सीतां शिरःस्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा ।
महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥१२॥
आरोप्य शिविकां सीतां राक्षसैर्वहनोचितैः ।

राम ने जब विभीषण को इसप्रकार आदेश दिया, तो वह फुर्ती से महल में पहुँच गया, और अपनी स्त्रियों द्वारा सीता को अपने आने की खबर पहुंचायी। उसके बाद राक्षसेश्वर श्रीमान् विभीषण महाभागा के पास पहुंचा, और विनम्रभाव से सिर पर हाथ जोड़ कर महाभागा सीता से कहा—"वैदेही ! दिव्य उबटन से स्नान कर दिव्य आभूषण धारण कीजिए और यान पर सवार हूजिए, आपका कल्याण हो, भर्ता आपके दर्शन करना चाहते हैं।"

तब पति को देवता मानने वाली साध्वी सीता ने विभीषण से संदेश को सुनकर भर्ता के प्रति भक्तिवश 'बहुत अच्छा' ऐसा उत्तर दिया। यह कह कर सीता ने उबटन लगाते हुए सिर से स्नान किया, और कीमती आभूषण व वस्त्र धारण किए। इस प्रकार तय्यार हो जाने पर सीता को पालकी में बैठाया, रक्षा के लिए अनेक राक्षस साथ में रखे, और पालकी को ले चलने में

राक्षसैर्बहुभिर्गुप्ताम् आजहार विभीषणः ॥१३॥
सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वाऽपि ध्यानमास्थितम् ।
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥१४॥
तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ।
रोषं हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥१५॥
ततो यानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन् ।
विभीषणमिदं वाक्यं प्रहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥१६॥
राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत ।
वैदेही सन्निकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥१७॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य विभीषणः ।

समर्थ राक्षसों से उठवाकर विभीषण उन्हें लिवा लाया। वहां पहुंच कर विभीषण राम के समीप गया और उन्हें ध्यानावस्थित जान कर भी उनके समक्ष झुक कर हर्षपूर्वक निवेदन किया कि सीता आ गयी हैं। राक्षस के महल में देर तक वन्दी हालत में रह कर आयी हूई सीता का समाचार सुनकर शत्रुहन्ता राम को एक साथ क्रोध, हर्ष, और आत्मग्लनि हुई। (क्रोध इसलिए कि रावण ने उसे इतना नीचा दिखाया, हर्ष इसलिए कि अन्ततः वह विजयी हो गया, और आत्मग्लानि इसलिए कि वह भर्ता होकर भार्या की पूरी तरह रक्षा न कर सका)।

तब यान में बैठ कर आयी सीता को अच्छी प्रकार सोच-विचार कर राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और विभीषण से कहा—"नित्य मेरे उत्कर्ष में रत रहने वाले सौम्य राक्षसाधिपत्ति ! सीता को शीघ्र मेरे समीप भेजिए।"

राम के इस आदेश को सुनकर व्यवहारवेत्ता विभीषण ने

तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥१८॥
कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
उत्सारयन्तस्तान्योधान् समन्तात्परिचक्रमुः ॥१९॥
ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः ।
वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुरन्ततः ॥२०॥
तेषामुत्सार्यमाणानां निःस्वनः सुमहानभूत् ।
वायुनोद्धूयमानस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥२१॥
उत्सार्यमाणान् दृष्ट्वाऽथ जगत्यां जातसम्भ्रमान् ।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥२२॥
संरम्भाच्चाब्रवीद् रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥२३॥
किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।

उस स्थान से शीघ्र सब मनुष्यों को हटाने का प्रबन्ध किया। चोगा-पगड़ी पहने तथा हाथ में झर्झर करती हुई बेत की छड़ी लिए रक्षक लोग उन योद्धाओं को वहां से हटाते हुए चारों तरफ घूमने लगे। तब हटाए जाने पर आखिरकार ऋक्षों वानरों तथा राक्षसों के सब समूह दूर जाकर खड़े हो गए। उनके हटाए जाने पर ऐसा भारी शोर उठा जैसे कि प्रचण्ड पवन से प्रकम्पित किए जाने पर समुद्र का शोर उठा करता है।

राम ने जब देखा कि योद्धा लोग इस प्रकार हटाये जा रहे हैं और वे घबराये हुए चारों तरफ खड़े हैं, तो उन्होंने चतुरता पूर्वक गुस्से में भरकर उन्हें हटाने से रोक दिया। आंख से जलाते हुए के समान उन्होंने क्रोध में भर कर महाबुद्धिमान् विभीषण को उलाहना देते हुए कहा—"आप मेरा निरादर करके क्यों इन

निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥२४॥
एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः ।
रामस्योपानयत् सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥२५॥
लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साऽभ्यवर्तत ॥२६॥
विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥२७॥

सर्ग ६८

तां तु पार्श्वे स्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१॥

मनुष्यों को तंग कर रहे हैं ? आप इस उतावलेपन को रोक दें, ये मनुष्य मेरे अपने मनुष्य हैं।"

राम ने जब विभीषण को इस प्रकार कहा तो वह विचारशील नम्रता पूर्वक सीता को उनके समीप ले गया। उस समय सीता लज्जा के मारे अपने ही अंगों में सिकुड़ रही थी, और विभीषण उनके पीछे २ चल रहा था। ऐसी हालत में वह भर्ता के पास पहुंच गई। वहां पहुंच कर पति को देवता समझने वाली सीता बिना कुछ बोले विस्मय से, प्रहर्ष से, और स्नेह से भर्ता के सौम्य मुख को देखती ही रह गयी और इस खुशी के मारे उसका मुख सौम्यतर बन गया।

पुष्पक विमान द्वारा राम के प्रस्थान की तय्यारी

तब राम ने विनम्र भाव से एक पासे खड़ी सीता को देखकर उनसे अपने अन्तर्हृदय का भाव कहना प्रारम्भ किया—

"भद्रे ! रणभूमि में मैंने शत्रु को परास्त कर तुम्हें पुनः प्राप्त

एषाऽसि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ॥२॥
गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ॥३॥
अद्य मे पौरुषं दृष्टम् अद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽहं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥४॥
या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥५॥
संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताऽप्यल्पचेतसः ॥६॥
लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् ।

किया है, और पुरुषार्थ से जो कुछ भी किया जा सकता था वह मैंने कर दिखाया है। अब मेरे क्रोध का अन्त हो गया है, और तुम्हें हर कर शत्रु ने जो मुझे नीचा दिखाया था, उसका बदला चुकाया जा चुका है। मैंने तिरस्कार और तिरस्कार करने वाला शत्रु, दोनों को एकसाथ उखाड़ फेंका है। आज मेरा पौरुष लोगों ने देख लिया है, और आज मेरा परिश्रम सफल हुआ है। आज मैं रावण का बध करके तुम्हें पाने की प्रतिज्ञा पार कर चुका हूं, और आज मैं आत्मबल से प्रभुता-सम्पन्न हूँ। हमारी अनुपस्थिति में चलायमान चित्त वाला जो राक्षस तुम्हें (पंचवटी से हर कर यहां लंका में) ले आया था, यह अपराध एक महामहाबली ने किया था, उसे मेरे जैसे मनुष्य ने दूर कर दिया। जो मनुष्य अपने पर पड़े निरादर को अपने तेज से दूर नहीं कर देता उस मूढ़ के बड़े भारी भी पौरुष से क्या लाभ? समुद्र का पार उतरना और

सफलं तस्य च श्लाघ्यम् अद्य कर्म हनूमतः ॥७॥
युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा ।
सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥८॥
विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः ।
विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ॥९॥
इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद्वचः ।
मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥१०॥
अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोपमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥११॥
तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिन्दमम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥१२॥
स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।

लंका को पददलित करना, यह हनुमान् का सराहने योग्य काम आज सफल हुआ। युद्ध में विक्रम दर्शाते हुए तथा हितकारी सलाह देते हुए सैन्य सहित सुग्रीव का आज परिश्रम सफल हुआ। और विभीषण का आज परिश्रम सफल हुआ, जोकि दुर्गुणी भाई को छोड़कर स्वयं मेरे पास पहुंचा।"

इस प्रकार कहते हुए राम के वचनों को सुनकर सीता के नेत्र हिरनी की तरह खिल उठे और मारे हर्ष के आंसुओं से डबडबा गए। तब भाई लक्ष्मण सहित राम ने देवतुल्य सब वानरों व राक्षसों को अभिवादन करके रात्रिवास के लिए आज्ञा दी।

उस रात को अरिदमन राम ने वहां निवास किया और और सुखकारी दिनोदय हुआ। तब विभीषण ने उनसे कुशल पूछ कर हाथ जोड़ तिवेदन किया—"राम ! स्नान के लिये जल,

चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानि च ॥१३॥

अलङ्कारविदश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत् स्नापयिष्यन्ति राघव ॥१४॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥१५॥

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥१६॥

तं विना कैकयी-पुत्रं भरतं धर्मचारिणम ।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥१७॥

एतत्पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥१८॥

उबटन, वस्त्र, आभरण, चन्दनानुलेपन तथा विविध प्रकार की सुन्दर मालायें तैयार हैं। और सजाने में चतुर ये कमलनयनी स्त्रियें उपस्थित हैं, ये आपको विधिवत् स्नान करायेंगी (जैसे कि समावर्तन संस्कार में कराया जाता है)।"

विभीषण ने राम से जब इस प्रकार निवेदन किया तो उन्होंने उत्तर में कहा—"विभीषण ! सुग्रीव-प्रमुख वानरों का ऐसे स्नान से सत्कार करो। उधर सुख पाने के योग्य, धर्मात्मा, सुकुमार, महाबाहु और सत्यप्रतिज्ञ भरत तो मेरे लिये दुःख पा रहा है, इसलिये धर्मचारी उस कैकेयी-पुत्र भरत के विना मुझे यह स्नान अच्छा नहीं लगता और न वस्त्राभरण। सो विभीषण ! आप तो यह देखिये कि हम किस प्रकार शीघ्र अयोध्यापुरी लौट जावें, क्योंकि हमारा यह गमन-मार्ग बड़ा कठिन है।"

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥१६॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् ।
मम भ्रातुः कुवेरस्य रावणेन बलीयसा ॥२०॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥२१॥
तदिदं मेघसङ्काशं विमानमिह तिष्ठति ।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥२२॥
अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥२३॥
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या भार्यया सह ।
अर्चितः सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि ॥२४॥

राम ने विभीषण को जब इस प्रकार कहा, तो उन्होंने प्रत्युत्तर दिया -"राजपुत्र ! मैं आपको दिन-दिन में अयोध्या पुरी पहुंचवा दूंगा। आपका कल्याण हो। मेरे भाई कुबेर का सूर्य समान चमकीला पुष्पक विमान बलवान् रावण ने संग्राम में विजय-लाभ कर छीन कर ला रखा है, जो कि यथेच्छ चलने वाला है और बड़ा सुन्दर तथा उत्तम है। अतुल विक्रमी ! वह विमान आपके लिये तय्यार कर रखा है। देखिये मेघ समान आकाश में उड़ने वाला वह विमान यहां खड़ा है, जिससे कि आप बिना कष्ट के अयोध्या पहुंच जावेंगे। प्राज्ञ राम ! यदि मैं आपका अनुग्रह-भाजन हूँ, यदि मेरे गुण आपको स्मरण आ रहे हैं, और यदि मेरे में आपका स्नेह है, तो भाई लक्ष्मण तथा भार्या वैदेही के साथ आज का दिन यहां रहिये, मैं दिल भर कर

प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्‌गणः ।
सत्क्रियां राम मे तावद् गृहाण त्वं मयोद्यताम् ॥२५॥
प्रणयाद् बहुमानाच्च सौहार्देन च राघव ।
प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते ॥२६॥

एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥२७॥
पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च ।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥२८॥

न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥२९॥
मां निवर्तयितुं सोऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।

आपका सत्कार कर लूं, फिर आप चले जाइयेगा। राम ! प्रीति-युक्त मैंने मन लगाकर आपके लिये सत्कार-सामग्री तैयार की है, कृपया आप सैन्यों तथा मित्रों सहित मेरे उस सत्कार को ग्रहण कीजिए। राम ! मैं आपसे यह बात प्रणय से, बहुमान से, और मित्रता से कह रहा हूँ, मैं आपका सेवक हूं, मैं आपको आज्ञा नही दे रहा हूं।"

विभीषण ने राम से जब इस प्रकार प्रार्थना की, तो उन्होंने सब राक्षसों तथा वानरों के सुनते हुए उत्तर दिया—"वीर ! तुम ने नेक सलाह से, सब प्रकार के कार्यों से, और उत्कृष्ट सौहार्द युक्त व्यवहार से मेरा सत्कार कर दिया। पर, राक्षसेश्वर ! मैं आपके इस वचन को पूरा न कर सकूंगा, न कर सकूंगा। क्योंकि मेरा मन उस भरत भाई को देखने के लिए छटपटा रहा है, जोकि मुझे लौटा ले चलने के लिए चित्रकूट पहुंचा था, और

शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥३०॥
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
गुहं च सुहृदं चैव पौरजानपदैः सह ॥३१॥
अनुजानीह मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः सखे त्वां चानुमानये ॥३२॥
उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥३३॥
एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विमानं सूर्यसङ्काशम् आजुहाव त्वरान्वितः ॥३४॥
उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥३५॥

तदर्थ मेरे पावों में सिर रख कर याचना की थी, परन्तु मैंने उसकी वह याचना पूरी नहीं की थी। सो, मैं उस भरत को, कौसल्या को, सुमित्रा को, यशस्विनी कैकेयी को, मित्र गुह को, और जानपदों सहित पुरवासियों को शीघ्र देखना चाहता हूं। सौम्य विभीषण ! मुझे अनुज्ञा दो, तुमने मेरा सत्कार कर दिया, मित्र ! क्रोध न करो, मैं आप को मना रहा हूं। राक्षसेश्वर ! मेरे लिए शीघ्र विमान मंगवाओ, मैंने सब काम पूरे कर दिए हैं, अब मेरा यहां रहना क्योंकर माना जा सकता है ?"

राम ने राक्षसराज विभीषण को जब इसप्रकार कहा, तो उसने शीघ्रता करके सूर्यसमान चमकीला पुष्पक विमान वहां मंगवा लिया, और राम से निवेदन किया कि महाराज सब तरह से सुरक्षित तथा शीघ्रगामी वह विमान उपस्थित है। ऐसा कह कर विभीषण विमान के समीप खड़ा हो गया।

सर्ग ६६

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥१॥
स तु बद्धाञ्जलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥२॥
तमब्रवीन्महातेजा लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥३॥
कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः सम्पूज्यन्तां विभीषण ॥४॥
सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥५॥
त इमे कृतकर्माणः सर्व एव वनौकसः ।

राम के साथ अमात्यों सहित सुग्रीव और विभीषण का भी अयोध्या-प्रस्थान

इसप्रकार पुष्पविभूषित पुष्पक विमान को उपस्थित करके पास में खड़े विभीषण ने राम से पूछा : राक्षसेश्वर ने विनीत भाव से हाथ जोड़ हड़बड़ाकर राम से पूछा—"राम ! संप्रति मैं क्या करूं।" इस पर महातेजस्वी राम ने सोच-विचार कर लक्ष्मण के सुनते हुए स्नेहपूर्वक उससे कहा—

"विभीषण ! इन सभी वानरों ने युद्ध में बड़े २ प्रयत्न व कर्म किए हैं, इन्हें रत्नों और विविध प्रकार के पदार्थों से संपूजित कीजिए। राक्षसेश्वर ! आपने इन्हीं की सहायता से लंका को जीता है, जिन्होंने कि खुशी २ प्राण-भय को त्याग कर युद्धों से कभी मुंह नहीं मोड़ा है। इसलिए ये सभी वानर कृतकर्मा हैं,

धनरत्नप्रदानैश्च कर्मैषां सफलं कुरु ॥६॥
एवं सम्मानिताश्चैते नन्द्यमाना यथा त्वया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन निर्वृता हरियूथपाः ॥७॥
त्यागिनं संग्रहीतारं सानुक्रोशं जितेन्द्रियम् ।
सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सम्बोधयामि ते ॥८॥
हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
सेना त्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर ॥९॥
एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः ।
रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥१०॥
ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रत्नार्थैर्हरियूथपान् ।
आरुरोह तदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥११॥

इन्हें धन तथा रत्न प्रदान करके इनके कर्म को सफल बनाइए। आप कृतज्ञ द्वारा जिस प्रकार ये वानरसेनापति सम्मानित होंगे, उसीप्रकार आनन्दित होते हुए वे पीछे आपका निरन्तर ख्याल रखेंगे। यदि आप इन्हें इस समय सम्मानित कर देंगे, तो ये सब फिर भी दयायुक्त दानी, तथा संयमयुक्त कर-गृहीता आप के पास आते रहेंगे, इसलिए मैं आपको यह बात कह रहा हूँ। नरेश्वर ! जो राजा युद्ध में आदमियों को कटवाता तो रहता है, परन्तु दान-मान आदि प्रदान करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित नहीं करता, उसे सेना दुःखी होकर छोड़ देती है।"

राम ने जब विभीषण को इसप्रकार कहा तो उसने उन सभी वानर-सेनापतियों को रत्न व धन बांट कर अच्छी तरह पूजित किया। तब राम ने जब यह देख लिया कि वे वानरसेना-पति रत्नों व धनों से पूजित हो गए हैं, तो वे उस सर्वश्रेष्ठ

अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥१२॥

अब्रवीत् स विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान् ।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥१३॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥१४॥

यत्तु कार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥१५॥
किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसवृतः ॥१६॥
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ।
न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ॥१७॥
अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम ।

विमान पर सवार हो गए। लजाती हुई मनस्विनी सीता उनके बगल में बैठी, और भाई लक्ष्मण विक्रम पूर्वक हाथ में धनुष लिए सवार हुआ। एवं, विमान पर बैठकर सब वानरों का अभिनन्दन करते हुए राम ने विभीषण सहित महापराक्रमी सुग्रीव को कहा—

"वानरश्रेष्ठो ! आपने यह मित्रकार्य पूरा कर दिया, अब मैं आपको अनुज्ञा देता हूं, आप अपने २ स्थान पर जाइए। सुग्रीव ! जो कार्य किसी स्नेही व हितकारी मित्र को करना चाहिए, वह सब आपने अधर्म से दूर रहते हुए पूरा कर दिया, अब आप अपनी सेना को साथ लेकर शीघ्र किष्किन्धा लौट जाइए। विभीषण ! आप भी मेरे द्वारा सौंपे गए अपने राज्य लंका में निवास कीजिए, अब आपके ऊपर इन्द्र सहित देव लोग भी आंख न उठा सकेंगे। मैं अपने पिता की राजधानी अयोध्या

अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥१८॥

एवमुक्तास्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ॥१९॥

अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् ।
मुद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च ॥२०॥

दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्हं कौसल्यामभिवाद्य च ।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम ॥२१॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः ।
अब्रवीद्वानरान् रामः ससुग्रीवविभीषणान् ॥२२॥

प्रियात् प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥२३॥

को जाऊंगा, अतः मैं अब आप सब से अनुज्ञा और विदाई चाहता हूं।"

रामने जब इसप्रकार कहा तो वानरराज सुग्रीव तथा उसके सब सेनापतियों ने और राक्षसराज विभीषण ने, हाथ जोड़ कर उनसे कहा—"नृपसत्तम ! हम अयोध्या चलना चाहते हैं, आप हम सब को भी साथ ले चलिए। हम वहां के वनों-उपवनों में हर्षयुक्त होकर घूमेंगे, और आपके राज्याभिषेक को देख कर व कौसल्या को अभिवादन करके जल्दी ही अपने घरों को लौट आवेंगे।"

जब विभीषण सहित वानरों ने धर्मात्मा राम से इसप्रकार प्रार्थना की, तो उन्हों ने सुग्रीव-विभीषण सहित उन सब वानरसेनापतियों को कहा—"अहो ! तब तो मुझे प्रिय से बढ़कर प्रिय पदार्थ मिल गया, जबकि मैं मित्रों सहित यात्रा करूंगा और फिर अयोध्या

क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥२४॥
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः ।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥२५॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं परमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातम् उत्पपात विहायसम् ॥२६॥

सर्ग ७०

अनुज्ञातं तु रामेण तद्विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महानादम् उत्पपात विहायसम् ॥१॥
पातयित्वा ततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥२॥

पुरी पहुँच कर आप सब के साथ आनन्द मनाऊंगा। सुग्रीव! अपने सेनापतियों सहित शीघ्र विमान पर सवार हूजिए। राक्षस-राज विभीषण! आप भी अमात्यों सहित सवार हूजिए।"

राम के इसप्रकार कहने पर सेनापतियों सहित सुग्रीव और अमात्यों सहित विभीषण हर्षित होकर दिव्य पुष्पक विमान पर सवार हो गए। जब ये सब चढ़ गए, तो राम की आज्ञा पाकर कुबेर का अत्युत्तम विमान आकाश में उड़ चला।

विभीषण-सुग्रीव आदि सहित विमान द्वारा प्रस्थान, मार्गवर्ती स्थानों का सीता को दिखलाना तथा किष्किन्धा से सुग्रीव आदि की पत्नियों का लेना

राम के हुक्म को पाकर हंस-जैसा वह अत्युत्तम विमान बड़ा शब्द करता हुआ आकाश में उड़ने लगा। तब उड़ते२ राम ने चारों तरफ निगाह डालकर चन्द्रमुखी सीताको कहना प्रारम्भ किया—

कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥३॥
एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥४॥
एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥५॥
एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥६॥
पश्य सागरमक्षोभ्यं वैदेहि वरुणालयम् ।
अपारमिव गर्जन्तं शङ्खशुक्तिसमाकुलम् ॥७॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
अत्र राक्षसराजोऽयम् आजगाम विभीषणः ॥८॥

"वैदेही ! देखो, यह कुशल कारीगर की बनाई हुई लंका नगरी। यह ऐसी दीख पड़ रही है कि मानो कैलास-शिखर जैसे चित्रकूट-शिखर पर बनी हुई है। सीता यह मांस-शोणित के कीचड़ से युक्त युद्ध भूमि है, यहां वानरों और राक्षसों का महान् बध हुआ है। वरानने ! यह वह समुद्र-तट है, जहांकि समुद्र-पार करके हम लोग उस रात टिके थे। विशालाक्षी ! यह मैंने तुम्हारे कारण खारी जल वाले समुद्र पर पुल बांधा हुआ है। यह पुल नल ने बनाया था। इसका निर्माण अत्यन्त कठिन था। वैदेही ! देखो, यह शंखों और मोतियों से भरा हुआ अपार जल का भंडार समुद्र कैसे अथाह गरज रहा है और कैसे खड़बड़ा है। सीता ! यह स्थान वह है यहां कि हमारे पर सर्वव्यापक महादेव परमात्मा ने पहले कृपा की थी : यहां ये राक्षसराज विभीषण हमारे पास

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः ॥९॥

अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां वालिपालिताम् ।
अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥१०॥
सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ! ।
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम् ।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वया सह ॥११॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् ॥१२॥

एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः ।
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥१३॥
ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान् ।

पहुँचे थे । सीता ! यह सुन्दर वनों वाली किष्किन्धा दीख पड़ती है, जो कि सुग्रीव की रमणीक नगरी है । यहां मैंने वाली को मारा था ।"

जब सीता ने वालि-पालित किष्किन्धा को देखा, तो उसने सुग्रीव के साथ राम के प्रणय-बन्धन का ख्याल करके नम्रता पूर्वक राम से कहा—"राजन् ! मैं सुग्रीव की तारा-प्रमुख प्यारी स्त्रियों, एवं अन्य वानर-सेनापतियों की स्त्रियों को साथ लेकर सहभाव पूर्वक आपके साथ राजधानी अयोध्या को जाना चाहती हूं ।"

जब वैदेही ने राम से ऐसी इच्छा प्रकट की तो उन्होंने उत्तर दिया 'बहुत अच्छा ऐसा ही होगा ।' और फिर किष्किन्धा पहुंच कर राम ने विमान को ठहराया और सुग्रीव को मुखातिब करके कहा—"वानरशार्दूल ! इन सब वानर-सेनापतियों को

स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ॥१४॥
तथा त्वमेभिः सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ।
अभित्वरय सुग्रीव गच्छामः प्लवगाधिप ॥१५॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ।
वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः ।
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥१६॥
प्रिये त्वं सह नारीणां वानराणां महात्मनाम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ।
त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः ॥१७॥
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥१८॥

कहिये कि वे अपनी स्त्रियों को साथ लेकर सीता के संग अयोध्या चलें। एवं महाबली ! आप भी अपनी सब स्त्रियों को साथ लेकर चलें । वानरराज सुग्रीव ! जल्दी करें, हमें शीघ्र आगे जाना है।"

अमित तेजस्वी राम ने वानरराज सुग्रीव को जब इसप्रकार कहा, तो उस श्रीमान् ने विमान पर बैठे सेनापतियों को अपने साथ लिया और शीघ्र राजमहल में पहुंचा। वहां पहुंच कर उसने तारा को मुखातिब करके कहा—"प्रिये ! तुम इन सेनापतियों की स्त्रियों को संग में लेकर शीघ्र विमान पर चलो, सीता की प्रिय कामना के कारण राम ने आदेश दिया है। इन वानर-सेनापतियों की स्त्रियों को भी साथ में लेकर तुम और हम सब इकट्ठे अयोध्या चलेंगे। वहां पहुंच कर तुम लोगों को अयोध्या के दर्शन करायेंगे और दशरथ की सब स्त्रियों के भी।"

सुग्रीव के वचन को सुनकर तारा सजकर तैयार हुई, और

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना ।
आहूय चाब्रवीत्सर्वा वानराणां तु योषितः ॥१६॥

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः ।
मम चापि प्रियं कार्यम् अयोध्या-दर्शनेन च ॥२०॥

प्रवेशं चैव रामस्य पौरजानपदैः सह ।
विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥२१॥

तारया चाभ्यनुज्ञाताः सर्वा वानरयोषितः ।
नेपथ्यविधिपूर्वं तु कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
अध्यारोहन् विमानं तत्सीतादर्शनकाङ्क्षया ॥२२॥

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ।
ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥२३॥

वानर-सेनापतियों की सब स्त्रियों को भी बुलवा भेजा। उन स्त्रियों के आने पर उन्हें कहा—"सुग्रीव ने आज्ञा दी है कि आप भी अपने पतियों के संग अयोध्या चलें। अयोध्या-दर्शन से आपके संग मैं भी प्रसन्नता-लाभ कर लूंगी। वहां पहुंच कर हम भी पौर-जानपदों सहित राम के अयोध्या-प्रवेश, तथा दशरथ की सब स्त्रियों के वैभव को देखेंगी।"

तारा का आदेश पाकर सेनापतियों की स्त्रियों ने वस्त्रालंकार से यथाविधि सजकर विमान की प्रदक्षिणा की, और सीता के दर्शनों की उतावली में उस पर सवार हो गईं। उनको साथ में लेकर विमान शीघ्र ऊपर उठा और आगे चल पड़ा। तब राम ने आगे उड़ते हुए विमान को देखकर ऋष्यमूक के समीप पहुंचने पर वैदेही को फिर कहा—

"सीता! वह पर्वतश्रेष्ठ महान् ऋष्यमूक दीख पड़ रहा

दृश्यतेऽसौ महान् सीते सविद्युदिव तोयदः ।
ऋष्यमूको गिरिवरः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ॥२४॥
अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः ।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ॥२५॥
एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनीचित्रकानना ।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥२६॥
अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥२७॥
दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान् सीते वनस्पतिः ॥२८॥
जटायुश्च महातेजास्तव हेतोर्विलासिनि ।
रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥२९॥

है। इसमें सुवर्णादि चमकने वाली धातुयें बहुतायत से हैं, इसलिए यह बिजली वाले मेघ के समान प्रकाशित हो रहा है। सीता ! यहां मेरी वानरराज सुग्रीव के साथ भेंट हुई थी, और मैंने वालि के बध की समझौते के रूप में प्रतिज्ञा की थी। वह रंग-बिरंगे फूलों वाले वृक्षों से भरे वन के अन्दर पम्पा सरसी दीख पड़ रही है। जब मैं तुमसे वियुक्त हुआ था, तो अत्यन्त दुःखी दिल के साथ तुम्हें ढूंढने के लिये मैं सर्वप्रथम यहां पहुंचा था, परन्तु तुम्हें न पाकर अत्यन्त कलपा था। इसी सरोवर के किनारे मुझे धर्मचारिणी शबरी मिली थी, और इसी जंगल में विशाल-बाहु कबन्ध को मैंने मारा था।"

"सीता ! वह जनस्थान में विशाल बरगद का पेड़ दीख पड़ता है। विलासिनी ! यहां पर तेरे कारण रावण ने पक्षियों के राजा महातेजस्वी बली जटायु को मारा था। वरवर्णिनी ! यह

एतत्तदाश्रमपदम् अस्माकं वरवर्णिनि ।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥३०॥
यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् ॥३१॥
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ।
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते कदलीवृतः ॥३२॥
दृश्यते चैव वैदेहि शरभङ्गाश्रमो महान् ॥३३॥
एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ॥३४॥
अस्मिन् देशे महाकायो विराधो निहतो मया ॥३५॥
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ।
असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ॥३६॥
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ।

हमारा आश्रम-स्थान है। शुभदर्शने ! देखो, इसमें हमारी पर्ण-शाला उसी तरह मनोहर दीख पड़ रही है। यहीं तुम्हें राक्षसराज रावण ने बलात्कार पूर्वक हरा था। यह स्वच्छ जल वाली रमणीक व सुन्दर गोदावरी नदी है। वैदेही ! देखो, वह केलों से घिरा अगस्त्य-आश्रम दीख पड़ता है, और वह महान् शरभंगाश्रम भी दृष्टि-गोचर हो रहा है। ऐ पतली कमर वाली देवी ! वे तापसाश्रम दीख पड़ रहे हैं। इन्हीं में कुलपति अत्रि रहते हैं, जोकि सूर्य व अग्नि के समान तेजस्वी हैं। इस प्रदेश में मैंने महाकाय विराध को मारा था।"

"सीता ! यहांतुमने धर्म चारिणी अनसूया तापसी के दर्शन किये थे। वह सुन्दरस्वरूप पर्वतराज चित्रकूट प्रकाशित हो रहा है। यहीं पर मुझे लिवाने के लिए भरत आया था। यह सुन्दर

एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना ॥३७॥
भरद्वाजाश्रमः श्रीमान् दृश्यते चैष मैथिलि ।
इयं च दृश्यते गङ्गा पुण्या त्रिपथगा नदी ॥३८॥
शृङ्गवेरपुरं चैतद् गुहो यत्र सखा मम ।
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ॥३९॥
अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ॥४०॥

सर्ग ७१

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥१॥
सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ।
शृणोषि कच्चिद् भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे ।

वन वाली रमणीक यमुना नदी है। मिथली! यह शोभायमान भरद्वाज आश्रम दीख पड़ता है। यह तीन मार्गों से वहने वाली पवित्र गंगा नदी दीख पड़ती है। यह शृंगवेरपुर है, यहां मेरा मित्र गुह राज्य करता है। और सीता! वह मेरे पिता की राजधानी अयोध्या दीख पड़ती है। वैदेही! यतः तुम (दीर्घ-कालीन वनवास व मृत्यु-मुख से निकल कर) फिर लौट कर आ रही हो, अतः उसे प्रणाम करो।

एक रात राम का भरद्वाज-आश्रम में रहना

(भरद्वाज आश्रम के समीप से ही अयोध्या पर्यन्त के सब स्थान सीता को दिखा कर) पूरे १४ वर्ष के बाद उसी पंचमी वाले दिन राम भरद्वाज आश्रम में पहुँचे और यथाविधि उन्हें प्रणाम किया। प्रणाम के बाद तपोधन अगस्त्य से पूछा—"भगवन्! आपको पता होगा कि क्या अयोध्या में सब को

कच्चित्स युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः ॥२॥
एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ।
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ॥३॥
आज्ञावशत्वे भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ।
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ॥४॥
त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् ।
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ॥५॥
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितृनिर्देशकारिणम् ।
सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ॥६॥
दृष्ट्वा तु करुणा पूर्वं ममासीन् समितिंजय ।
कैकयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ॥७॥

भरपेट खाना मिलता है ? और क्या वे सब आरोग्ययुक्त हैं ? क्या भरत प्रजापालन में जुटा हुआ है ? और क्या मेरी मातायें तो जीवित हैं ?"

जब महामुनि भरद्वाज से रघुश्रेष्ठ राम ने इसप्रकार पूछा तो उन्होंने प्रसन्नतावश मुस्कराते हुए उत्तर दिया—"जटाधारी भरत आपकी आज्ञा (प्रजापालन आदि) के अधीन रहता हुआ आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। वह आपकी पादुकाओं को आगे धर कर आपकी आज्ञा निवाह रहा है। आपके घर में सब कुशल हैं। जब आप पहले चीर वस्त्र पहिन कर महावन में आए थे, जबकि सिर्फ लक्ष्मण और सीता साथ थी, राज्य से हटाये हुए थे, सिर्फ पिता की आज्ञा पालना अभीष्ट था, पैदल चल रहे थे, सर्वस्व त्याग कर पिता के आज्ञाकारी थे, सर्वस्व छीन कर तिब्बत से निकाले गए देव के समान थे, और कैकेयी के आदेश में रह कर

साम्प्रतं तु समृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् ।
समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत्प्रीतिरुत्तमा ॥८॥

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ।
यत्त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थाननिवासिना ॥९॥

ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य रक्षतः सर्वतापसान् ।
रावणेन हृता भार्या बभूवेयमनिन्दिता ॥१०॥

मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च ।
कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ॥११॥

सुग्रीवेण च ते सख्यं यत्र वाली हतस्त्वया ।
मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ॥१२॥

जंगली मूल-फलों से गुजारा कर रहे थे, युद्ध विजयी ! तब आपके उस रूप को देखकर मुझे बड़ी करुणा आयी थी, परन्तु संप्रति आपको सफल-मनोरथ, मित्रों-बन्धुयों से युक्त, तथा शत्रु को जीत कर आए हुए को देख कर मुझे अत्यन्त खुशी हो रही है।"

"राम ! जनस्थान में निवास करते हुए जो आपने महान् सुख-दुःख पाया है, वह सब मुझे विदित है। मुझे यह विदित है कि जब आप ब्रह्मर्षियों की रक्षा में नियुक्त होकर सब तापसों की रक्षा कर रहे थे तब आपकी पतिव्रता पत्नी को रावण ने हर लिया था। कपटी वेष में मारीच के आने, सीता को धोखा देने, कबन्ध से टक्कर लेने, सीता को ढूंडने पम्पा सरोवर जाने, सुग्रीव के साथ आपकी मित्रता के होने, वहां आप द्वारा वालि का बध किए जाने, वैदेही को ढूँडने, और पवनपुत्र द्वारा सीता को खोज निकालने की सब कथा मुझे मालूम है। मुझे यह भी विदित

विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः ।
यथा चादीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ॥१३॥

सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः ।
यथा च निहतः संख्ये रावणो बलदर्पितः ॥१४॥

सर्वं ममैतद् विदितं तपसा धर्मवत्सल ।
सम्पतन्ति च मे शिष्याः प्रवृत्त्याख्याः पुरीमितः ॥१५॥

अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर ।
अर्घ्यं प्रतिगृहाणेदम् अयोध्यां श्वो गमिष्यसि ॥१६॥

तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः ।
बाढमित्येव संहृष्टः श्रीमान् वरमयाचत ॥१७॥

है कि सीता का पता लग जाने पर नलसेतु कैसे बनाया गया, हर्षित होकर वानर-सेनापतियों ने लंका को कैसे नष्ट किया, और बल के घमण्ड में भरा रावण पुत्रों बन्धुओं अमात्यों सेनाओं वाहनों सहित युद्ध में कैसे मारा गया ? धर्मवत्सल ! तप के प्रभाव से यह सब कुछ मैंने जाना है। और फिर तप से जाने हुए इन समाचारों को लेकर मेरे शिष्य यहां से अयोध्या जाते रहे हैं। (अतः. उन अयोध्यावासियों को भी आपका सब हाल मालूम है)। धनुर्धारियों में श्रेष्ठ ! आप के यहां पधारने पर मैं आपका आतिथ्य करता हूं। आज आप यहां मेरा यह आतिथ्य स्वीकार कीजिए, कल अयोध्या जाइए।"

राजपुत्र ने भरद्वाज के वचन को सिर माथे पर लिया, और प्रसन्नता पूर्वक 'बहुत अच्छा' ऐसा कह कर श्रीमान् ने आतिथ्य स्वीकार किया

सर्ग ७२

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।
प्रियकामः प्रियं रामस्ततस्त्वरितविक्रमः ॥१॥
चिन्तयित्वा ततो दृष्टिं वानरेषु न्यपातयत् ।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥२॥
अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम ।
जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥३॥
शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ।

खबर देने के लिए भरद्वाज आश्रम से हनुमान् को अयोध्या भेजना

दूर से अयोध्या को देखकर ज्योंही राघववंशी राम भरद्वाज आश्रम में विमान से उतरे त्योंही प्रियकामना वाले उन्हों ने प्रिय का विचार किया, (यह विचार दो कारणों से था । एक तो यह कि आज पंचमी को वनवास के पूरे १४ वर्ष व्यतीत हो रहे हैं । यदि आज अपने पहुँचने का संदेश भरत को नहीं मिलता तो वह चित्रकूट में कही प्रतिज्ञा के अनुसार अगले दिन अग्नि-प्रवेश कर जावेगा । और दूसरा यह कि अपने अतिथि सुग्रीव व विभीषण राजाओं, व साथियों का अयोध्या पहुंचने पर सत्कार अच्छा हो सके । इन दो प्रिय बातों की सोच राम को थी) और विचार करके वानर-सेनापतियों पर नजर दौड़ाई और बुद्धिमान् तेजस्वी फुर्तीले हनुमान् को कहा—

"प्लवगसत्तम ! जल्दी अयोध्या जावो, और देखो कि राजमहल में सब कुशल पूर्वक तो हैं ? मार्ग में शृंगवेरपुर पहुंच कर जंगल के जानकार निषादराज गुह को मेरी ओर से

निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान्मम ॥४॥
श्रुत्वा तु मां कुशलिनम् अरोगं विगतज्वरम् ।
भविष्यति गुहः प्रीतः स ममात्मसमः सखा ॥५॥
अयोध्यायाश्च ते मार्गं प्रवृत्तिं भरतस्य च ।
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ॥६॥
भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥७॥
उपयातं च मां सौम्य भरताय निवेदय ।
सह राक्षसराजेन हरीणामीश्वरेण च ॥८॥
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥९॥
इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान् मारुतात्मजः ।

कुशल-संवाद देते जाना । वह मेरा अपने जैसा मित्र है । वह मेरी कुशलता, अरोगता, तथा संताप-रहितता की बात सुनकर बड़ा प्रसन्न होगा, और प्रसन्न होकर तुम्हें अयोध्या पहुंचने का सरल मार्ग तथा भरत का हालचाल बतला देगा । अयोध्या पहुंच कर मेरी ओर से भरत को कुशल-संवाद देना, और कहना कि मैंने भार्या तथा लक्ष्मण सहित पिता की आज्ञा पूरी निवाह दी है । सौम्य ! कुशल-संवाद देकर भरत से निवेदन करना कि मैं राक्षसराज विभीषण और वानरराज सुग्रीव को साथ ले नगर के समीप पहुंच गया हूँ । और राम, शत्रुओं को जीतकर तथा अनुपम यश को पाकर सफल-मनोरथ हो महाबली मित्रों के साथ आप के पास पहुंच ही रहा है ।"

मारुतपुत्र हनुमान् इसप्रकार राम का आदेश पाकर मानुष

मानुषं धारयन् रूपम् अयोध्यां त्वरितो ययौ ॥१०॥

शृङ्गवेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् ।
स वाचा शुभया हृष्टो हनूमानिदमब्रवीत् ॥११॥

सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ।
ससीतः सह सौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥१२॥

पञ्चमीमद्य रजनीम् उषित्वा वचनान्मुनेः ।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यत्रैव राघवम् ॥१३॥

एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ।
उत्पपात महावेगाद् वेगवानविचारयन् ॥१४॥

सोऽपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ।
वरूथीं गोमतीं चैव भीमं सालवनं तथा ॥१५॥

वेष में शीघ्र अयोध्या को चल पड़ा। पराक्रमी हनुमान् मार्ग में शृंगवेरपुर पहुँच गुह से मिला और हर्षित होकर शुभ वाणी से बोला—"राजन्! आपके मित्र सत्यपराक्रमी राम ने आपके पास सीता तथा लक्ष्मण सहित अपना कुशल-संवाद भेजा है। भरद्वाज मुनि के आदेशानुसार आज पंचमी की रात उनके आश्रम में निवास कर उन से अनुज्ञा ले वे कल यहां आपके समीप आवेंगे।"

इसप्रकार गुह को संवाद देकर महातेजस्वी, वेगवान् हनुमान् मारे खुशी के रोमाञ्चित हो बड़ी जल्दी २ किसी अन्य बात की तरफ विना ध्यान दिये उड़ चला। उसने मार्ग में वालुकिनी नदी तथा उस पर बने रामघाट को देखा, और फिर उत्तम जल वाली गोमती नदी को देखकर अत्यन्त घने सालवन को देखा। उसने वहां हजारों प्रजाजनों तथा संपन्न जानपदों को

प्रजाश्च बहुसाहस्त्रीः स्फीताञ्जनपदानपि ॥१६॥
स गत्वाऽदूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ।
आससाद द्रुमान् फुल्लान् नन्दिग्रामसमीपगान् ॥१७॥
सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ।
स्त्रीभिः सपुत्रैः पौत्रैश्च रममाणैः स्वलंकृतैः ॥१८॥
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥१९॥
जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ।
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ।।२०॥
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥२१॥

विचरते हुए देखा । वहां से कुछ ही दूर रास्ता तै करके जल्दी से कपिकुञ्जर नन्दिग्राम के समीपवर्ती खिले वृक्षों में जा पहुँचा । उन वृक्षों के नीचे स्त्री-पुत्र-पौत्रों के साथ भलीप्रकार सज कर आये हुए गृहस्थ लोग सुख-विहार कर रहे थे, और वे वृक्ष देवराज इन्द्र के नन्दन उपवन में लगे वृक्षों के समान थे। यह नन्दिग्राम अयोध्या से एक कोस की दूरी पर था ।

वहां पहुँच कर हनुमान् ने भरत के दर्शन किये और देखा कि उसने चीर वस्त्र व कृष्णाजिन पहिन रखा है, उदास है, कृश है, तापसाश्रम जैसा रहन-सहन है, जटाधारी है, उबटन आदि न लगाने से शरीर साफ नहीं, भाई के वियोग-जन्य दुःख से दुःखी है, फल-मूल पर गुजारा कर रहा है, जितेन्द्रिय है, तपस्वी है, धर्मचारी है, जटायों का भार बहुत बढ़ा रखा है, वल्कल व मृगचर्म के वस्त्र हैं, नियम का पक्का है, आत्मा को साध रखा

पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् ।
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥२२॥

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥२३॥

नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥२४॥

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान् मारुतात्मजः ॥२५॥

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥२६॥
प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ।

है, और ब्रह्मर्षियों जैसे तेज से युक्त है ।

वह राम की उन पादुकाओं को आगे रख कर राज्य का शासन चला रहा है, प्रजा के चारों वर्णों की सबप्रकार के भयों से रक्षा कर रहा है, और कषायवस्त्रधारी अमात्य पुरोहित तथा सेनाध्यक्ष उसके पास बैठे हुए हैं, जोकि सब के सब पवित्रचरित्र और कार्यकुशल हैं। पुरवासी प्रजाजन भी इतने अधिक धर्मप्रेमी हैं कि वे भी राजपुत्र भरत के चीर कृष्णाजिनधारी होते हुए बढ़िया भोग भोगने का विचार तक नहीं करते ।

तब मारुत-पुत्र हनुमान् ने देह धारण किए हुए दूसरे धर्म-स्वरूप धर्मज्ञ भरत के समक्ष हाथ जोड़ कर निवेदन किया— "राजन् ! आप जिस दण्डकारण्यवासी चीर-जटाधारी राम की चिन्ता में सदा डूबे रहते हैं, उन्हों ने आपके पास कुशल-संवाद भेजा है। देव ! मैं आप को प्रिय संदेश सुना रहा हूं, आप अब

अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह संगतः ॥२७॥
निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥२८॥
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥२९॥
एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः ।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत् ॥३०॥
ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥३१॥
अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य संभ्रमात् ।
सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरश्रुबिन्दुभिः ॥३२॥
बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद् वनम् ।

अत्यन्त दारुण शोक को छोड़ दीजिए, आप अभी थोड़ी देर में भाई राम से मिलेंगे। राम रावण को मार कर और मैथिली को पाकर, तथा वनवास की प्रतिज्ञा पूरी करके महाबली मित्रों के साथ आप के समीप आ रहे हैं। साथ ही महातेजस्वी लक्ष्मण, तथा यशस्विनी एवं (सम् अग्रा) गुणों में सब से आगे रहने वाली विदेह-पुत्री सीता हैं। राम के साथ सीता का आगमन ऐसा है जैसे कि इन्द्र के साथ शची का।"

कैकेयी के पुत्र भरत को हनुमान् ने जब इसप्रकार हर्ष-संवाद सुनाया तो वह मारे हर्ष के मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। फिर थोड़ी देर बाद उठकर और सावधान होकर उस श्रीमान् ने झटपट प्रियवादी हनुमान का आलिंगन किया और हर्ष की अश्रु-धारा बहाते हुए हर्षजन्य प्रीतिमय शब्दों से उसे कहा—"कई वर्षों

शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥३३॥
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥३४॥
राघवस्य हरीणां च कथमासीत् समागमः ।
कस्मिन्देशे किमाश्रित्य तत्त्वमाख्याहि पृच्छतः ॥३५॥
स पृष्टो राजपुत्रेण बृस्यां समुपवेशितः ।
आचचक्षे ततः सर्वं रामस्य चरितं वने ॥३६॥

सर्ग ७१

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः ।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥१॥

से महावन में गए हुए अपने नाथ का आज मैं प्रीतिकर आगमन-समाचार सुन रहा हूं। अहो! आज मुझे यह कल्याणदायिनी कहावत स्मरण आ रही है कि यदि मनुष्य जीवन धारण किए रहे, तो सौ वर्ष के बाद भी उसे आनन्द प्राप्त हो जाता है।" इसके बाद भरत ने हनुमान् से पूछा—

"किस स्थान में, किस बात को लेकर, कैसे राम का वानरों के साथ मेल हुआ था, यह सब समाचार मुझे ठीक २ बतलाइए।" यह पूछते हुए राजपुत्र ने हनुमान् को तापसासन चटाई पर बैठाया और फिर उसने राम के साथ वन में जो २ बीता था, वह सब कह सुनाया।

राम का स्वागत-समारोह व राम-भरत मिलाप

"शत्रुवीर-हन्ता सत्यपराक्रमी भरत ने जब यह परम आनन्द-दायक समाचार सुना तो उसने उल्लास पूर्वक शत्रुघ्न को कहा—

"शत्रुघ्न! नगर के सब प्रमुख स्थानों व सर्वोच्च स्थानों को

दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि नगरस्य च ।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥२॥
राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनाङ्गनागणाः ।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः ।
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् ॥३॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ।
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास भागशः ॥४॥
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ।
स्थानानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम् ॥५॥
सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ।
ततोऽभ्यवकिरन्त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वतः ॥६॥
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ।
शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति ॥७॥

सुगन्धियों फूलों व बाजों से, मनुष्य पवित्र होकर, सजायें। और, राजमातायें तथा अमात्य, सेनापति और उनकी स्त्रियां, ब्राह्मण क्षत्रिय व्यापारी तथा अन्य श्रेणियों के प्रमुख लोग राम के चन्द्र-सम मुख को देखने के लिए अगवानी में चलें।"

शत्रुवीर-हन्ता शत्रुघ्न ने भरत के आदेश को पाकर बहुत बड़ी संख्या में, विभक्त करके, कर्मकरों को लगाया, और हुक्म दिया—"नन्दिग्राम से अयोध्या तक जितने भी गढ़े व ऊबड़-खाबड़ प्रदेश हैं उन सब को एकसमान ठीक कर दो, और जो टीले हैं उन्हें हटा दो। और फिर संपूर्ण मार्ग को शीतल जल से सींच दो। राम पर सब ओर से लाजायें और फूल बरसाने की तय्यारी कर रखो, श्रेष्ठपुरी अयोध्या की सब सड़कों पर

स्रग्दाममुक्तपुष्पैश्च सुवर्णैः पञ्चवर्णकैः ।
राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः ॥८॥
ततस्तच्छासनं श्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदान्विताः ।
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थश्चार्थसाधकः ॥९॥
अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः ।
मत्तैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः ॥१०॥
अपरे हेमकक्षाभिः सगजाभिः करेणुभिः ।
निर्ययुस्तुरगाक्रान्ता रथैश्च सुमहारथाः ॥११॥
शक्त्यृष्टिपाशहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ।
पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ॥१२॥
ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।

पताकायें लहरा दी जावें, सूर्योदय से पहले २ सब मकान सजा दिए जावें, और सैकड़ों मनुष्य सुन्दर रंग वाली पांचों रंगों की मालायों, हारों, मोतियों एवं फूलों से राजमार्ग को घने तौर पर सजा दें।"

शत्रुघ्न के इस आदेश को पाकर धृष्टि, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक, मंत्रपाल और सुमंत्र, ये मंत्री प्रसन्नता पूर्वक अगवानी के लिए चल पड़े। ये मंत्री लोग मदमत्त बली हाथियों पर सवार होकर निकले। इन हाथियों पर झण्डे फहरा रहे थे और खूब सजाए हुए थे। इनके उपमंत्री आदि उच्च राज-कर्मचारी सोने के पटों वाली हथिनियों पर व मामूली हाथियों पर सवार थे। कुछ सेनापति लोग घोड़ों पर, और महारथी रथों पर सवार होकर निकले। इन सेनापतियों के साथ हजारों सैनिक वीर पैदल चले। इन वीरों के हाथों में शक्ति, ऋष्टि, पाश शस्त्र थे, और झण्डे-झण्डिया ले रखी थी।

कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ॥१३॥
द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥१४॥
शङ्खभेरीनिनादैश्च बन्दिभिश्चाभिनन्दितः ।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥१५॥
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥१६॥
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः ॥१७॥
प्रत्युद्ययौ तदा रामं महात्मा सचिवैः सह ॥१८॥
ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥१६॥

दशरथ की स्त्रियां यानों पर सवार हो कर चली। (इनमें तीनों पत्नियां व मुख्य परिचारिकायें सब शामिल हैं)। कौसल्या और सुमित्रा सब से आगे थी। धर्मात्मा भरत के साथ सब मंत्री लोग थे, प्रमुख ब्राह्मण थें, सब श्रेणियों के कर्मकर थे और प्रमुख व्यापारी थे। इन्हों ने हाथों में मालायें-फूल व लड्डू ले रखे थे। इसप्रकार जब यह जलूस निकला तो धर्ममर्मज्ञ भरत ने राम की पादुकायें सिर पर ले रखी थी और आगे २ शंख-भेरियां बज रही थी, तथा भजन कीर्त्तन हो रहा था। सफेद फूलों से सुशोभित सफेद छत्र, तथा राजा के योग्य सोने की डराडी वाले दो सफेद चमर भी साथ में ले रखे थे।

थोड़ी देर बाद स्त्रियों ने, बालकों ने, युवकों ने, बृद्धों ने एक साथ मारे हर्ष के आकाश को गुंजा दिया कि देखो ये राम आ

रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ॥२०॥
ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥२१॥
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद् विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥२२॥
आरोपितो विमानं तद् भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥२३॥
तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥२४॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ।

गए ये राम आ गए !! तब भरत व मंत्री आदि सब लोग रथों हाथियों घोड़ों पर से नीचे उतर पड़े और सब लोग दूर से ही विमान पर स्थित राम को ऐसे देखने लगे जैसे कि आकाश में चन्द्रमा को देखा जाता है। तब भरत ने विमान पर आगे बैठे भाई राम को दूर से ही झुक कर ऐसे प्रणाम किया जैसे कि उदयाचल पर उठे सूर्य को प्रणाम किया जाता है।

तब राम के कहने पर हंस लगा वेगशाली अनुपम विमान नीचे पृथिवी पर उतरा। नीचे उतरने पर सत्य विक्रमी भरत उस पर सवार हुआ और राम को पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ तथा पुनः उनका अभिवादन किया। चिरकाल के बाद भरत को देखकर राम अत्यन्त प्रसन्न हुए और उठा कर अपनी गोद में ले गाढ़ आलिंगन किया।

इसके बाद शत्रुतापी भरत, लक्ष्मण और सीता के पास

अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥२५॥

सुग्रीवं केकयीपुत्रो जाम्बवन्तमथाङ्गदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलम् ऋषभं चैव सस्वजे ॥२६॥

सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव परितः परिपस्वजे ॥२७॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृच्छँस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा ॥२८॥

अथाब्रवीद् राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥२९॥

त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रम् अपकारोऽरिलक्षणम् ॥३०॥

विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥३१॥

पहुँचा और प्रीति में भर कर उनका अभिवादन किया तथा अपना नाम सुनाया। फिर सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद, मैन्द, द्विविद, नील और ऋषभ से गले मिला, और फिर सुषेण, नल, गवाक्ष गन्धमादन, शरभ तथा पनस का आलिंगन किया। उससमय ये सब कामरूपदेशीय वानर मानुष वेष में थे। इन्होंने प्रहृष्ट होकर भरत से कुशल-क्षेम पूछा।

तत्पश्चात् महातेजस्वी तथा धर्मिष्ट राजपुत्र भरत ने वानरराज सुग्रीव को पुनः गले लगाते हुए कहा—

"सुग्रीव ! आप हम चार भाइयों में पांचवें भाई और जुड़े हैं। उपकारसे मित्र बनता है, और अपकार दुश्मनकी पहिचान है।"

इसके बाद भरत ने विभीषण से स्नेह-परिपूरित वचन

शत्रुघ्नश्च तदा रामम् अभिवाद्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत् ॥३२॥

रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् ।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥३३॥

अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥३४॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥३५॥

तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ।
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः ॥३६॥

कहे—"यह बड़े सौभाग्य की बात है कि आपने सहायक बन कर अत्यन्त कठिन काम किया है।" तब वीर शत्रुघ्न ने राम और लक्ष्मण को अभिवादन किया, और विनयभाव से सीता के चरण छूए। इसके बाद राम उतरे-चेहरे तथा शोक से कृश माता के पास गये और उनके मन को आह्लादित करते हुए नम्रभाव से पांव पकड़े। तदनन्तर, सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयी को अभिवादन किया। इसके बाद अन्य सब मातृसदृश पूजनीयाओं को प्रणाम करके पुरोहित के पास पहुंचे।

दूसरी ओर नागरिकों ने हाथ जोड़ कर राम का अभिनन्दन करते हुए कहा—'कौसल्या के दुलारे महाबाहु! आपका स्वागत हो।' इसप्रकार जिस समय नागरिक लोग हजारों अंजलियां बांधे खड़े थे, तो भरत के बड़े भाई राम ने देखा कि मानों हजारों कमलपुष्प खिले खड़े हैं।

इस स्वागत-सत्कार के बाद धर्मवेत्ता भरत ने राम की वे

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥३७॥

अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ।
एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥३८॥

अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ।
यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥३९॥

अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥४०॥

तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ।
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥४१॥

ततः प्रहर्षाद्भरतम् अङ्कमारोप्य राघवः ।
ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ॥४२॥

पादुकायें स्वयं पकड़ी और राजा के चरणों में पहना दीं। और फिर हाथ जोड़ बोला—"राम ! यह सब राज्य आपका है, यह मेरे पास धरोहर के रूप में रखा था, सो मैंने अब आप को लौटा दिया है। राम ! आज मेरा जीवन कृतार्थ हुआ, और आज मेरा मनोरथ पूरा हुआ, जबकि मैं आप राजा को पुनः अयोध्या में आए हुए देखता हूं। अब आप राजकोश, भण्डारागार, और गृहसेना को संभालिए। मैंने आपके तेज से ये सब दसगुणा कर दिये हैं।"

इसप्रकार कहते हुए भ्रातृवत्सल भरत को देखकर सब वानर और राक्षस विभीषण आंखों से टपटप आंसु गिराने लगे, और राम ने भरत को अपने पास बैठाया और उसी विमान द्वारा सेनापतियों सहित भरत के आश्रम की ओर चल दिए। वहां

भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥४३॥

सर्ग ७४

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः ।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१॥
पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥२॥
धुरमेकाकिना न्यस्तां वृषभेण बलीयसा ।
किशोरवद् गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥३॥
वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन् ।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥४॥

पहुंच कर राम सेनापतियों सहित विमान से नीचे उतर भूमि पर खड़े हो गये।

राम का अयोध्या-आगमन व जलूस

नन्दिग्राम पहुँचने पर कैकेयी के दुलारे भरत ने हाथ जोड़ कर सत्यपराक्रमी बड़े भाई राम से कहा—"भाई आपने मेरी माता की इच्छा पूरी करके मुझे यह राज्य प्रदान किया, सो मैं वह राज्य पुनः आपके समर्पित करता हूं, जैसे कि आपने मुझे प्रदान किया था। जैसे पहले किसी बलवत्तम बैल ने कोई भारी भार ढोया हो, और फिर वह भार किसी बछड़े के कन्धे पर रख दिया जावे, तो जैसे वह बछड़ा उस भार को देर तक नहीं वह सकता, उसीप्रकार की मेरी हालत है। जैसे प्रबल जल-वेग से कोई बांध टूट गया हो और उस में से जल वह रहा हो, तो जैसे वह बांध जल-धारा को काबू नहीं कर सकता, उसीप्रकार प्रचलित

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः ।
नान्वेतुमुत्सहे वीर तव मार्गमरिन्दम ॥५॥

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने ।
महानपि दुरारोहो महास्कन्धः प्रशाखवान् ॥६॥

शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन् ।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः सः रोपितः ॥७॥

एषोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्तुमर्हसि ।
यद्यस्मान्मनुजेन्द्र त्वं भर्ता भृत्यान्न शाधि हि ॥८॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वाम् अनुपश्यतु राघव ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥९॥

तूर्यसङ्घातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिःस्वनैः ।

राज्य-दोष को मैं नहीं बन्द कर सकता। जैसे घोड़े की चाल को गधा, और हंस की चाल को कौआ नहीं पा सकता, वैसे ऐ शत्रु-मर्दन वीर ! मैं आप के पथ का अनुसरण नहीं कर सकता।

जैसे घर के अन्दर कोई वृक्ष लगाया हो, वह जम कर खूब बड़ा हो गया हो, उसका तना भी बड़ा मोटा और शाखायें-प्रशाखायें भी खूब फैल गयी हों, फिर वह फूला भी बड़ी जोर से हो, परन्तु जब फल देने का मौका आया तो झड़ जावे, सो महाबाहु मनुजेन्द्र ! यदि आप भर्ता होकर हम भर्तव्यों का शासन नहीं करते तो यह उपमा आप पर घटती है, इस बात को आप अच्छी तरह जान सकते हैं। इसलिए राम ! मध्यान्हकाल में प्रखर किरणों के साथ तपते हुए सूर्य के समान प्रतापी आपको आज दुनिया राज्याभिषिक्त देखे। आप नौबत बजने के शब्दों से जागें, और करधनी-नूपुर की झङ्कारों के साथ निकले मधुर गीत शब्दों

मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुद्ध्यस्य शेष्व च ॥१०॥
यावदावर्तते चक्रं यावती च वसुन्धरा ।
तावत्त्वमिह लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तय ॥११॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः ।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥१२॥
ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः ।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥१३॥
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥१४॥
विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥१५॥
प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ।

से सोयें। जितने आकाश-प्रदेश तक यह भूचक्र घूमता है और जितनी यह वसुन्धरा है, उस समस्त आकाश-प्रदेश और भूमि का आप शासन कीजिए।"

शत्रु-पुर-विजयी राम ने भरत के इस वचन को सुनकर 'तथास्तु' कह कर स्वीकार किया और सुन्दर आसन पर बैठ गए। तब शत्रुघ्न के आदेश को पाकर दक्ष, कोमल हाथ वाले, और शीघ्र हजामत बनाने वाले नाई (श्मश्रुबर्धनाः बालछेदकाः) राम के समीप पहुंच गए। सब से पूर्व बाल कटवा कर भरत ने स्नान किया, फिर महाबली लक्ष्मण ने, फिर वानरराज सुग्रीव ने, और फिर राक्षराज विभीषण ने। सब से पीछे राम ने हजामत बनवा कर स्नान किया, बढ़िया माला पहनी, चन्दन लगाया, और कीमती वस्त्र पहने। तब वे शरीर-सौन्दर्य से दमकने लगे। तदनु,

लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवान् इक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥१६॥
प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥१७॥

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥१८॥

ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
योजयित्वाऽभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥१९॥

अग्न्यर्कामलसङ्काशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥२०॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती ।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥२१॥
सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।

वीर्यवान् कान्तिमान् इक्ष्वाकुकुलवर्धन शत्रुघ्न ने तो राम को आभूषण पहिनाये और दशरथकी सब मनस्विनी स्त्रियों ने अपने हाथ से सीता का सुन्दर शृङ्गार किया। और फिर प्रसन्न होकर पुत्र-वत्सला कौसल्याने सभी वानर-पत्नियोंको आभूषणोंसे सजाया।

इसप्रकार तय्यारी हो चुकने पर शत्रुघ्न के आदेश से सारथि सुमंत्र (मंत्री सुमंत्र दूसरा है) सर्वाङ्ग-सुन्दर रथ को जोड़ कर आ उपस्थित हुआ, और शत्रुपुर-विजयी महाबाहु राम अग्नि व सूर्य के समान निर्मल सुन्दर रथ को खड़ा देखकर उस पर सवार हो गए। इन्द्र के समान कान्तिमान् सुग्रीव और हनुमान् नहा धोकर बढ़िया वस्त्र धारण किये हुए और सुन्दर कुण्डल पहिने हुए राम के साथ चले। और, सब तरह के आभूषणों से विभूषित किंवा सुन्दर कुण्डल पहिने हुईं सुग्रीव की स्त्रियां (सुग्रीव तथा

सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥२२॥
अयोध्यायां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च ।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥२३॥
अशोको विजयश्चैव सिद्धार्थश्च समाहिताः ।
मन्त्रयन् रामवृद्ध्यर्थं वृत्त्यर्थं नगरस्य च ॥२४॥
सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मङ्गलपूर्वकम् ॥२५॥
इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य च पुरोहितः ।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥२६॥
हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ।

वानर-सेनापतियों की पत्नियां) तथा सीता नगर देखने के चाव में भर कर राम के साथ चलीं।

इधर नन्दिग्राम से यह जलूस चला, और उधर अयोध्या में पहुंच कर राजा दशरथ के मंत्रियों ने पुरोहित वसिष्ठ की अध्यक्षता में विचार किया कि किसप्रकार राज्याभिषेक की तय्यारी की जावे। इस मंत्रणा में राम के बढ़िया स्वागत तथा नगर की सजावट के बारे में एकचित्त होकर अशोक विजय तथा सिद्धार्थ मंत्रियों ने विशेष हिस्सा लिया। इसप्रकार मंत्रणा करके मंत्रियों तथा पुरोहित ने राज्यकर्मधारियों को आदेश दिया कि "अभिनन्दनीय महात्मा राम के राज्याभिषेक के लिए जो जो माङ्गलिक पदार्थ व कृत्य आवश्यक हैं वे २ सब तय्यार किये जावे," और ऐसा आदेश देकर राम की अगवानी के लिये वे सब शीघ्र अयोध्या से चल पड़े।

जिसप्रकार बढ़िया घोड़ों से जुते रथ पर सवार होकर

प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥२७॥
जग्राह भरतो रश्मीञ्छत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥२८॥
श्वेतं च वालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः ।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥२९॥
ऋषिसङ्घैस्तदाकाशे देवैश्च समरुद्गणैः ।
स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥३०॥
ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥३१॥
नव नागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥३२॥

हजारों चार-चक्षुयों वाला पवित्र-चरित्र इन्द्र राजा प्रस्थान किया करता है, वैसे रथ पर सवार होकर राम उत्तम नगर की ओर प्रस्थित हुए। उस जलूस में भरत राम के रथ को हांक रहा था, शत्रुघ्न ने राम पर छत्र ले रखा था, और लक्ष्मण उन के सिर पर चमर झुला रहा था। एवं, एक ओर तो लक्ष्मण ने सफेद चंवर ले रखा था, और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण ने एक दूसरा चन्द्र जैसा धवल चंवर पकड़ रखा था। उस समय आकाश में स्थित ऋषिसंघ, देवलोग और मरुद्गण राम का गुणगान कर रहे थे, उस गान की मधुर ध्वनि जलूस में सुनाई पड़ती थी।

उस जलूस में महातेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीव शत्रुञ्जय नामी ऊंचे हाथी पर सवार था, और वानर-सेनापति नौ बलिष्ठ हाथियों पर आरूढ़ थे। उस समय ये सब मानुष वेष में थे और अलंकारों से अलंकृत थे।

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥३३॥
ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥३४॥
ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥३५॥
अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥३६॥
स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययौ ॥३७॥
अक्षतं जातरूपं च गावः कन्याः सहद्विजाः ।

जिस समय पुरुषव्याघ्र राम का यह जलूस शंख-घोषों और दुन्दुभि-नादों के साथ अटारी-माला से युक्त अयोध्यापुरी की ओर चल रहा था तो लोगों ने देखा कि जलूस के आगे २ बहुत बड़ा जनसमुदाय है, और रथिश्रेष्ठ राम शरीर से शोभायमान होकर रथ पर आ रहे हैं। उन लोगों ने राम का जयकार गुंजाया, राम ने हाथ के इशारों से उनका अभिनन्दन किया और फिर वे भी भाईयों के साथ जा रहे राम के पीछे २ हो लिए। एवं, अमात्यों, ब्राह्मणों तथा प्रजाजनों के साथ चलते हुये राम शोभा से ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे कि नक्षत्रों के साथ चलता हुआ चन्द्रमा शोभायमान हुआ करता है।

इस जलूस में प्रमुदित गायक लोग तुरियें व करताल स्वस्तिक बजाते हुए तथा मंगल-गान गाते हुए आगे २ चल रहे थे। इसीतरह अनेक सुन्दर रंगों में रंगे चावल, गौयें, कन्यायें

नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥३८॥
सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥३६॥
श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ।
वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥४०॥
द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंयुतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णाम् अयोध्यां प्रविवेश सः ॥४१॥
ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पताकाश्च गृहे गृहे ।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यम् आससाद पितुर्गृहम् ॥४२॥
अथाब्रवीद् राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥४३॥

तथा ब्राह्मण लोग, और हाथों में लड्डू उठाये मनुष्य आगे २ चल रहे थे। जब अयोध्या में विचार करने के बाद मंत्री लोग आगे रास्ते में मिले, तो उनके समक्ष राम ने अयोध्यावासियों को सुग्रीव की मित्रता, हनुमान् के प्रभाव, तथा वानर-सेनापतियों के अद्भुत कर्म के बारे में बतलाया। तब अयोध्यावासी लोग वानरों के उस कर्म को और राक्षसों के बल को सुनकर विस्मित हुए। एवं, तेजस्वी राम प्रजाजनों को वृत्तान्त सुना कर हृष्ट-पुष्ट प्रजाजनों से युक्त अयोध्यापुरी में वानरों सहित प्रविष्ट हुए। उस समय पुरवासियों ने अपने २ घरों पर पताकायें फहरा रखी थी। राम नगर में से होते हुए पिता के रम्य महल में पहुचे। यह महल पूर्ववर्ती सब इक्ष्वाकु राजाओं का निवासस्थान रहा है।

महल में पहुंच कर राजपुत्र रघुनन्दन ने धार्मिक-प्रवर भरत को भावपूर्ण मधुरवाणी से कहा—"भरत ! सुग्रीव को महात्मा पिता

पितुर्भवनमासाद्य प्रवेश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवादय ॥४४॥
तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥४५॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
हस्ते गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥४६॥

सर्ग ७५

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ॥१॥
वसिष्ठो विजयश्चैव जाबालिरथ काश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च वामदेवस्तथैव च ॥२॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।

जी के घर में ले जाकर अन्तःपुर में ले जावो और माता कौसल्या सुमित्रा तथा कैकेयी से इनका अभिवादन करायो, और फिर इन्हें मेरे वाले उस श्रेष्ठ भवन में ठहरायो, जिसमें कि बड़ी अशोक-वाटिका बनी हुई है, और मोतियों तथा हीरों से जड़ा हुआ है।" इस पर सत्यविक्रमी भरतने रामके उस आदेश को सुनकर सुग्रीव का हाथ पकड़ा और उन्हें उस भवन में लिवा ले गया।

राम का राज्याभिषेक और सुग्रीव आदि की विदाई

जब राज्याभिषेक की तय्यारी हो चुकी तो यति वृद्ध वसिष्ठ पुरोहित ने दूसरे ऋत्विजों को साथ लिया, और सीता सहित राम को रत्नजटित पीठ पर बैठाया। और उस पीठ पर बैठाकर वसिष्ठ, विजय, जावालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम, तथा वामदेव ने मंत्रों द्वारा पवित्रीकृत सुगन्धित जल से नरव्याघ्र

सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥३॥
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा ।
योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टाः सनैगमैः ॥४॥
किरीटेन ततः पश्चाद् वसिष्ठेन महात्मना ।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥५॥
छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ।
श्वेतं च वालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥६॥
मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ।
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः ॥७॥
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम् ।
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः ॥८॥

राम का अभिषेक उसीप्रकार किया, जैसे कि बहुदर्शी इन्द्र का देवलोग करते हैं। इसप्रकार सर्वप्रथम आप राज्याभिषेक करके तत्पश्चात् उन पुरोहितों ने परम प्रसन्न होकर पहले ऋत्विज ब्राह्मणों से और फिर क्रमशः कन्याओं से, मंत्रियों से, योद्धाओं से, और अन्त में वैश्यों से राम का अभिषेक कराया।

इसके पश्चात् महात्मा वसिष्ठ ने राम को राजमुकुट पहिनाया और ऋत्विजों ने आभूषणों से अलंकृत किया। शत्रुघ्न ने सुन्दर श्वेत राजछत्र पकड़ा। एक ओर वानरराज सुग्रीव ने सफेद चंवर पकड़ा और दूसरी ओर राक्षसराज विभीषण ने चन्द्र समान उज्ज्वल चंवर लिया। इन्द्र राजा से भेजी हुई सोने की देदीप्यमान माला उसके प्रतिनिधि वायु ने राम को पहिनायी। इस माला में मणियों के सौ कमलपुष्प बने हुए थे। अतिरिक्त इसके इन्द्र की ओर से एक मोतियों का हार भी समर्पित

अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः ॥९॥
वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते ।
वालिपुत्राय धृतिमान् अङ्गदायाङ्गदे ददौ ॥१०॥
मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम् ।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥११॥
अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ।
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे ॥१२॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ।
अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥१३॥

किया गया, जिसमें सब प्रकार के रत्न लगे हुए थे और मणियों से विभूषित था।

धृतिमान् राम ने सूर्यकिरण-समान चमकने वाली वह मणि-जटित सोने की दिव्य माला सुग्रीव को भेंट कर दी, और चन्द्रकिरण समान चमकने वाले वैदूर्य मणियों से चित्रित दो कड़े वालिके पुत्र अंगदको प्रदान किए। एवं उत्तम मणियोंसे जटित चन्द्ररश्मि-समान उज्ज्वल वह मोतियों का अनुपम हार सीता को दिया।

तदनन्तर जनकनन्दिनी सीता ने राम की ओर निहार कर और मुखाकृति से उनका अभिप्राय पहिचान हनुमान् को अत्यन्त बढ़िया निर्मल अधोवस्त्र व उत्तरीय वस्त्र प्रदान किए और फिर अपने गले से मुक्ताहार उतार कर वानर-सेनापतियों व भर्ता की ओर बार २ निहारने लगी। इस पर अभिप्राय को ताड़ने वाले राम ने जनकपुत्री की ओर देख कर उससे कहा—"सौभाग्यवती

तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टाऽसि भामिनि ॥१४॥
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥१५॥
तेजो धृतिर्यशो दाक्ष्यं सामर्थ्यं विनयो नयः ।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि नित्यदा ॥१६॥
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाऽचलः ॥१७॥
सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥१८॥
विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ।
यथार्थं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः ॥१९॥
ततः द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः ।
सर्वान्कामगुणान् वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ॥२०॥

भामिनी ! जिसके ऊपर तुम खुश हो, उसे हार दे डालो।" इस प्रकार अनुमति मिल जाने पर श्यामनयना सीता ने वह हार भी हनुमान् को दे दिया, क्योंकि इसमें तेज, धैर्य, यश, चतुरता, सामर्थ्य, विनय, नीति, पौरुष, विक्रम और बुद्धि, ये गुण-कर्म नित्य देखे गए थे। वानरश्रेष्ठ हनुमान् उस मुक्ताहार से ऐसा शोभायमान हुआ, जैसा कि चन्द्रकिरणों करके गोरे सफेद बादल से पर्वत शोभायमान हुआ करता है। एवं, जितने भी बूढ़े और श्रेष्ठ वानर-सेनापति थे, उन सब का वस्त्रों तथा आभूषणों से यथायोग्य सत्कार किया गया। इनमें भी विभीषण, सुग्रीव, हनुमान् और जाम्बवान्, इन सब का मनोनुकूल पदार्थों व पुष्कल रत्नों से सत्कार किया गया। फिर शत्रुतापी राजा राम ने द्विविद, मैन्द, और नील की वीरताओं को देख कर उन्हें भी

दृष्ट्वा सर्वे महात्मानस्ततस्ते वानरर्षभाः ।
विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धां समुपागमन् ॥२१॥
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥२२॥
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः ।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लङ्कां प्रायान्महायशाः ॥२३॥
स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ।
राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ॥२४॥
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥२५॥
आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं यथा त्वं पितृभिः पुरस्तात्तैर्यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥२६॥

सब प्रकार के रुचिकर पुरस्कार दिये ।

इसप्रकार वे सब महाबली वानर-सेनापति राज्याभिषेक-समारोह को देखकर और राजा राम से विदा लेकर किष्किन्धा चले गए। वानरराज सुग्रीव रामाभिषेक को देखकर और राम से सत्कार को पाकर किष्किन्धापुरी पहुंच गया। महायशस्वी धर्मात्मा राजा विभीषण भी कुलागत लंका-राज्य को पाकर राक्षस-मंत्रियों सहित लंका वापिस चला गया।

एवं, राज्याभिषेक-समारोह की समाप्ति पर अतिथियों के विदा हो जाने पर नष्टशत्रु महायशस्वी परम उदार राम ने दुष्टों का निग्रह करते हुए परम प्रसन्नता पूर्वक संपूर्ण राज्य का पालन करना प्रारम्भ कर दिया।

राज्यभार संभालते हुए धर्मवत्सल राम ने धर्मज्ञ लक्ष्मण को कहा—"धर्मज्ञ ! जिस पृथिवी का राज्य हमारे पूर्वजों ने बल संपादन करके किया है, आओ, उसके शासन में तुम भी मेरे

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥२७॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः ॥२८॥
न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद् रामे राज्यं प्रशासति ॥२९॥
निर्दस्युरभवल्लोको नानर्थं कश्चिदस्पृशत् ।
न च स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥३०॥
सर्वं मुदितमेवासीत् सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।

साथ बैठो : जैसे पिता-पितामह आदि ने अपने बड़ों की उपस्थिति में युवराज-पद ग्रहण किया था, वैसे तुम भी युवराज-पद पर स्थित होकर मेरे साथ राज्य-भार को निबाहो।" एवं, सब तरह से युवराज-पद के लिए राम ने लक्ष्मण को कहा, तथा भरत ने भी उसे बहुत कुछ कहा-सुना, परन्तु जब वह किसी भी तरह इस पद को पाने के लिए तय्यार न हुआ, तो महात्मा राम ने भरत को युवराज-पद पर अभिषिक्त किया।

एवं, अनुपम राज्य पाकर धर्मात्मा राम ने भी अपने पूर्व-पुरुषों के समान मित्रों, भाइयों, बान्धवों की सहायता से बहुविध लोकोपकारी कार्य किए। परिणामस्वरूप राम के राज्य-शासन में कहीं विधवाओं का करुण-क्रन्दन नहीं था, कहीं शठों-हिंसकों का भय नहीं था, और कहीं रोग का डर न था। राज्य भर में न डाकुओं-चोरों-गठकतरों-लुटेरों का नाम था, न कोई किसी पर-पदार्थ को छूता था, और न कभी वृद्ध लोगों ने बालकों का मृतक संस्कार किया। एवं, सब प्रजाजन

रामभेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन् परस्परम् ॥३१॥
आसन्वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥३२॥
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥३३॥
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ।
आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृताः ॥३४॥
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ।
दशवर्षसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् ॥३५॥

सदा आनन्द-प्रसन्न थे। सब अपने २ कर्तव्य-धर्म में तत्पर थे, और राम को आदर्श रूप में देखते हुए परस्पर में किसी ने किसी को दुःख नहीं दिया। राम के राज्य-शासन में मनुष्य दीर्घजीवी थे, सन्तान बलवान् होती थी, और सब रोग-रहित व शोक-रहित थे। देश में वृक्ष समय पर फूलते, समय पर फलते, और समय पर मूल-कन्द प्रदान करते थे, क्योंकि मेघ काम-वर्षी रहता और हवा सुखदायिनी चला करती थी। सब लोग अपने २ कर्मों से सन्तुष्ट रह कर अपने २ कर्मों में लगे रहते, जिससे राम के राज्य में समस्त प्रजा सत्यपरायण थी, अनृतग्राही न थी। सम्प्रति राम को राज्य करते हुए दस साल बीत गए हैं, परन्तु सभी लोग शुभ लक्षण-सम्पन्न हैं, और सभी कर्तव्य-परायण हैं।

॥ वाल्मीकि रामायण समाप्त ॥